सोना और खून

प्रथम भाग—उत्तरार्द्ध

सोना और खून

प्रथम भाग—उत्तरार्द्ध

संख्या	विषय		पृष्ठ

सोना और खून

चौथा खण्ड

: १ :

साँवलसिंह

चौधरियों का नामी घराना अब बरबाद हो चुका था। इस खानदान में अब केवल एक तरुण बचा था, जिसका नाम साँवलसिंह था। यह चौधरी के सब से छोटे बेटे सुखपाल का बेटा था। बरसों तक इधर-उधर भटकते रहने के बाद अब यह मुक्तेसर में आ बसा था। मुक्तेसर का गढ़ ढहा पड़ा था, बस्ती भी उजाड़ हो गई थी। चौधरियों की पुरानी हवेली का कहीं नामोनिशान न रह गया था। पर चौधरी की यशोगाथा बड़े-बूढ़ों की ज़बान पर थी। इस समय इसकी उम्र पैंतीस बरस की थी। वह लम्बा-तगड़ा और आण्डील धज का आदमी था। रंग उसका गोरा, चेहरा सुर्ख़, आँखें बड़ी-बड़ी—जो सदा लाल रहती थीं, नाक लम्बी और मुँह सुडौल था। उस पर घनी काली मूँछें उसे और भी रुआबदार बना रही थीं। गहरी घनी काली मूँछों के बीच झाँकते हुए उसके सफ़ेद दाँतों की बत्तीसी भी बड़ी शानदार थी। बाल उसके काले थे—और सदा कटे, छोटे रहते थे। इधर-उधर एकाध बाल पक भी गया था। देखने में उस का चेहरा भारी था। वह जब बोलता था तो उसकी बोली में एक गूंज निकलती थी, जो दूसरों पर दहशत का असर पैदा करती थी। वह जब क्रोध में आता तो उसका सारा शरीर काँपने लगता था। मुक्तेसर में उस ने काफ़ी ज़मीन हथिया ली थी। परन्तु वह ज़मींदार को न लगान देता

था, न ज़मींदार की यह शक्ति थी कि उससे लगान वसूल करे। वह कभी खेतों पर स्वयं काम नहीं करता था। गढ़ के खण्डहरों के बीच जहाँ कभी चौधरी की हवेली थी और जहाँ वीरांगना मंगला ने फ़िरंगियों की तोप के आगे आ कर प्राण दिए थे--उस स्थान पर उस ने एक स्थान बनाया, जो शीघ्र ही सती का चबूतरा प्रसिद्ध हो गया था। वहीं उस ने अपनी चौपाल बनाई थी। वहीं वह दिन भर चारपाई पर बैठा हुक्का गुड़-गुड़ाता रहता। और रात को वहीं एक नीम की छांह में सो जाता।

कहते हैं कि उसकी बीवी बड़े घर की बेटी थी, पर वह, बहुत अरसा हुआ—एक बच्ची को प्रसव करके—ज़चगी में ही मर गई थी। तब से साँवलसिंह का जीवन पूरे आवारागर्दी का जीवन बना हुआ था। गर्मी-सर्दी—सदैव वह कमर में धोती, अंग पर खद्दर की मिरज़ई और पैरों में चमरौधा जूता पहनता था। बहुत कम वह बोलता था। चुपचाप घण्टों वह हुक्का पिया करता या सोता रहता। उसकी खानदानी मर्यादा की धाक तो थी ही, उसके व्यक्तित्व का भी बड़ा दबदबा था। आस-पास के गाँवों में वह चौधरी के नाम से ही विख्यात था। केवल बड़े-बड़े ज़मींदार ही नहीं—नामी-गरामी चोर-डाकू भी उसके नाम से काँपते थे। वह पढ़ा-लिखा क़तई न था। वास्तव में वह चोरों-डाकुओं का सरदार और गुनह-गारों का आश्रयदाता था। आस-पास के चोर-डाकू उसे सरदार कहते थे। और क़ानून के शिकंजे से बचने के लिए अपराधी चाहे खूनी हो, चाहे अन्य अपराध का मुजरिम, जो उसकी शरण आ गया, उसे किसी बात का भय न था। दस-बीस लठैत हमेशा उसके साथ रहते थे। उसके इशारे से कोई भी गाँव आनन-फ़ानन लूटा जा सकता था। किसी भी जमींदार को पेड़ पर लटकाया जा सकता था। कम्पनी बहादुर के पुलिस थानेदार और बरकन्दाज़ों की मजाल न जो कि उसकी अमलदारी में दखल दें।

उसकी आमदनी भी बहुत थी। वह चाहे जिस भी ज़मींदार या महाजन पर रुक्का भेज कर, जब जितना चाहे, रुपया माँग लेता था। किस की मजाल थी—कि उसके हुक्म में दरेग़ करे। ऐसा करने पर या तो

साँवलसिंह के लठियल उसका सिर फोड़ देते, या गाँव को लूट कर उस में आग लगा देते। इसे सब जानते थे—और कोई उसके हुक्म की उदूली नहीं कर सकता था। परन्तु बात केवल इतनी ही न थी। साँवलसिंह आड़े वक्त पर उनके काम भी आता था। उसके लठियल जवान जब चाहें तभी ठीक मूल्य पा कर किसी भी ज़मींदार के दुश्मन को पामाल कर सकते थे।

चौपाल में उसका लंगर सब के लिए खुला था। वहाँ कौन आता है, कौन खाता है, इसकी देख-भाल साँवलसिंह नहीं करता था। न उसे इस बात से सरोकार था कि सब सामान खाने-पीने का कहाँ से आता है। यह सब काम तो चेले-चांटे करते थे। वह तो केवल उनके कामों पर सही करता था। परन्तु एक बात थी—कोई किसी गरीब—अनाथ—बेक़सूर स्त्री-पुरुष, बालक पर अत्याचार नहीं कर सकता था। बहू-बेटियों को पर्दे में रखना और उनके शील आचरण का वह बड़ा पक्षपाती था। उसका खर्च अन्धाधुन्ध था पर हाथ रोकना और हिसाब-किताब देखने की जहमत उठाना उसे पसन्द न था।

: २ :

पुतली

पुतली एक नटनी थी। मुक्तेसर के सिवानों ही में नटों का टांडा था। पुतली वहीं अपने भाई-ब्रादरों के साथ रहती थी। पुतली बड़ी ठाठ की नटनी थी। नाच-गाने-कलाबाजी में तो वह कमाल रखती ही थी। उसका छरहरा लंबा शरीर, चपल भाव भंगिमा, चुलबुली अदाएँ और कटीली आँखें ऐसी थीं—कि देखने वाला उसे देखता ही रह जाता था। वह मग़रूर भी बहुत थी। आदमी की वह कोई हस्ती न समझती थी उन दिनों नटनियों से वास्ता-नाता रखना रईसी शान समझी जाती थी। साँवलसिंह से उसने कौल हारे थे—और अब वह उसके ताबे में रहती

थी। इससे उसका न केवल ठाठबाट, मिज़ाज, रुश्राब ही बढ़ गया था—वह श्रास-पास के रईसों की, ज़मींदारों श्रौर चोरों-डाकुश्रों-गुनहगारों की ढाल बन गई थी। जिसे साँवलसिंह को प्रसन्न करना होता, उससे कोई काम कराना होता—वह पुतली की शरण श्राता था। श्रौर पुतली ने जिसे श्रभयदान दे दिया—उसकी जैसे भगवान ने बाँह थाम ली। पुतली जैसे सुन्दरी-चपल श्रौर श्राकर्षक थी—वैसी ही बात की धनी, ईमानदार श्रौर मन की दृढ़ थी। कहने को वह नटनी थी—जो उन दिनों सस्ती वेश्या वृत्ति किया करती थीं—पर पुतली का पतिव्रत धर्म श्रास-पास के गाँवों में विख्यात हो गया था। वह तन मन से साँवलसिंह की एकनिष्ठ सेविका थी। बड़े-बड़े प्रलोभन श्रौर भय उसे दिए गए। ऐसे भी क्षण श्राए—जब साँवलसिंह विपत्ति में पड़ा, तब भी पुतली का मन नहीं डिगा। उसने गाढ़े समय में श्रौर भी दृढ़ता से साँवलसिंह का नेह निभाया। इतना ही नहीं, वह वीरांगना भी थी। एक बार साँवलसिंह को पुलिस के बरकंदाज़ पकड़ ले गए। कोई क़त्ल का मामला था—साँवलसिंह को हवालात में बन्द कर दिया गया। तब पुतली श्रकेली ही घोड़े पर सवार हो—बन्दूक कन्धे पर रख—सिपाहियों के पहरे से साँवलसिंह को हवालात से निकाल लाई। श्रौर श्रपने जेवर बेच कर उसे बेदाग़ छुड़ा लिया। ऐसी ही थी—वह नटनी।

उसके दाँत बड़े सुन्दर थे, उनसे भी सुन्दर था उसका हास्य। वह सवारी ही में बाहर निकलती थी—बहुधा पालकी में—पर कभी घोड़े पर। जब घोड़े पर निकलती तो बन्दूक उसके हाथ में होती।

साँवलसिंह पर उसका श्रसाध्य श्रधिकार था। साँवलसिंह जब भारी गुस्से में होता—उस समय केवल पुतली ही उसके निकट जा सकती श्रौर उसके मिजाज को ठीक रख सकती थी।

साँवलसिंह का पुतली से नित्य मिलना नहीं होता था। वह न तो उसे गाँव में चौपाल पर बुलाता था—न वह उसके घर नटों के टांडे में जाता था। जब वह उसे बुलाता तो बाग़ में डेरे-क़नात खड़े किए

जाते। बाक़ायदा पहरे-चौकी का इन्तज़ाम होता। दो-चार दिन नाच-रंग होता, शराब के दौरे चलते। चुने हुए साँवलसिंह के दोस्त ही तब इन जल्सों में सम्मिलित हो पाते थे। साँवलसिंह–कभी-कभी बड़े-बड़े ज़मीदारों को—कभी-कभी कम्पनी बहादुर के अफसरों को भी इन जल्सों की रौनक बढ़ाने बुला भेजता था। पर यह सब सांझ-शिरकत, नाच-रंग, खाने-पीने तक ही रहती। उसके बाद पुतली उसकी थी, केवल उसकी।

बहुत से चोर–लफंगे, ज़मींदार, अफसर, थानेदार उसके चाबुक का सड़ाका सह चुके थे। चाबुक वह बहुधा अपने हाथ में रखती थी। दीन-दुखियों पर वह रानी की भाँति कृपा करती थी। पता लगने की देर थी कि उसे क्या दुःख है, सहायता उसके घर पहुँच जाती थी। कितनी ही अनाथ—विधवाएँ—ब्राह्मण, ब्राह्मणी, दरिद्र उसके द्वारा पलते थे। यों वह बड़ी खुशमिजाज़ और मिलनसार थी—पर गुस्सा आने पर वह बाघिन की भाँति भयंकर हो जाती थी। प्रसिद्ध था कि उसका बन्दूक़ का निशाना अचूक होता था। बहुधा—जब वह साँवलसिंह के डेरों में होती दिन-दिन भर दोनों शिकार करते रहते। इससे वह अच्छी शह-सवार भी हो गई थी।

: ३ :

मालती

मालती की उम्र इस वक्त चौदह साल की थी। पर सांवलसिंह का उससे कोई लगाव ही नहीं था। मां उसकी जवानी में ही मर गई थी। एक दूर के रिश्ते की औरत ने उसे अपना दूध पिला कर पाला था। पर वह जब सयानी हुई तब मीर साहब की गोद उसे मिल गई। मीर साहब फ़कत दम थे—दुनिया में कहीं कोई उनका सगा न था। बीवी उनकी बहुत दिन हुए मर चुकी थी। एक लड़का उसने छोड़ा था। वह दस

ग्यारह साल का हो कर मर गया। बहुत सदमा हुआ मीर साहब को। दो तीन साल तक दुनिया से किनाराकशी कर तस्बीह हाथ में लिए बैठे रहे। इसी बीच सांवलसिंह ने उन्हें रख लिया। उस वक्त मालती तीन चार साल की थी। उस वक्त भी सांवलसिंह का उसकी ओर कोई लगाव न था। जब तब वह उसे देख आता था। पर मीर साहब ने उसे अपनी छाती से लगा कर पाला। उसके लिए धाय लगाई। खुद माँ की तरह उसका लाड़-प्यार किया। उनका सब से प्रिय काम था मालती के साथ मीठी-मीठी बातें करना। उसे पेट पर सुला कर थपकियाँ देना। देखते-देखते ही मीर साहब की ग़ोद में मालती बड़ी होने लगी। वह जब अपनी सुनहरी उंगलियों से उन की गंगा-जमनी डाढ़ी के बाल गिनती और खींचती तो मीर साहब वहीं बहिश्त का आनन्द पाते। मालती उन्हें शुरू से दाऊ कहती थी, तथा पिता को कक्का कहती थी। मीर साहब ने बड़ी होने पर उसे स्वयं पढ़ना लिखना—सलीका सिखाया। फिर उन्होंने एक अंग्रेज़ी मेम को उसे पढ़ाने पर नौकर रख दिया। एक देशी आया भी रख दी। जिन के हाथों वह अब सब तरह की शिक्षा पा रही थी। जो उस ज़माने में सर्वथा नई बात थी। यह सब हो रहा था—पर सांवलसिंह को इन सब बातों से कोई सरोकार न था। जब तब मालती उसके सामने आती, तो वह उसे भगा देता। कभी हंस कर बात भी न करता। मालती भी पिता से डरती थी। उसके सामने जाने, उससे बात करने में घबराती थी। ज्यों-ज्यों वह सयानी होती गई वह और भी अपने पिता से भयभीत होती गई।

: ४ :

मीर साहब

ज़ात के शेख़ थे। नाम था अल्ताफ हुसेन। पर सब लोग उन्हें मीर साहब कहते थे। उम्र साठ को पहुँच चुकी थी। परन्तु चुस्ती और फुर्ती कमाल थी। अरबी फ़ारसी के आलिम मशहूर थे—कम से कम उस देहाती

हल्के में। शेर भी कह लेते थे। यों सैंकड़ों क़लाम उनकी ज़बान पर थे, जिन्हें वे बात-बात में जड़ते थे। बातचीत में शाइस्ता। व्यवहार में मुरव्वत रखने वाले। मिज़ाज के ठण्डे। लेकिन दिमाग़ के तेज। ये थे सांवलसिंह के करिन्दे या प्राइवेट सेक्रेटरी, या जो कुछ आप कहिए, समझिए।

कदीमी बाशिन्दे लखनऊ के थे। प्रसिद्ध था—बड़ेगांव के बड़े मियाँ इनके दादा जान को लखनऊ से लाए थे। बड़ेगांव में उन्होंने उनके लिए हवेली बनवाई थी और उन्हें छोटे मियाँ का उस्ताद कर के रखा था। अब दोनों की गर्दिश में मीर साहब का खानदान सिफर रह गया। अकेले फकत-दम। मिजाज के फक्कड़। बचपन ही से सांवलसिंह से प्रेम हो गया। और तभी से अब ये सांवलसिंह के साथ रहते थे। उन्हें सांवलसिंह की ओर से सब स्याह सफेद करने का अख्तियार था। कहना चाहिए—वे सांवलसिंह के दिमाग थे। मुन्शी आदमी तो थे ही, जहां-दीदां भी थे। दिल्ली भी रह चुके थे। लालकिले के दरबार में भी हाजिरी दे चुके थे। लिखते बहुत खुशख़त थे। इबारत भी माशाअल्लाह चुस्त होती थी। बड़े-बड़े जमींदार उन्हीं से दस्तावेज—रुक्के लिखाते थे। कम्पनी बहादुर की खिदमत में अर्जी—दर्खास्त भेजना होती तो उन्हीं को लिखनी पड़ती थी।

अदालत कचहरी के काम में भी मीर साहब चाक-चौबन्द थे। उल्टे सीधे सभी काम साध लेना उनके बाएँ हाथ का खेल था। कचहरी में जब वह लतीफा या चुटकला सुनाते कि सारा अमला बाग़-बाग़ हो जाता। दूसरों का जो काम अमले की मुट्ठी गरम करने से होता था, मीर साहब एक चुटकी बजाते, बात की बात में करा लाते थे। अदालती अमलों के साथ ठसक से बात करते। किसी को 'बरखुरदार' किसी को 'भतीजा' किसी को 'बेटा' कहते। घर-गिरस्ती का हाल चाल पूछते। हंसी-मज़ाक करते। जिसका जो शौक देखते उससे वैसी ही बातें करते। और इस तरह बातों ही बातों में अपना मतलब साध लाते थे।

साँवलसिंह की ओर से उन्हें सब स्याह सफेद करने का पूरा हक़ था। साँवलसिंह उन्हें चचा कहता था। और उसी तरह उनकी इज्जत करता था। मीर साहब के खिलाफ कोई शिकायत वह नहीं सुनता था।

तनख्वाह मीर साहब को मिलती थी दस रुपया माहवार। परन्तु साँवलसिंह की हजारों रुपयों की आमदनी का जमा-खर्च मीर साहब के हाथ था, जिसका साँवलसिंह कभी हिसाब-किताब नहीं माँगता था। बस इतनी बात ज़रूर थी कि साँवलसिंह को जब—जिस कदर रुपया दरकार हो—मीर साहब फौरन उसके सामने ला रखते। कहाँ से? इस बात से उसे कोई सरोकार न था। दूसरी बात यह—कि साँवलसिंह अच्छा-बुरा उल्टा-सीधा जो कुछ करे, मीर साहब सबका समर्थन करते थे। जैसा कि हम कह चुके हैं कि साँवलसिंह के हुक्म में चोरों-डकैतों, गुनाहगारों का एक अच्छा गिरोह रहता था। दस-बीस लठैत हमेशा उसकी खिदमत में रहते थे। किसी गाँव को लूट लेना या डाका डलवा देना, या फौजदारी कर डालना—यहाँ तक क़त्ल तक भी कर डालना साँवलसिंह के लिए मामूली बात थी। मीर साहब शरीफ-मिज़ाज, खुदातर्स, रोजा-नमाज़ के पाबन्द, पढ़े-लिखे सभाधिष्ट सब कुछ थे। परन्तु साँवलसिंह के हर काम के समर्थक और आड़े वक्त में उसके सिर की ढाल थे। जान देकर भी वह साँवलसिंह पर आँच नहीं आने देते थे। यही उनमें अद्भुत गुण था। हकीकत यह कि साँवलसिंह का दिमाग़ मीर साहब थे। सबसे बडी बात यह—कि वह कभी साँवलसिंह को नसीहत नहीं करते थे। न उसके सामने अपना मुन्शीपन बघारते थे। हाँ, व्यवहार उनका बुजुर्गों जैसा था। पूछने पर वह अवश्य उसे नेक सलाह देते थे। और बहुधा साँवलसिंह उनकी बात रखता था। अब कभी-कदाच लोग मालती के सयानी होने और उसके ब्याह की याद उसे दिलाते ये। वह सुन कर कभी नाराज़ होकर उन्हें झिड़क देता था, कुछ बड़बड़ाने लगता था। एक दिन न जाने वह किस मूड में था—उसने मीर साहब से बात छेड़ दी।

"सुनते हो चचा, लोग मालती के ब्याह की चर्चा करते हैं।"

सुनता रहता हूँ।"

"तो कर क्यों नहीं देते उसका ब्याह।"

"अभी उसकी तालीम के दिन हैं, ब्याह के नहीं।"

"कहीं लड़कियों की भी तालीम होती है।"

"क्यों नहीं होती। क्या लड़कियाँ इन्सान नहीं हैं ?"

"हमारे बाप-दादे लड़कियों को नहीं पढ़ाते थे।"

"वह ज़माना और था—यह ज़माना और है। फिरंगियों की मेमों को नहीं देखते। कितना पढ़ी-लिखी होती हैं। वह डाक्टर जो मेरठ में आई है—बिना पढ़े ही उस रुतबे पर पहुंच गई ?"

"वे फिरंगी हैं, हम हिन्दुस्तानी।"

"तो इससे क्या ? हैं तो सभी इन्सान, फिर हमारी बिटिया क्या मामूली लड़की है ? शाहज़ादी है। मैं उसको वैसी ही तालीम दूँगा जैसी शाहजादियों को दी जाती है।—और तुम ख़बरदार रहो—मेरे काम में दखल न देना।"

"तो ये सूअर लोग क्यों मेरे पास आकर शादी की बातें करते हैं ?"

"यह तो तुम्हीं जानो।"

"उनसे कह दो चचा, कि अब किसी ने मेरे सामने लड़की की शादी की चर्चा की तो उसका मैं सिर फोड़ दूँगा।"

"कहने की क्या जरूरत है। एकाध का सिर फोड़ ही दो। जिससे उन सबको नसीहत हो जाय जो दूसरों के फटे में पैर डालते हैं।"

इस पर गुस्से से लाल होकर साँवलसिंह ने अपने लठियलों को ललकारा। शम्भू, रोशन, फकीरा ! तीन-चार लठियल जवान सामने आ खड़े हुए। हाथों में कान तक लठ। एक ने कहा—"सरकार का क्या हुक्म है ?"

"देखो जी, जो बदमाश हमसे लड़की की शादी की बात कहे उसका सिर फोड़ दो।"

लठियल एक दूसरे का मुँह ताकने लगे। दबी आँखों से उन्होंने मीर

साहब की ओर देखा। मीर साहब ने मुस्करा कर कुछ इशारा किया। तब लठियल जवानों ने कहा—"बहुत अच्छा सरकार।"

: ५ :

मेरठ का कलक्टर

फ़ाल्कन साहब मेरठ के नए कलक्टर हो कर आए थे। उम्र मुश्किल से बाईस बरस की थी। देखने में एक नाज़ुक-बदन लौंडे लगते थे। रंग सफ़ेद, सिर के बाल सुर्ख़, जो छोटे-छोटे छटे रहते थे। नाक-नक़्शा उम्दा। दाँत सुन्दर, आँखें नीली, जिन से शरारत टपकती थी। मिज़ाज के सख्त और ज़िद्दी। खालिस अंग्रेज़। टूटी-फूटी हिन्दुस्तानी मुश्किल से बोल सकते थे। हाँ, समझ लेते थे। ऐसे ज़्यादा पढ़े-लिखे न थे। पहले फ़ौज में सार्जेंट हो कर आए थे—पीछे कलकत्ते में इम्तिहान पास कर कलक्टर हो कर आ गए। कलकत्ते में ही फ़ौज़ की नौकरी छोड़ दी थी। और रानी बाज़ार की कम्पनी बहादुर की चुंगी के अफ़सर बन गए थे। कर वसूल करने में सख्त थे, तथा घुड़सवारी उम्दा जानते थे—इन्हीं दो गुणों से उन्हें यहाँ कलक्टरी का ओहदा मिल गया था।

फ़ाल्कन साहब दौरे पर चले तो मुक़ाम हुआ मुक्तेसर। बाग़ में छोलदारियाँ तन गईं। मोदी, क़साई, हज्जाम, चमार—भंगी गाँव के तलब किए गए। साहब के लिए—ख़सी, मुर्ग़ी, अण्डा दूध, तरकारी, अगलम-बगलम सब बेगार में जुटाया जाने लगा। एक आता है—दूसरा जाता है। तहसीलदार की छोलदारी बग़ल में पड़ी। चपकन और चुस्त चूड़ीदार पायजामा पहने तहसीलदार आठ पहर चौंसठ घड़ी हाज़िर। मिडल पास थे, उम्र कोई बीस-बाईस वरस की, घर के रईसज़ादे, दुबले-पतले—कोई ढाई माशे के आदमी। इर्द-गिर्द बहुत-से आदमी, ज़िलेदार, वासिल वाकिया नवीस, खज़ान्ची, सियाहनवीस, मुख़्तार—मुहर्रिर, चोबदार, मसालची, सिपाही, बरकन्दाज़ और अमले के दूसरे आदमी। आसामियों का हजूम। दिन भर कचहरी हुई। साहब बहादुर ने मुक़दमे किए। फलाँ

आसामी हाज़िर। तहसीलदार—सिपाही—अमले मुस्तैदी से दौड़-धूप करते रहे। शाम हुई। दौड़-धूप कम हुई। साहब बहादुर अपनी छोलदारी के बाहर—सफ़री आरामकुर्सी पर पैर फैला कर बैठे। बैरा ने टिफन लगाया—तो तहसीलदार अर्दली में हाज़िर। साहब ने ह्विस्की के जाम पीना आरम्भ किया।

"वैल टैसीलडार, लाओ-लाओ।"

"हुज़ूर, हाज़िर करता हूँ।"

"फ्रैश, एकडम फ्रैश। ओल्ड स्टफ़ नेई।"

"हुज़ूर अर्ज़ करता हूँ।"

"टुम क्या बोलना मांगटा—टसीलडार। अम टुम कू डिसमिस करना माँगटा।"

"सरकार, माई-बाप, एकदम फ्रैश, बहुत बढ़िया।"

"लाओ, लाओ, टैसीलडार, अम टुम कू डिप्टी कलक्टर बनाएगा।"

"हुज़ूर का बोलबाला। हुज़ूर माई-बाप।"

"जल्डी-जल्डी, टैसीलडार, लाओ, लाओ।"

"हुज़ूर को ज़रा चलना होगा।"

"यू ब्लडी टैसीलडार, अम नई जायगा।"

"हुज़ूर दूर नहीं है, एकदम फ्रैश, न्यू माल सर।"

"काँ ?"

"उस बाग़ में सर, पुतली—एकदम फ्रैश, हज़ारों में एक। ह्वाइट सर—यंग। बहुत बढ़िया माल।"

"लाओ, लाओ—टैसीलडार—टुम हरामज़ादा, अबी लाओ।"

"सरकार साँवलसिंह के क़ब्ज़े में है।"

"ह्वाट साँवलसिंह ? अम उस कूं शूट करेगा।"

"बस, हुज़ूर ज़रा चले चलें, साँवलसिंह सरकश आदमी है सर, एक दम डाकू।"

"उसे गिरफ्तार करो, साला लोग। अम उस कू हैंग करेगा। एकडम फाँसी।"

"हुज़ूर, पुतलीजान, बहुत बढ़िया, यंग सर, पास ही में। सावलसिंह बदमाश है सर।"

"लाओ-लाओ, वैल टैसीलडार यू ब्लडी।"

"सरकार, साँवलसिंह से मैं ख़ौफ़ खाता हूँ।"

"ओ, किटना डूर।"

"वो सामने बाग़ हुज़ूर।"

"वैल अर्दली, अमारा घोरा लाओ। अम जाना माँगता।"

साहब ने आख़िरी जाम चढ़ाया। घोड़े पर सवार हुए और चले। लगाम पकड़े हुए तहसीलदार रौनक़ हुसैन।

: ६ :
साहब की ख़ातिर

बाग़ में कनातें लगी थीं। भीतर छोलदारियों में हरे कमल रोशन। चादनी बिछी, साँवलसिंह मसनद पर उढ़के हुए। पुतली उन के दोनों पैर गोद में लिए धीरे-धीरे दबा रही थी। साँवलसिंह की आँखों में नशे की खुमारी थी। दो लठियल छोलदारी के बाहर ऊंघ रहे थे। सन्नाटा था। यह साँवलसिंह का एकान्त आरामगाह था। महीन तन्ज़ेब का कुर्ता, चूड़ीदार पायजामा। सिर पर दुपल्लू टोपी। पुतली भी सादा हल्के लिबास में। मलमल का कपासी रंगा हुआ दुपट्टा, मलमल ही की गुलाबी कुर्ती, बसन्ती पायजामा। ज़ेवर बहुत कम। फूलों से लदी हुई।

साफ सुथरी जगह, सूरज डूब चुका था। झिलमिलाते तारे यों ही छुटपुट आसमान पर नज़र आते थे। बादल के लक्के, कोई सफैद, कोई आवी, कोई नीलगू, ज़रा-ज़रा से, मगर एक दूसरे से मिले हुए फैल रहे थे। जिन में ग्यारस के चाँद की अठखेलियां। आम, पीपल, बरगद के पत्ते जब हवा ज़ोर से चलती—खड़खड़ा उठते थे। हवा में ज़रा-ज़रा खुनकी

थी। साँवलसिंह अमल पानी कर चुके थे। पुतली ने कहा—"इस बार मेला खूब रहा, मुल, सरकार ने हमें न न्हलाया।"

"सिड़िन हो, भला गांव देहात की जाटनियों के साथ क्या न्हाना।"

"वाह, गंगा अस्नान। पर्व का दिन। पुन्न का काम। लाखों आदमी अस्नान कर गए।" पुतली ने पैरों पर मुक्कियाँ चलाते हुए कहा।

"खैर तू अब कर लेना। मीर साहब से कहना। परदा करा देंगे। ला, पान दे।'

पुतली ने पान दे कर कहा—

"सरकार भी साथ रहें तो सर्त है।"

"मैं पुन्न नहीं लूटता। ठण्डा पानी दे।"

पुतली ने सुराही से पानी उंडेल कर, ज़रा सा केवड़ा मिला कर दिया। पानी पी कर साँवलसिंह का मिज़ाज तर हो गया। पुतली का हाथ पकड़ कर कहा—ज़रा पास आकर बैठ। मोगरे और बेले का यह दस्तबन्द तो खूब महक रहा है।"

"ज़रा बाहर निकलिए सरकार। कैसी निखरी हुई चांदनी रात है। बाहर की रात है। चम्पे की खुशबू अलग मस्त कर रही है। फिर सरकार के चरनों की खिदमत। निहाल हो गई हूँ सरकार।"

"तेरी तनखाह तो महीनों से नहीं मिली।"

"ऐ हैं, तो क्या हुआ, सरकार इस वक्त मेरे पास हैं तो हम को लाख, करोड़ रुपए मिल गए।"

साँवलसिंह का दिल बाग़-बाग़ हो गया। खुश हो कर कहा—"ला पान दे।" पान खाकर उन्हों ने पुतली की कमर में हाथ डाल का पास खींच लिया।

इसी समय कुछ खटका सुन, पुतली की नज़र गई दरवाज़े की ओर। देखती क्या है। बन्दर सा लाल-लाल मुँह। उसके बाद सफैद सी गर्दन। लाल-लाल सिर पर बाल।

पुतली की चीख निकल गई—"ए मुआ, यह हूश कौन आ घुसा।"

सांवलसिंह ने उधर मुँह फेरा। फाल्कन साहब सशरीर तम्बू में घुस आए। घुसते ही बोले—"आइ लव्ह यू फेअर लेडी।"

और आगे बढ़ कर पुतली का हाथ पकड़ लिया। पुतली ने हाथ झटक कर कहा—"मर मुए हूंश।" उसने इधर-उधर अपने चाबुक को देखा।

इसी बीच फाल्कन साहब ने दोनों हाथों में पुतली को लपेटते हुए कहा—"कम आन, वाइल्ड हनी, कम आन।"

और अब सांवलसिंह तड़पकर उठ बैठे। एक लात कस कर उन्होंने साहब की पीठ पर जमाई। लात खा कर साहब औंधे मुँह गिरे। और चिल्लाने लगे—"हैल्प-हैल्प—मर्डर-मर्डर।"

पुतली ने कहा—"ज़रा ठहरिए सरकार, इस मुए हुश्शू को मैं ही ठीक करती हूँ।" उसने अपनी चमड़े की चाबुक सम्हाली और सपासप साहब की चमड़ी उधेड़नी शुरू की। साहब बहादुर हैं, कि बचाव के लिए हाथ पैर मार रहे हैं। और पुतली है कि शपाशप चाबुक जमा रही है। सांवलसिंह डेरे का दरवाज़ा रोके खड़े हैं। शोर शप्पा सुनकर दोनों लठैत भीतर घुस आए। सांवलसिंह ने कहा—"ज़रूरत नहीं है, बाहर ही रहो।"

जब पुतली मारते-मारते थक गई, तो हांफने लगी। सांवलसिंह ने कहा—"बस, या और कुछ?"

"अभी ठहरिए सरकार जरा सुस्ता लूं। मुए फिरंगी होते हैं सख्त-जान, इतनी मार खाई, मुल, मरे बैल के से दीदे दिखा रहा है।"

पुतली ने फिर चाबुक सम्हाला। फाल्कन साहब बोले—'माफ करो, फेअर लेडी, अमकू जान बख्श देना मांगो बाबा। अम भोट मारा।"

"अभी कहाँ, अभी तो नाक कान भी काटूंगी, मूडी-काटे, यहाँ आया कैसे?" पुतली ने कस कर ठोकर जमाई। फाल्कन ने सांवलसिंह से कहा—"बाबू, अम टुमारा पनाह मांगटा। अम फाल्कन साहब, मेरठ का कलक्टर है, अमकू माफ करो।"

फाल्कन का नाम सुनते ही सांवलसिंह ने हंसी रोकते हुए कहा—"यहाँ किस लिए आए थे, साहब बहादुर।"

"बदज़ात टैसीलडार लाया। अम उसकू डिस-मिस करेगा।"

पुतली ने फिर चाबुक सम्हाला, उसे इशारे से रोक कर साँवलसिंह ने कहा—

"साहब, आप ज़िले के हाकिम हैं, आप को शर्म आनी चाहिए।"

"अमकू माफ़ करो बाबा।"

"उस औरत से माफी मांगो साहब बहादुर।"

"फेयर लेडी एक्स्यूज़ मी प्लीज़, प्लीज़।"

"बन्दरमुँहा कैसा सीधा बन गया अब," पुतली ने हँस कर कहा।

इसके बाद साँवलसिंह ने साहब को हाथ के सहारे से उठाया और एक लठैत को बुला कर कहा—"गुमानसिंह, साहब बहादुर को जाकर उनके डेरे पर छोड़ आओ।"

तहसीलदार तो यहाँ साहब की पूजा आरम्भ होते ही हवा हो गए थे। साहब का घोड़ा अलबत खड़ा था। लेकिन साहब के अंजर-पंजर इस क़दर ढीले हो रहे थे—कि वे घोड़े पर सवार न हो सके। दोनों लठैतों ने किसी तरह उन्हें घोड़े पर लादा।

डेरे पर आकर साहब ने गुमानसिंह से कहा—"बैल मैन, टुमने क्या डेका?"

"हुजूर की खूब पिटाई हुई, पुतली जान ने हुजूर की चाबुक से अच्छी तरह खाल उधेड़ी।"

"ओ, नो, नो बावा। तुमने कुच बी नहीं डेका। यह बखसीस लो।" साहब ने दस रुपया निकाल कर लठियल की हथेली पर रखे। गुमानसिंह ने सलाम करके कहा—"जी हाँ, हुजूर हमने कुछ भी नहीं देखा।"

"अच्छा अब तुम जाव। टैसीलडार–हरामज़ाडा हाय। अम उसकू डिसमिस करेगा।"

'उधर अब कब आइएगा साहब ?"

"ओ, नो, नो, नो, ह्वाट ए टैरेबलविच।"

गुमानसिंह हँसता हुआ सलाम करके लौटा। साहब बहादुर गुस्से से बकते-झकते बैरा को पुकारने लगे, "ह्विस्की-ह्विस्की। यू सूअर, ह्विस्की।"

और बैरा—"जी हजूर, अभी लाया खुदाबन्द", कह कर जल्दी-जल्दी ह्विस्की गिलास में ढालने लगा।

: ७ :

नवाब ज़बर्दस्त खाँ

नवाब ज़बर्दस्त खाँ एक फितरती ज़ालिम था। यह हापुड़ का नवाब था। ज़ात का रुहेला पठान। ग्रांडील शक्ल-सूरत, स्याह रंग, चेचक रूह, उम्र चासीस के लगभग। बहुत कम पढ़ा-लिखा था। हिन्दुओं का कट्टर विरोधी—पक्षपानी मुसलमान था। आए दिन फसादी मुल्ला और उलेमा उसके यहाँ जमातें करते। और उसके कारिन्दे गुमाश्ते हिन्दू रियाया पर मनमाने अत्याचार करते, जिनकी कहीं कोई सुनवाई न होती थी। कम्पनी बहादुर की सरकार केवल अपनी मालगुज़ारी लेने में चाक-चौबंद थी। इस काम में वह ऐसे शोरे पुश्त नवाबों के भी कड़ाई से कान खींचती थी। पर जो ज़मींदार मालगुज़ारी ठीक समय पर अदा कर देते थे—उनके चरित्र और जोर-जुल्म की ओर वह आँख मींच लेती थी। कम्पनी बहादुर की सरकार के पास न इतने बरकंदाज थे—न थानेदार—न तहसीलदार, कि वह मुल्क में अमन क़ायम करने की सिरदर्दी उठाए। उन्हें तो ऊपर से केवल यही हुक्म आता था—मालगुज़ारी ठीक समय

पर वसूल करके रुपया भेजो। और यहीं पर उनका काम समाप्त हो जाता था। यदि कभी कोई शिकायत रियाया पर जुल्म की पहुँची भी तो जमींदार चट से जवाब देते थे—कि हुज़ूर, बड़े शोरे पुश्त आसामी हैं। लगान न निचोड़ा जायगा तो हम मालगुज़ारी कहाँ से अदा करेंगे। इस बात का जवाब न थानेदार पर था, न तहसीलदार पर, न मैजिस्ट्रेट कलक्टर साहब बहादुर पर।

बस नवाब जबर्दस्त खाँ जैसे ज़ालिम रईस दिन-दहाड़े रियाया पर जुल्म करते. और कभी-कभी तो क़त्ल भी कर डालते थे।

एक नटनी गुलाबजान इनकी भी आशना थी। उसका नाम गुलाब था। नटनी रखना उस ज़माने में रईसी शान तो थी ही। नवाब ने उसे गुलावठी गाँव दे दिया था, जहाँ उसका पूरा टाँडा बस गया था। यों तो नट कंजर खानाबदोश जात के लोग हैं, मंगते कहाते हैं, समाज में उनकी कोई इज्ज़त नहीं है, पर नवाब ने जब गाँव नटनी के नाम लिख कर उसे वहाँ का ज़मींदार बना दिया तो गाँव के सभी निवासी उसकी रैयत हो गए। गाँव में ठाकुर भी थे, ब्राह्मण भी थे, जाट भी थे। वे नटनी को ज़मींदार मानने में अपनी हतक समझते थे। हरामज़ादी नटनी पतुरिया बन गई हमारी ज़मींदार—अब हम सरकार माई-बाप करके करेंगे उसे सलाम। सब लोग खुल्लम-खुल्ला यही कहते थे। भाग्य की बात यह—कि वह भी नवाब की भाँति सख्त-दिल, और बदमिज़ाज थी।

नटनी जैसी कमीनी और मुँहफट कौम दूसरी नहीं होती। गुलाब भी बड़ी मुँहफट और बिगड़ैल थी। अच्छों-अच्छों का वह पानी उतार देती थी। मज़ाक कभी-कभी उसका भोंडा हो जाता था—पर नवाब से उसका मेल सोने और सुहागे का मेल था।

नवाब से एक गाँव की रियासत पा कर गुलाब जान अपने को एक रईस समझने लगी थी। और डेरेदार रंडी की भाँति बहुधा हापुड़ ही में रहती थी। नवाब ने यहाँ उसके लिए एक आरास्ता कोठा दे रखा था।

जहाँ वह बड़ी शान से रहती थी। दो महरियाँ ख़िदमतगार नवाब ने उसे दे रखी थीं।

नवाब का यह दस्तूर था कि चन्द दोस्तों के साथ गुलाबजान के कोठे पर आते। वहाँ खुशगप्पियाँ लड़तीं, शराब उड़ती, तबले पर थाप पड़ती और दुनिया भर की लनतरानियाँ होतीं।

गुलाब थी तो नवाब ज़बर्दस्त ख़ाँ की हो पाबन्द, पर आशना उसके और भी थे। इन में एक था—खुर्शीद। डोमनी का छोकरा। देखने में अच्छा। उम्र उसकी थी गुलाब के बराबर। आवाज़ अच्छी थी—गाने में लयदार। आँखों में पानी और जवानी का जोश। पूरा मसखरा। बोटी-बोटी फड़कती थी। कसरत करता था। मछलियाँ भुजदण्डों पर उछलती थीं। गले में उस्तादी तावीज़। जब गुलाब गाने बैठती—वह बजाने लगता। कभी-कभी आवाज़ फेंकता तो सुनने वाले फड़क उठते। खुशामदी भी परले सिरे का था—और बेग़ैरत भी। गुलाब से कभी-कभी उसकी लप्पड़बाज़ी भी हो जाती थी। हर जलसे में वह मौजूद रहता। यों गुलाबजान के मिज़ाज में बड़ी तमकनत थी। ठाठ भी माशा अल्ला उसके निराले थे। जब मसनद पर बैठती—एक महरी गुडगुड़ी लिए हाजिर, दूसरी पंखा झलती हुई। और मियाँ खुर्शीद हैं कि कभी पंख दबा रहे हैं—कभी लतीफ़े सुना रहे हैं। डोमनी का यह छोकरा था बड़े ठाठ का। रंग तो साँवला था—पर नाक-नक़्शा सुडौल, उस पर नमक, जामा-पोशी, शोखी-शरारत और बेहयाई। यही सब वे गुण हैं—जिनकी बदौलत उन दिनों नटनियों और डेरेदार रंडियों के डेरे ऐसे लोगों से आबाद थे।

डोमनियाँ गालियाँ गाने में बड़ी मश्शाक़ होती थीं। रईसों की महफ़िलों मे नटनियाँ नाचतीं और डेरेदार वेश्याएँ गाती-मुजरा करती थीं। पर ब्याह-शादी और दूसरे मौक़ों पर गालियाँ गाने को डोमनियाँ बुलाई जाती थीं। यह खुर्शीद का बच्चा भी गालियाँ गाने में एक ही था। यह गुण उसे विरासत में माँ से मिला था। ब्याह-शादियों के मौक़ों पर अक्सर औरतों में डोमनियाँ गालियाँ गाने को बुलाई जाती थीं। और तब

अच्छे-अच्छे शरीफ़ मर्द आदमी औरतों में घुस कर शौक़िया गालियाँ सुनते थे। गालियाँ अक्सर फौश-गंदी होतीं, उन में माँ-बहनें नाची जातीं और लोग सुन-सुन कर दाँत निकाल कर हंसते थे। बहुधा नवाब अपने चार दोस्तों के साथ जब आते—खुर्शीद से गालियाँ गवा कर बड़े शौक़ से सुनते थे। यह बेहया लौंडा खूब बता-बता करके गंदी गालियाँ गाता। इन्हीं सब बातों से खुर्शीद उस घर में गुड़ का चिउटा हो रहा था।

परन्तु हक़ीक़त यह थी कि ऐसे एक आदमी से इन खानगियों को बहुत लाभ रहता है। इसलिए वे एक न एक को बनाए रखती हैं। ये लोग सौदा सुलझाते हैं। गाहक पटाते हैं। यार के मिज़ाज को नापते-तौलते रहते हैं। बीमार पड़ने पर तीमारदारी करते हैं, पैर दबाते हैं। और जब कोई दूसरा पास नहीं होता तो दिल बहलाते हैं। तबियत में मनहूसियत और सूनापन नहीं लाने देते। चुरकुट फंसाते हैं। ब्याह-शादी के मुजरे में इन्तजाम करते हैं, महफ़िल में बैठ कर हाव-भाव जता कर मुजरे वाली को वाहवाही दिलाते हैं। क़सबी के खाने-पीने का, डेरे का उम्दा इन्तज़ाम करते हैं। दो रईसों को भिड़ा कर लुत्फ़े-रक़ाबत हासिल करते हैं। तमाशबीन इन से दबते हैं मुट्ठियाँ गर्म रखते हैं। झगड़ा-टण्टा उठ खड़ा हुआ तो ये तकरार को मुस्तैद रहते हैं। शहर के लुच्चे-गुण्डों को जमा कर आफ़त खड़ी कर देते हैं। अच्छे रईसों की बेहुर्मती कर डालना उनके बाएँ हाथ का खेल होता है।

कभी-कभी तो वेश्याएँ इन लोगों की मुहब्बत में मर ही मिटती हैं। मगर मियाँ खुर्शीद इतने खुशक़िस्मत न थे। फिर, गुलाबजान बड़ी चलती-पुर्ज़ी नटनी थी। मतलब से मतलब रखती थी। वक्त पर तेवर बदल जाना और मुस्करा कर तिरछी चितवनों से देखना कोई उससे सीख ले। इन्हीं सब कारणों से गुलाबजान की हापुड़ में धूम थी।

गुलाबजान के और भी आशना थे। एक थे लाला मुसद्दीलाल। गुड़ और गल्ले की आढ़त करते थे। उन दिनों भी आज की भाँति हापुड़ गुड़ और ग़ल्ले की भारी मण्डी थी। खण्डसार भी पड़ती थी। लेन-देन

भी होता था। रंग था आबनूस के कुन्दे के समान और उम्र थी पैंतालीस-पचास के बीच। कोई पौने तीन मन की लाश थी। मूँछें रोज़ कतरवाते, और दाढ़ी भी रोज़ घुटवाते थे। अरसे तक गुलाबजान पर डोरे डालते रहे। खुर्शीद ने खूब सुलगाया। बढ़-बढ़ कर गुलाबजान के हुस्न की चर्चा की। पर जब जब लाला ने मिलना चाहा—दाँतों में ज़बान दाब कर कहा—ना बाबा, ना। नवाब सुनेगा तो तलवार से दो टुकड़े कर डालेगा या दन से पिस्तौल दाग़ देगा। कभी कहता—गुलाबजान भी तुमसे मुहब्बत करती है लाला। मुल लाचार है। नवाब का डर है। लेकिन एक दिन वह कोठे पर ले ही गया। मुद्दत तक वियोगाग्नि में सुलग-सुलग कर लाला क़बाब बन चुके थे। कोठे पर पहुँचे तो निहाल हो गए। टुकुर-टुकुर देर तक गुलाबजान की ओर देखते रहे। गुलाबजान ने पान पेश किया तो कानों पर हाथ धर कर कहा—"हिन्दू धरम है हमारा। हर पूरनमासी गंगा स्नान करते हैं। पान नहीं खा सकते।"

गुलाब ने तिनक कर कहा—"ऐ हैं, तो फिर मुई क़सबी के घर क्यों आए साहब?"

"बस दो गाल हँस बोल लेंगे।"

"बस इतना ही कि और कुछ?"

"अब जो कुछ तुम्हारी इनायत हो जाय। तुम्हारी सूरत पर लट्टू हूँ। बड़ी खूबसूरत हो, तुम पर हमारा दिल आ गया है।"

"लेकिन साहब, मैं तो नवाब साहब की पाबन्द हूँ, आप से क्यों कर मिल सकती हूँ। अब उनके आने का वक्त हो गया है। बस आप रुख़सत हूजिए।"

"तो फिर कल फिर आएँगे, इसी वक्त। अभी ये पाँच रुपए तुम्हारी नज़र करते हैं। पान खाना। कल फ़िर खुश करेंगे।" इतना कह कर पाँच रुपए टेंट से निकाल कर लाला ने नटनी की हथेली में थमा दिए।' रुपयों पर हिक़ारत की नज़र डाल कर उन्हें लौटाते हुए गुलाबजान ने

नख़रे से कहा–"इन रुपयों के गेहूं पिसाना लाला, साढ़े सात मन आएंगे। पन्द्रह दिन का घर-ख़र्च चलेगा।"

रुपए टेंट में ठूँसते हुए लाला ने कहा–"कोई बात नहीं, बीबी जान, हमारी तुम्हारी मुहब्बत है तो जो कहो दें।"

"ख़ैर, तो एक थान गुलबदन भेज देना। अरे हाँ, वे रुपए तो तुमने टेंट ही में रख लिए। बड़े कंजूस हो लाला।"

लाला ने वे पाँच रुपए फिर निकाल कर गुलाब जान के हाथों में रख दिए।

गुलाब ने तिनक कर कहा—"ऐ हैं, फिर वही पाँच रुपल्ली।"

"अजी, एक थान गुलबदन और पाँच रुपयों पर क्या मुनहसिर है, तुम्हारे लिए जान हाज़िर है। मुल आज तो पहला ही दिन है।"

"तो पहल की बोहनी तो करो। देखूँ वह अंगूठी—उसका नग तो खूब चमकता है।"

इतना कह कर उसने फुर्ती से अंगूठी लाला की उंगली से खींच ली। और कहा—"अच्छा तो कल इसी वक्त आइए। बस अब तो ठहर नहीं सकती।" इतना कह कर वह छमाछम करती कमरे से चल दी।

"लेकिन वह अंगूठी तो देती जाओ। सुनो, सुनो, यह बात अच्छी नहीं।"

"तो मरे क्यों जाते हो लाला, अंगूठी कोई मैं कुछ खा न जाऊँगी"

"दो सौ की है।"

"तो क्या चोरों से व्यौहार है, कल ले लेना। ज़रा मैं भी तो उंगली में डाल लूँ।"

"पर अंगूठी मेरी नहीं है, रहन का माल है। नहीं तो कुछ बात नहीं थी, तुम पर सौ अंगूठी न्योछावर।"

"लो और सुनो, लाला रंडी के कोठे पर आए हैं, पराई अंगूठी पहन कर। शर्म नहीं आती।"

"तो कोई ज़बर्दस्ती है। लाओ, अंगूठी दो।"

अब तक मियाँ खुर्शीद मज़े से इस बातचीत का मज़ा ले रहे थे। अब गुलाबजान का इशारा पा कर उठे और लाला को गर्दनियाँ दे कर बोले—"हाँ, हाँ जबर्दस्ती है। चले लाला रंडी के कोठे पर। मर्दूद मक्खीचूस। ले, अब चुपके से खसक जाइए ठण्डे-ठण्डे। और सुबह एक थान जामदानी दूकान पर मँगा रखिए—मैं ले आऊँगा।"

उसने धकेल कर लाला जी को जीने में दो-तीन सीढ़ी उतार कर साँकल भीतर से चढ़ा ली।

: ८ :

नवाब मुजफ़्फ़र बेग

गुलाबजान के एक और चाहने वाले थे—नवाब मुजफ़्फ़रबेग़। जो नवाव बल्लभगढ़ के नाम से मशहूर थे। बल्लभगढ़ मुक्तेसर की पूर्वी दिशा में अब एक छोटा सा वीरान गांव है। उस जमाने में यहां बड़ी रौनक़ थी। जिसका सबूत नवाब की विशाल गढ़ी, हवेली और बारहदरी तथा कचहरी के खण्डहर हैं। जिन पर अड़ूसे और धतूरे के पेड़ उग आए हैं। उन दिनों यहाँ बहुत धूम-धड़ाका रहता था। नवाब मुजफ्फर बेग़ ठस्से के रईस थे। रुपया नक़द इनके पास बहुत था। इलाका भी छोटा न था। असल बात यह थी, उन दिनों आज के जैसे न तो बम्बई, कलकत्ता और दिल्ली जैसे विशाल नगर थे। जहाँ देश भर के पढ़े लिखे लोग पेट के धन्धे के फेर में फंस कर खटमल और मच्छरों की भाँति छोटे-छोटे दरबों में रहते हैं। जिन्हें सुबह ९ से १० बजे तक और शाम को ५ से ६ बजे तक टिड्डी दल की भाँति दफ्तर से आते-जाते आप देख सकते हैं। और न बड़े-बड़े मिल कारखाने खुले थे। जहाँ लाखों मजदूर एक साथ मजदूरी करके पेट पालते और मुर्ग-मुर्गियों की भाँति गन्दे दरबों में रहते हैं। पापी पेट के लिए ये लाखों करोड़ों स्त्री-पुरुष गांव-देहात छोड़ अब इन शहरों में आ घुसे हैं। उन दिनों ये सब देश में समान भाव से फैले हुए, देहातों

में रहते थे। खेती करते या घर पर अपने-अपने हज़ारों धन्धे करते थे। शहर और क़स्बे की बात तो दूर, छोटा मोटा गांव भी उन दिनों अपनी हर ज़रूरत के लिए आत्मनिर्भर था। और हर एक आदमी बहुत कम खर्च में सीधे-सादे ढंग से मज़े में रहता था। अपना मालिक आप। तब न इतनी पुलिस थी, न इन्तज़ाम। जमींदारों की स्वेच्छाचारिता थी। कम्पनी बहादुर के अहलकारों की आपाधापी थी। चोरों, ठगों, सांसियों, कंजरों, डाकुओं का भय था। अराजकता थी। पर फिर भी लोग खुश थे। अपने में सम्पूर्ण। आत्म निर्भर। परिश्रम, सादा जीवन और आत्म निर्भरता उन के स्वभाव में रम गई थी। इस के अतिरिक्त साहस, आत्म रक्षा और स्वावलंबन उनके स्वभाव का अंग बन गए थे. क्यों कि उनके बिना एक क्षण भी चलता न था। वह ज़माना ही ऐसा था।

लोग खुश थे, मस्त थे और उसी का यह नतीजा था, कि आमतौर पर रियाया में ऐयाशी एक हद तक फैली थी। आप इसे चरित्रहीनता कह सकते हैं। बाल बच्चेदार रईस, नवाब रंडियां, नटनियां रखते। खुल्लम-खुल्ला घरों पर नाच-मुजरे होते, छोटे बड़े सभी उस में भाग लेते। नशा-पानी होता। होली, दिवाली का हुर्दंग होता। नटनियां, वेश्याएं, जो तावे होतीं, रईसों के घरों पर आतीं-जातीं। घर के बच्चे उनसे वही रिश्ता रखते जो घर की स्त्रियों से होता। कोई शर्म झिझक न थी। चची, मामी का रिश्ता और वही सुलूक। बड़े घर की अमीरज़ादियां खातिर-ख्वाह इन क़सबियों को भीतर ज़नाने में बुलातीं, खातिर करतीं, इनाम देतीं, पास बैठातीं। इस प्रकार ये नटनियां, कंजरियां पतुरियां, डेरेवालियां, डोमनियां भी सभ्य समाज का एक अंग थीं। उनके बिना समाज सूना था, उदास था।

नवाब साहब की उम्र सत्तर के क़रीब थी। मुँह में एक दाँत न था। क़मर झुककर दुहरी हो गई थी। सिर के और दाढ़ी के बाल रुई के गाले के समान सुफ़ैद। मगर रहते थे नौरतन बने ठने। कैंचुली का अंगरखा, गुलबदन का पायजामा, जिसमें लाल रेशम का जालीदार नेफा। मसाले-

दार टोपी, बालों में कीमती चमेली का तेल। कपड़े इत्र हिना या गुलाब से तर। अब कहिए इस उम्र में भी रंडी से आशनाई।

मुँह-लगे यार दोस्त पूछते—"हुजूर, अब इस उम्र में तो खुदा की बंदगी और तस्बीह की सोहबत मुनासिब है। तो तड़ाक़ से कहते —"बेहूदा बकते हो। खुदा की बन्दगी और तस्बीह की क्या कोई खास उम्र होती है। हम तो पैदाइशी बन्दे-खुदा हैं। हर वक्त वज्द में रहते हैं। तुम दो दिन के लौंडे क्या जानो। मगर हमारी सरकार में जहाँ शानोशौकत के और सब सामान व फज़ले-खुदा मुहैया हैं, वहां हमारी जानोमाल की सलामती मनाने के लिए जलूसियों में एक रंडी भी चाहिए।"

सौ रुपए मुशाहरा गुलाबजान को इस सरकार से मिलता था। इस पर नवाब ज़बर्दस्तखां को भी एतराज़ न था। बूढ़े की सनक पर वह भी हंसते थे, बल्के अपनी महफिल में ब-ज़िद बुला कर बैठा लेते और उनके चुटकुलों का और ज़िन्दादिली का मज़ा लेते थे। गाने और सितार साज़ी में उस्ताद थे। दमखम और आवाज़ अब नहीं रही थी, मगर जब अलाप लेते, तो तबलची सरंगिये के दांतों पसीना आ जाता था। ध्रुपद-धमार के धनी थे। बड़े-बड़े उस्तादों की आँखें देखे हुए। बड़ी-बड़ी नामी गरामी रंडियां और गवैये उन के सामने जूतियां सीधी करते और उन्हें औलिया कहते थे। आवाज़ में वह सोज लचक थी कि दिल तड़प जाता था।

ताजियादारी इनकी ठाठ की होती थी। दूर-दूर की रंडियाँ मर्सिए गाने आतीं। लखनऊ, दिल्ली और बनारस के कलावन्त अपना कर्तब दिखाते। अशरा मुहर्रम में दस दिन रोज़ मजलिस होती थी। चेहलम तक हर जुमेरात को खास धूम-धाम रहती थी। सैंकड़ों मुहताज मोमिनीन लंगर खाते थे।

यही मामला होली पर होता था। पूरे हफ़्ते भर होली का हुदंग रहता। वे भूल जाते कि मुसलमान हैं। रंग अबीर गुलाल में शराबोर। शराब, भंग की माजून बर्फ़ियां, और बादाम, केसर बालाई डाली हुई दूधिया छनती—शहर भर की पहुनाई होती। नवाब घर-घर जाते—

रंग डालते, अबीर लगवाते, लोगों से गले मिलते थे। इस मौक़े पर बनारस और लखनऊ से मशहूर भाँड बुलाए जाते थे—जो तरह-तरह की नक़लें करते—लोगों के हंसते-हँसते पेट में बल पड़ जाते थे। क्या बहार थी— बस बल्लभगढ़ उन दिनों इन्द्र का अखाड़ा बन जाता था। ज़िन्दगी उमड़ी पड़ती थी।

नवाब की बेगम साहिबा क़ायम थीं। उम्र उनकी भी नवाब से कम न थी। दोनों में मुहब्बत ऐसी कि ज़बान भी लज्जित हो। नवाब साहब का बंधा दस्तूर था कि रात के नौ बजे—और जनानखाने में दाखिल। लाख काम हो—बाहर नहीं आते थे। असल बात यह—कि नवाब बूढ़े ज़रूर थे—पर थे प्यार करने के क़ाबिल।

हापुड़ में नवाब साहब की पुख्ता हवेली थी। जब आते वहीं मुक़ाम करते थे। जितने दिन मुक़ाम रहता—रंग बहार, मजलिस, महफ़िल, दावत, शिकार, अग़लम-बग़लम, हँसी-मज़ाक़ और सब कुछ। मगर निहायत सलीक़े से। शेर भी कह लेते थे। सुनने के पक्के शौक़ीन, बस मुशायरों की भी एक-दो वारदातें हो जातीं। लुत्फ़ रहता।

दिवाली बीत चुकी थी। गुलाबी सर्दी पड़ने लगी थी। लोग लिहाफ़ रज़ाइयों से मुँह निकाल कर सोने लगे थे—मौसम पुर-लुत्फ़ था। आसमान में चाँदनी चटखती तो रात जैसे खुल कर हँसती थी। मुक्तेसर में गंगा स्नान के मेले की चढ़ाई थी। लखूखा आदमियों का हजूम मुक्तेसर पर उमडा पड़ता था। आस-पास के देहातों से अमीर-ग़रीब—अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार बहलों, गाड़ियों, रथों, मंझोलियों में, घोड़ों पर, हाथी पर, पालकियों में आ रहे थे। सवारियों का तांता बंधा था। हापुड़ में भी आदमियों का भारी हजूम था। एक मेला लगा था। दूर-दूर के बिसाती, दूकानदार दूकानें सजाए—तरह-तरह की जिन्सें बेच रहे थे। हलवाइयों और मोदियों की चाँदी थी।

नवाब का आम दस्तूर था कि इन दिनों वे हापुड़ में आ मुक़ीम होते थे। गंगा स्नान के हफ़्ते भर बाद तक डटे रहते थे। यात्रियों के लिए

पौसाला लगाते थे। शर्बत पिलाते थे। मगर असल बात यह थी—जाटनियों के गीत सुनने का उन्हें शौक़ था। जो आस-पास के देहातों से सिमट कर झुण्ड के झुण्ड पदल—या बैलगाड़ियों में राह चलते—गला मिला कर गाती थीं। बस वह गाना बेमिसाल था। गातीं ख़ाक धूल, समझ नहीं पड़ती—परन्तु उनकी मिली-जुली हो-हो पर नवाब लट्टू थे। हवेली उनकी आम रास्ते पर थी। कोठी में आरामकुर्सी पर बैठे, अम्बरी तमाखू की खुशबू की मस्त महक का मज़ा लेते हुए चटख चाँदनी रात में—सामने सड़क पर गुज़रती हुई बैलगाड़ियों में हिचकोले खाती हुई जाटनियों के अजीब लहरी गानों का लुत्फ़ लेते रहते थे।

: ९ :

गुलाबजान का जलसा

मेले की भीड़-भाड़ जब घट गई तो गुलाबजान ने एक ठाठ के जलसे की नवाब साहब को दावत दी। कोठे पर महफ़िल सजाई। क़ीमती शीशे आलात की रोशनी, साफ़ दूध से सुफ़ैद चाँदनी का फ़र्श, ईरानी क़ीमती क़ालीन, उस पर ज़रवफ़्त की मसनदें और गुलगुले गाव तकिए, रंग-बिरंगे मिरदंगे—हाँडियाँ रोशन, इत्र-फ़ुलेल, गुलाब, केवड़ा, हिना, चम्पा जुही मालती की गहगही खुशगवार खुशबू के साथ मिली-जुली लखनऊ के क़ीमती मुश्की अम्बरी—खमीरी तमाखू की महक। तमाम क़स्बे में महफ़िल की धूम मच गई। मगर क्या मजाल, कि पंछी पर मार जाय। सिर्फ़ चुनीदा सोहबत। क़स्बे की सब मशहूर नौचियाँ, कंचनी, डोमनी, डेरेदार नटनियाँ। एक से एक खूबसूरत, सब गहनों से गोदनी की तरह लदी हुईं, इठलातीं, बनी-ठनीं। तोलवाँ जोड़े पहने, गोरी-साँवली—ठिगनी—मझोली—लम्बी—सभी क़िस्म की बला। कोई मलमली धानी दुपट्टे से फूटी पड़ती है। किसी का ऊदी गिरंट का पायजामा सम्हाले नहीं सम्हलता। किसी की फ़ंसी-फ़ंसी कुर्ती गज़ब ढा रही है। किसी के हाथ, गले में हल्का ज़ेवर, किसी की नाक में हीरे की कील, कानों में सोने की

ग्राँतियों की बहार, किसी के हाथों में भारी-भारी सोने के कड़े, गले में मोतियों का कण्ठा, कोई चंचल, कोई तिनक मिज़ाज, कोई गोरी-चिट्टी, किसी का खुलता हुग्रा साँवला रंग, किताबी चेहरा, सुकवाँ नाक—बड़ी-बड़ी ग्राँखें, स्याह पुतली—उस पर काजल की लकीर। किसी का काही दुपट्टा करेब का, बनात टंकी हुई ज़र्द गिरंट का पायजामा। कोई गहनों से लदी-फदी, कोई फूलों के गजरों से ग्रारास्ता—जैसे चौथी की दुलहिन। बात-बात में शोख़ी-शरारत। कोई ग्राँखें लड़ा रही है, कोई मुँह बना रही है, ग़र्ज़—हुस्न का बाज़ार लगा था। चाँदी की तश्तरी में गुलाब-केवड़े में बसी पानों की गिलौरियाँ, बसे हुए हुक्के। जलसे का वह रंग कि जिस का नाम।

नवाब मुज़फ़्फ़रबेग कारचोबी काम की मसनद पर उँठगे हुए गिलौरियाँ कचर रहे हैं। तनज़ेब का ग्रंगरखा ऊदी सदरी—नुक्केदार टोपी, चुस्त घुट्टन्ना, बग़ल में नवाब ज़बर्दस्त ख़ाँ, क़ीमती भारी ग्ररकाट दुशाला, कोई दो हज़ार की कीमत का, कमर में लपेटे, दूसरा सर से बाँधे, हाथ में हुक्के की नली, छत की ग्रोर ताकते मुश्की धुएँ का ग्रम्बार बना रहे हैं।

दीवान परसादीलाल, सत्तर से भी ढले हुए। दुबले-पतले कोई साढ़े चार माशे के ग्रादमी, ऐनक ग्राँखों पर चढ़ाए। माथे पर बल, कान में क़लम। मलमल का ग्रंगा ग्रौर ढीले पांयती का पायजामा। चाँदनी का कोना दबाए सिकुड़े—बैठे कभी परी पैकरों को देखते, कभी ग्रपने मालिक नवाब ज़बर्दस्त ख़ाँ के तेवरों को।

एक वकील, सादे, घुटा सिर, संदली मंडील सिर पर, तराशी हुई मूँछें। पूरे खुर्राट। हर एक को घूरते ग्रौर मुस्कराते हुए।

दो चोबदार ग्रदब से दीवारों में चिपके हुए। दरवाज़े के पास एक मशालची खड़ा था। एक मुख़्तार साहब ग्रौर दो शरीफ़ज़ादे क़ालीन पर बैठे थे।

बी गुलाबजान के ठस्से का क्या कहना, चाँदी की गुड़गुड़ी मुँह से

लगी है, सामने पानदान खुला हुआ है, एक-एक को पान लगा कर देती जाती है। नौचियाँ लपक-झपक कर पानों की तश्तरी रईसों को पेश करती हैं, रईस हैं कि कलावत्तु हुए जा रहे हैं। पान की गिलौरियाँ कचरते हैं, गंगाजमनी काम के पेचवान में क़श लेते हैं। दीदार-बाज़ी और फ़िक़रे-बाज़ी चल रही है। क़हक़हे उड़ रहे हैं। चुहलें हो रही हैं। उधर वह उठी, इधर आवाज़ आई--ज़रा सम्हल के। ये चली हैं छमाछम, तो किसी की परवाह नहीं। वहाँ रईस हैं कि आँखें बिछा रहे हैं। नज़रों के तीर-तमंचे चल रहे हैं, बिना मांगे लोग कलेजा निकाल कर दे रहे हैं। कोई दिल हथेली पर रखे हुए है। मगर वे हैं—कि कोई बात नज़र में ही नहीं समाती। ग़रूर का यह हाल कि—बादशाह भी इनकी ठोकर पर हैं। नाज़ और अन्दाज़ पर मरने वाले मर रहे हैं। जो ज़िन्दा हैं—ठण्डी साँसें भर रहे हैं। एक हैं कि रूठी बैठी हैं, लोग मना रहे हैं।

ख़िदमतगार सुनहरी काम का हुक्का तैयार करके हाज़िर हुआ। बी गुलाबजान ने इशारा किया--बड़े नवाब के सामने लगा दो। नवाब साहब ने गुड़गुड़ी नवाब ज़बर्दस्त ख़ाँ के आगे सरका कर कहा—शौक़ कीजिए। नवाब ज़बर्दस्त ख़ाँ ने तपाक से—ज़रा सा मसनद से उकस कर तसलीम बजाई और कहा—क़िब्ला पहले आप।

बूढ़े नवाब ने मुनाल मुँह लगाई। मज़े ले-ले कर हुक्का पीने लगे। बी गुलाबजान ने पानदान सरकाया। पान पर कत्था चूना लगा—डलियों का चूरा चुटकी भर डाले। इलायची के दाने पानदान के ढकने पर कुचल कर गिलौरी बनाई और खुद उठ कर बड़े नवाब को पेश की।

नवाब ने कहा—'दाँत कहाँ से लाऊँ जो पान खाऊँ?'

"हुज़ूर खाइए तो, आप ही के लायक मैंने बनाया है।"

नवाब ज़बर्दस्त ख़ाँ ने मुस्करा कर कहा—'वल्लाह, बनाने में तो तुम एक ही हो।'

गुलाबजान ने तड़ाक से जवाब दिया—"लेकिन हुज़ूर बनाती ही हूँ, बिगाड़ती किसी को नहीं।"

बूढ़े नवाब ने धुँए के बादल बनाते हुए एक ठंडी साँस भरी और कहा—"शुक्र है ख़ुदा का।"

इस पर एक गहरा कहकहा पड़ा।

दीवान परसादीलाल ने दस्तबस्ता अर्ज की—"हुजूर, यह क्या बात है जिस पर सरकार की नज़र पड़ती है, उस पर लाखों नज़रें पड़ती हैं, रश्क के मारे लोग जले जाते हैं।"

नवाब ने संजीदगी से कहा—"यह जानबूझ कर जलाती हैं।"

ज़बर्दस्त खाँ ने हँस कर कहा—"साहब, पहले तो वही खुद मरती हैं।"

गुलाबजान ने झट दूसरा बीड़ा नवाब ज़बर्दस्त खाँ के मुँह में ठूँसते हुए कहा—"अय हुज़ूर, यह नया क़लमा कहा—मरें हमारे दुश्मन।"

"मरें इनके दुश्मन, ठीक तो है। न जाने कितने मर चुके। उनके घर में रोना-पीटना मचा है, ये बैठी यारों के साथ क़हकहे लगा रही हैं। ज़रा, उग़ालदान दीजिए।"

एक नौची ने आगे बढ़ कर उग़ालदान नवाब के आगे किया। नौची नवेली—कमसिन, अल्हड़, पर रंग ऐसा कि उल्टा तवा। चेचक के दाग़, छोटी-छोटी आंखें, भद्दी-सी नाक, नीचे को बैठी हुई, बड़े-बड़े नथने। क़द ठिगना, मोटे-मोटे ओंठ। गले में सोने की चम्पाकली, नाक में पीतल का बुलाक। देहाती धज। नवाब भाँप गए, मज़ाक का मसाला मिला। आहिस्ता से बोले—

"क्या नाम है तुम्हारा बीबी जान।"

"हुजूर, मुझे धनिया कहते हैं?"

"वाह, क्या मुफीद नाम है।" दीवान साहब की तरफ मुखातिब होकर—"दीवान साहब धनिये की क्या तासीर है?"

दीवान साहब, पूरे घाघ। खट से हाथ बाँधे बोले—"सरकार दिल को ठंडक पहुँचता है।"

कहक़हा फर्माइशी पड़ा। धनिया झेंप गई। उठ कर जाने लगी तो

बड़े नवाब ने कहा—"ठहरो तो बीबी, यह बुलाक़ तुमने कहाँ बनवाया ?"

नौची ने झेंपते हुए कहा—"नखलऊ से मोल लिया था सरकार।"

"नखनऊ भी बड़ा गुलज़ार शहर है।" दीवान साहब की ओर मुख़ातिब हो कर बोले—"क्या ख़याल है दीवान साहब ?"

दीवान साहब छाती पर हाथ धर के बोले—

"क्या कहते हैं ? हुज़ूर नखलऊ शहर के, एक से बढ़ कर एक कारीगर बा-कमाल आदमी बसते हैं वहाँ। मगर कुछ लोग उस शहर को लखनऊ कहते हैं।"

"कहते होंगे, हमें तो नखनऊ ही प्यारा लगता है।" नवाब ने एक बार नौची की ओर देखा। फिर कहा—"ज़रा देख सकता हूँ मैं तुम्हारा यह ज़ेवर ?"

अब नौची ग़रीब क्या करे। दबी नज़र इधर-उधर देखा। मुआ पीतल का बुलाक़, दो पैसे का। खूब फँसी। नीचा मुँह किया, नाक से निकाला, रूमाल से साफ़ किया—और बड़े नवाब की हथेली पर रखा दिया।

नवाब साहब बड़े ग़ौर से उसे देखते रहे। फिर गुड़गुड़ी में एक कश खींच कर बोले—"निहायत नफीस चीज है, इसे तुम बीबी, हमें दे सकती हो ? कीमत जो चाहो ले लो।"

गुलाब मज़ाक को समझ न रही थी—नौची शर्म से ज़मीन में धँसी जा रही थी, मगर पुराने खूंसट दीवान मज़ा ले रहे थे—आहिस्ता से बोले—"इस अदद को खरीद कर क्या करेंगे हुज़ूर ?"

नवाब ने निहायत संजीदा होकर कहा—"क्या कहूँ दीवान जी, हमारी एक कुतिया है, कुत्ते हरामजादे उसे बहुत दिक़ करते हैं, सोचता हूँ यह बुलाक......"

बात पूरी न हो पाई कि नौची भागी पत्ता तोड़। सारी रंडियां मुँह पर दुपट्टा डाल कर हँसने लगीं। कहक़हा पड़ा कि खुदा की पनाह।

लेकिन नवाब हैं संजीदा बने बैठे हैं, हैरान हैं कि आखिर यह क़ह-कहे किस लिए ? "मालूम होता है, आप लोग बहुत खुश हैं ?"

नवाब जबर्दस्त खाँ ने कहा—"जी हाँ, ये लोग हुजूर को मुबारक-वाद देना चाहते हैं ।"

"आखिर किस सिलसिले में ?"

"हुजूर की क़द्रदानी और गौहरशिनासी के सिले में । वाह, क्या दाना बीना है । बस बी धनिया की तो तकदीर खुल गई ।"

"तो बी धनिया पर ही क्या मौसूफ है । हमारी तो तबीयत ही ऐसी है, सुनो गुलाबजान, ज़री ध्यान रखना कोई हसीन नया चेहरा नज़र आए, और मैं ज़िन्दा होऊँ तो उम्मीदवारों में मेरा नाम लिख लेना, और जो मर जाऊँ तो कहना मेरे नाम पर फ़ातिहा पढ़ ले ।"

दीवान साहब खुशामदी लहजे में बोल उठे, "खुदा न करे ।" मगर गुलाबजान ने तड़ाक से कहा—"और अगर कोई हसीन मर्द नज़र आए ?"

"तब तो तुम उसकी उम्मीदवार बनो ही गी, मेरा नाम उसकी बहन के उम्मीदवारों में लिख लेना ।"

इस हाज़िरजवाबी पर फिर एक फ़र्माइशी क़हक़हा मचा । आखिर दीवान साहब ने कहा—"हुजूर, ये खुशगप्पियाँ तो होती ही रहेंगी, अब ज़रा तानारीरी का भी लुत्फ़ उठाया जाय, उधर देखिए चौथ का चाँद बादलों में क्या अठखेलियाँ कर रहा है । हवा कैसी मीठी बह रही है । तिलस्मात का आलम है, बस केदारे की एक चीज़ हो जाय हुजूर ।"

बड़े नवाब मसनद पर लुढ़क गए । हुक्के की नाल मुँह से लगाते हुए बोले—"क्या मुजायक़ा है, बशर्ते गुलाब जान को कोई ऐतराज़ न हो ।"

गुलाब ने कहा—"तो हुजूर, हुक्म हो तो पहल धनिया करे ।"

नवाब न जानते थे कि धनिया फने-मौशीक़ी में माहिर है । गला क़यामत का कुदरत से पाया था, मालूमात बहुत अच्छी थी । रियाज़ कमाल का था । नवाब के होठों पर मुस्कान फैल गई ।

धनिया ने आ कर नवाब को सलाम किया। करीने से बैठी, उस्ताद सारंगिए ने सफ बाँधी। एक नौची ने तानपूरा सम्हाला।

धनिया ने नवाब से पूछा—

"हुजूर, क्या गाऊँ?"

"गाना गाओ बीबी।"

"कौन राग?"

"राग? खैर, केदारा ही सही।"

"क्या? अस्ताई, ध्रुपद-तराना?"

नवाब मसनद पर से उठ कर सीधे बैठे। नौची की आँख में आँख डाल कर कहा – "ध्रुपद गाओ।"

धनिया ने स्वर बाँधा, धीरे-धीरे अलाप लेना शुरू किया। पर जब मूर्धना उसके गले से निकलने लगी तो तबलची बेहाल हो गया। नवाब ने झपट कर तबला अपनी रानों में दबाया। फिर तो उनकी पुरानी उँगलियाँ कमाल का जौहर दिखाने लगीं। घड़ी भर ही में बेखुदी का आलम तारी हो गया। न किसी के मुँह से वाह निकलती है न आह। सब बुत बने बैठे हैं। और सुर हैं जो हवा में तैरते हुए धरती आसमान को ज़र्रा-ज़र्रा कर रहे हैं। दून की बाढ़ आई और फिर तीन ग्राम में उँगलियाँ थर्राने लगीं। इसी बेखुदी के आलम में गुलाबजान नाचने उठ खड़ी हुई, फिर तो वह समा बंधा कि वाह। चार घड़ी सुर तड़पते रहे। राग, मूर्धना, स्वर, ताल, लय, आलाप, उच्चार, सब कुछ ऐसा जो बड़े-बड़े कलावन्तों का भी न सुना था।

गाना बन्द कर धनिया ने नवाब को आदाब झुकाया। नवाब ने हाथों की अंगूठियाँ, जेब की घड़ी, गले का लौकट, जेब के रुपए, पैसे-अशरफी जो कुछ था, धनिया के ऊपर बखेर दिया। कद्रदान आदमी थे, आँखों में आँसू भर लाए। उसके दोनों हाथों को आँखों से लगा कर बोले—"जीती रहो, शर्मिदा हूँ, बीबी, मैंने तुम्हारे साथ मज़ाक किया।

अब से तुम जहाँ रहो, वहीं पचास रुपए माहवार मुशाहरा तुम्हें जब तक मैं ज़िन्दा हूँ, मिलता रहेगा। और तुम पर कोई पाबन्दी नहीं है।"

धनिया बार-बार सलामें झुकाती हट गई। गुलाबजान ने कहा—"अब ?"

"अब, जो धनिया से बेहतरीन गा सके, गाए, वरना जलसा बर्खास्त।"

देर तक सन्नाटा रहा। आखिर नवाब हुक्के की नली छोड़ उठ खड़े हुए। उन्होंने आहिस्ता से कहा—"जलसा बर्खास्त।"

: १० :

सिकन्दर साहब

यह आदमी अंग्रेज़ था। इस का असल नाम कर्नल स्किनर था। पहले यह फौज में कर्नल था। भरतपुर की लड़ाई में इसने बड़ी बहादुरी दिखाई थी। उसी में एक गोली लगने से इस की एक टांग लंग खा गई थी। फौज की नौकरी छोड़ कर कम्पनी बहादुर के हुक्म से यह अफसर-बन्दोवस्त हो कर इधर आया था। बहुत दिन वह इस नौकरी पर बहाल रहा और खूब रुपया कमाया। बाद में नौकरी छोड़ कलकत्ते की एक अंग्रेजी कम्पनी की शराक़त में उसने डासने, पिलखुआ और बिलासपुर में नील की कोठी बना, नील की खेती आरम्भ कर दी थी। पहले उसने पिलखुए में, जो मुक्तेसर के निकट है अपनी रिहायश बनाई। बाद में सांवलसिंह से झगड़े टंटों से आजिज़ आ कर बिलासपुर में आ बसा। यहाँ उसने एक अमीर मुसलमान विधवा से शादी कर ली। एक बड़ा भारी बाग़ लगाया। और क़ायम मुकाम तरीके से बिलासपुर में ही बस गया। कोठी रही पिलखुए में भी।

इस समय उसकी उम्र चालीस के लगभग होगी। शरीर का वह बहुत मजबूब था, क़द मझोला था। आँखें नीली और बाल लाल थे। भारत वर्ष की धूप और गर्मी में चालीस साल रह कर उसका रंग ताम्बे के समान हो गया था। उसकी पैदाइश बंगाल की थी। वहीं उसने बंगला

और उर्दू सीखी थी। वह अच्छी उर्दू बोल लेता था। उस का बाप विलायत से फौज में भर्ती हो कर आया था और मरने तक फौज़ में अफसर रहा। हुगली की लड़ाई में उसने बड़ी बहादुरी दिखाई थी। उसने एक अराकानी खिस्तान औरत से शादी की थी। उसी से यह स्किनर साहब उत्पन्न हुआ था। अब जब वह यहाँ बिलासपुर में बस गया और आस-पास ६, ७ नील गोदामों का स्वामी हो गया तथा मुसलमान औरत से शादी कर ली, तब वह सिकन्दर साहब के नाम से प्रसिद्ध हो गया। पर उसका एक दूसरा नाम कड़ी साहब भी बहुत प्रसिद्ध था।

आदमी वह बड़ा मिठबोला और मिलनसार था। पर अपने मतलब का चाक-चौबन्द था। उन दिनों बहुत से अंग्रेज फौजी अफसर नौकरी छोड़-छोड़ कर या पैंशन लेकर हिन्दुस्तान के गाँव देहातों में बस कर—खेती, साहूकारा या कोई व्यापार करते और खूब मुनाफा कमाते थे। रुआब उनका रियाया पर कम्पनी बहादुर के नौकरों जैसा ही रहता था। व्यापार सम्बन्धी उन्हें बहुत सुविधाएँ मिली थीं। उन्हें चुंगी बहुत कम देनी पड़ती थी। जिले के ऊंचे अंग्रेज़ अफसरों से उनका मेलजोल, खानपान, दोस्ताना रहता था। इससे छोटे हिन्दुस्तानी अफसर उन्हें भी हुजूर ही कह कर पुकारते, मानते थे। यद्यपि उन दिनों रिश्वतों का बोल-बाला था। रिश्वत दूध धोई कमाई समझी जाती थी। परन्तु उन अंग्रेज़ व्यापारियों से भारतीय अफसर रिश्वत लेते डरते थे, कि कहीं उनकी ऊपर शिकायत न हो जाय।

इन अंग्रेज़ व्यापारियों का इन सब कारणों से काफी रुआब दबदबा रहता था। पर ये कम्पनी बहादुर के अफसरों और अंग्रेज हाकिमों की तरह रियाया से दूर अकड़ कर नहीं रहते थे। उन दिनों जिले का हाकिम कलक्टर का इतना रुआब दबदबा था, कि उसके तनिक खांस उठने से तहसीलदारों और थानेदारों को तथा जमींदारों की कपकपी आ जाती थी। वे खुदाबन्द कहाते थे। ये अंग्रेज़ व्यापारी और किसान यद्यपि उन के साथ खाते पीते और क्लबों में बराबरी के ढंग पर रहते थे। पर वे

प्राय: रियाया में मिलजुल कर रहते। मीठा बोलते। इससे इनके बहुत काम निकलते थे। और ये खूब रुपया खींचते थे। रुपया खींचने में सिकन्दर साहब बड़े तीसमारखां थे। मुस्तैद भी अपने काम पर खूब थे। आलस्य का नाम भी न था। आसामी से रुपया वसूल करने में वे बड़े तेज थे। नवाब और तहसीलदारों को मिलाए रहते थे। आसामी के कन्धे पर हाथ धर कर मुलायमी से कहते—देव, बाबा देव।

उन दिनों सिकन्दराबाद क़स्बा खूब आबाद था। वहाँ एक हज़ार जुलाहे पगड़ी का धन्धा करते थे। जिस से वे सब मालामाल हो गए थे। दूर-दूर तक सिकन्दराबाद की पगड़ियां मशहूर थीं। सिकन्दर साहब इन जुलाहों को पेशगी रुपया बांट देते थे और तमस्सुक़ लिखा लेते थे। फिर मनमाने भाव पर पगड़ियां बनवाते थे। जिस में मुनाफे का बड़ा भाग उनके हिस्से में पड़ता था। नील की खेती उन दिनों बहुत अंग्रेज करते थे। जगह-जगह उनके नील के खेत थे। यह नील कलकत्ते की अंग्रेज़ कम्पनी को जाता था जो उसे विलायत भेजती थी।

सिकन्दर साहब नील के अलावा गन्ने की खेती भी करते तथा खण्डसार डालते थे। उनके सात गोदाम नील के और तीन खाण्ड के थे। तथा सिकन्दराबाद में पगड़ियों का डिपो था। इस प्रकार सिकन्दर साहब के ऊपर चारों ओर से रुपयों की बौछार होती थी।

घुड़सवारी और शिकार का उन्हें बेहद शौक था। उनके पास कई उम्दा घोड़े थे। नए अंग्रेज़ अफसरों और हाकिमों को वे अक्सर घुड़सवारी का शौक बढ़ाने तथा शिकार खिलाने का अवसर नहीं चूकते थे। इससे अफसर उनके झट दोस्त बन जाते थे। और उनके बहुत काम बात की बात में हल हो जाते थे।

इन सिकन्दर साहब की सारी दुनिया दोस्त थी—एक साँवलसिंह इनका दुश्मन था। साँवलसिंह की भाँति इन्हें भी लठियल जवान नौकर रखने पड़ते थे। आए दिन बात-बात में और बिना बात के भी दोनों ओर

के लठियलों में बहुधा सिर फुटव्वल हो जाती थी। और उस जमाने के ज़मींदारों की इसके बिना चलती ही न थी।

: ११ :

ठगों का फन्दा

नवाब मुज़फ्फरबेग के भतीजे नवाब खुदादाद खाँ हैदराबाद की सेना के बड़े अफसर थे। हैदराबाद की रियासत में उनका बड़ा नाम और दबदबा था। उन्होंने बहुत बार नवाब मुज़फ्फरबेग को हैदराबाद आने की दावत दी थी। परन्तु नवाब मुज़फ्फरबेग जईफी का बहाना करके टाल जाते थे। इस बार नवाब खुदादाद खाँ के लड़के की शादी थी। उन्होंने बहुत-बहुत इसरार करके उन्हें बुलाया था। इसलिए इस बार नवाब मुज़फ्फरबेग सपरिवार हैदराबाद गए थे। और वहाँ तीन महीने रह कर अब लौट रहे थे। इन दिनों हैदराबाद से दिल्ली चार महीने की राह थी। फिर रास्ते में डाकुओं और ठगों का बहुत डर रहता था। इससे इक्का-दुक्का आदमी यात्रा नहीं करते थे। नवाब के साथ पचास घुड़-सवार और बहुत से नौकर-चाकर—बाँदियाँ थीं। ज़नानखाना भी साथ था। उस ज़माने में बिना रक्षा का पूरा प्रबन्ध किए यात्रा निरापद न थी। नवाब के साथ बहुत-सा रुपया पैसा और ज़र-जवाहर था। इसलिए वह पूरे प्रबन्ध के साथ ही सावधानी से यात्रा कर रहे थे।

उन दिनों दिल्ली और हैदराबाद का मार्ग भारत में सबसे सम्पन्न और प्रसिद्ध मार्ग था। औरंगजेब ही के काल से यह मार्ग प्रशस्त हुआ था, जब कि पच्चीस वर्ष इस बादशाह ने दक्षिण में घोड़े की पीठ पर व्यतीत किए थे। इसके बाद अंग्रेज़ों ने भी उत्तरभारत और दक्षिण के सम्बन्ध घनिष्ट कर लिए थे। वे तो अब समूचे भारत पर एक साम्राज्य ही रच रहे थे—इसी से इस राह पर यात्रियों की भरमार रहती ही थी। इसी से ठगों के बड़े-बड़े गिरोह भी इस मार्ग पर चलते और अपनी साह-

सिक रोमांचकारी कार्रवाइयाँ करते रहते थे। यों तो कन्याकुमारी स काश्मीर तक इस समय ठगों का व्यापक जाल फैला हुआ था। इनके दल में कहीं सौ, कहीं अस्सी-नब्बे, कहीं पचास और कहीं-कहीं दस-पाँच व्यक्ति होते थे। इनमें हिन्दू-मुसलमान दोनों ही होते तथा स्त्रियाँ भी इनके दलों में रहतीं थीं। आवश्यकता होने पर दो-चार दल मिलकर यात्रियों पर हाथ साफ़ करते थे। इनके ढंग व्यवस्थित, भाषा सांकेतिक और संगठन प्रबल होता था।

उनका धर्म विश्वास कुछ तान्त्रिक ढंग पर था। संभवतः इनका आरम्भ ही तान्त्रिकों से हुआ था। वे काली को अपना इष्टदेव मानते थे। और बिना ही रक्तपात के हत्या करते थे। हत्या करने का इनका ढंग निराला था। इनका शस्त्र एक रेशमी रूमाल होता था। जिसके एक छोर पर एक मंसूरी पैसा बंधा रहता था। उसे ये एक क्षण में ही ऐसी सफाई से अपने शिकार के गले में डालते थे, कि वह पैसा शिकार के टेंटुए में कस जाता था। और क्षण भर ही में बलवान से बलवान आदमी की मृत्यु हो जाती थी। इनकी व्यवस्था ऐसी व्यवस्थित होती थी कि शिकार चाहे—सौ दो सौ की संख्या में हों—सबको संकेत होने पर एक ही क्षण में फाँसी लग जाती थी।

ठगों के दल सैनिक पद्धति पर संगठित होते थे। उसमें भिन्न-भिन्न पदाधिकारी होते थे। उनके अधीन भिन्न-भिन्न दल होते थे। जिनके काम भी भिन्न-भिन्न होते थे। एक दल का सोथा होता था। इसमें दस-बीस या पच्चीस व्यक्ति अत्यन्त भद्र वेश में भद्र पुरुष की भाँति यात्रा करते थे—इनका काम मुसाफिरों से हेल-मेल करके उन्हें फँसाने का होता था।

जो लोग गले में फाँसी देते थे—वे 'भटोट' कहाते थे। नए रंगरूटों को 'कबूला' कहते थे। इनका काम मुर्दों को रफ़ा-दफ़ा करना होता था। फाँसी डालते समय जो व्यक्ति 'भटोट' की सहायता के लिए हाजिर रहता था—उसे 'समासिया' कहते थे। एक दल का नाम 'लगाई' होता था।

इनका काम था कि ज्यों ही कोई स्थान शिकारों पर फाँसी लगाने का ठीक कर लिया जाय—ये लोग नदी किनारे या किसी आड़ की जगह में गढ़े खोद कर तैयार रखें। जिस से फाँसी पड़ते ही शिकार को तुरन्त दफ़न कर दिया जाय।

ठगों के समुदाय भी अनेक थे। एक प्रकार के ठग—'मेघपूना' कहाते थे। जो केवल बच्चों का अपहरण करते थे। ठगों के ये भिन्न-भिन्न दल पृथक्-पृथक् वेश और राह से आ कर यात्रियों के दल में मिल जाते थे। यह नहीं ज्ञात होने पाता था कि ये सब मिले हुए ठग हैं। यात्रा में ठगों का सरदार हाथ में फरसा लेकर दल से आगे चलता था।

ठगों के दल में हिन्दू मुसलमान दोनों ही होते थे। कभी-कभी तो पढ़े-लिखे और उच्च कुल के व्यक्ति भी इन दलों में मिले होते थे। ये लोग संन्यासी—व्यापारी—बंजारे—वैद्य—हकीम या दरवेश के वेश में घूमते रहते और अपना शिकार मारते थे।

मुज़फ़्फ़रबेग के दल के साथ बन्दूकें तथा दूसरे हथियार भी थे। ठगों ने हैदराबाद से ही उन्हें भाँप लिया था तथा अवसर पाते ही उन का शिकार कर डालने का बन्दोबस्त कर लिया था।

ज्यों ही नवाब ने भुसावल से दो पड़ाव आगे कालाडीह के जंगल में डेरा डाला, घोड़ों के सौदागरों का एक दल भी ठीक उसी समय उस स्थान पर आ पहुंचा। सौदागरों के सरदार को जब यह ज्ञात हुआ कि सहयात्री भोपाल के नवाब सब्री ख़ाँ हैं, तो वह बहुत सी सौग़ात ले कर नवाब की सेवा में हाज़िर हुआ। उसने बताया कि हम लोग घोड़ों के सौदागर हैं। बुख़ारे के रहने वाले हैं। हैदराबाद से लौट रहे हैं। चार-सौ घोड़े ले कर हम आए थे। बहुत सस्ते दामों बिक्री करनी पड़ी। घाटे में ही रहे। क्या करें वक्त खराब है। रास्ते में ख़तरा है। रक़म हमारे पास है। और सिर्फ़ बीस आदमी हैं। सौदागर लोग हैं। लड़ना-भिड़ना नहीं जानते। यहाँ आप से मिल कर तसल्ली हुई। सुना है, कि इस रास्ते डाकुओं और ठगों का बहुत ख़तरा है। आप के साथ हथियारबन्द

सिपाही हैं, हर्बा-हथियार हैं। यदि आप हमें साथ ही साथ रह कर सफ़र करने की इजाज़त बख्शें तो बड़ी इनायत हो।

नवाब मुज़फ़्फ़र बेग खाँ उनकी मिलनसारी, शराफ़त—बातचीत—नज़र-भेंट से प्रसन्न हो गए। उन्हें साथ-साथ सफ़र करने की इजाज़त दे दी।

एक ही दिन में घोड़ों के व्यापारी ने नवाब को दोस्त बना लिया। बहुत से ताजा फल, उम्दा शीराज़ी शराब और कुछ उम्दा जानवर गोश्त के लिए नज़र किए। नवाब ने अगले पड़ाव में इन सौदागरों को एक दावत दी।

अभी यह खाना-पीना, हँसी-मज़ाक़, गपशप हो ही रहा था कि साधुओं का एक दल उन से आ मिला। दल में पचास-साठ आदमी थे। उन्होंने कहा—हम उदासी अखाड़े के साधु हैं। कंदौड़ के गुरुद्वारे से लौट रहे हैं—पंजाब जाना होगा। सौदागर उनसे मिल कर बहुत खुश हुए। उन्होंने कहा—बाबा, खूब साथ रहेगा। हमारे साथ ही चलो। नवाब भी साधु-संतों की सोहबत पसन्द करते थे। वे भी उन्हें साथ रखने में राज़ी हो गए।

तीसरे दिन भयानक सघन जंगल में दल पहुँचा। ठगों ने यही स्थान अपने काम के लिए उपयुक्त समझा। 'सोथा' प्रधान घोड़े पर नवाब के साथ चल रहा था। उसने कहा—नदी का किनारा है। आगे बीहड़ जंगल है, यहीं पड़ाव डाला जाय तो अच्छा। नवाब ने स्वीकार किया और वहीं पड़ाव डाल दिया। 'लगाई' लोगों ने लकड़ी काटने के बहाने जा कर गड्ढे खोद कर तैयार कर लिए। तय हुआ कि हीगूँ सरदार झिलूम देगा। झिलूम का अर्थ था—संकेत।

संकेत शब्द निर्णय हुआ, 'पान लाओ।'

पड़ाव बाग़ में पड़ाव डाल दिया गया। पुरुषों से तनिक हट कर पेड़ों की आड़ में स्त्रियों के डेरे पड़े। नवाब ने बाँदी को भंग लाने का हुक्म दिया। बाँदी तैयार करने चली गई। नवाब जाजम पर बैठ कर सौदागर

सरदार के साथ हुक्का पीने और बातें करने लगे। सिपाही-सेवक सब खाने-पीने और दूसरे कामों में जुट गए। कुछ लोग आराम करने लगे। बंधे हुए संकेत से ठगों के दो-दो आदमी नवाब के एक-एक आदमी के साथ बैठ कर गप्पें हाँकने लगे। अभी पहर दिन बाक़ी था। उसी समय ठगों के सरदार ने झिलूम दिया—"पान लाओ।"

यह शब्द कहना था कि नवाब के साठ आदमियों के गले में रूमाल पड़ गए। भटोट फुर्ती से अपने शिकार की पीठ पर चढ़ गया। घुटनों में उसकी गर्दन दबोच ली। और रूमाल में बंधा पैसा टेंटुएँ में फँसा कर फाँसी कस दी। दूसरे आदमी ने शिकार के हाथ-पैर जकड़ लिए। एक-दो मिनट हाथ-पैर मार कर सब शिकार ठण्डे हो गए। एक शब्द भी किसी के मुँह से नहीं निकला।

इसी समय बाँदी पान ले कर वहाँ आई। उसने देखा नवाब औंधे मुँह पड़े हैं। उनकी जीभ बाहर निकल आई। पहले तो वह कुछ भी नहीं समझी—फिर उसने देखा—नवाब के सभी साथी मरे पड़े हैं। बाँदी की चीख़ निकल गई। वह तश्तरी फेंक रोती हुई भागी। यह देख एक ठग ने तलवार से उसका सिर काट लिया। उसके बाद उन्होंने रोती-कलपती सब स्त्रियों को तलवार के घाट उतार दिया। सब लाशों को गढ़े में डाल कर मिट्टी दे दी गई। ठगों की कार्वाई का वहाँ कुछ भी नामोनिशान न रह गया। बच्चों को बाँध कर उन्होंने साथ रख लिया। और चल खड़े हुए।

: १२ :

पकड़-धकड़

अपनी जान में तो सब को मार-मूर कर, सब निशान रफ़ा-दफ़ा करके तथा नवाब का सब माल-मता लूट-पाट कर ठगों का यह गिरोह आगे बढ़ा। इस समय इस दल में डेढ़ सौ से अधिक आदमी थे। सब ने

अपने छद्म वेश बदल डाले थे और प्रतिष्ठित व्यापारी की भाँति ठाठ से यात्रा कर रहे थे। उन्हें इस बात का गुमान भी न था, कि एक चपल बालक उनकी नज़र बचा कर निकल भागा। उसने उनके सब कृत्य देख लिए थे और वह छिप कर उनके साथ ही यात्रा कर रहा था। यह बालक नवाब का दौहित्र सख़ावत बेग़ था।

"रास्ते में मुक़ाम करता हुआ यात्रियों का यह दल नागपुर की ओर मुड़ा और नगर के निकट डेरा डाला। वहां से उन्होंने राशन खरीदा। यहाँ उनके गुप्त एजेन्ट थे। उन्होंने बच्चे एजेन्टों के सुपुर्द कर दिए। जिन्हों ने पाँच रुपए से ले कर दो रुपए तक उन्हें बेच डाला। अब उन्होंने अपना लूट का माल भी इन एजेन्टों द्वारा बेच डाला। बड़े-बड़े लखपती साहूकार व्यापारी बड़े-बड़े शहरों में उन दिनों केवल ठगों ही के माल की ख़रीद-फरोख्त का धन्धा करते थे। अब वे अगले शिकार की तलाश में कूच करने ही वाले थे कि उन पर गाज टूट पड़ी। वह बालक छिपता हुआ थाने में जा पहुँचा। थानेदार सब हाल सुन कर उसे जिले के हाकिम के पास ले गया। इस समय कम्पनी सरकार की ओर से कर्नल स्लीमेंन की अध्यक्षता में ठगों को उन्मूलन करने का एक कमीशन बैठा था। स्लीमैंन दैवयोग से यहीं दौरा कर रहे थे। जिले का हाकिम बालक को उनके पास ले गया। कर्नल स्लीमैंन ने सब बातें सुन कर सेना और पुलिस की सहायता से सब ठगों और उनके एजेन्टों को धर पकड़ा। तमाम माल और लाशें बरामद की गईं। और सब का चालान नागपुर की बड़ी अदालत में किया गया। अदालत में ठगों ने बड़े रोमांचकारी बयान दिए।

एक ने कहा—मैं ज़ात का ब्राह्मण हूँ। अवध का एक माफ़ीदार था। मेरी ज़मीन जायदाद कम्पनी सरकार ने छीन ली। लगान वसूली के लिए मेरे दोनों बेटों को जेल में ठूँस दिया। कम्पनी के सिपाहियों के अत्याचार से बचने और अपनी इज्ज़त बचाने के लिए मेरी दोनों पुत्रवधुएँ कुएँ में डूब कर मर गईं। मेरे बेटों का पता नहीं कहाँ हैं, मरे हैं या जीते हैं। पहले मैं ज्योतिष का काम करता था। यजमानी वृत्ति थी। वह सब

छोड़ मैंने ठगी का पेशा अख्तियार किया। बुलन्दशहर, मेरठ, अलीगढ़ के आस-पास मैंने पचासों आदमियों का खून किया। अब मुझे किसी को फाँसी लगा कर मारने में कोई झिझक नहीं होती। यह हमारा पेशा है। देवी भवानी की आज्ञा से मैंने यह पेशा ग्रहण किया था।

दूसरे ठग ने बयान दिया—पहले मैं लड़के-लड़कियों को उड़ा कर बेचने का धन्धा करता था। अब भटोट का काम करता हूँ यह काम करते मुझे बीस बरस हो गए। जयपुर, जोधपुर, आबू, में मेरा दल काम करता था। इसवार हैदराबाद से आ रहा था। मेरे दल में बीस आदमी हैं जिनमें मेरी पत्नी, दो पुत्र और उनकी पुत्र-वधू भी हैं। हम मैनपुरी के ठाकुर हैं। हमारी ज़मीन कम्पनी सरकार ने कुर्क कर ली। लाचार हमें यह काम करना पड़ा।

तीसरे ने कहा—महाराज मैं दीनाजपुर जिले का जुलाहा हूँ। रेशम का वहाँ हमारा बहुत कारोबार था, कम्पनी के गुमाश्तों के अत्याचार से वह सब चौपट हो गया। एक दिन कचहरी में ले जा कर मेरे बाप को दादनी लेने से मना करने पर इतना पीटा कि वह मर गया। मुझे और मेरे तीन भाइयों को कलकत्ता की जेल में ठूँस दिया गया। मेरा एक भाई बीमार था, यह बिना दवा-पानी जेल ही में मर गया। दूसरे ने दुःख से वेहाल हो कर आत्मघात कर लिया। मैं किसी तरह भाग निकला। घर जा कर देखा तो ज्ञात हुआ मेरी स्त्री को कम्पनी के आदमी उठा ले गए। मेरी वृद्धा माता और बहन पोखर में डूब मरीं। जंगलों में मैं छिपता भागता फिरता था कि ठगों से मुलाकात हुई। तब से मैंने यही पेशा स्वीकार कर लिया। अब मैं क़ब्र खोदने का काम करता हूँ।

चौथे ने कहा—मैं रुहेला पठान हूँ। अमरोहे में मेरे दादा की बहुत बड़ी ज़मींदारी थी। कम्पनी बहादुर ने जब रुहेलों को जलावतन किया तब मेरे दादा भी वहाँ से निकल आए। दिल्ली में आ कर उन्होंने बिसाती की दूकान कर ली। पर वह भी कुछ चली नहीं। मेरी बचपन में कोई तालीम नहीं हुई। मेरा बाप एक कत्ल के मामले में फंस गया

ग्रौर उसे फाँसी हुई। मैं घर से भाग कर ठगों की जमात में मिल गया। मैं भटोट का काम करता हूँ। मेरी गिरफ्त में ग्रा कर साँड के बराबर की ताक़त वाला ग्रादमी भी एक ही झटके में ग्राँखें उलट देता है। ग्रपने दल का मैं सरदार हूँ। एक शिकार की जवान लड़की मेरे हाथ ग्रा लगी थी। उससे मैंने निकाह पढ़ा लिया। ग्रब उससे मेरे दो बच्चे हैं। बीवी-बच्चों को भी मैंने यही काम सिखाया है। ग्रौर मेरा ग्रपना दल है। जिस में बीस-पच्चीस ग्रादमी हैं। मैं सब का सरदार हूँ।

इसी प्रकार ग्रौर भी बहुत से बयान हुए। पर इन पुरानी बातों से यहाँ कुछ लाभ न हुग्रा। सभी को फाँसी पर लटका दिया गया।

: १३ :

नौचन्दी की राह पर

मेरठ नगर की बस्ती से एक मील दूर चण्डी का मन्दिर है। उन दिनों मेरठ ग्रौर ग्रास-पास के देहातों में चण्डी देवी की बड़ी मान्यता थी। लोग कहते थे—माता चण्डिका ने महिषासुर को वध करके यहीं विश्राम किया था। चण्डी देवी की पूजा के लिए नगर ग्रौर समीपवर्ती ग्रामों से निरन्तर ग्रनगिनत श्रद्धालु स्त्री-पुरुष ग्राते ही रहते थे। होलिका-दहन की समाप्ति पर मन्दिर में एक मेला लगता था। उस दिन ग्रास-पास के देहातों से बहुत स्त्री-पुरुष—बहलों में, गाड़ियों में, रथों-फीनसों में ग्राते थे। मन्दिर के बाहर वाले मैदान में दूर तक इन यात्रियों के डेरे तम्बू लग जाते थे। रात्रि को ये यात्री विश्राम करते—चण्डी की पूजा करते ग्रौर सुबह बासौड़ा खा कर ग्रपने-ग्रपने घर लौटते थे।

मुहम्मद शाह बादशाह के ज़माने में यहाँ मियाँ का मज़ार बन गया। मियाँ पहुँचे हुए ग्रौलिया थे। बादशाह उन्हें बहुत मानते थे। जब तब मियाँ के नियाज़ हासिल करने को ग्राते थे। तब बादशाह के साथ—काफ़ी हजूम इकट्ठा हो जाता था। ग्रौर वह धूम-धड़क्का एक मेले का ही

रूप धारण कर लेता था। मियाँ के मर जाने पर जब उनका मज़ार बना, और खुद बादशाह सलामत उसकी ज़ियारत को तशरीफ़ लाए—तो वह मुसलमानों का एक पवित्र स्थल बन गया। बादशाह ने उस पर कुछ गाँव जागीर लगा दी थी। इस से दो-चार, दस पाँच मुजाविर वहाँ बने ही रहते थे। और कोई न कोई फ़क़ीर, दरवेश भी वहाँ आते रहते थे। धीरे-धीरे यह मज़ार भी बहुत प्रसिद्ध हो गया। और लोग दूर-दूर से मिन्नतें मनाने वहाँ आने लगे। हिन्दू श्रद्धालु तो होते ही हैं। उन दिनों हिन्दू-मुसलमान धर्म सामंजस्य की भावना बहुत बढ़ गई थी। अतः होली के बाद चण्डी का जब मेला लगता तो हिन्दू चण्डी पूजा के साथ ही मियाँ के मज़ार पर भी शीरनी चढ़ाते। मुसलमान यहाँ उर्स करते—और धीरे-धीरे अब यह नौचन्दी का मेला—हिन्दू-मुसलमानों का संयुक्त मेला बन गया था। आस-पास के दूकानदार यहाँ आ कर बाज़ार लगाते। हलवाइयों और नानवाइयों की दूकानें सजतीं। खजले और तंदूरी रोटियाँ पकतीं। पंचमेल मिठाइयाँ दबादब बिकतीं। गाना-बजाना, रोशनी, हँसी-मज़ाक़ की अच्छी धूम रहती थी।

मालती ने ज़िद्द पकड़ी—कि हम तो नौचन्दी देखेंगे। मीर साहब का पल्ला पकड़ कर वह मचल गई। मीर साहब ने दिलासा दिया। और मालिक का रुख देख कर साँवलसिंह से स्वीकृति ले ली। साँवलसिंह ने मीर साहब को चेता दिया था—कि फ़िज़ा अच्छी नहीं है। ज़रा होशियार रहना और जल्दी लौटना। साथ में आदमी काफ़ी ले लेना। मीर साहब ने उन्हें हर तरह इत्मीनान दिला दिया। मंगल को रंग खिला और सनीचर को मुक्तेसर से मालती की सवारी चली। मीर साहब ऊँची रास के क़ीमती घोड़ी पर सवार। मालती और एक खवास रथ पर। रथ पर गंगाजमनी काम, ऊपर सुर्ख़ बनात मढ़ी हुई जिस पर सुनहरी कारचोबी। तीन कलश सोने के सूरज की धूप में चमकते हुए। नागौरी बैलों की जोड़ी। जिन के सींग चाँदी से मढ़े हुए—हाथी के से बच्चे, जिन पर ज़र्द छींट की झूल। भीतर हरी बनात का बनाव। नए पर्दे,

दरी, क़ालीन, चाँदनी और मसनद। चाँदी की सुराही—ठण्डे जल से भरी हुई, उस पर चाँदी का आवखोंरा औंधा ढका हुआ। जालीकट चाँदी का पानदान—वारिन गोद में रखे हुए। देसावरी पान गिलौरों में भरे हुए, गुलाब-केवड़े में बसा हुआ कत्था, दही के तोर में छना हुआ चूना। कतरी हुई डलियाँ, इलायची सफ़ेद, लखनऊ का मुश्की ज़रदा, मुश्क की खुशबू से मुअत्तर पानदान में हाज़िर।

मालती कारचोबी का तुलवाँ जोड़ा पहने, काही करेब का दुपट्टा लापरवाही से कन्धों पर डाले, बनात टंकी हुई ज़र्द गिरंट की इज़ार पहने, क़ीमती ज़ेवरों से सर से पाँव तक लदी, पर्दे के झरोकों से झाँकती हुई निहायत खुश।

रथ के साथ चार लठैत, जिन का गज़ भर चौड़ा सीना, तनज़ेब का ढीला कुर्ता' सिर पर भारी अम्मामा। कन्धे पर बड़ा सा लठ, मरोड़ी हुई मूँछें। उनके पीछे चार पासी—सुकियाँ लिए हुए। मरने-मारने को मुस्तैद। पीछे छकड़ा, राशन, छोलदारी और दूसरे सामानों से भरा हुआ। उस पर महरी-नाइन-महाराजिन। धचकोले खाती हुई। छकड़े के संग दो महरे, एक नाई। खाने-पीने का सामान बहंगी पर—शकरपारे, नमकपारे, गिंदौड़े, पूरियाँ खस्ता, तरकारियाँ, अचार, चटनी, मुरब्बा, दही।

हवा तेज़ थी। अभी पहर भर रात बाकी थी, कि सवारियाँ मुक्तेसर से रवाना हो गई थीं, जिस से दिन रहते मेरठ पहुँच जाँय। मंज़िल पूरी थी। अभी रात का अंधेरा था इसलिए एक मशालची और दो हथियार-बन्द सिपाही सवारी के साथ चले थे। दिन की निकासी पर वे लौट गए। मीर साहब के हाथ में बंदूक और कंधे पर बारूद का पलीता लटक रहा था। कमरफैंट में कटार और पेटी में तलवार। गर्ज़, हर तरह लैस और चाक-चौबन्द। सूरज की धूप चढ़ गई। मीर साहब घोड़ी बढ़ा कर रथ के निकट ले गए। उन्होंने पूछा—

"बेटी मालती क्या आराम में है ?"

मालती ने पर्दे से झाँक कर कहा—"नहीं दद्दा, कै बजे होंगे। धूप तो खूब फैल गई है। बड़ा अच्छा मैदान है। हम ज़रा इधर का पर्दा उठा लें?"

"क्या हर्ज है। लेकिन हवा तेज़ और ठण्डी है।"

'मेरा तो पर्दे में दम घुट गया, धूप तो खुल गई है।"

"खुला मैदान है, जंगल का वास्ता, लेकिन डर कुछ नहीं है। घड़ी दो के अर्से में तालाब पर पहुँचेंगे। बड़ी अच्छी जगह है। सिवाला भी है। बस्ती का किनारा है। वहीं सवारी रोक कर जरा हाथ-मुँह धो कर कलेवा कर लेना। लेकिन पान हो तो हमें दो।"

वारिन ने पानदान से दो बीड़ा पान उठा कर मीर साहब को दिए। मालती ने पूछा—"छकड़ा और बैहंगी कहाँ है?"

"सब साथ हैं, फिक्र न करो।" मीर साहब आगे बढ़ गए।

मालती ने एक ओर का पर्दा उठा दिया। और दूर तक हरे-हरे खेतों का मज़ा लेने लगीं। कहीं किसान पानी दे रहे थे। कहीं हल-बैल ले खेत जोत रहे थे। कहीं किसानों की स्त्रियाँ घाघरे ऊपर को उठाए खेतों में पानी दे रही थीं।

एकाएक एक आदमी गोरा-चिट्टा फिरंगियों जैसे कपड़े पहने कंधे पर बंदूक रखे अकस्मात् ही उधर आ निकला। क्षण भर उसकी मालती से आँखें चार हुईं और मालती ने बिजली की तेजी से पर्दा गिरा दिया। वह पीपल के पत्ते की तरह कांपने लगी। उसने वारिन का हाथ पकड़ कर कहा—"कौन था यह हूश।"

"मुआ डाढ़ीजार, नज़र तो देखो उसकी जैसे खा ही जायगा। मुँह झोंसो उसका।"

इसी बीच मीर साहब ने करारे स्वर में पुकार कर कहा—"कौन है सवारियों के पास?" और दूसरे ही क्षण घोड़ा दौड़ाते वे आ पहुँचे। आगन्तुक से बातचीत होने लगी। आगन्तुक ने कहा—

"कहाँ की सवारियाँ हैं?"

"गढ़मुक्तेसर की। आप कौन हैं ?"

"मैं बिलासपुर का सिकन्दर साहब हूँ। इधर शिकार के लिए निकला था कि सवारियों पर नज़र पड़ीं। अच्छा, तो चौधरी साँवलसिंह की सवारियाँ हैं।"

"जी हाँ ?"

"सवारियाँ कहाँ जा रही हैं ?"

"हम नौचन्दी के मेले में जा रहे हैं।"

मीर साहब ने ज़रा सख्ती से कहा। वे जानते थे कि सिकन्दर साहब हमारा दुश्मन है। उन्होंने कहा, "यह मुनासिब न था कि आप अकेली ज़नानी सवारियों के पास चले आए। बहू-बेटियाँ तो आप की भी हैं ?"

"मुझे बहुत अफसोस है मीर साहब।" इतना कह कर मुस्कराता हुआ सिकन्दर साहब लम्बे डग भरता हुआ चला गया।

मीर साहब ने सवारियाँ आगे बढ़ाने का हुक्म दिया।

मालती ने काँपती आवाज़ से कहा—"रघुवर, तेज़ चलो।"

रथवान ने बैलों को सनकारा। नागौरी बैल पूँछ उठा कर दौड़ चले।

: १४ :

हरण

थोड़ी ही देर में सवारी तालाब के किनारे पहुँच गई। बड़ा ही मनोरम स्थान था। बहुत बड़ा तालाब था। उस में बड़े-बड़े लाल कमल खिले थे। भाँति-भाँति के पक्षी चहक रहे थे। तालाब चारों ओर से वृक्षों के झुरमुट से ढका हुआ था। छाया इतनी घनी थी कि धूप भी नहीं छनती थी। सवारियाँ उतरीं, जाजम बिछ गई। खाने की बहंगी जाजम के पास लगा दी गई। कामनी बेडिन को लेकर तालाब पर हाथ-मुँह धोने गई।

पर मीर साहब के मन में चोर बैठ गया था। राह में इस प्रकार अप्रत्याशित ढंग पर अपने चिर-शत्रु सिकन्दर साहब को देख कर मीर
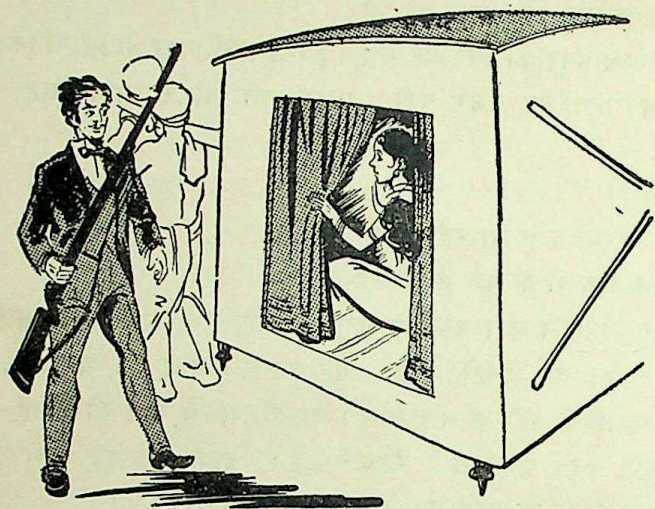
साहब अस्थिर हो गए। साथ में सुरक्षा का पूरा बन्दोबस्त था। चार लठैत, चार पासी हर तरह मुस्तैद साथ थे। उनके पास भी दुनाली बन्दूक और तमंचा था। रघुवर रथवान भी पहलवान था। फिर भी मीर साहब का मन चंचल हो गया। उन्हें ख़्याल ही न रहा था कि यहाँ पिलखुए में सिकन्दर साहब की नील की कोठी है। वह कोठी यहाँ से कोई दो कोस के अन्तर पर ही थी। उन्होंने एक बार नज़र उठा कर चारों ओर को देखा—पास कोई बस्ती न थी। खेतों में ज़रूर किसान स्त्री-पुरुष काम कर रहे थे।

वे नहीं चाहते थे कि सवारियाँ डर जाएँ। उन्होंने सिर्फ़ रघुवर से बात की। उन्होंने कहा—

"रघुवर, यहाँ से जल्द ही टरक चलना ठीक होगा। दुश्मन का इलाक़ा है।"

"तो हुज़ूर, फ़िक्र क्या है। किस की माँ ने धोंसा खाया है कि नज़र उठाए। ख़ातिर जमा रखिए।"

"यह तो ठीक है, पर ज़नानी सवारी का साथ है। सिकन्दर साहब

अच्छा आदमी नहीं है। फिर वह हमारा दुश्मन है। यह उसी का इलाक़ा है। यहाँ से हम उसे खदेड़ चुके थे। आशा न थी कि वह यहाँ मिलेगा। अब उसका यहाँ होना ख़तरे से ख़ाली नहीं है। मुझे इस बात का ख़्याल ही न रहा कि यह उसी का इलाक़ा है, वरना यहाँ ठहरते ही नहीं।"

"तो हुज़ूर, हम भी कोई नर्म निवाले नहीं हैं। एक-एक को ढेर कर देंगे। फिर बिटिया रानी खा-पी कर निपटें कि चलें।"

"बस. जल्दी ही चल दो।"

इतने में मालती भी आ गई। मन में वह भी डर रही थी। उसने कहा—"दद्दा, यहाँ से चल ही दो।"

"बस तुम लोग खा-पी कर निपट लो—कि चले। सवारे पहुँचना भी ज़रूरी है।"

जल्दी-जल्दी खा-पी कर सवारियाँ अभी चली ही थीं कि दस-बारह लठैतों ने उन्हें घेर लिया। एक फ़िरंगी घोड़े पर आगे था उस का नाम ग्रे साहब था। उसने कड़क कर कहा—"मोड़ो रथ।"

उसका यह कहना था कि मीर साहब ने गोली दाग़ दी। गोली ग्रे के घोड़े को लगी। घोड़ा उछला और उन्हें लेकर गिर पड़ा। मीर साहब ने अपने लठियलों को ललकारा। अब दोनों तरफ़ से लाठियाँ खिंच गईं। पटापट लाठियाँ बरसने लगीं। मीर साहब शेर की तरह दहाड़ने लगे। घोड़े के गिरने पर ग्रे के बाएँ हाथ की हड्डी टूट गई। पर उस ने पड़े ही पड़े मीर साहब पर पिस्तौल चलाई, गोली मीर साहब की पसलियों में घुस गई। और वे चक्कर खा कर धरती में गिर गए।

मीर साहब के गिरते ही लठैतों की हिम्मत टूट गई। पर वे लाठियाँ खटाखट चला रहे थे। इसी समय एक पासी बाएँ हाथ में ढाल और दाहिने में बर्छा लिए लठियलों के गिरोह से आगे बढ़ कर पैंतरा बदलने लगा। यह एक लम्बा-पतला छरहरे बदन का कम उम्र का नौजवान था। क्षण भर बाद वह जोश में आ कर उछला और ग्रे साहब के बर्छा वालों ने उसे बर्छे पर उठा लिया। वह देखते ही देखते अपने ही खून में लथपथ

छटपटाने लगा। यह भयानक दृश्य देख कर लठैत और पासी भाग खड़े हुए। अब केवल अकेला रघुवर ही लाठी फेंक रहा था। इतने में एक गोली उस की जांघ में आ लगी। वह हाय कह कर गिर गया। हमलावरों का एक लठैत कूद कर रथ पर चढ़ बैठा—उसने बैलों को हाँक दिया। जो पासी बर्छे से घायल हुआ था—वह अभी मरा न था—पर ग्रे साहब ने आगे बढ़ कर उसका सिर काट लिया। अब वह उस सिर को और मालती के रथ को लेकर चल दिया। मालती बेहोश थी और बेडिन दहाड़ें मार कर रो रही थी। दिन दहाड़े यह भयानक मारकाट—खून और अपहरण की संगीन वारदात हो गई। चारों ओर किसान अपने खेतों में काम कर रहे थे—सभी ने देखा—पर किसी ने चूं न की। किसी ने मदद करने का खतरा न उठाया।

: १५ :

नवाब जहाँगीराबाद

उन्हीं दिनों नवाब जहाँगीराबाद का बड़ा दबदबा था। जहाँगीराबाद बुलन्दशहर के ज़िले में अनूपशहर के पास एक क़स्बा है। आजकल तो यह वीरान हो चुका है, उन दिनों यहाँ काफी रौनक रहती थी। ग़ल्ला, रुई, गुड़ की यहाँ बड़ी भारी मण्डी थी। यहाँ की सूती कपड़े की छपाई विलायत तक मशहूर थी। नवाब जहाँगीराबाद पुश्तैनी रईस थे। उनकी बहुत भारी ज़मींदारी थी। बादशाह से उन्हें सनद प्राप्त थी। बाद में उन्होंने आस-पास के कई इलाक़े कम्पनी की सरकार से खरीद लिए थे। बड़े नवाब मिर्ज़ा अलीबेग़ अस्सी की उम्र में जब मरे तो उनके साहबज़ादे मिर्ज़ा अख़्तरबेग की उम्र बीस ही बरस की थी। बड़ी मानता-मनौती मानने पर बड़े नवाब को बुढ़ौती में बेटे का मुँह देखना नसीब हुआ था। इसलिए उनकी परवरिश भी लाड़-प्यार में हुई थी। उन दिनों जहाँगीराबाद की रियासत में ऐशो-इशरत की कमी न थी। सिर्फ इतना ही नहीं, कि छोटे नवाब ऐशो-इशरत की गोद में पल कर

किसी क़दर आवारा हो गए, उनकी तालीम भी बहुत मामूली हुई। इन सब कारणों से ज्योंही बड़े नवाब मरे और इन्हें हाथ की छूट हुई तो बेहद फ़जूलखर्चियाँ करने लगे। बद-इन्तज़ामी इतनी बढ़ी कि आमदनी आधी भी न रही।

इनकी ऐयाशी और फ़ज़ूलखर्ची बड़े नवाब के ही ज़माने में आरम्भ हो गई थी। उन्होंने यह सोच कर कि शादी कर देने से वह खानादारी में फंस कर ठीक हो जायगा। उनकी शादी चौदह साल की उम्र में ही कर दी थी। शुरू-शुरू में तो नए मियाँ-बीवी खूब घुल-मिल कर रहे। बीवी का मिज़ाज ज़रा तेज़ था। वह भी एक नवाब की बेटी थी। पर मियाँ की वह बहुत लल्लो-चप्पो करती रहती थी। उनकी हर बात का ख्याल रखती। कोई उनके खिलाफ़ बोलता तो लड़ पड़ती थी। घर में कोई बड़ी-बूढ़ी औरत न थी। बड़े नवाब की बीवी मुद्दत हुई मर चुकी थी, इसलिए वह कच्ची ही उम्र में आजाद तबियत हो गई थी। परन्तु धीरे-धीरे यह प्रेम का पौदा सूखने लगा। और छोटे नवाब इधर-उधर फिर दिल का सौदा करने लगे। इस बेगम तिनग गई। और फिर आए दिन मान-मुनव्वल, फ़साद-झगड़े उठने लगे। इसी बीच बड़े नवाब का इन्तक़ाल हो गया और छोटे नवाब की पगड़ी बंधी। इसके एक साल बाद ही नवाब के लड़का पैदा हुआ। लड़का सुन्दर और स्वस्थ था। पहला बच्चा था, इसलिए हवेली में बाजे बजने लगे। बधाइयाँ गाई जाने लगीं। तवायफों की महफिल हुई। लेकिन जब दाई ने छटवीं के दिन लड़के को ला कर नवाब की गोद में डाला और उम्मीद की कि कोई भारी इनाम मिलेगा, तो नवाब ने बिगड़ कर कहा, इस लड़के की सूरत हम से नहीं मिलती, चुनाचे यह हमारा लड़का है ही नहीं।

नवाब साहब की इस बात से तहलका मच गया। हक़ीक़त यह थी कि उनके आवारा दोस्तों ने कुछ ऐसी इशारेबाज़ियाँ पहले ही से कर रखी थीं। जिन से नवाब का दिल वहम से भर गया था। वह अनपढ़ और बेवकूफ तो था ही, लड़के को देखते ही ऐसी बेहूदा बात कह बैठा।

बेगम ने सुना तो अपना सिर पीट लिया। रो-धो कर उसने सारा घर सिर पर उठा लिया। इस झगड़े से बेटे के पैदा होने की खुशी में मातम छा गया। सब नाच, रंग, जलसे मौकूफ कर दिए गए। अब मियाँ-बीवी दोनों ने दोनों पर जासूस बैठा दिए और उनकी मार्फत दोनों के चालचलन की खुफिया तहक़ीकात करने लगे। खुफिया लोग झूठी-सच्ची उल्टी-सीधी बहुत सी बातें नवाब और बेगम से आ-आ कर जड़ने और रक़में झाँसने लगे। इसी दौरान में बेगम को पता लगा कि नवाब ने तवायफ से आशनाई कर ली है। हाल ही में लखनऊ से आई है। उन्हें यह भी पता लगा कि यह आशनाई नवाब की बवालेजान बन गई है और नवाब बेहद परेशान है।

तवायफ़ का नाम उमरावजान था। वह वही चुलबुली और बेहद सुन्दरी थी। उम्र भी उसकी कम थी, परन्तु उसकी नायिका सात घाटों का पानी पी चुकी थी। जहाँगीराबाद में आने के बाद उसकी पहल मौज़ा धतौली के ठाकुर मनवीरसिंह से हुई। ठाकुर मनवीरसिंह एक अधेड़ उम्र के बेतुके से आदमी थे। मगर थे दिल फैंक और पैसे वाले। उन्होंने हज़ार रुपए दे कर उसकी नथनी उतारी और अब सौ रुपए माहवार देते थे। परन्तु नवाब के गुर्गों ने उमरावजान की इस क़दर तारीफ़ की कि नवाब सुलगने लगे और उन्होंने दो सौ रुपए माहवार पर उसे नौकर रख लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि इधर तो नवाब साहब की धतौली के ठाकुरों से ठन गई, उधर बेगम ने हवेली सिर पर उठा ली। ठाकुर कभी नवाब के खेत जला देते, कभी उनकी तहवील की रक़म लूट लेते। कभी उनकी आसामियों की परवी कर उन्हें परेशान करते। नवाब बेवकूफ और नातजुर्बेकार था, ठाकुर का कुछ भी बिगाड़ न कर पाता था। आए दिन की दुश्मनी से उसके नाकोंदम हो गया। उधर बेगम से एक दिन उसकी मुँह-दर-मुँह नोंक-झोंक हो गई। नवाब ने कहा—

"बेगम, तुम ने यह हक़-नाहक़ का कैसा हंगामा खड़ा कर दिया है। बखुदा इससे बाज़ आओ वरना हम से बुरा न होगा।"

"क्या कर लोगे तुम ?"

"क़सम क़लामे-पाक की, मैं तुम्हारी खाल खिचवा कर भूसा भरवा दूँगा।"

"तो तुफ है तुम पर जो करनी में कसर करो।"

"नाहक़ एक खूने-नाहक़ का अाज़ाब मेरे सिर होगा।"

"तुम्हें इसका क्या डर है। करनी कर गुज़रो, ज़्यादा से ज़्यादा फाँसी हो जायगी।"

"फाँसी क्यों हो जायगी ?"

"यह कम्पनी बहादुर की अमलदारी है। तुम्हारी ख़ाला का राज नहीं।"

"बखुदा, बड़ी ही मुँह फट हो।"

"मगर अस्मतदार हूँ।"

"चे खुश ! अस्मतदार हो तो कहो—यह लौंडा कहाँ से पेट में डाल लाईं।"

"शरम नहीं आती यह बेहूदा कलाम जुबान पर लाते।"

"हम तो लोगों में कहेंगे ; कुछ डर है ?"

"नकटा जिए बुरे हवाल, डर काहे का। डर तो उसे हो जिसे अपनी इज्ज़त का कुछ ख्याल हो।"

"हम ख़ानदानी रईस हैं। हमारी इज्ज़त को तुम क्या जानो ?"

"बड़ी इज्ज़त वाले आए। तभी तो मुई उस वेसवा का थूक चाटते हो ?'

"तो इस से तुम्हें क्या। यह हम ने कोई नई बात नहीं की। हमारे हम-क़ौम रईस-नवाब सभी कोई रखैल, रंडी रखते हैं। हमने रख लिया तो तुम्हारा क्या नुक़सान किया।"

"अच्छा, हमारा कोई नुक़सान ही नहीं किया ?"

"हमारा जो फ़र्ज़ ब्याहता के साथ करने का है, हम हर्गिज़ फ़रामोश न करेंगे। और अगर ज़्यादा वावेला न मचा कर घर में ख़ामोश बैठोगी

तो हम तुम्हारी खातिरदारी मिस्ल साबिक़ बल्कि उससे भी ज़्यादा करेंगे। हालांकि तुम इस सलूक के क़ाबिल नहीं।"

"क्या कहते हैं ! मियाँ होश की दवा करो। मेरा जो हक़ है—मुँह पर झाड़ू मार कर लूंगी। कोई हँसी-ठट्ठा है ?"

"तुम ने जब बेहयाई पर ही कमर कस ली है तो लाचारी है।"

"मैं बेहया लोगों के कहने का बुरा नहीं मानती। अब्बा जान को मैं ने सब हक़ीक़त लिख दी है। वे आया ही चाहते हैं। निबटना उनसे तुम। देखूंगी कैसे तीसमारखाँ हो।"

'देखूंगा उन्हें। कितनी तोपें ले कर आते हैं।"

यह कहते और गुस्से से काँपते हुए नवाब बाहर चले गए।

: १६ :

नवाबों की फुलझड़ियाँ

बेटी का खत पा कर नवाब इकरामुल्ला आग-बबूला हो गए। वे फ़ौरन हाथी पर बैठ कर जहाँगीराबाद पहुँचे। दामाद को बहुत लानत-मलामत दी। बेटी से सलाह की और बेटी से एक लाख रुपयों के महर का दावा अदालत दीवानी में ठुकवा दिया। अदालत से बेगम को डिग्री मिल गई, इस पर नवाब ने कलकत्ते की सुप्रीम कोर्ट में अपील की—पर नीचे का हुक्म वहाँ भी बहाल रहा। परन्तु इस खींच-तान में तीन बरस लग गए। इस बीच नवाब और बेगम में फुलझड़ियाँ खूब छूटीं। बेगम को तंग करने के नवाब और उनके बेफ़िकरे दोस्तों ने नए-नए नुस्खे ईजाद किए। अब बेगम अलहदा मकान में जहाँगीराबाद में ही रहती थीं। नवाब ने उनके पीछे गुण्डे लगा दिए। जो उनकी हवेली के नीचे खड़े हो कर अश्लील ग़ज़लें गाते। और दूसरे प्रकार की बेजा हरकतें करते। कभी नंगी और फ़ौश तस्वीरें उनके दरवाज़ों पर चिपका देते। कभी डाक से बेरंग लिफ़ाफ़े में गालियाँ, ग़ज़लें, गंदी तस्वीरें भेजते। बेगम उन्हें ज़रूरी

अदालती काग़ज़ात समझ कर महसूल दे कर ले लेती, और खोलने पर ये सब चीजें पाती। रात को उनके मकान पर ईंट-पत्थर बरसते। आखिर तंग आ कर बेगम ने थानेदार की शरण ली। तब तक कांस्टेबल पुलिस का इन्तज़ाम नहीं हुआ था। बरकन्दाज़ी पुलिस थी। सिपाही को पाँच रुपये और थानेदार को बीस रुपये तनख्वाह मिलती थी। थानेदार ने बेगम से सब हाल सुन कर उन की हिफ़ाज़त का ज़िम्मा लिया और एक बरकन्दाज़ उसकी हवेली पर पहरे के लिए बैठा दिया। बेगम उसे सुबह-शाम खाना खिलाती और पाँच रुपये माहवार नक़द देती थी। यह सिलसिला कई महीने तक चलता रहा। पर कोई चोर नहीं पकड़ा गया। ढेलेबाज़ी और छेड़खानी उसी तरह चलती रही। असल बात यह थी कि बरकन्दाज़ अफ़ीमची था। वह शाम को ही अफ़ीम का गोला गटक कर पीनक में अंटाग़फील हो जाता था। फिर भला उसे दोनों दुनिया की क्या खबर रह सकती थी।

आखिर थानेदार पर बेगम का तक़ाज़ा हुआ कि हम खर्च भी करते हैं मगर हमारा काम कुछ नहीं होता। थानेदार ने बरकन्दाज़ को हुक्म दिया कि यदि आज ही मुलज़िम न पकड़ा गया तो उसकी खैर नहीं है। अब आप कहिए—कि जब तीन महीने तक मुलज़िम नहीं पकड़ा जा सका तो भला एक दिन में कैसे पकड़ा जा सकता है। मगर थानेदार साहब का हुक्म भी बजा लाना ज़रूरी था। फिर बेगम ने भी गुनहगार के पकड़े जाने पर इनाम देने का वादा किया था—बस वह किसी आसामी की खोज में उसने चक्कर लगाना शुरू किया। इतने ही में उसने एक आदमी को शराब के नशे में धुत कलवार की दूकान से आते हुए देखा। और झट उसे ले जा कर थानेदार के हवाले कर दिया—और एक गहरा सलाम झुकाया। थानेदार ने बेगम को इत्तला दी कि एक आदमी ढेला फेंकता हुआ पकड़ा गया है। उसे छोड़ देने के लिए नवाब मुझे पचास रुपये घूंस दे रहे थे—परन्तु मैं इस मर्दूद मूज़ी को हर्गिज़ बिना सज़ा दिलाए नहीं छोड़ूंगा। जिस ने बेगम साहिबा को तंग करने की हिमाक़त की है।

बेगम ने पचास रुपए बाँदी के हाथों थानेदार के पास भिजवा दिए। और कहा—उसे पूरी सज़ा दिलवाओगे तो और इनाम दूंगी। जंट साहब की कचहरी में उस पर इस आशय का मुक़दमा चला दिया कि दो अंग्रेज़ लड़के एक खुली बग्घी में सवार चले जाते थे, यह शराबी-नशे में धुत गली से ख़ौफनाक तरीक़े से चीखता-चिल्लाता निकल पड़ा, जिससे बग्घी के टट्टू ऐसे भड़के कि बड़ी मुश्किल से बरकंदाज़ ने रोके जो मौक़े पर हाज़िर था। अगर वह बरकंदाज़ अपनी जान पर खेल कर उन्हें न रोक लेता तो बेशक दोनों लड़कों की जान जाने में ज़रा भी शक न था। लिहाज़ा फिदवी उम्मीदवार है कि इस शराबी की सख्त सजा हुज़ूरेवाला से फर्माई जाय। अभियुक्त ने जंट साहब के सामने शराब पीने का इक़बाल किया और कहा कि उस वक्त मुझे तनबदन की खबर न थी। इस पर जंट साहब ने उस पर पच्चीस रुपया जुर्माना कर दिया।

इस खुशखबरी को थानदार ने बेगम के पास स्वयं हाज़िर हो कर इस तरह पहुँचाया था कि हाकिम उस कम्बख्त गुनहगार को जेल या कालेपानी भेजना चाहता था, मगर आप के हमसायों ने आप की ओर से गवाही देने से इन्कार कर दिया। उधर दुश्मनों ने बहुत ज़ोर बाँधा, लाट साहब तक सिफारिश पहुँचाई। अब मैं क्या कर सकता था। हक़ीक़त यह है कि पुलिस के अलावा हर एक शख्स आप का दुश्मन है। सिर्फ पुलिस आप की दोस्त है। बेगम ने खुश हो कर थानेदार को और पचास रुपए नज़राने के दिए और दस रुपए बरकंदाज को इनाम।

इन सब झगड़े-टंटों में नवाब का भी बहुत रुपया खर्च हुआ। फिर उमरावजान ने भी उन्हें अच्छी तरह निचोड़ा। उनके लफंगे यार-दोस्तों के खर्च भी कम न थे। रियासत का प्रबन्ध कुछ था ही नहीं। नतीजा यह निकला कि उनका हाथ तंग होने लगा और उन्होंने क़र्ज़ा लेना शुरू कर दिया। क़र्ज़े की भी यह हालत थी कि पाँच लेते थे और पचास लिख देते थे। उधर बेगम ने डिग्री को जारी कराया। नवाब साहब पर तबाही आ गई। यार-दोस्त बहुत थे, मगर कोई धेला ख़र्च करने को राज़ी न

था। अब नवाब साहब ने एक और हंगामा शुरू किया। उन्होंने यह शोर मचाया कि अदालत को मुहर दिलाने के मुक़दमों में ज़मीन जायदाद कुर्क करने का मजाज नहीं है। लेकिन यह सिर्फ ज़बानी जमाखर्च था। एक दिन शाम को नवाब ने बहुत से मुसलमानों और उलमाओं को अपन मकान पर इकट्ठा किया और उन से शरई फतवा माँगा। थानेदार को भी मौका मिल गया, वे दलबल सहित उन पर टूटे और कहा—रात के वक्त ऐसा जमावड़ा क़तई क़ानून के खिलाफ है। हम आप सब का चालान साहब कलक्टर के इजलास में करेंगे। इतना कह कर उन्होंने ललकार कर कहा तुम लोगों में से एक आदमी भी यहाँ से टरके नहीं। और उसने उनके नाम की फहरिस्त बनानी आरम्भ कर दी। वे लोग डर गए और अपने नाम फहरिश्त में दर्ज न करने को आरज़ू-मिन्नत करने लगे। जिसने थानेदार की मुट्ठी गर्म की वह खिसका दिया गया। आखिर नवाब ने सौ रुपए दे कर थानेदार की बला को टाला। उन दिनों थानेदारों की थानेदारी ऐसी ही चलती थी।

अब नवाब के यहाँ कोई फ़टकता भी न था। बेगम ने डिग्री में पूरा इलाक़ा कुर्क करा लिया और बेचारे नवाब अपने एक चचाजाद भाई के यहाँ जा कर रोटियाँ तोड़ने लगे।

: १७ :

नवाब इक़रामुल्ला खाँ

मुज़फ्फरनगर के नवाब इकरामुल्ला खाँ का नाम सुन कर उन दिनों अच्छे-अच्छों की पिंडली काँप जाती थी। नवाब की उम्र अब साठ को पार कर गई थी, पर उनके दमखम अभी वैसे ही बने थे। वे बडे डील-डौल के आदमी थे। रियासत भर में उनकी सवारी के लायक़ कोई घोड़ा न था। इसलिए वे हाथी पर ही सवार होते थे। उनका चेहरा भी भयानक था और आँखें हमेशा सुर्ख रहती थीं। तन्दुरुस्ती निहायत अच्छी

थी। ज़ात के पठान रुहेले थे। हेस्टिंग्स के ज़माने में जब रुहेलों पर तबाही आई तो इनकी सारी जागीर चौपट हो गई। अब यहाँ मुज़फ्फर-नगर में इनकी छोटी सी ज़मींदारी थी। मगर रुआब उनका दूर-दूर तक था। हक़ीक़त तो यह थी कि वे अब डाके का धन्धा करते थे। सैकड़ों डाकू अलग-अलग गिरोहों में दूर-दूर तक डाके डालते और माल उनके क़दमों पर ला डालते थे। वह ज़माना ही ऐसा था, जिसकी लाठी उसकी भैंस वाली कहावत थी। यही नवाब बेगम के अब्बा थे।

नवाब अपनी कचहरी में बैठे थे। मुसाहिब लोग भी साथ थे। नवाब मोढ़े पर बैठे हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। एक शागिद ने आगे बढ़ कर कहा—"सरकार, सुरंग घोड़ी है, बहुत नफीस। इस गिर्दनवा में वैसी घोड़ी न होगी।"

"कहाँ है?"

"हुज़ूर, एक लौंडा उस पर सवार है। वह सहारनपुर जा रहा है।"

"है कौन वह?"

"यह तो मालूम नहीं सरकार, उसके साथ सिर्फ दो प्यादे हैं। बस इतला देने को दौड़ा आ रहा हूँ।"

नवाब एकदम गुस्से से गर्ज उठे। उन्होंने कहा—"तो बदबख़्त, तू सिर्फ हमें इत्तला देने ही को आया है, और घोड़ी अभी तक ग़ैर के ही तावे में है?"

"हुज़ूर।"

नवाब फिर गर्जे। उन्होंने कहा—"हुज़ूर के बच्चे, आधे घण्टे में घोड़ी हमारे हुज़ूर में हाजिर ला।"

शागिर्द सलामें झुकाता हुआ चला गया और आधे घण्टे के अंदर ही घोड़ी नवाब साहब के अहाते में आ गई।

घोड़ी को देख कर नवाब साहब खुश हो गए। यह उनका शौक था, घोड़ा, घोड़ी, बैल, रथ या कोई भी चीज़, जो उम्दा से उम्दा हो, जहाँ नज़र पड़े नवाब की होनी ही चाहिए। नवाब के आदमी जो शागिर्द

कहाते थे ग्रौर पेशा डकैती का करते थे, नवाब की यह तबियत पहचानते थे। बस जहाँ कोई उम्दा चीज़ नज़र ग्राई कि वह नवाब साहब की हो कर रही। किस की मजाल थी कि उनके इस शौक में हारिज हो।

घोड़ी ग्रभी दाना-पानी खा ही रही थी कि उसका मालिक वह लड़का भी नवाब की ड्योढ़ी पर ग्रा हाज़िर हुग्रा। उम्र उसकी कोई ग्रठारह साल की होगी। सुन्दर ग्रौर छरहरा बदन। इत्तला पा कर नवाब ने उसे बुलाया। उसने ग्रा कर नवाब को सलाम झुकाया। नवाब ने कहा—

"कौन हो साहबज़ादे ?"

"क्या हुज़ूर ने पहचाना नहीं ?"

"ग्रफ़सोस, साहबज़ादे, लेकिन ग्राँखें बहुत कमज़ोर हो गई हैं। ठीक तौर पर देख नहीं पाता। याद नहीं ग्राता कि कहाँ देखा है तुम को ?"

"हुज़ूर ने जन्नतनशीन नवाब मुजफ्फर बेग का नाम सुना होगा ?"

'क्या नवाब बल्लभगढ़ ? हो-हो, ग्रमा, वे तो मेरे मुरव्वी थे। वाह क्या फरिश्ता ग्रादमी थे। मगर हाय-हाय, क्या बेरहम मौत पाई। ग्रल्ला-ग्रल्ला।"

नवाब ने कान पकड़ कर ग्रपने मुँह पर दो तमाचे जड़े। फिर एक गहरी साँस लेकर बोले—"नवाब मुज़फ्फरबेग हो, तो फिर ?"

"मैं हुज़ूर, उनका नवासा हूँ। मेरा नाम यूसुफ़ है।"

"ग्ररे वाह साहबज़ादे, इतनी देर से क्यों नहीं कहा। मैं भी कैसा ग्रहमक़ हूँ—तुम्हें इतनी देर खड़ा रखा। ग्रल्ला-ग्रल्ला।" उन्होंने फिर कान पकड़े ग्रौर फिर दो तमाचे मुँह पर जड़े फिर मोढ़े से उठ कर युवक को ग्रंक में भर लिया।

"बैठो, बैठो, साहबज़ादे, देख कर ग्राँखें ठण्डी हो गईं। वाह, वही खसलत पाई है। खुदा ने चाहा तो तुम नवाब साहब का नाम रौशन कर लोगे।" इसके बाद उन्होंने पुकार कर कहा—"कोई है, साहबज़ादे के लिए नाश्ता लाग्रो।"

युवक ने कहा—"एक ग्रर्ज़ करने हाज़िर ग्राया था।"

"देखो, साहबज़ादे, धाँधली की सनद नहीं। पहले नाश्ता करो फिर इतमीनान से बातें होंगी।"

ख़िदमतगार एक गिलास दूध और पराँठे दे गया। नौजवान ने नाश्ता किया। नवाब ने हुक्के पर नई चिलम चढ़ा कर क़श लिया फिर बोले—"क्या करते हो साहबज़ादे ?"

"हुज़ूर फ़िरंगियों के स्कूल में पढ़ रहा हूँ।"

"अच्छा करते हो। भई हक़ तो यह है कि वे अंग्रेज़ हैं औलिया, देख लेना कुछ दिनों में हिन्दुस्तान की कायापलट कर देंगे। ख़ैर अब कहो—क्या काम है।"

"हुज़ूर, मैं सहारनपुर जा रहा था, कि बदमाशों ने मेरा पीछा किया और मेरी घोड़ी छीन ली। मेरे आदमियों को भी ज़ख़्मी कर दिया।"

"अरे, कब, कब ? बड़ी ख़राब बात है।"

"हुज़ूर, बस कोई एक घण्टा हुआ। मैं ने सोचा—आप ही के हुज़ूर में अर्ज करूँ, अब और कहाँ फ़रियाद करता ?'

"अच्छा किया साहबजादे, तुम मेरे पास चले आए। आजकल शरीफ़ों का राह-बाट में निकलना ही मुश्किल है। घोड़ी कैसी थी ?"

"सुरंग थी हुज़ूर।"

नवाब ने आवाज़ दी—"कोई है ?"

वही शागिर्द आ हाजिर हुआ। लड़के ने डाकू को पहचान लिया। उसने आती बार घोड़ी को बंधे दाना खाते देख भी लिया था। पर उस ने ऐसा भाव बनाया कि जैसे न वह घोड़ी को पहचानता है—न डाकू को।

नवाब ने शागिर्द से कहा—"सुना तुम ने, साहबजादे का क़िस्सा ?"

"क्या हुआ सरकार ?"

"हुआ क्या ? दिन दहाड़े डाका पड़ गया। मियाँ को अकेला जान कर बदमाश घोड़ी ले कर यह जा ! वह जा !!"

"बड़ी ख़राब बात है हुज़ूर।"

"खराब ? मैं कहता हूँ जब तक दो-चार को गोली से न उड़ाया जायगा, ये वारदातें बन्द नहीं होंगी ? और फिर मेरे ही हलक़े में। कितनी बदनामी और शर्म की बात, तौबा-तौबा।" उन्होंने फिर दोनों कान पकड़ कर गालों पर तमाचे जड़ दिए।

शागिर्द सिर झुकाए खड़ा रहा। नवाब ने कहा—

"खड़े-खड़े क्या देखते हो, घोड़ी का पता लगाओ।"

"हुज़ूर ......"

"बस-बस, मैं एक लफ़्ज नहीं सुनना चाहता। चाहे आसमान में उड जाओ, या धरती फोड़ कर उसमें घुस जाओ। घोड़ी मिलनी ही चाहिए। जाओ।" इतना कह कर नवाब साहब ने यूसुफ़ मियाँ से कहा—

"तब तक साहबजादे तुम आराम करो। घोड़ी मिल जायगी। ख़ातिर जमा रखो।"

"हुज़ूर का इक़बाल ही ऐसा है।"

नवाब साहब ने मियाँ यूसुफ़ के ठहरने, आराम करने और शिकार-तफ़रीह का पूरा बन्दोबस्त कर दिया। यूसुफ मियाँ मजे से चोरों के शहनशाह की मेहमान-नवाजी का लुत्फ़ लेने लगे।

: १८ :

नीलवाला साहब

आप ने गाँव-देहातों में जहाँ-तहाँ नील के टूटे-फूटे हौज और उजाड़ गुदाम देखे होंगे। गाँव के लोगों को इतनी याद तो अब भी है कि ये नील के गुदाम और हौज है। ये हौज अब तो गाँव के ढोरों के बैठने के काम आते हैं और उनके चरवाहे नील गोदाम की दीवारों पर बैठ कर धूप में प्राय: खाना खाया करते हैं।

उन दिनों नील का कारोबार अंग्रेज़ों का बड़े मुनाफे का कारोबार था। इसका सम्बन्ध विदेशी व्यापार से था, इसलिए इस कारोबार को फिरंगी लोगों ने ही उठाया हुआ था। वे लाखों मन नील पैदा कर के

यूरोप और सुदूर पच्छिम के दूसरे देशों में भेजा करते थे, जहाँ उसकी बड़ी भारी माँग थी।

सिकन्दर साहब ने भी इस धन्धे में बहुत रुपया कमाया था। रुपए के ज़ोम में और अक्ल की तेज़ी में वह किसी को कुछ समझता ही न था। वह एक तौर पर नवाब हो था, जो आस पास के इलाक़ों पर छा रहा था, और इलाक़े पर इलाक़े अपने नाम करता और अपनी ज़मींदारी बढ़ाता जा रहा था। वह और भी पैर बढ़ाता यदि साँवलसिंह उसको राह का रोड़ा बन कर न आ खड़ा होता। सिकन्दर साहब के डर से बहुत से देशी जमींदार अपने इलाक़े छोड़ कर भाग खड़े हुए। कइयों ने तो उससे दो-दो बरस तक मालगुजारी न वसूल की। पर जब साँवलसिंह ने उससे खुले-आम मोर्चा लिया तो वे सब इससे बदला लेने को उसके झण्डे के नीचे आ खड़े हुए। अब एक तरफ साँवलसिंह का यह गिरोह था और दूसरी तरफ वह नीलवाला साहब। इन दोनों के बीच आए दिन फौजदारियाँ होती रहतीं। जो कभी-कभी तो बड़ी संगीन हो जाती थीं। इन हंगामों में बहुधा सिकन्दर का ही पासा ऊँचा पड़ता था। इसके दो कारण थे—एक तो यह कि उसके पास काफ़ी रुपया था और वह खूब रिश्वतें दे सकता था। दूसरे बड़े-बड़े हाकिम हुक्कामों से उसका मेल-जोल था। बहुधा नौसिखिए अधकचरे अंग्रेज लौंडे उन दिनों हाकिम, जंट, कलक्टर, मजिट्टर बन कर आते थे, उन्हें न तो अपने काम का ही कुछ तजुर्बा था, न मुल्क की बदअमनी और इन फ़सादों की ही तह तक वे पहुँचते थे। वे तो शानदार ढंग से शराब पीते और थानेदारों और तहसीलदारों पर सब कुछ छोड़ देते थे। सिकन्दर साहब ऐसे छोकरों को बड़ी आसानी से अपने हत्थों पर चढ़ा लेते थे। जरा साहब का घोड़ा बीमार हुआ कि झट सिकन्दर साहब आ कर उसे दवा पिलाते। साहब के कुत्तों में खास दिलचस्पी लेते। मुर्ग़ी-मुर्ग़ा, बकरा, फल, शराब, साग-सब्जी उन्हें भेंट नजराना भेजते रहते, मेम साहबान को बड़े-बड़े तोहफे देते और इन हुक्कामों की बड़ी-बड़ी दावतें करते रहते थे। अपनी शराफ़त,

रईसी और मिलनसारी का ऐसा रंग दिखाते कि साहब बहादुर सिकन्दर साहब पर लट्टू हो जाते थे।

: १९ :
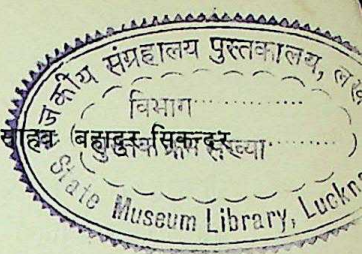
नजीरअली थानेदार

उन दिनों गढ़मुक्तेसर तक का पूरा इलाक़ा मेरठ के थानेदार ही के मातहत था और अपने अमल में थानेदार का रुआब, दबदबा और अधिकार कलक्टर से कम न थे। बल्कि यों कहना चाहिए कि रियाया पर थानेदार का रुआब कलक्टर से भी ज़्यादा था।

इस समय मेरठ की थानेदारी की मसनद पर जो आदमी विराजमान था, उसकी उम्र अभी मुश्किल से बीस ही बरस की थी। उसका नाम नजीरअली था। यह आदमी एकदम अनपढ़ था और अपने दस्तख़त तक नहीं कर सकता था। जात का भिश्ती था। थानेदारी की मसनद पर इसकी तैनाती में एक राज़ था। अब बिना उस राज़ को आप के सामने खोले काम नहीं चलेगा। हक़ीक़त यह थी कि उसका बहनोई कलक्टर फाल्कन साहब का अर्दली था। उसका नाम फ़क़ीरा था। उम्र का वह अधेड़ था, मगर कलक्टर के अर्दली का इज्ज़तदार ओहदा उसका ऐसे दबदबे का था कि मियाँ नजीरअली के बूढ़े बाप ने अपनी चौदह साला लड़की का निकाह उसके साथ कर दिया था। अब इस निकाह को तीन साल हो चुके थे और अब से दो साल पहले नज़ीरअली के बाप ने उसे उसके बहनोई के साथ इस मतलब से भेज दिया था कि वह इसे भी कहीं नौकरी पर लगा दे। यहाँ आ कर उसने देखा कि उसकी बहन नाम के लिए ही फक़ीरा की बीवी है, वास्तव में वह सोलहों आना कलक्टर साहब बहादुर की मेम साहब थी। शुरू-शुरू में उसने इस विषय में दो-चार सवाल अपने बहनोई से किए भी, तो उसने उसे डाँट दिया और कहा—"अपने बाप की तरह बेवकूफ न बनो, काम से काम रखो, दुनिया

के कजिए मत चुकाओ।" नजीरअली भी समझ गया और उसने बहनोई की तरह अपने कानों को बहरा और आँखों को अंधा कर लिया। शुरू में उसे चार रुपए माहवार पर कचहरी के चपरासी की नौकरी मिल गई। पर काम उसका कचहरी के इर्द-गिर्द दिन भर घूमना और जब साहब बहादुर और उसकी बहन मेम साहबा टेबुल पर खाने बैठें तो मक्खियाँ उड़ाना था। साहब उससे बहुत खुश थे और बहन की सिफारिशें लगातार जारी थीं। इसका नतीजा यह हुआ कि वह दो ही साल में थानेदारी की मसनद पर बहाल हो गया। परन्तु केवल यही बात नहीं कि वह कम उम्र छोकरा बिलकुल अनपढ़ था, उसे थानेदारी के काम का भी बिलकुल तजुर्बा न था। परन्तु उसका बहनोई आठों गाँठ कुम्मेत और पूरा चलता-पुर्ज़ा था। उसने उसे सब तरह की पट्टी पढ़ा कर पक्का दारोग़ा बना दिया था और दस्तूर की सब बातें अमल में ला दी थीं। जिनमें अव्वल तो यह—कि उसकी पूरी तनख्वाह साहब मैजिस्ट्रेट के मुँहलगे अमलों को बाँट दी जाती थी। इसके बदले में अमले आला कचहरी में हर वक्त दारोग़ा की मदद पर रहते थे। इसके अलावा सौ रुपए सालाना साहब के पेशकार, सरिश्तेदार और नाजिर को बतौर नजराना बाँध दिंए गए थे। ताकि वे उसकी गाड़ी के रोड़े न बनें, और कचहरी में उसके मददग़ार रहें। इसके अतिरिक्त उसने अपने दो विश्वस्त खुर्राट आदमी इस छोकरे थानेदार की सोहबत में रख दिए थे। जो उसके साथ ही खाते-पीते थे, मगर कमाई अपनी हिकमत-अमली से करते थे। इनका काम रिश्वतें तय करना, सौदे पटाना और इस बात पर नज़र रखना था कि थानेदार की गैरहाजिरी में तो थाने के किसी मातहत आदमी ने तो रिश्वत नहीं ले ली है।

गाँव के चौकीदार और थाने के बरकंदाज थानेदार की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करते रहते थे। उन दिनों थानेदार को बीस रुपए, बरकंदाज को पाँच रुपए और चौकीदार को तीन रुपए माहवार तनख्वाह मिलती थी। थानेदार जिन पर खुश रहता—उन्हें आमदनी कराता था।

इस लिए सभी कोई थानेदार की लल्लो-पत्तो में लगे रहते थे। चौकीदार दूध, मुर्ग़ी, खस्सी, मछली, सब्जी, तरकारी, दही-दूध जहाँ मिलता, थानेदार साहब के लिए उठा लाते थे। उन्हें जिन्सों की क़ीमत देने की कोई आवश्यकता नहीं थी। यदि कोई रोकता या उज्र करता, तो वे घुड़क कर कहते—"चुप, क्या तुम कम्पनी बहादुर का हुक्म नहीं मानते हो?" इस पर सभी लोग लाजवाब हो जाते थे।

थानेदार के बाद थाने में दो और आदमी महत्वपूर्ण थे--एक जमादार, दूसरा बख्शी। बख्शी एक बूढ़ा आदमी था। ज़ात का कायस्थ था और उर्दू-फ़ारसी पढ़ा था। वह एक चालाक आदमी था। तनख्वाह उसे आठ रुपये माहवार मिलती थी। रपट लिखने में वह उस्ताद था। वह ऐसी पेचीली फ़ारसीनुमा भाषा लिखता कि रपट लिखाने वाले को पता ही न चलता था कि रपट उसके विरुद्ध लिखी गई है या अनुकूल। इसके बाद अपना हक़ लेकर वह उसकी नक़ल अपने मुन्शी से कराकर फ़रियादी को दे देता था। बख्शी इस थाने में थानेदार से कम न था। वह बतौर मुहर्रिर थाने की तमाम लिखा-पढ़ी का काम किया करता। थानेदार और उसके ये सुयोग्य अमले तर्फ़ैन से रिश्वतें लेते और जिस से ज्यादा मुट्ठी गर्म होती, उसी का साथ देते थे। जमादार को आठ ही रुपए माहवार मिलते थे। वह एक पक्का गंजेड़ी और खूंखार आदमी था। आसामियों को सताने और जुर्म क़ुबूल कराने तथा रिश्वतें वसूल करने में बेजोड़ था। नाम उसका शम्भू था। क़िस्से सुनाने और गप्पें हाँकने में एक था। वह बड़ा भारी फ़ुज़ूल खर्च था। जो मिलता नशे-पानी में खर्च कर देता था। वैसे पक्का बदमाश आदमी था। कोई काम ऐसा न था जिसे वह बिना भले-बुरे का विचार किए कर न डालता हो। अपना काम वह बहुत खूबी से कर लेता था। खास कर जब उसे रिश्वत की अच्छी रक़म मिलने की आशा होती थी। उसकी संगदिली का यह हाल था कि जिस कमरे में मुलज़िम पर हद दर्जे का जुल्म हो रहा हो—वह आराम से गहरी नींद सोता रहता था।

नजीरअली जब मेरठ थाने में पहली बार थानेदार बन कर आए, तो उन के ठाठ देखने के क़ाबिल थे। कचहरी में तो वे योंही मटरगश्त लगाया करते थे—लेकिन थानेदार होने पर तो उन्हें थानेदारी की शान से ही थाने में आना लाज़िम था। बस्ती में घुसते ही उन्होंने एक पालकी किराए की और उस पर खुद सवार हुए। उसके दोनों लफ़ंगे दोस्त दो टट्टुओं पर सवार हुए, जो चार-चार आने में शाम तक के लिए किराए पर भटियारे से ले लिए गए थे। इसके अलावा पन्द्रह-बीस सिपाही उस ने पहले ही कचहरी में जुटा लिए थे। इस ठाठ से जब वह थाने में दाखिल हुआ तो देखने वाले हैरत में आ कर कहने लगे--'देखो, देखो, साहब मजिस्ट्रेट जा रहे हैं।' थाने में पहुँचते ही एक बरकंदाज एक कुर्सी उठा लाया। जिस का एक बाजू टूटा हुआ था, और तीन-चार सिपाही उसकी धूल झाड़ने लगे। जब थानेदार साहब कुर्सी पर रौनक़-अफ़रोज हो गए तो सब से पहले थाने के जिस आदमी से उनका वास्ता पड़ा--वह शम्भू था। उसने सामने आ कर और 'हुजूर' कह कर उसे सलाम किया। यह पहला ही अवसर था जब नजीरअली ने अपने लिए हुजूर का शब्द इस्तेमाल होते हुए सुना था।

थानेदार खुशी से फूल उठे। उन्होंने कहा—"तुम्हारा नाम क्या है, और तुम यहाँ किस ओहदे पर हो?"

"नाम तो खुदा का है खुदावन्द, मगर लोग मुझे शम्भू कहते हैं। और मैं यहाँ बीस साल से जमादार हूँ।"

"तब तो काफ़ी तजुर्बेकार हो। क्या तुम डकैत पकड़ सकते हैं?"

"हुजूर कहें तो शेर की आँखें निकाल लूं?"

"बहुत क़ाबिल आदमो हो, उम्मीद है कम्पनी बहादुर का काम तुम उम्दा तौर पर अंजाम दोगे।"

"हुज़ूर, मैं उस जालिम बुढ़िया को बखूबी जानता हूँ। मगर वह मुझ पर बहुत खुश है।"

"कौन जालिमं बुढ़िया?"

"यही कम्पनी, वह इस मेरी लाठी के बराबर लम्बी है। जालिम इतनी है जैसी आग। बस बड़े लाट साहब को हुक्म देती रहती है कि मारो, काटो। उससे बड़े लाट भी काँपते हैं। मगर हुजूर, मुझ पर बुढ़िया मेहरबान है।" उसने कपड़ों से निकाल कर एक सर्टिफ़िकेट पेश किया जो किसी डकैती का पता लगाने पर बड़े साहब ने उसे दिया था। जिस में लिखा था—कि कम्पनी की सरकार तुम से खुश है।

मगर थानेदार साहब ने उस सर्टिफ़िकेट को पढ़ सकते थे--न यही जानते थे कि कम्पनी कोई बुढ़िया है या कौन है। परन्तु वे अपनी अयोग्यता भी प्रकट नहीं कर सकते थे। उन्होंने सिर्फ़ इतना कहा—"तब तो तुम बड़े काम के आदमी हो।"

"क्या तुम 'कानी-हौस' के जुर्माना की आमदनी खुद ही रख लेते हो?"

"हुजूर, यह तो मेरा हक़ है। जब मैं उन जानवरों का गोश्त खा सकता हूँ तो इस आमदनी में क्या हर्ज है?"

"ख़ैर, तो मैं तुम से इस बारे में मश्वरा करना चाहता हूँ कि नए थानेदार के क्या-क्या हक़ होते हैं?"

"यह तो हुज़ूर, मामूली बात है कि हर गाँव के चौकीदार हुजूर के रूबरू पेश हों और एक-एक रुपया नज़र करें।"

"सिर्फ़ एक-एक रुपया?"

"हुजूर, इस पेश-आमदनी को हक़ीर न समझिए। थाना मेरठ में बारह सौ मौजे हैं। हर मौजे का एक-एक चौकीदार है। हुजूर की यह अव्वल याफ्त बारह सौ की थैली होगी।"

"ख़ैर, यह तो हुई अव्वल याफ्त। इसके बाद?"

"इसके बाद हुज़ूर, थाना है और हम-आप हैं। नित नए शिकार आते हैं। नित नए गुल खिलते हैं। बस आप बिसमिल्लाह तो कीजिए।"

नील की कोठी वाले साहब लोग अपने हलक़े के थानेदार को पैदावार पर एक रुपया फ़ी मन देते थे, यह बँधा हुआ दस्तूर था। दूसरे ज़मींदार दुर्गा पूजा पर, दिवाली पर कोई सौ और कोई पचास रुपये देता

था। यह रिश्वत इस लिए थी—कि यदि दोनों फ़रीक़ों में फ़ौजदारी हो जाय, जैसा कि आए दिन होती ही रहती थी, और उसकी तहक़ीक़ात थानेदार करे तो उसके लिए उसे अलग रिश्वत न देनी पड़े। इस लिए ऐसे मामलों में थानेदार की कोई दिलचस्पी न होती थी। क्योंकि वहाँ आमदनी की कोई उम्मीद न होती थी—इस लिए वारदात छोटी हो या बड़ी, थानेदार वहाँ, खुद आने का कष्ट करता ही न था, अपने बख्शी या जमादार को तैनात कर देता था। जो अपनी छोटी-मोटी रक़में अलग झाड़ लेते थे।

जमादार शम्भू ने यह बात थानेदार को समझा दी। और साथ ही यह भी कहा—"कि इस इलाक़े में दो आदमी खास तौर पर शोरेपुश्त हैं। एक चौधरी साँवलसिंह और दूसरा सिकन्दर साहब नीलवाला गोरा। ये दोनों एक-दूसरे के जानी दुश्मन हैं। और दोनों के लठैत हर वक्त लड़ने-मरने को तैयार रहते हैं। तथा दोनों ही थानेदार को खुश रखने में कोई कोर-कसर नहीं रखते। इस लिए इनका खास ख्याल रखा जाय। ये दोनों मोटी मुर्ग़ियाँ हमारी खास आसामी हैं।"

"लेकिन उन से वसूल भी तो ज़्यादा होना चाहिए।"

"जी हाँ, सिकन्दर साहब हर साल ढाई सौ देता है। और साँवलसिंह भी इतने ही देता है।"

मगर, वक्त पर हम और भी वसूल लेते हैं।

"लेकिन हम दोनों का फ़ायदा किस तरह कर सकते हैं?"

"बहुत मामूली बात है। दोनों में महीना-बीस दिन में फसाद-फ़ौजदारी होती ही रहती है। हम लोग अब तक जैसा करते आए हैं वैसा ही अब भी करेंगे।"

"वह क्या?"

"अव्वल तो यह, कि जब तर्फ़ैन में झगड़ा होता है—हमारे साथ पेश्तर ही बन्दोबस्त कर लिया जाता है। मगर, कभी-कभी ऐसा नहीं भी होता तो हम तर्फ़ैन को लपेटते हैं। और साहब मैजिस्ट्रेट को इस बात

की सही रिपोर्ट भेजते हैं कि तर्फ़ैन ने वाहम दंगा किया। बस, दोनों को झख मार कर भारी-भारी रिश्वत दे कर अपनी गुलू-खलासी तरकी पड़ती है। जब तक मुक़दमे की तहक़ीक़ात जारी रहती है, हमारा दस्तूर है कि हर्गिज़ खातमे की रिपोर्ट नहीं देते और हमेशा ऐसी तरकीब लगाए रहते हैं, कि जब चाहें जिसे छोड़ दें, और चाहें जिसे फँसा रखें। मुक़दमे को हमेशा खुला रखते हैं कि फ़रीक़ैन से रिश्वतें लेने और रिपोर्ट बनाने की गुंजाइश रहे। जब सब बातें खत्म हो गईं तो हम नोट लिख देते हैं, और जिस फ़रीक़ ने हमारी मुट्ठी गर्म नहीं की होती, उसे मुजरिम क़रार देते हैं। अगर तर्फ़ैन से हमें खुशग़वार भारी रक़में मिल गईं तो हम लोग तहक़ीक़ात को लम्बी करके मुक़दमे को अटका देते हैं, जिस से फ़रीक़ गवाहों को अच्छी तरह दुरुस्त करके पक्का कर ले।"

"बहुत उम्दा तरकीब है, लेकिन देखो भई, हमारे और तुम्हारे बीच रिश्वत के हिस्से का भी फ़ैसला हो जाना चाहिए।"

"वह तो हुज़ूर, बँधा दस्तूर है। हमेशा पाँचवाँ हिस्सा हम सब दर्मियानियों को मिलता है।"

"तो यही सही। मैं भी कोई छोटे दिल का थानेदार नहीं हूँ।"

"तो हुज़ूर के हाथ-पैर तो हमीं हैं। चैन की बँसी बजाइए। और हमारी कारीगरी देखिए।"

"ख़ैर, तो तसल्ली हुई।"

दोनों अफ़सरों ने एक-दूसरे को आँखों से अच्छी तरह टटोला और इस तरह मियाँ नज़ीरअली की थानेदारी का आरम्भ हुआ।

: २० :

चोरी और सीनाज़ोरी

ग्रे साहब सिकन्दर साहब का रिश्तेदार भी था और कारकुन भी। वह बड़ा शोरेपुश्त बदमाश और पक्का बदज़ात आदमी था। वह एक दोग़ला किरानी था। उसकी बहन से कुछ दिन सिकन्दर साहब की

ग्राशनाई रही थी। उसकी वह बहन तो कहीं भाग गई परन्तु ये अभी तक सिकन्दर से नत्थी था। था वह बड़े काम का आदमी। अच्छा-बुरा कोई भी काम वह मजे में कर सकता था। इसी से सिकन्दर उसे खूब मानता था।

यद्यपि उसने सिकन्दर के कहने से यह भयंकर काम किया था, पर इसका कोई खौफ़ उसे न था। वह फौरन सिकन्दर के पास जा पहुँचा, जो बेसब्री से उसकी इंतज़ार कर रहा था। दोनों ने सलाह की और फिर वह घोड़े पर सवार हो सीधा मेरठ के थाने में पहुँचा और यह रपट लिखाई कि मैं सिकन्दर साहब की नील की कोठी के छह सात खलासियों और अमीन के साथ अपने नील के खेतों की ओर जा रहा था कि एकाएक साँवलसिंह के हथियारबन्द आदमियों ने हम लोगों पर हमला किया और हमारे एक नौकर को मार डाला। कइयों को संगीन चोटें लगी हैं। दुश्मन उसका सिर काट ले गए हैं।

नज़ीरअली के मेरठ थाने पर आने के एक हफ़्ते बाद ही की क़त्ल की यह संगीन वारदात हुई। उसकी नई थानेदारी में यह पहली ही संगीन वारदात थी। वह कुछ भी निर्णय न कर सका कि क्या किया जाय। रपट लिखाने वाला अंग्रेज़ साहब बहादुर था। उसका भी रुआब था। उसने कनखियों से जमादार शम्भू की ओर देखा। जो इस वक्त नीचा सिर किए चुपचाप मुस्करा रहा था। उसने जमादार का अभिप्राय भाँप लिया और यह हुक्म दे कर कि जमादार साहब ज़ाप्ते की कार्रवाई करें, वहाँ से ज़रूरी कारे-सरकार के लिए उठ गया।

थोड़ी देर बाद उसने शम्भू को अपने पास बुलवा कर पूछा—

"अब इस मामले में क्या करना होगा?"

"हुज़ूर, तेल देखिए तेल की धार देखिए।"

"लेकिन क़त्ल का मामला है?"

"क़त्ल पर ही क्या मौकूफ है, डाका भी हो सकता है, और भी कुछ हो सकता है।"

"लेकिन तुम ने यह कैसे जाना ?"

"अब सब जान लिया जायगा । दूसरे फ़रीक को भी तो आने दीजिए ।"

"खैर, तो इस फिरंगी को तुम जानते हो ?"

"बखूबी जानता हूँ । पक्का बज्ज़ात है ।"

"क्या इसका मुकद्दमा सच्चा है ?"

"बिल्कुल झूठ ।"

"तुम ने कैसे जाना ?"

"सुना नहीं आप ने वह कहता है कि जो आदमी मारा गया है, उसका सिर भी वे काट ले गए हैं ।"

"हाँ, हाँ, यह तो उसने कहा था ।"

"बस, इसी से मैं पूरी हक़ीकत समझ गया ।"

"कैसी हक़ीकत ?"

"कि रपट एकदम झूठ है ।"

"मगर इसका सबूत ?"

"सबूत वही सिर-कटी लाश । असल बात यह है कि इन लोगों का बंधा दस्तूर है कि जब ऐसी संगीन वारदात होती है और कोई खून हो जाता है, तो ये लोग उसका सिर काट कर ग़ायब कर देते हैं । अब फक्त धड़ से आदमी की यह शनाख्त होनी मुश्किल होती है कि मरा हुआ आदमी किस तरफ़ का है ।"

"लेकिन खून तो हुआ ।"

"ज़रूर हुआ ।"

"तब ?"

"हमारी पाँचों घी में । अब दोनों फरीक कस्में खा-खा कर उसे अपना आदमी बताएँगे और हमें दोनों को अच्छी तरह निचोड़ने का

मौका मिलेगा । लीजिए, तैयार हो जाइए, पहली बोहनी है ।"

"क्या हमें अभी जाये-माज़रे पर जाना होगा ?"

"अभी नहीं । फरीक दोयम को आने दीजिए ।"

"और अगर वह नहीं आया ?"

"ज़रूर आयगा हुज़ूर, ग़ालिबन आदमी उसी का मरा है ।"

"और अगर फिर कोई फसाद हुआ ?"

"तो और भी अच्छा है । हमें और भी गहरा हाथ मारने का अवसर मिलेगा ।"

"लेकिन, इस मामले की अभी ताबड़तोड़ तफतीश की जाय तो कैसा ?"

"हुज़ूर, कच्चा फोड़ा चीरने से कोई फायदा नहीं । उल्टा नुकसान है ।"

"लेकिन फसाद को रोकना भी तो हमारा फर्ज है ।"

"सरासर बेवकूफी की बात है । अगर हम दंगे-फ़सादों की रोकथाम करें, राहज़नी, डकैतियां और इसी किस्म की बदज़ातियां न होने दें तो हम भूखों न मर जांय । बस, लड़ाई खत्म होने के बाद ही हम लोगों के जाने और गहरा हाथ मारने का ठीक वक्त होता है । हमारे बड़े साहब बहादुर का भी यही रवैया है । जब उनके पास किसी हंगामे की रपट पहुँचती है तो वे हमेशा यही कहते हैं कि अच्छा, लड़ने दो, हम दोनों को सज़ा देगा ।"

"खैर, तो तुम जानो ।"

"आप इत्मीनान से आराम फर्माइए । अभी मैंने इस मूजी को टरका दिया है और रपट सरसरी दर्ज कर ली है । मैं फरीक दोयम की इन्तजारी कर रहा हूँ । सुबह तक वह न आया तो हम चलेंगे ।"

"अच्छी बात है ।"

दारोगा साहब इत्मीनान से आराम फर्माने चले गए ।

. २१ .

डंके पर चोट

मालती के अपहरण की खबर मुक्तेसर पहुँची। सांवलसिंह सुन कर सक्ते की हालत में रह गया। कुछ देर तक उस के मुँह से बात न फूटी। थोड़ी देर में मीर साहब बेहोशी की हालत में और वह सिर कटी लाश भी मुक्तेसर पहुँच गई। मीर साहब को अस्पताल भेज दिया गया। सांवलसिंह को इस वक्त मालती का सदमा था। आज से पहले वह नहीं जानता था कि उसे अपनी बेटी से इतना प्रेम है। वह आँखें फाड़-फाड़ कर चारों तरफ लोगों की भीड़ को देख रहा था, जो उसके चारों ओर इकट्ठे हो रहे थे। इस वक्त सभी का गुस्से और दुःख से बुरा हाल हो रहा था। अभी पहर दिन ही चढ़ा था, और सांवलसिंह वफरे हुए शेर की तरह इधर से उधर घूमता हुआ ठण्डी सांसें ले रहा था कि थानेदार नजीरअली और जमादार शम्भू अपने २५ नजीवों को बन्दूकों से लैस लेकर आ पहुँचे। अब तो सारा गांव वहीं उमड़ आया। सांवलसिंह ने भरे कण्ठ से कहा— "देखते हैं दारोगा साहब, सिकन्दर साहब ने क्या गजब ढाया है। मेरी लड़की को उड़ा ले गया। और मेरे आदमी को जान से मार डाला। मीर साहब को ज़ख्मी किया है। दिन दहाड़े राहज़नी और खून हुआ है। जैसे मुल्क में कम्पनी बहादुर का इक़बाल ही नहीं रहा।"

थानेदार ने जमादार की ओर देखा। शम्भू ने कहा—"चौधरी साहब, यह किस्सा तो मैं यहाँ पहली बार ही सुन रहा हूँ। इस वारदात की कोई रपट तक थाने में दर्ज नहीं है। आप यूँ क्यों नहीं कहते कि आपके लठियलों ने राह चलते नील वाले साहब के आदमियों पर हमला किया, और उनके एक आदमी को मार डाला।"

"क्या खूब, तो यह आदमी जो मरा है उनका आदमी है?"

"तो क्या इसकी शनाख्त हो गई है कि यह कौन है।"

"यह साहब मेरा आदमी है।"

"लेकिन इसका सुबूत ?'

"मीर साहब गवाह हैं।"

"वाह, मीर साहब तो इस फसाद की जड़ ही हैं। हमला तो उन्होंने किया है। उनकी क्या गवाही।"

"तो क्या आप के पास कोई सुबूत है कि यह उनका आदमी था ?"

इतनी देर जमादार बहस कर रहा था, अब थानेदार को भी साहस हुआ, उसने कहा—"अजी साहब, इस का सिर कहाँ है, सिर ?"

"यह मैं क्या जानूं।"

"तो लाश जब आपके कब्ज़े से बरामद हुई है तब सिर भी आप ही ने छिपाया है। जिससे आप दूसरों पर इल्जाम लगा सकें।"

"तो क्या मेरी लड़की पर डाका नहीं पड़ा ? मेरी लड़की नील वाले साहब ने नहीं उड़ाई ?"

"कहा तो, इस की तो कोई रपट पुलिस में नहीं है। यह नई कहानी तो मैं इसी वक्त पहली बार आप के मुँह से सुन रहा हूँ।"

"यह तो अजब अन्धेर है।"

"अच्छा, तो आप कम्पनी बहादुर के नमकख्वार अफसरों पर भी तोहमत लगाते हैं, और कारे-सरकार में हारिज होते हैं ?"

सांवलसिंह इस समय दुःख से दबा जा रहा था। वह थानेदार की इन बातों को पी गया। और आँखों में आंसू भर कर बोला—"थानेदार साहब, मेरा दिल फट गया है। आप मेरी बेटी का पता लगाइए। बदमाशों को पकड़िए। मैं आप को खुश कर दूंगा।"

"लेकिन साहब मुकदमा तो सिर्फ क़त्ल का और बदअमनी का है। जिस की रपट थाने में दर्ज है।"

"मैं आप को खुश कर दूंगा थानेदार साहब ?"

"फ़रीक़ वालों ने भी मुझ से यही कहा था। पर मैंने इन्कार कर दिया।"

"तो आप मेरी मदद न करेंगे ?"

"लाश आपके क़ब्जे से बरामद हुई है, यह आपके हक़ में बुरा हुआ। आपको अपना मुकदमा पक्का बनाना था तो आप को लाजिम था कि लाश थाने में भेज देते और खातिरख्वाह रपट थाने में दर्ज करते। लाश को अपने घर लाकर आपने अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार लीं। अब तो नील वाले साहव ने आप पर खून का मुकदमा दर्ज किया है।"

"तो अब आप क्या चाहते हैं। और यहाँ किस इरादे से तशरीफ लाए हैं?"

'आपको गिरफ्तार करने के लिए। बेहतर है, कि आप चुपचाप हमारे ताबे हो जाएं और थाने चले चलें। दंगा फसाद न करें।"

"और मेरी लडकी?"

"अब इस क़िस्से को छोड़िए।"

"अच्छा, यह बात है?" उसने जलती नज़र से थानेदार को देखा। उस का दु:खदर्द एकदम ग़ायब हो गया। और खून की एक-एक बूंद आग का अंगार बन गई। उसने अपने पास खड़े लठियलों के सरदार तिलक की ओर देखकर कहा—"तिलक, डंके पर चोट कर।"

और डंके पर चोर पड़ते ही बादल की सी गर्ज दूर-दूर जंगलों, खेतों में गूंज उठी। सांवलसिंह लपक कर दुनाली उठा लाया। तिलक ने लठियलों को ललकारा। डंके की आवाज सुन कर चारों ओर से लठियल लाठियां ले लेकर घिर आए। नौजवान थानेदार के होश उड़ गए। पर शम्भू ने अपने बन्दूकची नजीवों को ललकारा पर उनके पास तोड़ेदार बन्दूकें थीं। जब तक वे सम्हलें और बन्दूकों में गज डालें, लठियलों ने उन्हें ऐसा गाँस लिया कि बन्दूक चलाना असम्भव हो गया। उसी वक्त सांवलसिंह ने थानेदार की छाती पर बन्दूक की नाल रख कर कहा—'अगर एक भी गोली चली तो तेरी जान की खैर नहीं है थानेदार।"

थानेदार ने कहा—"जमादार, गोली मत चलाना।" नजीव घबरा गए थे। इस वक्त लाठियां उन पर छा रहीं थीं।

सांवलसिंह ने कहा—"सब की बन्दूक छीन लो। और लात मार कर गांव से निकाल बाहर करो इन हरामज़ादों को।'

नवयुवक थानेदार बेंत से पीटे हुए कुत्ते की भाँति चुपचाप बन्दूकें छिनवा कर अपने साथियों समेत वहां से भागा। उस पर सांवलसिंह का ऐसा रुग्राव ग़ालिब हुआ कि उसने पीछे फिर कर भी न देखा। बस थाने में आकर ही सांस ली।

: २२ :

एक और हंगामा

थानेदार ने थाने में लौट कर साहब कलक्टर के पास विस्तृत रिपोर्ट भेजी। वारदात बहुत संगीन थी। थानेदार और उसके सिपाहियों के हथियार छीन लिए गए थे। साहब कलक्टर ही उन दिनों मैजिस्ट्रेट भी थे। ये वही फाल्कन साहब थे जिन की पुतली ने चाबुक से मरम्मत की की थी। अब अपने पुराने दुश्मन से बदला लेने का सुयोग देख वे कुर्सी से उछल पड़े। वे घोड़े पर सवार हो थाने पर आ धमके। और थानेदार को हुक्म दिया—जिस कदर आदमी जमा किए जा सकते हों—जमा किए जाएँ। तमाम दिन तैयारियाँ होती रहीं, और पहर रात गए मुक्तेसर पर कूच बोल दिया गया। मुक्तेसर में भी मोर्चे की पूरी तैयारी थी। सरदार की जवान लड़की का अपहरण साधारण घटना न थी। साथ ही कत्ल और डाकेज़नी? तिस पर तुर्रा यह—कि उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। मुक्तेसर में बड़ा जोश था। और आस-पास गाँव के कोई पाँच-सौ लठियल जवान हथियारों से लैस जमा हो गए थे। जिन में से बहुतों के पास बन्दूकें और सुकियाँ भी थीं। इन लठैतों में ज़िले भर के डाकू-चोर और जेल से भागे हुए शोरेपुश्त बदमाश भी शरीक थे, जिन्होंने साँवलसिंह की शरण ली थी। उनमें ऐसे मुजरिम बहुत थे, जो यदि पकड़े जाते तो सात से बारह साल तक की जेल काटनी पड़ती।

कलक्टर साहब बहादुर को अपनी और दुश्मन की ताक़त का सही

अन्दाज़ा न था। उन दिनों मैजिस्ट्रेट और कलक्टर का बहुत रुआब था। परन्तु इस वक्त लठियल—'रण-मुख' बने हुए थे। और वे निहायत खतरनाक नज़र आते थे। इज्ज़त का सवाल था। लठियलों के बीच उन के सरदार की लड़की भगाली गई थी। और उनके साथियों को बेइज्ज़ती के साथ भागना पड़ा था। दुर्भाग्य से साहब बहादुर जैसे कमसिन और नातजुर्बेकार थे—उससे अधिक थानेदार था। वरना वे ऐसी जोखिम कभी न उठाते।

यहाँ आ कर जब उन्होंने पांच सौ लठियलों का हथियारबन्द गिरोह देखा तो उनका कलेजा दहल गया। उनके साथ भीड़-भाड़ ज़्यादा थी, जो रातो-रात इकट्ठी कर ली गई थी। उनके पास जंग लगी हुई पुरानी तलवारें थीं। जिन का इस्तेमाल तक वे लोग नहीं जानते थे। पर चूंकि साहब बहादुर उनके साथ थे, थानेदार ने अपनी जवाँमर्दी दिखाने का अच्छा मौका समझा—उन्होंने आगे बढ़ कर लठियलों को ललकारा और कहा—"कम्पनी बहादुर के नाम पर खड़े रहो—आगे न बढ़ो।"

लठियलों पर भी कलक्टर साहब का रुआब ग़ालिब था। कुछ उनमें से पीछे को भागे। इस पर जोश में आ कर साहबबहादुर ने भी उनके पीछे घोड़ा फेंका। थानेदार और उसके साथी भी दौड़ चले। भागते-भागते लठियल गंगा की धार तक पहुँच गए। यहाँ घाट भी था तथा नदी में पानी कम था। नदी का घाट दो सौ गज़ से ज़्यादा न था। लठियल नदी में घुस गए और तैर कर पार होने लगे। उसी समय कलक्टर साहेब भी घोड़ा दौड़ाते वहीं पहुँच गए। घाट पर सिर्फ एक छोटी किश्ती थी। साहब ने घोड़े पर खड़े ही खड़े हुक्म दिया—किश्ती लेकर लठियलों का पीछा करो और उन्हें गिरफ़्तार करो। पर यह हुक्म सरासर मूर्खता पूर्ण था। क्योंकि किश्ती में दस-बारह से ज़्यादा आदमी नहीं आ सकते थे। थानेदार दस-बारह बरकंदाज़ों को ले कर—'पकड़ो-पकड़ो' करता हुआ किश्ती में बैठ कर चला। यह देख लठियल घूम कर खड़े हो गए। और 'काट डालो सरऊ को' कहते हुए किश्ती पर टूट पड़े।

कम्पनी बहादुर का इकबाल क्षण भर में जाता रहा। उन्होंने दारोग़ा को किश्ती से खींच कर पानी में डाल लिया। बरकंदाज़ किश्ती खे कर गहरे पानी में ठेल ले गए—और उलटे पैर भागे। पर लठियल दारोग़ा को उछाले में ले गए। जब दारोग़ा ने देखा कि वह अकेला रह गया, उसने पानी में से भागने की कोशिश की—पर डूबने के डर से कमर-कमर पानी में आ कर खड़ा हो गया। और थर-थर काँपने लगा। लठियलों ने उसे चारों ओर से घेर कर बर्छियों से छेद डाला। वह दोनों हाथ उठा कर 'रहम-रहम' चिल्लाया पर इसी समय एक दुहत्थड़ लठ उसके सिर पर ऐसा पड़ा कि उसका भेजा निकल पड़ा। अब बहुत से लठियल उसे खींच कर उस पार पानी से बाहर घसीट ले गए। अभी उस की जान बाकी थी—वह सिसक रहा था। पर और दो-चार चोटें उस पर पड़ीं। कलक्टर साहब बहादुर ने जो यह नज़ारा देखा तो पत्तातोड़ भाग खड़े हुए। लठियल दारोग़ा की लाश को घसीटते हुए खेतों में ले गए। वे सब मारे जोश के उछल-कूद रहे थे और साहब बहादुर को गालियाँ दे रहे थे। बहुत लोग थानेदार की लाश पर अब भी लात चला रहे थे।

अब उन सब ने मिल कर सलाह की। इस गिरोह में बड़े-बड़े डकैत खूनी मुजरिम थे। एक ने कहा—

"बड़ा संगीन जुर्म हो गया। साहब बहादुर की आँखों के सामने थानेदार का क़त्ल हो गया।" दूसरे ने कहा—

"तो क्या हुआ। कोई उसके इजलास में तो मुकदमा पेश होगा नहीं।"

'फिर ऐसा भी मुकदमा खड़ा किया जा सकता है—जिस में साहब बहादुर ही मुद्दाअला हों।"

"तीसरे ने कहा—"ये हुज्जत तो पीछे होती रहेगी। पहले लाश को रफ़ा-दफ़ा किया जाय। क्योंकि अगर लाश पेश हो जायगी तो नतीजा

खराब होगा। लाश का ही पता न लगा तो मुकदमा ही कमज़ोर हो जायगा।"

"ठीक कहते हो। बस, तहकीकात के वक्त हुक्काम लाश न पेश कर सकें।"

इस पर दो-चार बोले—"अजी क्या परवा है। ऐसी दिलेरी का काम किसी लठियल ने नहीं किया होगा। लाश को थाने में ले जा कर फेंक दो—जिस से पुलिस वालों के भी कान खड़े हो जाएँ और वे जोरो-जुल्म से बाज़ आएँ।"

ग़रज़, जितने मुँह उतनी ही बातें। आखिर वे लाश को खींचते हुए खेतों और पटरियों पर से ढाई कोस तक ले गए। इस वक्त गाँव-देहात के लोग उन्हें देखते ही दूर भाग रहे थे। लठियलों का यह हाल था कि सामने जानदार या बेजान, जो चीज आती—बर्छियों से बींधते जाते थे। जंगल में आ कर उन्होंने लाश के दो टुकड़े कर डाले। कुछ हिस्सा कुत्तों को खिला दिया। बाक़ी जला डाला। और वे सब भाग कर इधर-उधर रूपोश हो गए।

साहब बहादुर ने कई थानों की पुलिस थानेदार की लाश को बरामद करने और पता लगाने भेजी। इस काम में सब से पहला हाथ मारा शम्भू जमादार ने, जो अब मेरठ की थानेदारी पर बहाल हो गया था। उसे थानेदार की लाश को तलाश करने से क्या वास्ता था। वह इस सिरदर्द में काहे को नाहक तकलीफ उठाता, कि किस ने थानेदार को मारा और लाश क्या हुई। उसका दृष्टिकोण तो रुपया वसूल करना था और उसने एक मुस्तैद आदमियों का गिरोह ले कर अपना काम सरगर्मी से करना शुरू किया। वह जानता था कि अब लठैत उसके हाथ में हर्गिज नहीं आएँगे, क्योंकि वे सब जमींदोज़ हो चुके थे। वह हर ऐसे मकान में जा धमका, जहाँ से कुछ प्राप्त होने की आशा थी, और हर ऐसे आदमी की पकड़-धकड़ की, जिससे कुछ वसूल हो सकता था। उसने किसी शरीफ आदमी को नहीं छोड़ा और उस पर रुपयों की बारिश होने

लगी। दोनों हाथों से उसने रुपया बटोरा और जब दूसरे दारोग़ा लोग पहुँचे तो उन्होंने गाँवों को उजड़ा हुआ पाया। गाँव में एक भी आदमी न था।

: २३ :

जंट साहब का इजलास

मेरठ के ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट मिस्टर पेस्टन आसपास के हल्के में 'जंट साब' के नाम से प्रसिद्ध थे। अपने स्वीट होम में ये बैरिस्टर थे। बैरिस्टरी वहाँ चली नहीं तो आप स्वीट होम के ब्रादर लोगों पर सख्त नाराज़ हो गए। उसका ख्याल था कि वहाँ कद्रदान आदमी नहीं हैं। प्रायः जज लोग भी उसके खिलाफ ही मुकदमा फैसल किया करते थे, आप के ख्याल में उनमें कानूनी ज्ञान की कमी थी। अब आप शौकिया ईस्ट इण्डिया कम्पनी की नौकरी में आ गए थे, और कुछ दिन कलकत्ते रह कर मेरठ के 'जंट साहब' बन गए थे। हिन्दुस्तान में आए आप को दस बरस हो गए थे। इजलास में जब नेटिव वकील बहस करते थे तो आप आँख बन्द कर के बहस सुनते थे। आप साक्षात् न्यायमूर्ति थे और फाँसी की सज़ा सुनाने में खास माहिर थे। आप लोगों से बहुत कम मिलते-जुलते थे। हिन्दुस्तान में आप ने जितने आदमियों को फाँसी की सजा दी थी, उनकी ठीक गिनती वे जानते थे और दोस्तों को बड़े फ़ख्र से सुनाया करते थे। स्वीट होम जाने का अब आप का इरादा न था। जब कभी आप की मेम साहब स्वीट होम की चर्चा करती तो आप उसे डाँट देते— चुप रहो डार्लिंग, उस सर्द मुल्क में रखा ही क्या है। यहाँ इज्ज़त कितनी है। सब हम को हुजूर कहते हैं, वहाँ तो कोई पूछता भी न था।

उन दिनों की अदालतें आज के जैसी न थीं। रिश्वतखोरी एक आम बात थी। बिना रिश्वत कोई काम अदालत में होता ही न था। इस काम से मुश्किल से ज्वाइन्ट मैजिस्ट्रेट को बरी किया जा सकता था। आम तौर पर सब लोग जानते थे कि बिना रिश्वत दिए अदालत में वे

मुकदमा जीत ही नहीं सकते। उन दिनों मुकदमे कुछ कानून की रू से नहीं फैसल होते थे। क्योंकि उन दिनों तक ताज़ीरात हिन्द तो बनी ही न थी। बहुधा दौरे के मुकदमे में एक मौलवी कानूनी अफसर की तरह मुजरिम के क़सूरवार होने न होने का फ़तवा दिया करता था। जो हकीकत में खुशामदी, लालची और पक्का रिश्वतखोर होता था। जंट साहब अदालत के काम में बहुत कम दिलचस्पी लेते थे। काम उनके पास बहुत रहता था। मुकदमात में जंट साहब बहादुर की तबियत ही नहीं लगती थी। इसलिए वह उन्हें शुरू से आखिर तक देखते ही न थे।

मैजिस्ट्रेट उन दिनों बहुत कम थे। कचहरी का तरीका यह होता था कि मुहर्रिर फरीकैन के इज़हार लिखा करते थे, जो अदालत के एक कोने में बैठे रहते थे। फी इज़हार एक रुपया उनका हक था। इस रिश्वत को आम तौर पर हक माना जाता था। हक देने वाले को सहूलियत यह थी कि उसके गवाहों का इज़हार बिना किसी झंझट के ठीक उतर जाता और वे अपना झूठा-सच्चा किस्सा बखूबी बयान कर जाते थे। मुहर्रिर पहले ही मुकदमे को समझ लेता था। जब गवाह नाम, सकूनत और उम्र बयान कर जाता तो वह बैठा-बैठा भुन-भुनाया करता। उसकी बक-झक से मुहर्रिर को सरोकार न था—मुहर्रिर अपना हक पा कर अपने ढंग पर इज़हार पढ़ कर सुनाता। उस फारसी मिश्रित अग़लम-बग़लम भाषा में लिखे इज़हार को न मैजिस्ट्रेट साहब बहादुर समझते थे, न गवाह। लेकिन जब गवाह से पूछा जाता, यह तुम्हारा इज़हार है—तो वह कहता, हाँ हुज़ूर। बस छुट्टी हुई। उसके सिर हिलाने को स्वीकृति सूचक समझ कर साहब बहादुर भी संतुष्ट हो जाते थे। गवाह यदि मुद्दई का हुआ तो मुद्दाअला उसे अदालत में देख भी न पाता था, न उसे जिरह करने का मौका मिलता था। अब पेशकार साहब बहादुर को बताता था कि अमुक मुकदमा सबूत है, तो साहब बहादुर मुद्दालेह के नाम समन या वारंट काट देते थे। जो अपना जवाब-तहरीरी लगा कर गवाहों के नाम लिखा जाता था। और वे गवाह भी मुद्दई की गैर हाजिरी में एक कोने

में बैठ कर अपने इज़हार लिखा जाते थे। जो मुहर्रिर का हक देने के बाद ठीक उनके अनुकूल होते थे। बस इतने ही पर मुकदमा फैसले के लिए तैयार समझा जाता था। अपने-अपने हिस्से का हक अदा करके तर्फेन के गवाह, अपना-अपना इज़हार अपनी ज़रूरत के अनुसार दे आते थे, जिन से जिरह होती ही न थी। इसके बाद मुकदमा अर्से तक फैसले के लिए पड़ा रहता था। पर मैजिस्ट्रेट न तो यह जानता था कि मुकदमा क्या है, उसकी असलियत क्या है। न वह इज़हार और उसकी भाषा ही समझता था। यह सम्भव ही न था, कि सारे इजहार अनुवाद कर के अंग्रेजी में उसे समझाए जांए। इस के अतिरिक्त न मैजिस्ट्रेटों की इधर कुछ तबियत होती थी न दिलचस्पी। बस, पेस्टन साहब ने एक आसान रीति मुकदमात के फैसले की निकाली थी। वह यह कि जिस दिन उन्हें कोई मुकदमा फैसल करना होता, उन दिन वे बंगले से मिश्री की दो डली कागज में अलग-अलग लपेट कर जेब में डाल कर इजलास पर ले आते थे। एक कागज पर मुद्दई का नाम लिखा होता था, दूसरे पर मुद्दालेह का। ये दोनों डलियां मेज पर रख दी जातीं थीं। मुकदमा पेश होता। पेशकार इज़हार पढ़ता, मुख्तार लोग बहस करते, तो साहब बहादुर बड़े गौर से दोनों डलियों पर नजर रखते थे। बस जिस डली पर पहले मक्खी बैठ गई, उसी फरीक की जीत बहस खतम होते ही हो जाती थी। इसी तरह उन दिनों कम्पनी बहादुर की अदालतों में न्याय होता था। फिर भी लोगों को मुक़दमेबाज़ी का अज़हद शौक था। अंग्रेजों का शौक जुआ और घुड़दौड़ और हिन्दुस्तानियों का शौक मुकदमा। जिस में वे दिल खोल कर रिश्वतें देते, और जितना अधिक खर्च करते उतना ही शान समझते थे। कम्पनी बहादुर की सरकार न रिश्वत की छानबीन करती थी मैजिस्ट्रेटों पर तम्बीह करती थी।

यह संगीन कत्ल का मुक़दमा भी जंट साहब बहादुर मिस्टर पेस्टन के इजलास में पेश हुआ। इसके साथ दूसरे मुकदमें भी पेश हुए। सिकन्दर साहब ने राहज़नी और क़तल का जुर्म साँवलसिंह और उसके आदमियों

पर लगाया। साँवलसिंह ने अपहरण, लूट और कत्ल के संगीन जुर्म सिकन्दर साहब पर लगाए। दोनों ओर से रुपयों की खूब लूट हुई। झूठी-सच्ची गवाहियां हुईं। और अन्त में जंट साहब ने सब मुलज़िमों को कलकत्ते के सुप्रीम कोर्ट में चालान कर दिया। सिकन्दर साहब ने कलकत्ते के मशहूर बैरिस्टर लांगवेलशर्क को मुकर्रिर किया। साँवलसिंह ने दो बैरिस्टर खड़े किए। सिर कटी लाश नहीं शिनाख्त हो सकी। दोनों फरीक उसे अपना-अपना आदमी बयान करते रहे, मगर साबित न कर सके। इसी तरह थानेदार की न लाश मिली, न कातिल के नाम का पता चला। साँवलसिंह और सिकन्दर साहब मौके-वारदात पर हाजिर नहीं साबित हुए। वे बरी हो गए। और सब मुलजिम भी बरी हो गए। किसी के भी खिलाफ़ मुकदमा साबित नहीं हुआ।

: २४ :
मालती की खोज

मुकदमे के झंझट में पूरा एक साल लग गया। साँवलसिंह और सिकन्दर साहब पूरे साल उसी में फंसे रहे। परन्तु मीर साहब ने अस्पताल से आते ही मालती के लिए धरती आसमान एक कर दिया। पर मालती का पता नहीं लगना था, नहीं लगा। मीर साहब ने केवल मालती ही को नहीं तलाश किया—उन्होंने दो बार तो सिकन्दर साहब की नील की कोठी में आग लगवा दी, चार बार उसके घर पर डाका डलवाया। तीन आदमियों को कत्ल करवा दिया। फिर भी उनका गुस्सा ठण्डा नहीं हुआ। उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि सिकन्दर के घर की एक-एक औरत को तीन-तीन कौड़ी में बेचूंगा। मालती की तलाश और सिकन्दर की बर्बादी की नित नई योजनाएँ बनतीं, परन्तु मालती की तलाश की सारी ही कोशिशें बेकार हुईं। जितनी ही उन्हें असफलता होती थी, उतना ही उनका गुस्सा तेज होता जाना था। अब कलकत्ते से निबट कर सिकन्दर साहब भी आ गए और साँवलसिंह भी। सांवलसिंह मुकदमे की नाकामयाबी से भी तलमला

रहा था। अब उस ने सिकन्दर साहब को कत्ल कर देने ही का इरादा पुख्ता कर लिया। परन्तु सिकन्दर भी कच्ची गोली नहीं खेला था। वह भी सब तरह चाक-चौबंद और हरवे-हथियार से लैस रहता था। मीर साहब का सब से ज्यादा गुस्सा ग्रे साहब पर था। पर ग्रे साहब का कहीं पता ही न लगता था। न जाने वह मालती को कहाँ उड़ा ले गया था।

पिलखुए वाली सिकन्दर की कोठी अब बर्बाद हो चुकी थी, और सिकन्दर वहाँ आ कर खतरे में पड़ना नहीं चाहता था। क्योंकि वह इलाका साँवलसिंह के लठियलों ने घेर रखा था। हफ्तों और महीनों उधर न तो सिकन्दर ही की सूरत देखी जाती थी, न उसका कोई कारिन्दा ही उधर आता था। कोठी वीरान पड़ी हुई थी। अब सब प्रकार निरुपाय हो मीर साहब ने मालती की तलाश का अंतिम प्रयास किया। वे फ़कीर का बाना पहन घर से निकल खड़े हुए। साँवलसिंह ने बहुत समझाया पर वे न माने, चल ही दिए।

फ़कीर के वेश में वे सिकन्दराबाद और विलासपुर के चारों ओर चक्कर लगाने लगे। उनकी हालत एक पागल आदमी के समान हो रही थी और कुछ वे जानबूझ कर भी विक्षिप्त बन गए थे। काफी दिन तक वे विलासपुर के इधर-उधर भटकते रहे। उन्हें इतना मालूम हो गया कि बीच-बीच में सिकन्दर साहब कहीं ग़ायब हो जाता है। वह कहाँ जाता है, वे इसी जुस्तजू में रहने लगे। इसी समय अकस्मात् सिकन्दराबाद के बाज़ार में उन्होंने ग्रे साहब को देखा। ग्रे मीर साहब को पहचानता न था और इस समय तो उनकी सूरत ही ऐसी हो रही थी कि सिकन्दर भी न पहचान पाता। ग्रे को देखते ही उनकी आँखों में खून उतर आया। परन्तु उन्होंने अपने मन को काबू किया। उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि गर्मी के दिनों में ग्रे साहब गर्म कपड़े खरीद रहा है। उन्होंने चुपचाप ग्रे का पीछा करने का इरादा कर लिया। ग्रे साहब एक-दो दिन विलासपुर में ठहरा, फिर वह घोड़े पर सवार हो कर रात के समय रवाना हुआ। उसके साथ एक खिदमतग़ार टट्टू पर था,

जिस पर ग्रौर भी बहुत-सा सामान लादा हुआ था।

इधर कई दिन से सिकन्दर भी नज़र नहीं आ रहा था। मीर साहब ने बहुत छानबीन की—कि सिकन्दर कहाँ है, पर उसका कुछ भी पता न लगा। अन्ततः मीर साहब भी एक टट्टू पर सवार हो ग्रे साहब के पीछे चले। यह छोटा-सा काफला जब मुरादाबाद पहुँचा तो एक ही सराय में दोनों ने मुकाम किया। इस बीच मीर साहब ने ग्रे साहब के नौकर से मेल-जोल बढ़ा लिया और उससे इतना पता पाया कि ग्रे साहब पहाड़ पर जा रहे हैं।

पहाड़ के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें उन दिनों लोगों में प्रसिद्ध थीं। नैपाल के युद्ध में जो सिपाही अंग्रेज़ी सेना के साथ मिल कर लड़े थे, वे पहाड़ के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कहा करते थे। उन दिनों बहुत कम आदमी पहाड़ पर जाते थे। अंग्रेज़ों ने अवश्य वहाँ अपनी बस्तियाँ बसानी आरम्भ कर दी थीं। ग्रे साहब पहाड़ पर क्यों जा रहा है, इस पर जितना भी मीर साहब विचार करते, वे इसी निर्णय पर पहुंचते, कि हो न हो इन लोगों ने मालती को पहाड़ पर ही रख छोड़ा है। मुरादाबाद से उन्होंने दो कम्बल खरीदे। एक उमदा तमंचा उनके साथ था। अब एक बढ़िया खंजर भी यहाँ से खरीद लिया। ऐसा प्रतीत होता था कि यहाँ ग्रे साहब किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। परन्तु दो दिन ठहरने पर भी कोई नया आदमी उनके पास आता नज़र नहीं आया। हाँ, ग्रे साहब प्रति-दिन प्रातःकाल ही घोड़े पर सवार हो कर कहीं चला जाता था और शाम को लौटता था। दो दिन बाद उसने चलने की तैयारी की। उसने दो टट्टू यहाँ से भाड़े पर लिए। बहुत-सा राशन खरीदा और टट्टुओं पर लाद कर पहर रात रहे चल दिए। मीर साहब भी उनके पीछे-पीछे चले। शाम को इन्होंने काशीपुर मुकाम किया और सुबह भोर ही चल कर वे हल्द्वानी पहुँचे। यहाँ से पहाड़ पर चढ़ना आरम्भ हुआ। मीर साहब के लिए वह पहाड़ की चढ़ाई का पहला ही अवसर था। ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते थे, हवा ठण्डी होती जाती थी। चारों ओर पहाड़,

बीच में बहती हुई पहाड़ी नदी। बड़े-बड़े चीड़ के दरख्त ग्रौर बीच में छोटे-छोटे गाँव, जहाँ सीढ़ीनुमा खेतों पर खुशनुमा हरियाली। यदि मीर साहब को मालती की चिन्ता न होती तो वे बड़ी खुशी से इस पहाड़ी हवा का ग्रानन्द लेते। पर इधर तो उनका ध्यान ही न था। बीच में .ार एक मुकाम करने के बाद वे नैनीताल जा पहुँचे। उन दिनों का नैनीताल ग्राज जैसा न था। ताल तो ऐसा ही था पर उसके चारों ग्रोर की पहाड़ियाँ सुनसान थीं। ग्राज जहाँ नैनीताल की बस्ती है, वहाँ एक छोटी-सी बस्ती थी। बस्ती में किसान लोग रहते थे, जो प्राय: ग़रीब ग्रादमी थे।

ग्रे साहब बस्ती में रात-भर रहा। फिर वह पहाड़ पर ग्रौर ऊपर चढ़ गया। मीर साहब ने घोड़ा बस्ती में ही एक चट्टी पर छोड़ा। जहाँ उन्होंने रात काटी थी ग्रौर पैदल ग्रे का पीछा किया।

नौकर से कोई खास बात नहीं मालूम हुई। क्योंकि वह पहली ही बार पहाड़ पर ग्राया था। इसके ग्रतिरिक्त वह कुछ मूर्ख भी था। मूर्ख होने ही से वह ग्रागे मीर साहब के लिए कारगर ग्रादमी प्रमाणित हुग्रा। कई मील निरन्तर चढ़ने के बाद घाटी का उतार ग्राया, ग्रब रास्ता एक पहाड़ी झरने के साथ-साथ चल रहा था। कहीं-कहीं तो रास्ता बहुत तंग ग्रौर खतरनाक था। परन्तु ज्योंही घाटी का उतार ग्राया, रास्ता सरल हो गया। बीच में एकाध मैदान भी नज़र ग्राता। नीचे झरने का पानी वेग से पत्थरों पर उछलता हुग्रा बहा जा रहा था। वह धीरे-धीरे निकट ग्रा रहा था, ग्रन्ततः एक मोड़ के मुड़ने के बाद ही मीर साहब की नज़र उस गाँव पर पड़ी, जो इस पहाड़ी की तलहटी में नदी के किनारे बसा हुग्रा था। गाँव छोटा था, कुल जमा पन्द्रह-बीस झोंपड़ियाँ किसानों की थीं। गाँव के एक किनारे पर कुछ हट कर एक ऊँची पहाड़ी टेकरी पर एक छोटा सा बंगला था। इस टेकरी के तीन ग्रोर गहरा खड्ड था। एक पतली सी टेढ़ी-मेढ़ी पग- डण्डी गाँव से इस बंगले तक जाती थी। ग्रे साहब का काफला उस बंगले की ग्रोर चला। ग्रौर मीर साहब गाँव के बाहर एक

बड़े से पत्थर के ढोके पर बैठ कर उस ओर देखने लगे।

बंगले में पहुँच कर सारा सामान उतारा गया। घोड़े और टट्टू बांध कर उन्हें घास डाली गई। ग्रे साहब बंगले में घुस गया—फिर वह दिखाई नहीं दिया। नौकर एक पेड़ के नीचे बैठ कर चिलम पीने लगा। बंगले में से एक और नौकर आकर उसके पास आ बैठा।

अब दिन ढलने लगा था। धूप पीली पड़ गई थी। और मीर-साहब ने आज का काम यहीं खत्म करने का इरादा किया। वे नैनीताल लौट चले। जब वे अपनी चट्टी में बैठे तो बहुत थक गए थे। रात काफी जा चुकी थी। वे बिना कुछ खाए-पिए वहीं सो गए।

: २५ :

उद्धार

यों तो अरसे से मीर साहब ने फ़क़ीर का वेश बनाया हुआ था। पर इस बार उन्हों ने अपने रूप को और भी संवारा। अब वे अच्छे ख़ासे साईं बाबा बन गए थे। यद्यपि वे मुसलमान थे—पर हिन्दु लोग मुस्लिम फ़कीरों को भी उन दिनों बहुत मानते थे। वे भोर ही में चल खड़े हुए। उन्हों ने धीरे-धीरे गाँव में प्रवेश किया। और एक मोदी की दूकान पर बैठ कर वे बड़े ध्यान से बंगले की गति विधि देखने लगे। उन्होंने देखा—वही नौकर सामने से आ रहा है। आते ही उसने हंस कर हाथ उठा कर साईं बाबा को सलाम किया। मीर साहब ने कहा—"सूखा सलाभ कैसा करता है—साईं बाबा को खाना भी दे।"

नौकर ने कहा—"चलो साईं, बंगले पर, वहाँ खाना मिलेगा।"

"वहाँ खाना, कौन देगा ?"

"मेम साब है, साईं, बहुत अच्छी है। तुम को खाना देगी।"

"साब, लोगँ नहीं देगा ?"

"साब लोग बंगले पर नहीं हैं। शिकार को गए हैं। शाम तक आएँगे।"

"शिकार पर कौन-कौन गया है ?"

"बड़ा साब ग्रौर छोटा साब, दोनों ।"

"बड़ा साब कौन है ?"

"सिकन्दर साब है ।"

"कौन सिकन्दर ?"

"विलासपुर वाला बड़ा साब ।"

"मेम साब कौन है ?'

"साईं, मेम साब हिन्दू है । वह बड़े साब का छुग्रा नहीं खातीं ।"

"ग्रच्छा ? तो फिर तू मैम साब, कैसे कहता है ?"

"सब मेम साब कहते हैं । वे खाना ग्रलग ग्रपना पकाती हैं । बड़ा साब उन से डरता है ।'

"डरता क्यों है रे ?"

"मेम साब के पास तमंचा है । इससे बड़ा साब दूर-दूर रहता है ।"

"तुझ से मेम साब ने बात की ?"

"नहीं, मैं तो नया ग्रादमी हूँ । मेम साब, बहुत कम बोलती हैं । ग्रपनी कोठरी में भीतर से सांकल चढ़ा कर बैठी रहती हैं ।"

"कोठरी में सांकल चढ़ा कर बैठती हैं तो खाना कैसे देगी बाबा ?"

"ग्राज बड़ा साब घर नहीं है । ग्राज मेम साब बाहर हैं ।"

मीर साहब चलने को उठ खड़े हुए । नौकर ने कुछ सामग्री खरीदी, वह बंगले की ग्रोर लौटा—तो मीर साहब भी दबे पैर पीछे-पीछे चले । बंगले के पास जा कर वे वृक्ष के नीचे बैठ गए ग्रौर कहा—"ला बाबा, खाना भेज ।"

नौकर भीतर गया ग्रौर खाना ले ग्राया । मीर साहब ने कहा—"दूर-दूर, हम खाना मेम साब के हाथ से लेंगे । तेरे हाथ से नहीं ।"

नौकर वापस चला गया । क्षरण भर वाद मालती भोजन का पात्र ले कर बाहर ग्राई । मीर साहब को देखते ही भोजन का पात्र धम से उसके हाथ से छूट गया । ग्रौर उसके मुंह से एक चीख निकल गई । परन्तु इसी समय

मीर साहब ने मुँह पर उँगली रख कर एक संकेत किया। मालती की चीख सुन कर एक दासी और नौकर लोग दौड़ आए। सौभाग्य से वे सभी वहीं के पहाड़ी आदमी थे। इस बीच मालती बहुत सम्हल चुकी थी। उसने डाँट कर नौकर-चाकरों को दूर भगा दिया। और फिर वह स्वयं बंगले के भीतर जा कर दुबारा भोजन ले कर धीरे-धीरे मीर साहब के निकट आई। भोजन उनके सामने रख कर उसने कहा—"इतने दिन में सुध ली दद्दा?"

मीर साहब की आंखों से आँसुओं की धार बह चली। उन्होंने कहा—"खुदा गवाह है एक दिन भी चैन नहीं लिया। धरती-आसमान एक कर दिया। शुक्र है आज मेरी मिहनत कारगर हुई। तू मिल गई। अब मैं इन हरामजादों से निबट लूंगा। तू फिक्र न कर।"

"लेकिन आप अकेले हैं, वे तीन हैं। सिकन्दर और ग्रे साहब के अतिरिक्त एक गुर्खा भी है।"

"और ये नौकर-चाकर?"

"इनकी चिंता नहीं।"

"परन्तु गुर्खा कहाँ है?"

"वह भी उनके साथ ही शिकार पर है।"

"तब तो यही अच्छा अवसर है। हम लोग चल दें। वे लोग शाम से पहले तो लौटेंगे नहीं।"

"और यदि राह में मिल गए?"

"तो मैं देख लूंगा।"

"नहीं दद्दा, वे तीन हैं। पक्के शैतान। हथियार बन्द। आप अकेले हैं, फिर इस समय चल देने से नौकर-चाकर आफत मचा देंगे, शोर करके, नाहक झंझट उठ खड़ा होगा।"

मीर साहब ने आँसू पोंछ कर कहा—"मुसीबत ने तुझे इतना समझदार कर दिया बेटी।"

"मैं अपनी राम-कहानी तो आप को फुर्सत में सुनाऊँगी। पर अब

मैं इन दुष्टों से बिल्कुल भी नहीं डरती। वे मेरा कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते।"

"तब तेरी समझ से हमें क्या करना चाहिए ?"

"परसों मंगलवार है। मैं हर मंगल को व्रत करती हूँ और नैनादेवी के दर्शन को नैनीताल जाती हूँ। मन्दिर तो तुम ने देखा होगा ?"

"नहीं, मैंने तो नहीं देखा।"

"नैनीताल के किनारे ही पर है। वहाँ से थोड़ी ही दूर दक्खिन की ओर टेकरी पर दो-तीन झोंपड़ियाँ हैं, उन झोंपड़ियों में ठाकुर गुमानसिंह पटेल रहते हैं। बूढ़े भले आदमी हैं। उनकी लड़की नूना मेरी सखी है। उसे मेरी सब बात ज्ञात है। बहुत कर के नूना आप को मन्दिर ही में मिल जायगी। वह वहाँ नित्य आती है, मन्दिर के पुजारी गोविन्द महाराज बहुत भले आदमी हैं। नूना वहाँ न होगी तो वे बुला देंगे। उस से मिल कर आप सब बातें ठीक कर लें। नूना का भाई मानसिंह बहादुर युवक है। नूना के पिता ठाकुर गुमानसिंह भी मुझे बेटी कहते हैं। आप की वे सब सहायता करेंगे। आप उन से मिल कर सब तैयारियां कर लें तथा गुमानसिंह के घर में छिप कर बैठें। मंगल को जब मैं आऊँगी तो नूना मन्दिर में मिलेगी। मैं उसके साथ उसके घर आ जाऊँगी। और हम लोग भाग चलेंगे।"

"क्या सरकारी आदमी मदद न करेंगे ?"

"उनके भरोसे आप न रहें। वे सब इन लोगों के कुत्ते हैं। रिश्वतें खाए बैठे हैं। एक बार ठाकुर गुमानसिंह ने कोशिश की थी, पर बेकार हुई।"

"खैर, तो परसों मंगलवार को सही। तू चिन्ता न कर, मैं सब प्रबन्ध कर लूंगा बेटी।"

दिखाने को मीर साहब भोजन करते जाते थे और बातें भी। अब भोजन के बर्तन लेकर मालती वापस बंगले में चली गई। और मीर साहब तेजी से चल कर नैनीताल आए।

उन्होंने गुमानसिंह और उनके तरुण पुत्र मानसिंह से मिल कर

सब योजना बना ली। गुमानसिंह हलद्वानी की ओर रवाना हो गया। तय यह हुआ कि वह वहाँ एक भाड़े की घोड़ागाड़ी तैयार रखेगा। मानसिंह का एक तरुण मित्र खुखरी लेकर पहाड़ी राह पर हलद्वानी तक साथ चलने को तैयार हो गया। मानसिंह और नूना यथासम्भव साहब लोगों को अपने घर में अटका रखेंगे। और उन्हें अधिक से अधिक दूर निकल भागने का अवसर देंगे, यह तय हुआ। इस तरह सब काम बिना शोर-शप्पा के शान्त भाव से हो जायगा। घर के पिछवाड़े दो मज़बूत टट्टू तैयार रखे गए।

यथासयम मालती मंन्दिर में आई। और नूना उसे हठपूर्वक अपने घर ले आई। सिकन्दर ने विरोध किया—पर ग्रे साहब ने कहा—हरज नहीं है, चली जाने दो। तब तक हम यहाँ मछलियों का शिकार करेंगे। नूना मालती को साथ लेकर हँसती हुई अपने घर की ओर चली। उनका गोरखा नौकर खाने-पीने की जुगत में इधर-उधर चला गया। सिकन्दर और ग्रे बंसी लेकर मछली का शिकार करने बैठ गए।

घर पहुँचते ही बिना एक क्षण का समय नष्ट किए मालती और मीर साहब टट्टू पर सवार हो तुरन्त पहाड़ी राह पर चल दिए। वह तरुण पहाड़ी हाथ में खुखरी लिए उसके पीछे-पीछे पैदल चला। थोड़ी ही देर में नूना और उसकी दो-तीन सहेलियाँ ढोलक बजा कर गीत गाने लगीं। ढोलक और गीत की ध्वनि पहाड़ों में गूँजती हुई साहब लोगों का भी ध्यान आकर्षित करने लगी। वे मछली फंसाते जाते और बातें करते जाते थे। ग्रे ने कहा—

"लडकी यहाँ आकर बहुत खुश है।"

"लेकिन वह अभी तक मेरे हत्थे नहीं चढ़ी।"

"आप ने यह कुछ अच्छा काम नहीं किया। मुक़दमे में कितना रुपया बर्बाद हुआ। दुश्मनी बढ़ी। कोठी गारत हुई। और आगे अंदेशा ही अंदेशा है।"

"सब का बदला मैं इस लड़की को अपनी जोरू बना कर चुकाऊँगा।"

"क्या आप को अभी उम्मीद है, मेरे साथ तो वह शेरनी की तरह पेश आती है। मैंने भी आप की गैर हाजिरी में महज़ उसकी हिफ़ाजत ही का ध्यान रखा। पर मन उसका बदला नहीं है। आप ने उस दिन उस से बातें तो की थीं ?"

"मैंने डराया-धमकाया और मार डालने तक की धमकी दी। लेकिन वह तो कुछ जवाब ही नहीं देती। तमंचा भरा हुआ उसके पास है। इसके अलावा मैं जोर-जुल्म को टालना ही चाहता हूँ।"

"फजूल बात है। अब या तो इस पार या उस पार। आप को मामला पार करना चाहिए। देर से क्या फ़ायदा।"

"खैर, और दो-चार दिन देखता हूँ। फिर मैंने एक बात सोची है।"

"वह क्या ?"

"उसे नशा पिला कर बेहोश कर दिया जाय और तब अपना मतलब हासिल किया जाय।"

"वह तो अपना ही बनाया खाना खाती है।"

"वह पहाड़ी नौकरानी हमारी मदद कर सकती है।"

"मेरा खयाल है वह भी उस से मिल गई है।"

"तब तो उसे दूर कर देना ही बेहतर है।"

"इसमें खतरा भी है। वह इधर-उधर बक कर झंझट भी खड़ा कर सकती है। उसके बाप तक भी पहुँच सकती है। इसी से मैं उस पर कड़ी नज़र रखता हूँ।"

"और यह गोरखा ?"

"यह नमकहलाल है।"

"क्या यह सब बात जानता है ?"

"बस इतनी ही कि.... यह लड़की यहाँ जबर्दस्ती रखी जा रही है। और वह यहाँ रहने में खुश नहीं है।"

"आप ने इस सम्बन्ध में उस से क्या कहा है ?"

"इस मामले में उसने मुझ से बात ही नहीं की। पर हक़ीक़त यह है

कि उसे काम से काम है। भीतरी बातों में उसे दिलचस्पी नहीं है।"

"यह अच्छा है।"

"लेकिन अब तो दोपहर हो गया। उसे वहाँ से बुलाना चाहिए।"

"ढोलक बज रही है। गाना-बजाना हो रहा है। क्या हरज है ज़रा उसे खुश हो लेने दीजिए। लड़की है। उसके खुश होने से नतीजा अच्छा हो सकता है। तब तक गोरखा भी आ जायगा।"

"खैर, मछलियाँ काफी पकड़ ली गईं। आओ उन्हें भून कर चखा जाय। भूख भी ज़ोरों पर है। नमक तो तुम्हारे साथ है?"

"है," इतना कह ग्रे साहब इधर-उधर से थोड़ी सूखी लकड़ी और पत्ते उठा लाए। उन्होंने आग जला कर मछली भूनी, खाई और लम्बे पड़ रहे।

बहुत समय बीत गया। सूरज की धूप तिरछी हो गई। ग्रे साहब ने उठ कर कहा—'ओफ, तीसरा पहर हो गया।" सिकन्दर भी उठ बैठा। देखा–गोरखा भी पास ही खुर्राटे भर रहा है। उसने गोरखे को जगा कर कहा—"जा कर मेम साब को उस घर से ले आओ।"

गोरखा गुमानसिंह के घर चला गया। मानसिंह ने हँस कर उसकी आवभगत की। तम्बाकू पिलाया। और कहा—"आ यार, बैठ। कह, कैसी नौकरी है।"

"नौकरी तो मजे की है, मगर साब हरामजादा है।"

"क्यों, क्या बात है।"

"शराब पीकर गाली बहुत बकता है। बदमिजाज आदमी है।"

"यार, हमारी भी नौकरी लगाओ।"

"साब लोगों से कहूँगा। साब एक नौकर चाहता भी है।"

"लगादो उस पर, मुँह मीठा कराऊँगा। लो, तमाखू पिओ।"

गोरखा तमाखू पीने लगा। गोपाल ने बाँसुरी निकाल कर कहा—"सुनाऊँ एक गत।"

"भाई देर हो रही है। साला साब बकझक करेगा। बस, मेम साब को भेज दो अब।"

"वाह, लड़की लोग मजे में खाना-पीना कर रही हैं, तब तक बाँसुरी की एक तान बजाता हूँ।" इतना कह कर वह बांसुरी बजाने लगा।

परन्तु गोरखे ने थोड़ी देर बाद फिर चलने की जल्दी की। मान सिंह उठ कर भीतर गया। फिर आकर कहा—"यार, नूना कहती है. आज मेम साब हमारे घर ही पर रहेगी।"

"नहीं, बाबा, साब लोग गुस्सा होगा।"

इसी समय नूना ने आकर कहा—"साब गुस्सा क्यों होगा। चलो मैं चलती हूँ, तुम्हारे साथ, साब के पास।"

गोरखा नूना को लेकर नीचे आया। नूना का प्रस्ताव अस्वीकार कर सिकन्दर ने ज़रा रुखाई से कहा–"नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मेम साब को अभी भेज दो।"

"लेकिन सा,ब आज हमारी सहेली को हमारे घर रहने दो। मैं कल खुद उसे पहुँचा दूँगी।"

"नहीं, नहीं, यह नहीं होगा। जल्दी करो। देर हो रही है।"

नूना उदास मुँह घर लौट चली। गोरखा, फिर साथ आया। नूना घर में घुस गई और बड़ी देर बाद बाहर आकर उसने कहा—"मेम साब आज यहीं रहना चाहती हैं, जाना नहीं चाहती। जाओ, साब लोग से कह दो।"

"लेकिन साब लोग नाराज होगा।"

"तो मैं क्या करूँ—वह आती ही नहीं, तुम साब लोग से कह दो।"

गोरखा फिर नीचे गया। सुन कर सिकन्दर आग-बबूला हो कर गोरखा को गाली बकने लगा। गोरखा ने तेवर बदल कर कहा—"साब, गाली मत दो। हम क्या करें—मेम साब, आना नहीं चाहती।"

हुज्जत में शाम हो रही थी। सिकन्दर के मन में संदेह बैठ रहा था। उसने ग्रे से कहा–"तुम जाओ ग्रे।"

ग्रौर ग्रे गुमानसिंह के घर पहुँचा। उसे देखते ही नूना ने कहा—

"मेम साब तो गई। अब तुम क्यों ग्राए ?"

"कहाँ गई ? नीचे तो नहीं पहुँची।"

"यहाँ से गये तो देर हुई। पहुँच गई होंगी।"

"लेकिन रास्ते में भी हमने नहीं देखा।"

"चलो फिर देखें, गई कहाँ—मेम साहब।"

नूना फिर ग्रे साहब के साथ मेम साहब को पुकारते हुए नीचे ग्राई। सब बात सुन कर सिकन्दर ने ग्रे से ग्रंग्रेज़ी में कहा--"ग्रे धोखा हुग्रा। फिर उसने नूना से कहा—"तुम झूठ बोलती हो। सच कहो मेम साब कहाँ है, वरना ग्रच्छा न होगा।"

"मैं झूठ नहीं बोलती। ग्रौर तुम मुझे धमकाते क्यों हो।" वह क्रोध करके जल्दी-जल्दी ग्रपने घर को चली।

सिकन्दर ने कहा--"सुनो, जाती कहाँ हो ?" उसने ग्रागे बढ़ कर उसकी राह रोक ली।

इस पर नूना ने पुकारा, "गोविन्द महाराज, ज़रा यहाँ ग्राना।"

पुजारी दौड़ा हुग्रा ग्राया। ग्रौर दो तीन ग्रादमी। सब ने कहा—"क्या बात है साब, लड़की को क्यों छोड़ा। क्या जान देना चाहते हो ?"

'इस लड़की से कहो—मेम साब को हाज़िर करे।"

नूना ने क्रोध से चिल्ला कर कहा--"मेम साब मेरे घर नहीं हैं।"

"तब कहाँ हैं ?"

"मैं क्या जानूं।"

इस पर गोविन्द महाराज ने सारी बात मालूम करके कहा—"झगड़ने की ज़रूरत नहीं है—चलिए हम भी चलते हैं। देखें मेम साब को इन्होंने कहाँ छिपाया है।"

साब लोगों ने राई-रत्ती घर छान डाला। पर मालती वहाँ नहीं थी। ग्रब सिकन्दर को विश्वास हो गया कि चिड़िया उड़ गई। उस ने ग्रे साहब को ग्रभिप्राय समझा दिया। ग्रे ने भी सहमति प्रकट की। ग्रौर

अब वे हंगामा में समय नष्ट न कर घोड़ों पर सवार हो एकदम पहाड़ी राह पर दौड़ चले।

मानसिंह ने कहा--"बड़ी खराब बात है नूना, तेरी सहेली आखिर चली कहाँ गई। मैं भी साब लोगों के साथ जाता हूँ।" इतना कह कर टट्टू पर सवार हो--वह भी उनके साथ दौड़ चला। पर गोरखा को अभी गालियाँ हज़म नहीं हुई थीं। वह नीचे ही रह गया था। उसने साहब लोगों को और उनके पीछे मानसिंह को जाते देखा। इसी समय गोविन्द महाराज ने कहा—"तुम भैया—यहाँ मन्दिर में आराम करो। तब तक साब लोग देख-भाल कर आते हैं।"

गोरखा ने वहीं कमर ढीली कर दी। अब तो संक्षेप में इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि मानसिंह ने साब लोगों को पहाड़ियों की दुर्गम राह में भटका दिया। अब रात हो गई थी। वे रात भर पहाड़ियों में भटकते फिरे।

मीर साहब रात होते-होते हलद्वानी पहुँच गए। वहाँ से घोड़ा-गाड़ी में बैठ रातोंरात मुरादाबाद जा पहुंचे। अब वे घर के द्वार पर थे। दूसरे दिन जब सूर्य अस्त हो रहा था—सख्त—और निर्मम रूखा-मूखा साँबल सिंह बहुत दिन से बिछुड़ी हुई बेटी को छाती से लगा कर ज़ार-ज़ार आँसू बहा रहा था।

सोना और खून

पाँचवां खण्ड
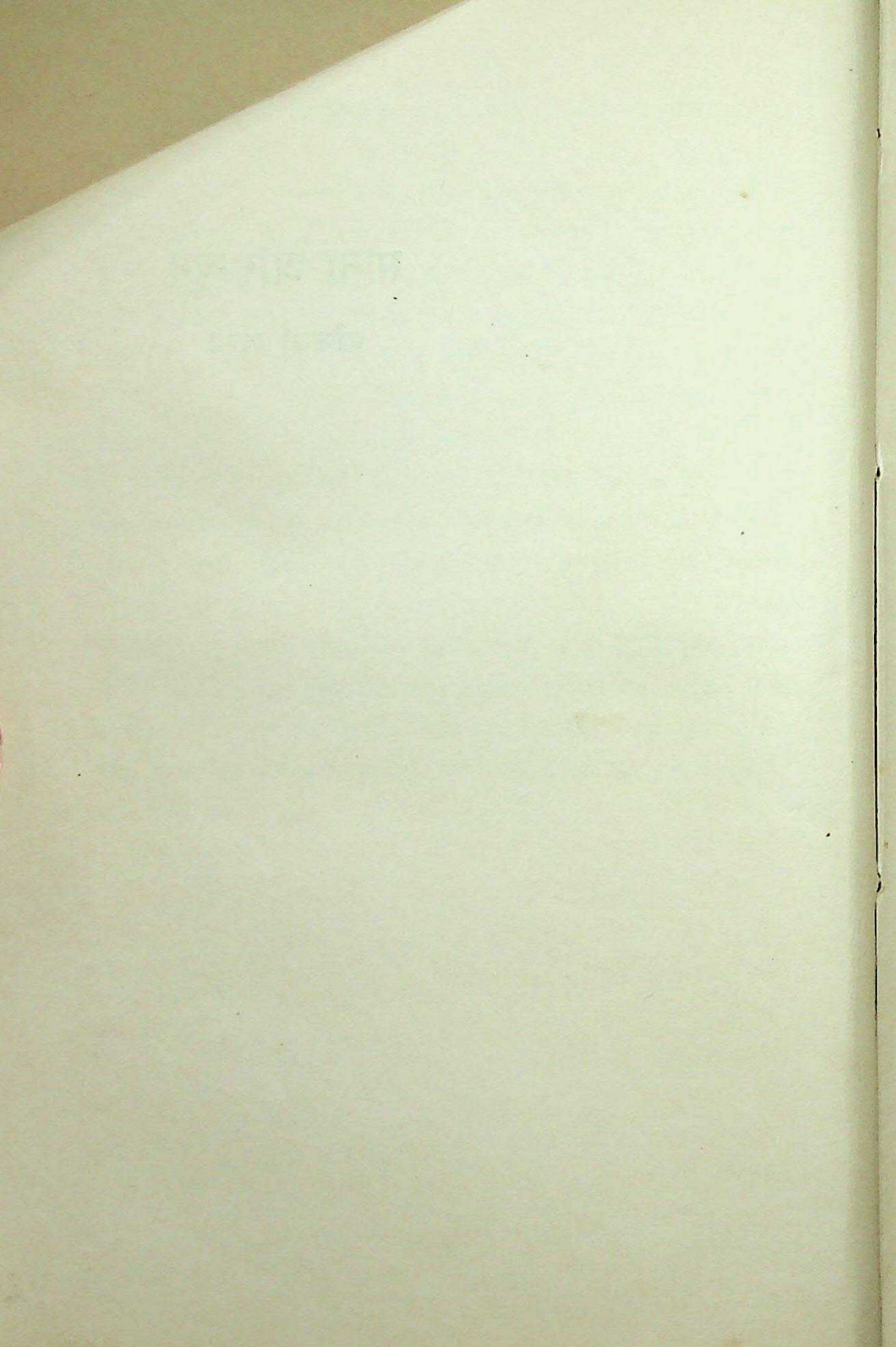
: १ :

सत्रहवीं शताब्दी की दुनिया

सत्रहवीं शताब्दी में पहली बार भारत का ब्रिटेन से सम्पर्क हुआ। यह सम्पर्क दो परस्पर विरोधी संस्कृतियों का परस्पर टकराना मात्र था। उन दिनों समूचा ब्रिटेन अर्धसभ्य किसानों का उजाड़ देश था। उन की झोंपड़ियाँ नरसलों और सरकण्डों की बनी होती थीं। जिनके ऊपर मिट्टी या गारा लगाया हुआ होता था। घास-फूस जला कर घर में आग तैयार की जाती थी, जिस से सारी झोंपड़ी में धुआँ भर जाता था। धुंए को निकलने की कोई राह ही न होती थी। उनकी खुराक जौ, मटर, उड़द, कन्द और दरख्तों की छाल तथा माँस थी। उनके कपड़ों में जुएँ भरी होती थीं। आबादी बहुत कम थी, जो महामारी और दरिद्रता के कारण आए दिन घटती जाती थी। शहरों की हालत गांवों से कुछ अच्छी न थी। शहर वालों का बिछौना भुस से भरा एक थैला होता था। तकिए की जगह लकड़ी का एक गोल टुकड़ा। शहरी लोग जो खुशहाल होते थे चमड़े का कोट पहनते थे। ग़रीब लोग हाथ-पैरों पर पुआल लपेट कर सर्दी से जान बचाते थे। न कोई कारखाना था न कारीगर। न सफ़ाई का इन्तज़ाम न रोगी होने पर चिकित्सा की व्यवस्था। सड़कों पर डाकू फिरते थे और नदियों तथा समुद्री मुहाने समुद्री डाकुओं से भरे रहते थे। उन दिनों दुराचार का तमाम यूरोप में बोलबाला था। और आतशक

सिफ़लिस की बीमारी आम थी। विवाहित या अविवाहित गृहस्थ--पादरी, यहाँ तक कि पोप दसवें लुई तक भी इस रोग से बचे न थे। पदारियों का बोलबाला था। ये पादरी बड़े दुराचारी होते थे। प्रसिद्ध था कि इन पादरियों ने इंगलैंड की एक लाख स्त्रियों को भ्रष्ट किया था। कोई पादरी बड़े से बड़ा अपराध करने पर भी केवल थोड़े-से जुर्माने की सज़ा पाता था। मनुष्य हत्या करने पर उसे केवल छह शिलिंग आठ पैंस—लगभग पांच रुपए—जुर्माना देना पड़ता था। ढोंग-पाखण्ढ जादू-टोना उन का व्यवसाय था।

सत्रहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में लंदन नगर इतना गंदा था, और वहाँ के मकान इस क़दर भद्दे थे कि उसे मुश्किल से शहर कहा जा सकता था। सड़कों की हालत ऐसी थी कि पहिएदार गाड़ियों का चलना ख़तरे से ख़ाली न था। लोग लद्दू टट्टुओं पर दाएँ-बाएँ पालेनों में असबाब की भांति लद कर यात्रा करते थे। उन दिनों तेज़ से तेज़ गाड़ी इंगलैंड में तीस से पचास मील का सफ़र एक दिन में तय कर सकती थी। अध-नंगी स्त्रियाँ जंगली और भद्दे गीत गाती-फिरती थीं और पुरुष कटार घुमा-घुमा कर लड़ाई के नाच नाचा करते थे। लिखना-पढ़ना बहुत कम लोग जानते थे। यहाँ तक कि बहुत से लार्ड अपने हस्ताक्षर भी नहीं कर सकते थे। बहुधा पति कोड़ों से स्त्रियों को पीटा करते थे। अपराधी को टिकटिकी से बाँध कर पत्थर मार-मार कर उसे मार डाला जाता था। औरतों की टांगों को सरे-बाज़ार शिकंजों में कस कर छोड़ दिया जाता था। शाम होने के बाद लंदन की गलियाँ सूनी, डरावनी और अन्धेरी हो जाती थीं। उस समय कोई जीवट का आदमी ही घर से बाहर निकलने का साहस कर सकता था। उसे लुट जाने या गला काटे जाने का भय था। फिर उसके ऊपर खिड़की खोल कर कोई भी गंदा पानी तो फेंक ही सकता था। गलियों में लालटेनें थी ही नहीं। लोगों को भयभीत करने के लिए टेम्स के पुराने पुल पर अपराधियों के सिर काट कर लटका दिए जाते थे। धार्मिक स्वतन्त्रता न थी। बादशाह के सम्प्रदाय से भिन्न

दूसरे किसी सम्प्रदाय के गिरजे में जा कर उपदेश सुनने की सज़ा मौत थी। ऐसे अपराधियों के घुटनों को शिकंजों में कस कर तोड़ दिया जाता था। स्त्रियों को लकड़ियों के शहतीरों से बाँध कर समुद्र के किनारे पर छोड़ देते थे कि धीरे-धीरे बढ़ती हुई समुद्र की लहरें उन्हें निगल जाएँ। बहुधा उनके गालों को लाल लोहे से दाग़ कर अमेरिका निर्वासित कर दिया जाता था। उन दिनों इंगलैंड की रानी भी गुलामों के व्यापार में लाभ का भाग लेती थी।

इंगलैंड के किसान की अवस्था उस ऊदबिलाव के समान थी जो नदी के किनारे माँद बना कर रहता हो। कोई ऐसा धन्धा-रोज़गार न था कि जिस से वर्षा न होने की सूरत में किसान दुष्काल से बच सकें। उस समय समूचे इंगलिस्तान की आबादी पचास लाख से अधिक न थी। जंगली जानवर हर जगह फिरते थे। सड़कों की हालत बहुत खराब थी। बरसात में तो सब रास्ते ही बन्द हो जाते थे। देहात में प्रायः लोग रास्ता भूल जाते थे और रात-रात भर ठण्डी हवा में ठिठुरते फिरते थे। दुराचार का दौरदौरा था। राजनैतिक और धार्मिक अपराधों पर भयानक अमानुषिक सज़ाएँ दी जाती थीं।

यह दशा केवल ब्रिटेन की ही न थी, समूचे यूरोप की थी। प्रायः सब देशों में वंश क्रम से आए हुए एकतन्त्र—स्वेच्छाचारी निरंकुश राजा राज्य करते थे। उनका शासन सम्बन्धी मुख्य सिद्धान्त था—हम पृथ्वी पर ईश्वर के प्रतिनिधि हैं, और हमारी इच्छा ही क़ानून है। जनता की दो श्रेणियाँ थीं। जो कुलीन थे—वे ऊँचे समझे जाते थे, जो जन्म से नीच थे वे दलित वर्गी थे। ऐसा एक भी राजा न था जो प्रजा के सुख-दुःख से सहानुभूति रखता हो। विलास और शानोशौकत ही में वे मस्त रहते थे। वे अपनी सब प्रजा की जानोमाल के स्वामी थे। राजा होना उनका जन्मसिद्ध अधिकार था। उनकी प्रजा को बिना सोचे-समझे उन की आज्ञा का पालन करना ही चाहिए। फ्रांस का चौदहवाँ लुई ऐसा ही बादशाह था। यूरोप में वह सब से अधिक काल तक तख्तनशीन रहा।

वह औरंगज़ेब से बारह वर्ष पूर्व गद्दी पर बैठा और उसके मरने के आठ वर्ष बाद तक गद्दी पर बैठा रहा। पूरे ७२ वर्ष। वह सभ्य, बुद्धिमान और महत्वाकांक्षी था, और चाहता था कि फ्रांस दुनिया का सबसे अधिक शक्ति-सम्पन्न राष्ट्र बन जाय। परन्तु जब जब वह फ्रांस की शक्ति और उन्नति की बात सोचता था—तब तब वह फ्रान्स की जनता के सम्बन्ध में नहीं, केवल अपने और अपने सामन्तों के सम्बन्ध में। वह अपने ही को राज्य कहता था, और यह उसका तकिया कलाम बन गया था। उसने अपनी दरबारी तड़क-भड़क से सारे संसार को चकित कर दिया था और फ्रान्स सारे तत्कालीन सभ्य संसार में फैशन के लिए प्रसिद्ध हो गया था। उसने प्रजा पर भारी-भारी टैक्स लगाए थे। तथा गरीब प्रजा की गाढ़ी कमाई से बड़े-बड़े राजमहल बनाए थे। उसने वर्साई और पेरिस की वह शान बनाई कि जिसकी उपमा यूरोप में न थी। उसने अजेय सेना का संगठन किया था, जिसे यूरोप के सब राष्ट्रों ने मिल कर बड़ी ही कठिनाई से परास्त किया। सन् १७१५ में जब वह मरा तो पेरिस अपनी शान. फैशन, साहित्य, सौन्दर्य और बड़े-बड़े महलों तथा फव्वारों से सुसज्जित था। और फ्रांस यूरोप की प्रधान राजनीतिक और सैनिक शक्ति बन गया था। परन्तु सारा देश भूखा और असन्तुष्ट था।

उस काल—यूरोप में फ्रांस का मुख्य प्रतिद्वन्दी आस्ट्रिया था। जिसके राजा हाशवुर्ग राजवंश के थे। पवित्र रोमन साम्राज्य के सम्राट का गौरव-पूर्ण पद इसी राजवंश को प्राप्त था, यद्यपि इस पद के कारण आस्ट्रिया के राजाओं की शक्ति में कोई वृद्धि नहीं हुई थी पर उनका सम्मान और प्रभाव तथा प्रभुत्व समूचे यूरोप पर था।

उस समय जर्मनी न कोई एक राष्ट्र था, न एक राज्य का नाम ही जर्मनी था। तब जर्मनी लगभग ३६० छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, जिन में तनिक भी राजनीतिक एकता न थी। वे नाममात्र को आस्ट्रिया के धर्मसम्राट की अधीनता मानते थे।

यही दशा इटली की थी। इटली का राष्ट्र है—यह कोई न जानता

था। वहां भी अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्य थे। जिनके राजा निरकुंश स्वेच्छाचारी थे। जनता को शासन में कहीं कोई अधिकार प्राप्त न था।

स्पेन इस काल यूरोप का सबसे अधिक समर्थ राज्य था। पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में ही उसने अमेरिका में उपनिवेश स्थापित करके अपनी अपार समृद्धि बढ़ा ली थी। स्पैन के राजा यूरोप के अनेक देशों के अधिपति थे।

पोलैण्ड सोलहवीं शताब्दी तक यूरोप का एक समर्थ राज्य था। सत्रहवीं शताब्दी में पीटर के अभियानों ने उसे जर्जर और अव्यवस्थित कर दिया था और फिर वहां किसी शक्तिशाली केन्द्रीय शासन का विकास नहीं हो पाया।

स्वीडन, डेनमार्क, नार्वे, हालैण्ड और स्विटजरलैण्ड का विकास अभी हुआ ही न था। अभी ये देश पिछड़े हुए थे।

आज का सोवियत रूस संसार का सबसे बड़ा और समर्थ प्रजातन्त्र है। आज उसका एक छोर बाल्टिक सागर से पैसेफिक सागर तक फैला हुआ है और दूसरा आरटिक सागर से भारत और चीन की सीमाओं को छू रहा है। परन्तु उन दिनों वह एक छोटा-सा प्रदेश था। जो मास्को नगर आस पास के इलाकों तक ही सीमित था। और जिसका अधिकांश भाग जंगल था। समुद्र से उसका सम्बन्ध विच्छिन्न था। एक भी समुद्र तट उसके पास न था। तब बाल्टिक सागर का सारा तट स्वीडन के बादशाह के अधीन था। और काला सागर तथा कास्पियन सागर तट का सारा दक्षिणी भू-भाग तातारी और तुर्क राजाओं और सरदारों के अधिकार में था।

चौदहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में पीटर ने जार के सिंहासन पर बैठ कर रूस की कायापलट करने का उपक्रम किया। उन दिनों रूस में लोग लम्बी-लम्बी दाढ़ियां रखते और ढीलेढाले लबादे पहनते थे। एक दिन उसने अपने सब दरबारियों को अपने दरबार में बुलाया, और सबकी दाढ़ी अपने हाथ से मुंड़ दी। और उन्हें चुस्त पोशाकें पहना दीं। उसने

स्वीडन के बादशाह के हाथों से बाल्टिक तट छीन लिया। और समुद्र तट पर अपनी नई राजधानी सेन्ट पीटर्सबर्ग बसाई ज़ो आज लैनिनग्रेड के नाम से विख्यात है।

परन्तु यह महान् सुधारक पीटर भी उन दोषों से मुक्त न था, जो उन दिनों संसार के बादशाहों में थे। वह स्वेच्छाचारी था, वह जो चाहता वही करता था। उसकी आज्ञापालन करने में किसे कितना कष्ट झेलना पड़ेगा, इसकी उसे परवाह न थी।

उन दिनों भारत मुग़ल प्रताप से तप रहा था। संसार के सबसे बड़े और सबसे धनी बादशाह शाहजहां और औरंगजेब पचास-पचास साल सिंहासन पर विराजमान रह चुके थे। अकबर और जहांगीर के महान् सांस्कृतिक प्रभाव भारत में पनप चुके थे। अकबर की उदारता, जहांगीर का न्याय शासन, शाहजहां की सुख-समृद्धि और तत्कालीन भारत की कला कौशल ने भारत को इस युग में एक नया मोड़ दिया था। दिल्ली और आगरे के किले बन चुके थे। ताजमहल अपनी धवल छटा से चंद्र-ज्योत्स्ना को उज्ज्वल कर रहा था। कुतुब की लाट ऊँचा सिर उठाए गौरव-गाथा कह रही थी। फतहपुर सीकरी का नगर यद्यपि सो रहा था—पर एक शान उसकी भी थी। आगरा और दिल्ली के बाद जयपुर मथुरा, अजमेर, पटना, काशी आदि दर्जनों नगर बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं से सुसज्जित और आश्चर्यकारक धन वैभव से परिपूर्ण बसे हुए थे।

जब औरंगजेब ने सिंहासन पर कदम रखा था— उस समय भारत में उत्तर से दक्षिण तक, और पूर्व से पश्चिम तक चारों ओर अलौकिक सुख समृद्धि व्याप रही थी। इस समय दादू-कबीर और नानक ने धर्म में एक महत्वपूर्ण समन्वय का वातावरण उत्पन्न कर दिया था। सूर और तुलसी, रहीम और रसखान, मीरां और ताज एक अविच्छिन्न साहित्य की रसधार बहा रही थी।

शाहजहां का स्वर्ण रत्न भण्डार संसार-भर में अद्वितीय था। तीस

करोड़ की सम्पदा तो उसे अकेले गोलकुण्डा ही से प्राप्त हुई थी। उसके धनागार में दो गुप्त हौज़ थे, एक में सोना और दूसरे में चाँदी का माल रखा जाता था। इन हौज़ों की लम्बाई सत्तर फुट और गहराई तीस फुट थी। ये हौज़ चोर दरवाज़े से ही खुलते और बन्द होते थे। उसने ठोस सोने की एक मोमबत्ती, जिसमें गोलकुण्डा का सब से बहुमूल्य हीरा जड़ा था और जिसका मूल्य एक करोड़ रुपया था, मक्का के काबा के मन्दिर में भेंट की थी। दुनिया का कोई इतिहासज्ञ शाहजहाँ की धन-दौलत का अनुमान नहीं लगा सका है। लोग कहते थे, उसके पास इतना धन था कि फ्राँस और पर्शिया के दोनों महाराज्यों के कोष मिला कर भी उसकी बराबरी नहीं कर सकते थे। सोने के ठोस पायों पर बना हुआ तख्त-ताऊस—जिसमें दो मोर मोतियों और जवाहरात के बने थे। इसमें पचास हज़ार मिसकाल हीरे, मोती, और दो लाख पच्चीस मिसकाल शुद्ध सोना लगा था। जिसकी कीमत सत्रहवीं शताब्दी में तिरपन करोड़ रुपए आँकी गई थी। इससे पूर्व इसके पिता जहाँगीर के खज़ाने में १९६ मन सोना तथा १½ हज़ार मन चाँदी थी। ५० हज़ार के ८० पौंड बिना तराशे जवाहरात और १०० पौंड लाल मणि, १०० पौंड पन्ना और ६०० पौंड मोती थे। शाही फ़ौज के अफ़सरों की दो हज़ार तलवारों की मूठें रत्न जटित थीं। दीवाने खास की १०३ कुर्सियाँ चाँदी की तथा ५ ठोस सोने की थीं। तख्त-ताऊस के अलावा तीन ठोस चाँदी के तख्त और थे। जो प्रतिष्ठित राजवर्गी जनों के लिए थे। इनके अतिरिक्त सात रत्न जटित सोने के छोटे तख्त और थे। बादशाह के हमाम में जो टब सात फीट लम्बा और ५ फीट चौड़ा था उसकी कीमत दस करोड़ रुपए थी। शाही महल में २५ टन सोने की तश्तरियाँ और बर्तन थे तथा ५० टन चाँदी के बर्तन थे। वर्नियर कहता है कि बेगमें और शहज़ादियाँ तो हर वक्त जवाहरात से लदी रहती थीं। जवाहरात किश्तियों में भर कर लाए जाते थे। नारियल के बराबर बड़े-बड़े लाल छेद कर के वे गले में डाले रहती थीं। इनके गले में रत्न, हीरे व मोतियों के हार, सिर में लाल व नीलम

जड़ित मोतियों का गुच्छा, बाहों पर रत्न जटित बाजूबन्द और दूसरे गहने नित्य पहने रहती थीं ।

: २ :

धर्म-हठ

"धर्म" दुनिया का सब से बड़ा झूठ है । वह कोरे मिथ्यावाद पर आधारित है । जादू-टोना, देवी-शक्तियाँ, मन्त्र-तन्त्र चमत्कार, स्वप्न, भविष्यवाणियाँ और प्रकृति से परे की शक्तियों पर विश्वास धर्म का स्थूल और मुख्य रूप है । धर्म का यह माया महल अंधविश्वास पर खड़ा किया गया है, उसकी दीवारें अंधी श्रद्धा से बनी हैं । उसकी छत है ही नहीं । यह "धर्म" अज्ञान का पुत्र है और दुनिया के मनुष्यों को गुमराह कर के उन्हें दुःख-दर्द पहुँचाना उसका पेशा है । संघर्ष, घृणा और खून-खराबी इसकी नीति है । हज़ारों वर्षों से इस धर्म ने मनुष्य को नाकों चने चबाए हैं, करोड़ों मनुष्यों का खून पिया है । असंख्य स्त्री-पुरुषों को ज़िन्दा से मुर्दा बनाया है । धर्म ही के कारण युधिष्ठिर ने जुआ खेला, राजपाट हारा, भाइयों और स्त्री को जुए के दाव पर लगा कर गुलाम बनाया, फिर भी किसी माई के लाल ने उसकी ओर उंगली नहीं उठाई । वे धर्म के सगे बेटे जो ठहरे, जो करें सो ठीक । धर्म ही के कारण द्रौपदी ने पाँच पति किए । अर्जुन भीम जैसे बली पुरुषों की आँखों के सामने द्रौपदी पर अत्याचार किए गए, पर धर्म के कारण वे योद्धा मुर्दों की भाँति बैठे देखते रहे । धर्म ही कारण अर्जुन ने भाइयों और सम्बन्धियों के खून से धरती को रंगा । भीष्म आजन्म कुंआरे रहे । कुरुकुल वधुओं ने अन्य पुरुषों से सहवास कर सन्तान उत्पन्न कीं । राम ने वनवास भोगा, सीता को त्यागा । शूद्र तपस्वी को मारा । धर्म के कारण हरिश्चन्द्र ने राजपाट त्याग भंगी की दासता की । स्त्री को बाजार में बेचा । धर्म के कारण राजपूतनियाँ आग में भस्म हुईं । धर्म के कारण करोड़ों विधवाएं हमारे घरों में चुपचाप आँसू पी कर जीती रहीं । करोड़ों अछूत कीड़ों-मकोड़ों

की भाँति रहते रहे। धर्म ही के कारण भद्दी, अश्लील पत्थर की मूर्तियाँ पूजनीय बनी रहीं। धर्म ही के कारण पत्थर को परमेश्वर कहने वाले पेशेवर गुनहगार पुजारी लाखों स्त्री-पुरुषों से पैर पुजाते रहे। धर्म ही के कारण भंगी प्रातःकाल होते ही अपनी बहू-बेटियों सहित औरों का मलमूत्र सिर पर ढोता रहा। धर्म ही के कारण हिन्दू, मुसलमान, ईसाई एक-दूसरे के शताब्दियों तक शत्रु बने रहे। धर्म के कारण रोमन कैथोलिकों और प्रोटेस्टन्टों के भीषण रोमांचकारी अत्याचार हुए। धर्म ही के लिए मुसलमानों ने पृथ्वी को रौंद डाला और मनुष्य के गर्म खून से तलवार रंगी। धर्म के कारण सिपाही युद्ध में नर हत्या करता है। वेश्या अस्मत बेचती है। क्या आप ने कभी यह विचार किया है कि हज़ारों वर्षों से पृथ्वी-भर में ऐसे उत्पादत मचाने वाला यह धर्म आखिर है क्या बला? यह क्यों नहीं मनुष्य को मनुष्य से मिलने देता। क्यों नहीं मनुष्य को आज़ाद रहने देता। इस ने शैतान की तरह दिमाग़ को ग़ुलाम बना दिया है। इस हत्यारे धर्म ने किस प्रकार जातियों को तबाह किया है, इसके ज्वलन्त उदाहरण रोम और स्पेन हैं। दो हज़ार वर्षों तक परमेश्वर का यह एजेन्ट इटली में रहा। वहाँ के पोप और पादरी सारे यूरोप को बन्दर की भाँति नचाते रहे। सारा देश, मठों, गिरजों और साधु-साध्वियों से भर गया। सारे राष्ट्र का सोना इन मठों में समा गया। सभी सड़कें रोम की ओर जाती थीं। ये सभी सड़कें भेंट ले जाने वाले यात्रियों से भरी रहती थीं। अन्त में इसी धर्म ने इटली का बेड़ा गर्क किया। उसका पतन होता ही गया और अन्त में वह मर ही गया। मेजिनी, गेरीबाल्डी और काबूर ने उसे बचाने के उद्योग किए, पर उसकी दरिद्रता और विपत्तियों का अन्त न रहा। जिसके पूरे जिम्मेदार परमेश्वर के ये बेईमान और झूठे एजेन्ट पादरी लोग थे।

स्पेन की कभी आधी दुनिया में हुकूमत थी। सारे संसार का सोना-चाँदी उसके अधिकार में था। यह वह ज़माना था जब संसार की सभी जातियों की गर्दनें धर्म के फ़ौलादी पंजों में फँसी थीं। और लोगों की

आँखों पर धर्म का पर्दा पड़ा था। यूरोप की दूसरी जातियों ने सोचना, समझना शुरू किया—पर स्पेन धर्म से चिपटा ही रहा। दूसरे देशों में पोप की फाँसी काट दी गई थी परन्तु स्पेन में नहीं। यूरोप में विज्ञान का सूर्य चमका—पर स्पेन में नहीं। वह माला जपता रहा। प्रार्थनाएँ करता रहा। आत्मा की रक्षा करता रहा। उसे चमत्कारों पर, अलौकिकता पर, ईश्वर के इन एजेंटों पर, विश्वास था। ज्ञान पर नहीं। ज्ञान के प्रकाश से उसने आँखें बन्द करलीं। जिन्होंने ज़रा भी सोचने-विचारने का प्रयत्न किया, उसी को उस ने तलवार के घाट उतार दिया। आग में ज़िन्दा जला दिया। दूसरी जातियाँ यूरोप में महान होती गईं। और स्पेन का ह्रास होता गया। एक-एक करके उसके उपनिवेश उसके हाथों से निकलते गए। पर उसने अपना मन धर्म के ठेकेदारों को और दिमाग़ मिथ्या विश्वास को सोंप दिया था। उसने उदीयमान प्रजातन्त्र से युद्ध छेड़ दिया। बड़े-बड़े पादरियों ने उसकी सेना को आशीर्वाद दिया, मन्त्रों से सेना को पवित्र किया। पवित्र जल छिड़का, तावीज़ बाँधे पर अन्त में उसकी दुर्गति हुई। उसके जहाज़ भस्म करके समुद्र गर्भ में दफ़ना दिए गए। इस प्रकार स्पेन धर्म का शिकार हो गया। यही दशा पुर्तगाल आस्ट्रिया और जर्मनी की हुई।

स्पेन में सन् १४८१ से १८०८ तक ३२,४८२ स्त्री-पुरुष जीते जलाए गए थे। तथा १७,६६० के पुतले जलाए गए थे और २,९१,४५० आजन्म या चिरबन्दी किए गए थे। तथा उनकी सम्पूर्ण सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गई थी। पुर्तगाल में सत्रह साल में १० हज़ार व्यक्ति जीते जलाए गए और एक लाख क़ैद किए गए थे। और उनकी सम्पत्ति ज़ब्त की गई थी।

: ३ :

यन्त्रणागार

उन दिनों यूरोप के प्रायः सभी देशों में यन्त्रणागार बने हुए थे। जहाँ अभियुक्त को असह्य रोमांचकारी यातनाएँ दी जाती थीं। बहुधा ये यातनाएँ

अपराध स्वीकृति के लिए दी जाती थीं और क्रूरता इनकी विशेषता थी। प्राणदण्ड भी इस तरीक़े से दिए जाते थे कि पीड़ित को अधिक से अधिक कष्ट पहुँचे और अधिक से अधिक अपमान हो। ऐसे दण्ड धार्मिक मामलों में तो होते ही थे, साधारण अपराधों में भी उन का उपयोग किया जाता था।

इस प्रकार के दण्डों का मतलब अपराधी का मान-मर्दन करना तथा दूसरों के सामने विभिषिका का उदाहरण उपस्थित करना होता था। यह यन्त्रणा कभी-कभी आजीवन चलती थी।

इन में अधिक प्रचलित लकड़ी का एक कटघरा था, जिसके छिद्र में अपराधी के मस्तक तथा हाथ जकड़ दिए जाते थे। और दूसरी लकड़ी की एक धरन होती थी, जिस में अपराधी के हाथ-पैर बाँध दिए जाते थे। परन्तु एक या दो अंगों को तपे लोहे से दाग़ने अथवा अंग-भंग कर देने से भी दण्ड का अभिप्राय पूरा हो जाता था।

इंगलैंड में अपराधियों के हाथ, पैर, नाक, कान काटने की आम सज़ा थी। उनके माथे भी गर्म लोहे से दाग़ दिए जाते थे। ऐसे माथे पर दग़े हुए, हाथ कटे, पैर कटे, जीभ कटे आदमी इंगलैंड में बहुत घूमते थे, उन को देख कर सर्व-साधारण भयभीत हो जाते थे।

इस प्रकार की तिरस्कार पूर्ण सज़ाओं का सब से ख़राब तरीक़ा—जो लुई ११वें के शासन काल में फ्रांस में अधिक प्रसिद्ध हुआ, "पिंजरा" था।

यूरोप में सब से प्रथम १३०६ ई० में काउन्टेस बूकन, जो ब्रूसकाण्ड में अधिक सक्रिय थी और जिस ने उसके सिर पर ताज भी रखा था, किंग एडवर्ड की आज्ञा से बरविक दुर्ग के एक टावर में एक पिंजरे में बंद कर दी गई थी। यह जालीदार पिंजरा लोहे की सलाखों और छड़ों से बनाया गया था। पिंजरे के निर्माण में यह ध्यान रखा गया था कि काउन्टेस को इस में कोई असुविधा न हो, न वह अरक्षित रहे। इस पिंजरे में बन्द होने पर उसकी पूरी निगरानी की जाती थी,—कि वह

निकल न भागे। बरविक की विश्वासी—दो स्त्रियों को उस पर तैनात कर दिया गया था। जो उसे खाना-पीना दे दिया करती थीं; तथा उस के और काम भी कर दिया करती थीं। उसकी इतनी सख्ती से निगरानी होती थी कि वह उन दो स्त्री सेविकाओं के अतिरिक्त स्कॉट जाति के अथवा अन्य किसी भी स्त्री-पुरुष से एक शब्द भी बोल नहीं सकती थीं। ब्रूस की बहन मेरी ने भी एक्सबर्ग दुर्ग में यही दण्ड भुगता था।

केवल स्त्रियों को ही यह अपमानजनक दण्ड नहीं दिया जाता था, औरों को भी दिया जाता था। मद्य पीने वालों को "शराबी-लबादा" का दण्ड दिया जाता था। यह लकड़ी का बना बिना तली का पीपा होता था, जिस के ऊपरी सिरों में एक गोल छेद अपराधी के सिर के लिए होता था। अपराधी को सिर पर से यह पीपा उढ़ाया जाता था, जो कंधों पर टिक जाता था। इस में अगल-बगल दो गोल छेद होते थें—जिन में अपराधी अपने हाथ रख सकता था। इस बोझ को उठाए-उठाए अपराधी को सारे शहर में घूमना पड़ता था। उन दिनों शराब और वेश्याओं का लंदन में बोल बाला था। वहाँ छह लाख की आबादी में पचास हजार वेश्याएँ थीं। धनवानों के बड़े-बड़े जुआ घर थे। हर मुहल्ले में जुए के अड्डे होते थे। प्रत्येक गली में खुले चबूतरे पर शराब बेची जाती थी। इन दूकानों पर एक साइन-बोर्ड लगा रहता था जिस में लिखा होता था—"साधारण शराब का मूल्य एक पैंस। बेहोश कर देने वाली शराब का दो पैंस। साफ़-सुथरी चटाई मुफ़्त।"

कोड़े मारना या शिकंजे में कसा जाना ये दो ऐसी यातनाएँ थीं, जो पीड़ा पहुँचाने की नीयत से आम प्रचलित थीं। शिकंजा रोमन लोगों का प्राचीन काल से ही पीड़ा देने वाला हथियार रहा है; जिसका व्यवहार बाद तक बना रहा। रोमन लोगों ने एक बार 'जुलेटा' नाम की एक स्त्री को शिकंजों की सज़ा दी थी। 'जुलेटा' तारसस से गिरफ्तार करके गवर्नर अलेग्जेण्डर के सामने लाई गई थी। जहाँ उसने अपना अपराध 'ईसाई होना' स्वीकार किया था। उसका शिशुपुत्र 'साइरिकस' उससे

छीन लिया गया। जुलेटा के शरीर को शिकंजे में कस कर उसके शरीर को खींच-खींच कर घोर यातनाएँ देकर तोड़ डाला गया। उसका पुत्र अपनी माता के पास जाने को चिल्ला रहा था। उसके चिल्लाने से गवर्नर का ध्यान बच्चे की असाधारण सुन्दरता की ओर गया। गवर्नर ने उसे अपने घुटने पर बैठा कर सन्तुष्ट करना चाहा। परन्तु वह नहीं बहला। और उसने अपनी तोतली वाणी में अपनी माता के शब्दों का अनुकरण करते हुए कहा—"मैं ईसाई हूँ।" यह सुनते ही गवर्नर ने बच्चे को उसकी माता के सम्मुख ही सिर से ऊपर उठाकर फर्श पर पटक दिया। बच्चे का सिर फट कर बिखर गया। उसकी माता ने शिकंजे में खिंचते-खिंचते सारा दृश्य देखा। जुलेटा को और यन्त्रणा देने के लिए उसके पैरों पर खौलती हुई राल डाली गई और उसके अगल-बगल काँटे लगा दिए गए। अंत में उसका सिर काट डाला गया।

शिकंजे की सजा का तात्पर्य अपराधी के शरीर को पीड़ा दे देकर खींचना, फैलाना और तोड़ना होता था। यह लकड़ी का बना एक आयाताकार फ्रेम होता था, जो जमीन पर पड़ा रहता था। इसका एक सिरा जाम होता था, जिसमें टांगें बाँध दी जाती थीं। दूसरा सिरा जाम नहीं होता था। इसमें ऊपर करके हाथ बाँध दिए जाते थे। यह दूसरा सिरा गोल पहिएनुमा होता था, जिसके घुमाने से पीड़ित का शरीर खिंचता चला जाता था—यहां तक—कि उसके शरीर के जोड़ उखड़ कर टूट जाते थे।

शिकंजे अनेक प्रकार के होते थे। इनमें 'आस्ट्रलियनजीना' सबसे अधिक भयंकर होता था। इंगलैंड में शिकंजे की सजा इस प्रकार दी जाती थी—कि पीड़ित को जमीन पर शिकंजे के बीच में चित्त लिटाते थे। शिकंजे के एक सिरे पर टखने और दूसरे सिरे पर बाजू बाँध कर घुमाते थे। ऐसा करने से पीड़ित का शरीर तनता-तनता जमीन से कुछ ऊपर उठ जाता था। तब उससे प्रश्न पूछे जात थे। जब तक अभीष्ट सन्तोषप्रद उत्तर नहीं मिल जाता, यह यन्त्रणा जारी रहती थी।

इंगलैंड में शिकंजे की सजा ड्यूक ग्राफ एक्सेटर चतुर्थ ने १४४७ ई० में प्रचलित की थी और जब इसे टावर ग्राफ लन्दन में लगाया गया तब इसे 'एक्सेटर की बेटी' की संज्ञा दी गई। जब पीड़ित को इसमें कसने की सजा दी जाती थी तब सब यही कहते थे कि उस भाग्यहीन का एक्सेटर की बेटी से ब्याह हो गया है। कुछ अभागे पीड़ित 'भंगी की बेटी' से भी ब्याहे जाते थे। यह और भी पीड़ादायक हथियार था।

'ड्यूक की बेटी' से पहला ब्याह हाकिन्स ने किया और अन्तिम ब्याह आर्चर ने, जो १६४० में मारा गया।

शिकंजे की सजाएँ मेरी और जेम्स के शासन काल में खूब प्रचलित रहीं। अस्क्यू को यही सजा हेनरी आठवें ने दी थी। बाद में उसे आग में जला कर मार डाला गया था। सर थॉमसयाट ने यह सजा मेरी के विरुद्ध विद्रोह करने के अपराध में टावर ग्राफ लन्दन में पाई थी। १५८१ में एक फादर चेम्पियन (छोटे पादरी) को, जो प्रोटेस्टेन्ट धर्म त्याग कर जेसंट हो गया था, एलिजाबेथ की आज्ञा से यही सजा दी गई थी। बाद में टायबर्न नामक स्थान में उसका वध किया गया था। फादर ओल्ड-कार्न को पाँच बार शिकंजे में कसा गया। अंत में वारसेस्टर में कत्ल कर दिया गया। कत्ल करने से पहले उसके पेट को चीर कर आंतों को बाहर खींचा गया और उसे चार टुकड़ों में काट डाला गया। गुई फाक्स ने भी यही सजा पाई थी। फ्राँस में यह सजा खूब प्रचलित थी। वहाँ इसे 'बैंच-द-टॉर्चर' कहते थे। इस क्रूर यातना का एक उदाहरण हम यहाँ देते हैं।

"सात दिसम्बर १७६५ ई० के दिन हम लोग-डोमिनिक-द-सेडन, किंग्स कौन्सिलर, पैरे फ्रांकोइस, आर्योल डेस एन्गिल्स, लेफ्टिनेन्ट कर्नल ग्राफ कावेलरी, रायल प्रासीक्यूटर आदि की प्रार्थना पर मोन्टेवन कैसल ले की जेल में टार्चर चेम्बर (यातनागृह) में हाजिर हुए। हमारे सामने एक क़ैदी लाया गया, जिस पर डाका डाल कर एक घोड़ी चुराने का आरोप था। उसका नाम डिल्यू उर्फ टालू था। वह अपना अपराध स्वीकार नहीं

करता था। अपराध स्वीकार कराने के लिए उसे यातनागृह में लाया गया था। यहाँ जल्लाद ने उसकी पीठ को कोड़े मार-मार कर छलनी कर दिया और फिर उसे शिकंजे में कस दिया गया। उसके टखने और हाथ खिंचने लगे। हमने जल्लाद से कहा कि शिकंजे के डंडों को ज़ोर से घुमाओ, जिससे इसके हाथ पैर के जोड़ टूट जांय। हमने जल्लाद को बताया कि शिकंजे के तीन दांते घुमाओ। तीन दांते घूमने पर पीड़ित से अपराध स्वीकार करने को कहा गया। किन्तु उसने कहा—"मैंने कभी डाके नहीं डाले।"

तब तीन और दांते घुमाए जाने पर उससे फिर स्वीकार करने को कहा गया। तब भी उसने स्वीकार नहीं किया।

तीसरी बार फिर तीन दांते घुमाए गए। तब भी उसने यही कहा कि मेरा किसी भी डकैती से सम्बन्ध नहीं है। अन्त में और भी दांते कसने पर पीड़ित ने कहा कि मुझे खोल दो—मैं स्वीकार कर लूंगा।

इस पर हमारी आज्ञा से जल्लाद ने उसे शिकंजे से निकाला। अब उससे पूछा गया—"क्या तुमने राऊसेट से घोड़ी चुराई और क्या उस घोड़ी को तुम या तुम्हारे साथी ब्राऊज़े को ले गए?"

उसने उत्तर दिया—"मैं सत्य ही कहूँगा कि मैंने खुद या किसी दूसरे के साथ मिलकर ऐसा कोई अपराध नहीं किया।"

इस पर हमने जल्लाद को उसे फिर शिकंजे में उतने ही दांतों पर कसने के लिए कहा, जितनों पर उसे छोड़ा गया था। तीन और दांते घूमने पर उसने कहा—मुझे शैतान ले जांय जो मैंने डाका डाला हो।

इस समय हमने डाक्टर से, जो वहां उपस्थित था, कहा कि वह पीड़ित की परीक्षा करके बताए कि वह जल्द मर तो न जायगा।

डाक्टर ने परीक्षा करके कहा—इसकी सांस रुकने लगी है, और इस के मर जाने का भय है। अतः इसे कुछ देर के लिए छोड़ दिया जाय।

डाक्टर की इस रिपोर्ट पर पीड़ित को छोड़ दिया गया और ताकत की दवा दी गई। दवा देने पर सांस ठीक आने लगा।

उससे फिर प्रश्न किया गया। पर उसने वही उत्तर दिया कि मैं किसी भी डाके में शामिल नहीं हूँ।"

इस पर उसे फिर शिकंजे में कस दिया गया। अब वेदना से तड़पकर उसने चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। शिकंजा और खींचने पर भी उसने अपराध स्वीकार नहीं किया।

डाक्टर से फिर पूछा गया। डाक्टर ने परीक्षा करके कहा—"शरीर के मध्य प्रदेश की नसों के खिंच जाने से वह निकम्मा हो गया है। अंगूठा उखड़ गया है। अब यदि उसे एकदम न छोड़ दिया जायगा तो वह मर जायगा।"

जल्लाद को हुक्म दिया गया कि उसे छोड़ दे।

उसे एक चारपाई पर डाल कर आग के सामने लाया गया। यहाँ आकर उसे होश हुआ। ताकत की दवा भी दी गई। तब उससे फिर प्रश्न किया गया और उसने वही उत्तर दिया कि मेरा किसी भी डकैती से कोई सम्बन्ध नहीं है।

फ्रांस में कुछ शताब्दियाँ भर क्रान्ति के अन्तिम चरण तक फाँसी की सज़ा एक आम सज़ा थी। उन दिनों प्रत्येक शहर, प्रत्येक गाँव में एक स्थायी फाँसीघर सरे-आम होता था। जहाँ फांसी देने के बाद मनुष्य के शरीर को लटकता हुआ छोड़ दिया जाता था। और वह वहीं टंगा-टंगा सड़-गल कर मिट्टी में मिल जाता था। ये फाँसीघर कठिनाई से ही कभी बिना लाशों अथवा नर कंकालों के रह पाते थे। साधारणतया ये फाँसी-घर ऐसे बने होते थे कि पत्थर के दो खम्भे बना कर उनके ऊपरी सिरों पर लकड़ी की एक शहतीर रख दी जाती थी। इस पर अपराधी को रस्सों या जंजीर से बाँध कर लटका देते थे। इन फाँसी-घरों की संख्या अधिकारियों की इच्छानुसार रहती थी। ये फाँसी-घर प्रायः अधिक चालू सड़कों के किनारों पर तथा खास महत्वपूर्ण स्थानों पर बनाए जाते थे। पेरिस नगर में ये फाँसी घर जो राजनैतिक एवं साधारण अपराधी, दोनों ही के लिए काम में लाए जाते थे, नगर के उत्तर में एक ऊँचाई पर जर्मनी
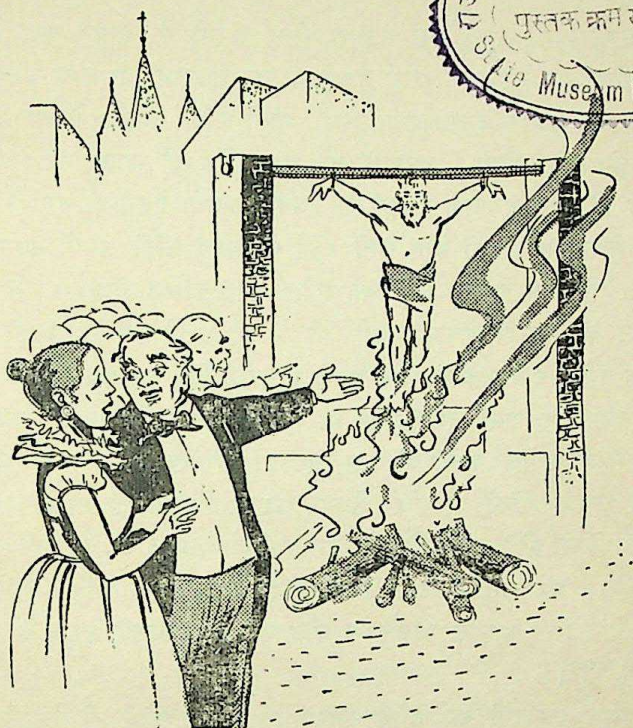
को जाने वाली चालू सड़क पर बने थे। माउन्ट फाकन की पहाड़ी तो फाँसी के लिए ही प्रसिद्ध हो गई थी। इस प्रसिद्ध स्थान पर राजाओं ने रूखे पत्थरों की दस-दस बारह-बारह तह जमा कर चालीस फुट लम्बा और पच्चीस-तीस फुट चौड़ा एक घेरा बनाया था। ऊपरी भाग में एक चबूतरा था जिस पर पत्थरों की सीढ़ियाँ चढ़ कर पहुँचा जाता था। इस के दरवाज़े पर भारी लोहे के फाटक लगे थे। इस चबूतरे के तीन ओर तीस-तीस फुट ऊंचे चौकोर खम्भे थे जो एक फुट मोटे पत्थर से बनाए गए थे। इन खम्भों पर दुहरे लकड़ी के शहतीर लगे हुए थे जिनमें साढ़े तीन फुट लम्बी लोहे की ज़ंजीर लटकी रहती थी। इसी में अभागे अपराधी झूलते थे। इनके और चबूतरों के बीच में लोहे की सलाखें जड़ी

होती थीं। एक लम्बा और मज़बूत ज़ीना खम्भों के सहारे बना होता था जिस पर चढ़ कर फाँसी लगाने वाला, अपराधी या लाश को ऊपर ले जा कर ज़ंजीर में लटका देता था। दोनों खम्भों के बीच में एक गहरा गढ़ा होता था, जिस में अपराधी की लाश फेंक दी जाती थी। दर्शक सहज ही इस भयानक स्थान की भयंकर उदासी देखते ही थर्रा उठता, जहाँ सैंकड़ों लाशों को कौए खाते रहते थे। यहाँ फाँसी लगाने का व्यय इस फाँसी स्थल के प्रबन्ध के व्यय से कई गुणा अधिक होता था। माउन्ट फ़ॉकन की पहाड़ी केवल फाँसी देने के ही उपयोग में नहीं आती थी, बल्कि वहाँ पर देश के विभिन्न भागों से फाँसी दिए हुए शवों को लाकर और चीर कर फैला दिया जाता था। अपराधियों की अंग-भंग की हुई लाशें—जो उबाली जाती थीं, या जिन का सिरच्छेद किया जाता था—चमड़े अथवा सींकों के बोरों में भर कर वहाँ लटका दी जाती थीं। वे वहाँ वर्षों लटकी रहतीं। पियरी-डेस-एसार्ट का १४१३ ई० में सिर काटा गया था। पर उसकी लाश उसके परिवार वालों को धार्मिक रीति से दफ़नाने के लिए माउन्ट फॉकन पर तीन वर्ष तक लटकी रहने के वाद दी गई थी।

जिस अपराधी को फाँसी देना होता था वह फांसी की टिकटी पर पीठ के वल लटका कर या बैठा कर, घोड़े पर रखे संदूक में बन्द लाया जाता था। उसके साथ-साथ पादरी और पीछे-पीछे फाँसी लगाने वाला जल्लाद चलता था। यहाँ आ कर उसकी गर्दन में तीन रस्सियाँ बाँधी जाती थीं। दो रस्सियाँ तो कनी उंगली के बराबर मोटी होती थीं जिन्हें 'टारच्यूअ्रस' (सताने वाली) कहते थे। इन में झटकेदार फंदा होता था। और तीसरी रस्सी को 'जेट' कहते थे, जो मृतक को टिकटी से नीचे खींचने के काम आती थी, जिस से उसका प्राणान्त हो जाता था। वध-स्थल पर पहुँचने पर फांसी लगाने वाला जल्लाद पहले चढ़ता था और अपराधी को रस्सी के द्वारा खींच कर उसे अपने पीछे क़दम से क़दम मिला कर ऊपर चढ़ने को मजबूर करता था। ऊपर पहुँच कर वह

फुर्ती से दोनों टॉरच्यूग्रस रस्सियों को टिकटी से बाँध देता था, ग्रौर घुटनों के धक्के से ग्रपराधी को टिकटी से धकेल देता था, जिससे वह झूल जाता था। ग्रभी जेट रस्सी को जल्लाद थामे रहता था। इसके बाद वह ग्रपराधी के बँधे हुए हाथों पर ग्रपने पैर रखता ग्रौर लगातार झटकों से उसका गला पूरी तौर से घोंट देता था।

: ४ :

इनक्विज़ीशन

इनक्विज़ीशन शब्द पूछ-ताछ, जाँच-पड़ताल के ग्रर्थों पर ग्राधारित है ग्रौर इन ग्रर्थों में ग्राज के सब ग्राधुनिक न्यायालय 'इनक्विज़ीशन' कहे जा सकते हैं। परन्तु उन दिनों यूरोप में पवित्र इनक्विज़ीशन एक धार्मिक ग्रदालत थी, जिसकी स्थापना चर्च ग्राफ रोम ने केवल नास्तिकता के ग्रभियोगों की छानबीन के ग्रभिप्राय से की थी। बाद में इसका उपयोग जादूगरों, चुड़ैलों ग्रौर दूसरे ऐसे ग्रपराधों के लिए भी किया गया, जिन्हें चर्च ग्राफ रोम धर्मविरुद्ध समझता था।

सब से प्रथम पवित्र इनक्विज़ीशन की स्थापना स्पेन ग्रौर उसकी दूसरी रियासतों में हुई। जो इतिहास में स्पेनिश इनक्विज़ीशन के नाम से विख्यात है, वहीं पर नाना प्रकार के रोमाँचकारी यन्त्रणादायक यन्त्रों की सृष्टि भी की गई ग्रौर यह उस काल में लगभग सभी पोपिश राज्यों में पृथक् ग्रौर महत्वपूर्ण संस्था बन गई।

धर्म-विद्रोह के ग्रपराधों के दण्ड विधान की परम्परा यूरोप में बहुत पुरानी थी। प्राचीनकाल में जो यहूदी ग्रविश्वासी पाए जाते थे, उन्हें पत्थरों की मार से मार डाला जाता था। ग्रारम्भिक तीन शताब्दियों तक निरन्तर ईसाइयों को धर्म-विद्रोह के रूप में दण्डित किया जाता रहा। उस काल ग्रनगिनत नर-नारी ईसाई होने के ग्रपराध में निर्दयतापूर्वक वध किए गए। इसके बाद रोमन कैथोलिक पोपों ने भी

ईसाई धर्म के अविश्वासियों को दण्ड देने आरम्भ किए। परन्तु आरम्भ में वे दण्ड राजाज्ञा से ही होते थे। चर्च का उनमें हाथ न था। बाद में धर्म दण्ड विधान चर्च ने अपने हाथों में ले लिया। सब से पूर्व पोप इन्नोसेन्ट प्रथम ने धर्म-दण्ड में हस्तक्षेप किया। उसने कुछ प्रदेशों के राजाओं को नास्तिकता के आरोप में अभियुक्त करार दिया और उसने यह भी घोषणा की कि नास्तिकता ईश्वर और चर्च दोनों के प्रति अपराध है और इसके बाद धर्म-दण्ड विधान चर्च का एक अंग बन गया। नौवें ग्रेगरी ने इस विधान में और अभिवृद्धि की और पादरियों की एक अदालत की स्थापना की, जो केवल नास्तिकों के अपराध की जाँच-पड़ताल के लिए थी। इसके बाद उसने साधुओं का एक जत्था यूरोप के रोमन कैथोलिक राज्यों में इस बात की जाँच-पड़ताल के लिए भेजा कि वे देखें कि कहाँ कितने नास्तिक धर्म विद्रोही हैं। पोप ने फ्रांस और अन्यत्र रहने वाले पादरी विशेषों को पत्र भी लिखे कि वे उस जत्थे के कार्य में सहयोग दें। इस प्रकार तेरहवीं शताब्दी में चर्च आफ रोम ने पवित्र इनक्विज़ीशन की स्थापना कर दी, जो शीघ्र ही समूचे यूरोप में फैल गया।

इंगलैण्ड में तेरहवीं शताब्दी से प्रथम नास्तिकता के थोड़े ही मामले हुए थे। हेनरी द्वितीय ने १२वीं शताब्दी में कुछ नास्तिकों को उनके माथे पर गर्म लोहे से चाभी का निशान दाग कर उन्हें देश निष्कासन दे दिया था। एडवर्ड द्वितीय के शासनकाल में १४वीं शताब्दी के आरम्भ ही में इंगलैण्ड में पवित्र इनक्विज़ीशन की स्थापना हुई। परन्तु चार्ल्स द्वितीय के इस प्रकार के दण्ड विधानों पर कुछ रोक-थाम लगा दी। पर स्काटलैण्ड में १७वीं शताब्दी तक उसका आतंक चलता रहा। एक सत्रह साल के युवक को नास्तिकता के अपराध में वहाँ फांसी दे दी गई थी। पोप ने इंगलैण्ड में ही सर्वप्रथम यन्त्रणागृह स्थापित किया, बाद में यूरोप-भर में वे फैल गए, परन्तु स्पेन ने इस मामले में हद कर दी।

पवित्र इनक्विज़ीशन के मुकदमे भी मज़ेदार होते थे। वहाँ न्याय का

तो केवल मज़ाक ही उड़ाया जाता था। अभियुक्त को गुप्त रीति से गिरफ्तार किया जाता था। मामले की सुनवाई इकतरफा पंचायती ढंग पर होती थी, जो गुप्त रखी जाती थी। इस न्यायालय का उद्देश्य ही विभीषिका उत्पन्न करना और अभियुक्त को अपराधी घोषित करना होता था। अभियुक्त को गवाहों के नाम नहीं बताए जाते थे, न उसे जिरह करने का अधिकार होता था। उन्हें केवल अपना बयान देने का ही अधिकार होता था। बयान पक्ष से कोई शहादत नहीं ली जाती थी। अपराधी के विरुद्ध गवाही देने से कोई व्यक्ति इन्कार नहीं कर सकता था। ऐसा करने पर वह भी अपराधी बन जाता था। जो गवाह अपने बयान से मुकर जाते थे, उन्हें झूठी गवाही के अपराध में दण्डित किया जाता था, किन्तु अभियुक्त के विरुद्ध उनकी गवाही प्रमाण मानी जाती थी। गवाह को दबाव डाल कर अपराध स्वीकृति के लिए विवश किया जाता था। इसके लिए उसे यन्त्रणागृहों में अनेक पीड़ादायक यन्त्रों से अमानुषी कष्ट दिए जाते थे। पोप द्वितीय ने इन यन्त्रणा गृहों में और इजाफा किया था।

दण्डाज्ञाएँ रविवार के दिन चर्च में खुले-आम सुनाई जाती थीं। ये सजाएँ भिन्न-भिन्न होती थीं, जैसे फाँसी, ज़िन्दा जलाया जाना, कोड़े मारना, जेल, प्रायश्चित्त, अपमानित करना, पतित घोषित करना, भारी जुर्माना, प्राण दण्ड पाए अपराधियों को दण्ड भुगताने के लिए राज्य सरकार के हाथों सौंप दिया था। क्योंकि चर्च रक्त नहीं छूता था, अपराधियों को राज्य के सुपुर्द करती बार वह राज्य से उनके लिए दया की अपील करने का भी ढोंग रचता था, परन्तु यदि सरकारी अफसर इस पर अमल करता तो उन्हें भी नास्तिकता का भोग भोगना पड़ता था।

अभियुक्तों को प्रायः आधी रात के समय गिरफ्तार किया जाता था। यदि गिरफ्तारी के समय अभियुक्त कुछ गड़बड़ी करता या शोर मचाता, तो उसके मुँह में एक यन्त्र ठूँस कर उसका मुखरोध कर दिया जाता था। यह एक ऐसा यन्त्र था जो मुँह में जा कर खुलता था और पीड़ित का मुँह

खुला का खुला रह जाता था। इसके बाद उसे पवित्र ग्राफिस में बंद कर दिया जाता था, फिर उसके इज़हार लिए जाते थे। ग्रावश्यकता होने पर यन्त्र द्वारा ग्रपराध स्वीकृति कराई जाती थी।

ग्रारेगां में नौवें ग्रेगरी ने १२३७-३८ में इनक्विज़ीशन की स्थापना की। परन्तु जनता ने उसका घोर विरोध किया। ग्रौर स्पेन में उसका सफल प्रचार उस समय तक नहीं हुग्रा जब तक कि बादशाह फर्डीनेण्ड ग्रौर रानी इसावेला ने उसे सन् १४८० में राष्ट्रीय ग्रान्दोलन का रूप नहीं दे दिया। बाद में उसमें ग्रौर इजाफे किए गए। जो तब तक जारी रहे जब तक कि नेपोलियन ने १८०८ में उन्हें समाप्त न कर दिया। परन्तु फर्डीनेण्ड सातवें ने सन् १८१४ में उसे फिर चलाना चाहा, ग्रन्त में १८३५ में उसे सर्वथा खत्म कर दिया गया।

पेनिनसुलेला युद्ध के समय जब फ्रैन्चों ने टोलेडो में प्रवेश किया तो जनरल लासल ने इनक्विज़ीशन के स्थानों को देखा। वहाँ यन्त्रणागृह में बहुत से पीड़ादायक यन्त्र रखे हुए थे। जो ग्रंगों को खींच कर जोड़ों को उखाड़ते या दोषी को पीस डालने के काम ग्राते थे। इनका उपयोग दोषी को मार डालने के लिए नहीं—ग्रधिक से ग्रधिक पीड़ा देने के लिए होता था। इनमें सबसे भयानक पीड़ादायक यन्त्र, गुप्त यन्त्रणागृह में था जिसे तहखाने की एक ताक में फिट किया गया था। इसे 'कुमारी मेरी' कहा जाता था। यह पदारियों द्वारा बनाई एक लकड़ी की स्त्री-मूर्ति थी। जिसकी भयानकता को साधारण दर्शक कुछ भी नहीं समझ सकता था। परन्तु उसमें भीतर तेज धार वाले छुरे लगे होते थे, जो पीड़ित के शरीर में घुस जाते थे। एक यन्त्र काठ का घोड़ा कहाता था। जोड़ खींचने के, हड्डी तोड़ने के, खाल उतारने के विविध भयानक यन्त्र थे। ऐसे यन्त्र प्रायः यूरोप के सभी देशों में थे। ग्रकेले स्पेन में १४८१ से १८०८ तक ३२,३९२ ग्रादमी जीते जलाए गए तथा १ लाख कैद किए गए। इन सभी की सम्पत्ति जब्त करके चर्च में मिला ली गई।

: ५ :

कुमारी विवियाना का मुकदमा

कुमारी विवियाना एक खुशमिज़ाज भले घर की लड़की थी। वह शिक्षिता और बुद्धिमती थी। आयु उसकी अभी पच्चीस से भी कम थी और अभी वह कुमारी ही थी। वह सुन्दरी और हंसमुख थी। एक दिन अपनी सहेलियों में उसने हंसी ही में कहा—"मैं नहीं जानती कि पोप मर्द है या औरत। उसके सम्बन्ध में मैंने अजीब-अजीब बातें सुनी हैं। रोज-रोज सुनती हूँ। मैं समझती हूँ कि वह कोई अति दुर्लभ जीव है।"

ये वाक्य पवित्र इनक्विजीशन तक जा पहुँचे। उसे खतरनाक, धर्म विद्रोही और नास्तिक माना गया और गिरफ़्तार कर के कैद में डाल दिया गया।

कुछ दिन बाद उसकी सुनवाई धर्म न्यायालय में हुई। उस समय धर्म न्यायालय के तमाम कर्मचारी, नगर का शेरीफ और सब दूसरे आफीसर, सेक्रेटरी तथा तीन धर्मदण्ड विधायक पादरी उपस्थित थे। अदालत का कमरा बिल्कुल अंधेरा था। उसमें न कोई खिड़की थी—न रोशनदान, केवल एक द्वार था, उसी से वायु और प्रकाश जितना आ सकता था, आता था। हाल के सामने के भाग में ईसा की एक मूर्ति क्रास पर लटकी हुई बनी हुई थी। जिस पर काले मखमल का एक चंदोवा तना था। उसके सामने टेबुल पर छह मोमबत्तियाँ आधारों में जल रही थीं। इसके एक ओर मोमबत्ती एक डेस्क पर रखे सेक्रेटरी अपराध का विवरण पढ़ने को बैठा था। तीन कुर्सियाँ बीच में तीनों धर्म न्यायाधीशों के लिए रखी थीं। हाल के चारों ओर दीवार के सहारे तमाशाइयों और दूसरों के बैठने के लिए कुर्सियाँ पड़ी थीं।

ज्योंही धर्म न्यायाधीशों ने प्रवेश किया—एक आफीसर ने पकार कर कहा—खामोश, खामोश, खामोश। पवित्र पिता पधार रहे हैं। तत्काल सन्नाटा छा गया। जो अंत तक रहा। अदालत में भय-आतंक—

और उत्सुकता का वातावरण था। पवित्र पिता सिर पर हैट रखे हुए वेदीं तक गए, घुटने टेक कर प्रार्थना की। धर्म संगीत गाया गया। तब पवित्र पिता अपने आसन पर बैठे—इसके बाद सब कोई आसन पर बैठे। तब सेक्रेटरी धर्म-सिंहासन के निकट आ खड़ा हुआ। पवित्र पिता ने चाँदी की घण्टी बजाई। यह अपराधी के हाजिर होने का संकेत था।

अपराधिनी उपस्थित की गई। दुःख और क्षोभ से वह पीली पड़ गई थी। उसके सम्मुख उसका अपराध पढ़ कर सुनाया गया। उस पर नास्तिकता, धर्म-विद्रोह और अपवित्रता के दोष लगाए गए थे। उसने कहा—"मैं निरपराध हूँ, इससे अधिक मैं कुछ नहीं कहना चाहती।"

इस पर उसे धर्म न्यायालय ने यह आज्ञा सुनाई—

"तुम्हें अभी जेल में रखा जाएगा। वहाँ तुम्हें एकान्त कोठरी में रहना होगा। बिछाने को पुआल, फूंस या बिछौना नहीं मिलेगा। नंगी जमीन पर सोना होगा। तुम्हें रोशनी नहीं मिलेगी। तुम्हारे हाथ बँधे रहेंगे और पैर नंगे। प्रथम दिन तुम्हें जौ की रोटी मिलेगी परन्तु पानी नहीं। दूसरे दिन तुम तीन बार पानी पी सकती हो, पर खाना नहीं मिलेगा। और इसी प्रकार उस समय तक चलेगा जब तक तुम स्वीकार न करो या मर न जाओ या धर्म-न्यायालय की दूसरी आज्ञा न मिले।"

उन दिनों इंगलैण्ड में तथा यूरोप में भी ऐसा कानून था कि अभियुक्त यदि अदालत में अपने बचाव में कुछ न कहे—या दोष स्वीकार न करे तो जूरी यह निर्णय करते थे कि अभियुक्त कुदरती गूंगा है या कि मकर कर रहा है। और इसके निर्णय के लिए उसे यन्त्रणागृह में भेज दिया जाता था--यहाँ उसे भाँति-भाँति की असह्य यन्त्रणाएं दी जाती थीं। वह या तो अपराध स्वीकार कर लेता था या वहीं मर जाता था। परन्तु ऐसे मामले बहुत ही कम होते थे कि अपराधी कुछ कहने से इन्कार कर दे। क्योंकि इसका स्पष्ट यह अभिप्राय होता था कि उसकी मृत्यु विविध यन्त्रणाएँ भोग कर होगी। अपराध स्वीकृति में यह लाभ था—कि तत्काल फांसी मिल जाती थी और अभियुक्त असह्य पीड़ाओं से बच जाता था। अपराध-

स्वीकृति के लिए उन अनेक पीड़ादायक यन्त्रों से काम लिया जाता था। एक बार तो एक जन्म से गूंगे बहरे को जानबूझ कर मकर करने वाला समझ कर इतनी यन्त्रणा दी गई कि वह मर गया। एडवर्ड तृतीय के राज्य काल में एक व्यक्ति को अपराध स्वीकृति के लिए चालीस दिन तक अनेक असह्य यन्त्रणाएं दी गईं और अन्त में निर्दोष प्रमाणित होने पर वह छोड़ दिया गया।

जिस बन्दीगृह में कुमारी विवियाना को रखा गया था—वह एक संगीन तिमंजिली इमारत थी। इमारत खूब बड़ी थी जिसमें अनगिनत गलियारे थे, जो भिन्न-भिन्न दिशाओं में जाते थे। इनके अगल-बगल भिन्न-भिन्न साइज की ७ से ८, ६ फीट तक की कोठरियां बनी थीं। प्रत्येक कोठरी में दो द्वार थे—भीतरी लोहे का और बाहरी लकड़ी का—जो बहुत मजबूत थे। कोठरियों में खिड़कियां न थी। कुछ पहली मंजिल में थी कुछ दूसरी मंजिल में। द्वार बन्द होने पर उनमें घुप अन्धकार हो जाता था। प्रत्येक में एक धुआँकश जैसा छेद होता था। जिसमें से आकाश एक बूंद के समान चमकता था, पर छेद वाली सुविधाजनक कोठरियों में केवल वे ही भाग्यवान कैदी रखे जाते थे जिनसे दोष स्वीकृति की अधिक आशा होती थी। यह छेद एक इन्च का होता था। प्रत्येक कोठरी तक पहुँचने का एक गुप्त मार्ग भी था। इस मार्ग में वे गुप्तचर गुप्त रूप से आते जाते थे जो अपराधियों के चरित्र का निरीक्षण करते थे। वे ऐसे जूते पहनते थे कि निश्शंक आ सकें। किसी-किसी कोठरी में दो कैदी रख दिये जाते थे और उनकी बातें छिप कर सुनने की चेष्टा इन छेदों द्वारा की जाती थी। कभी-कभी पवित्र पोप का कोई गुप्तचर ही कैदी बना कर इन कोठरियों में रख दिया जाता था, जो कैदी के मन की बात जानने की कोशिश करता था। बाद में उसका उपयोग गवाह के रूप में होता था। कोठरियों में प्रायः मनुष्य की हड्डियां बरसों से पड़ी थीं। बहुत कैदियों को तो इन कोठरियों में बन्द करके दीवार चुन दी जाती थी और वहीं उनकी कब्र बन जाती थी। यह कैदियों को खतम करने का आसान रास्ता था।

कुमारी विवियाना बड़ी जिद्दी और सख्तदिल लड़की थी। वह तीन सप्ताह इस मृत्यु पिंजरे में पड़ी रही। उसने दोष स्वीकार नहीं किया। मरी भी नहीं। तब एक दिन जेलर उनकी कोठरी में आया।

: ६ :

विवियाना रेडक्लिफ की स्वीकृति

"तुम क्या जेस्पर इमग्रेव हो ?" विवियाना ने खड़े होते हुए कहा।

"निस्संदेह," जेलर ने कहा—"मैं तुम्हें लेफ्टिनेन्ट और कौंसिल के पास ले चलने के लिए आया हूँ—क्या तुम तैयार हो ?"

विवियाना ने स्वीकृति सूचक सिर हिलाया। जेलर बन्दिनी को लेकर बाहर चला आया, जहाँ दो अफसर शोक सूचक पोशाक पहने इस ढंग से खड़े थे कि नीचे के तहखाने को जाने वाला घुमावदार तंग जीने का रास्ता खुला रहे। जीने को खत्म करके जेलर एक लोहे के फाटक के निकट पहुँचा। उसे खोला, कैदी को आगे करके उसके भीतर किया, और वह अब उसके साथ एक चौकोर दालान में जा पहुँचा—जिसकी छत भारी-भारी खम्भों पर आधारित थी—तथा जिसकी दीवारों पर यन्त्रणादायक यन्त्र सजे हुए थे। बाईं ओर मेज पर लेफ्टिनेन्ट और उसके तीन सहायक बैठे थे। कमरे में क़ब्र का-सा सन्नाटा था। दालान के निचले सिरे पर एक मोटा काला पर्दा पड़ा हुआ था। जो एक दूसरे गुप्त तहखाने की ओट कर रहा था, जिसमें रोशनी हो रही थी जो पर्दे की दरारों से छन कर इधर आ रही थी। साथ ही उस ओर से अस्पष्ट स्वर सुनाई दे रहा था, जिससे पता लगता था कि उधर भी कुछ लोग हैं। यह सब देख कर विवियाना के हृदय में चोर बैठ गया और वह ताड़ गई कि उसके साथ क्या होने वाला है।

परन्तु उसे इन सब बातों पर विचार करने का अधिक अवसर न मिला। उसने देखा कि टेबल पर बैठे हुए व्यक्ति उसी के सम्बन्ध में बात-

चीत कर रहे हैं। और बीच-बीच में दीवारों पर टंगे यन्त्रणा-यन्त्रों की ओर देख कर भी कुछ सलाह कर रहे हैं। विवियाना ने उन व्यक्तियों पर इस आशा से नज़र डाली कि इनसे दया की कुछ आशा की जा सकती है या नहीं। परन्तु उसने देखा कि वे सब उन दीवारों पर टंगे हुए यन्त्रणा यन्त्रों से कम भयानक नहीं हैं।

विवियाना का मन हुआ कि धरती फट जाय और वह उसमें समा जाय। इससे उसका उन भेड़ियों से तो बचाव हो ही जाय। वह समझ गई कि उनकी दया की अपेक्षा तो कुछ भी अच्छा हो सकता है। इस भयानक और दुर्भाग्यपूर्ण क्षण में उसके मस्तिष्क में बीते हुए हँसी-खुशी के दिन याद आ रहे थे। वह इन सब बातों की चिन्ता में डूबी ही हुई थी कि एकाएक लेफ्टीनेन्ट की कर्कश आवाज़ सुन कर उसका ध्यान भंग हुआ। वह अपने कर्कश और निर्दय लहजे में साथियों को अपना निर्णय सुना रहा था।

पिछली अदालत में इससे प्रथम विवियाना ने किसी भी प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा चुप्पी साध ली थी। केवल दोष अस्वीकार किया था परन्तु इस बार जब उस से प्रश्न किया गया, तो वह बहुत उत्तेजित हो गई और उसकी ज़बान तालू से सट गई। उसके मुँह से बोल न निकला। परन्तु थोड़ी देर में उसके होश-हवास ठिकाने लगे, उसे साहस हुआ और उसने लेफ्टिनेन्ट की ओर वैसी ही तेज़ नज़र से देखा कि जैसे वह उसकी ओर देख रहा था।

उसने कहा—"मेरे साथ और अधिक जिरह करना निरर्थक है। मुझे जो कहना था वह मैं कह चुकी।"

इस पर सर विलियम वाड ने अपने साथी को सम्बोधित कर के कहा—"माई लार्ड, तब तो मामले को तूल देना ही व्यर्थ है।"

"बिल्कुल व्यर्थ" उसके साथी ने कहा—"किन्तु क्या वह यह जानती है कि आगे क्या होने वाला है?"

इस पर विवियाना ने स्थिर स्वर में कहा –"जानती हूँ, ग्रापके कुछ भी कहने कीं ग्रावश्यकता नहीं ?"

तब सर विलियम वाड ने इमीग्रेव को कुछ इशारा किया। इस पर वह झपट कर ग्रागे बढ़ा ग्रौर उसने विवियाना के बाजू पकड़ लिए।

लेफ्टिनेन्ट ने कहा—"देखो, तुम्हें पर्दे के उस ग्रोर चेम्बर में जाना होगा। वहीं ग्रब तुम से प्रश्न पूछे जाएँगे। परन्तु हम लोग भी यहाँ तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठे रहेंगे। तुम यदि सत्य को प्रकट करना चाहो ग्रौर दोष स्वीकार कर लो तो एक बार चिल्लाना। यन्त्रणा रोक दी जाएगी ग्रौर मामला तय हो जायगा।

सारी बातें सुन कर विवियाना चुपचाप जेलर के साथ ग्राहिस्ता से चल दी। पर्दे के उस ग्रोर जा कर उसने देखा कि वहाँ दो पुरुष ग्रौर एक ग्रौरत उपस्थित हैं। यह स्त्री जेलर की पत्नी थी। वह लपक कर ग्रागे बढ़ी ग्रौर ग्राग्रहपूर्वक विवियाना से कहने लगी—"फजूल तकलीफ उठाने से क्या फ़ायदा है। सब कुछ स्वीकार कर लो।"

"तुम ग्रपना काम करो मैडम, इस लड़की को नंगा करो", जेलर ने सख्त ग्रावाज़ में कहा। वह यह कह कर ग्रपने दोनों ग्रादमियों सहित बाहर चला गया। उसकी स्त्री ने विवियाना के वस्त्र उतार कर एक रूमाल उसके कंधों पर बांध दिया ग्रौर ग्रपने पति को सूचना दे दी।

पर्दा दस फुट चौड़ा ग्रौर बारह फुट ऊँचा था। वह लगभग छत को छू रहा था, जो महराबदार थी ग्रौर उसके बीच में एक शहतीर पड़ा था जिसके दोनों सिरों पर चरखियाँ ग्रौर रस्सियाँ लटक रही थी। परन्तु ग्रभागिनी बन्दिनी का ध्यान उस लोहे के दस्तानों पर जाकर ग्रटक गया जो उनमें लगे हुए थे ग्रौर जो उससे कोई एक गज के ग्रन्तर पर थे। शहतीर के ठीक नीचे फ़र्श पर जहाँ ये दस्ताने जड़े हुए थे, लड़की के तीन टुकड़े रखे हुए थे। जो कुछ इंच मोटे थे ग्रौर एक-दूसरे के ऊपर रखे हुए थे।

फूट कर रोने लगी। बड़ी देर तक धरती में पड़ी वह रोती रही। फिर उसने सिर उठाया। काँच के टुकड़े उसके पास भूमि में पड़े थे। एक टुकड़ा उठा कर उसमें उसने अपना मुख देखा, चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ी हुई थीं। आँखों के आगे एक स्याह-सा मण्डल था। उसने काँपती हुई उँगलियों से चेहरे की झुर्रियों को छुआ। देर तक वह अपने चेहरे की झुर्रियों को देखती रही। फिर उसने कहा—"रानी होने पर भी तू बदसूरत बन गई, बुढ़िया बन गई, बासी हो गई !!! इंगलैंड की महामहिम रानी पर भी प्रकृति ने यह निर्दय वार किया। साधारण स्त्रियों की भाँति। कितना हीरा मोती स्वर्ण मेरे भण्डार में भरा है। आधे यूरोप की दौलत। पर इस सब को खर्च कर के भी मैं इन झुर्रियों को अपने मुँह पर से नहीं हटा सकती, जो प्रकृति के निर्दय हाथों ने बना दी है। और इंगलैंड की रानी आज अपनी ही आश्रिता दासी की अपेक्षा कंगाल है। उसके-सा रूप वह नहीं पा सकती। कहीं भी नहीं पा सकती। वह रूप न मेरा धन कहीं से खरीद सकता है। न धर्म दे सकता है, न इंगलैंड का सिंहासन। अजेय स्पेन पर मैंने विजय प्राप्त की, पर वह लजीली-सी भयभीत-सी छोकरी मुझे जीत ले गई। आज मेरा गर्व ढह गया। मैं समझती थी कि मैं रानी हूँ, मैं सर्वश्रेष्ठ हूँ। कम से कम इंगलैंड में मेरी समता की स्त्री नहीं है। मैं मूर्ख अपनी रानी के रूप को सर्वोपरि समझती रही। अपना औरत का रूप मैंने नहीं देखा। मैं समझती रही, वह रानी को प्यार करता है। पर मर्द प्यार रानी को नहीं, औरत को करता है। मैं नहीं जानती थी कि मैं एक औरत हूँ। कैसे आश्चर्य की बात है, रानी की सम्पूर्ण गरिमा को चीर कर यह औरत कहाँ से मेरे अन्दर से निकल आई—मुझे अपमान, निराशा और पराजय में ढकेलने के लिए। उसने फिर एक बार शीशे के टुकड़े में अपने मुख की झुर्रियों को देखा। देर तक देखती रही। और फिर वह आँख बन्द कर के अपनी एक असहाय, परित्यक्ता औरत की मूर्ति देखती-देखती सो गई। वहीं भूमि में। सारी गुण गरिमा, सम्बन्ध और राजपाट जैसे उसके लिए निर्जीव—निष्प्राण हो चुके थे,

निकम्मे निरर्थक हो चुके थे। और जैसे वह अपने प्राणों का आधार ही खो चुकी थी।

: १६ :

चिरबन्दिनी

इंगलैंड की महारानी एलिजाबेथ और स्काटलैंड की रानी मेरी स्टुअर्ट दोनों चचेरी बहनें थीं। हेनरी सातवें ने अपनी पुत्री मार्गरेट का विवाह स्काटलैंड के राजा जेम्स चतुर्थ के साथ कर दिया था। यह विवाह इस आशा से किया गया था कि दोनों पड़ोसी देशों के सम्बन्ध सुधरेंगे और पुरानी शत्रुता मिटेगी। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। स्काटलैंड बराबर इंगलैंड के प्रबल शत्रु और प्रतिस्पर्द्धी फ्रांस का ही साथ देता रहा। जब हेनरी आठवें का फ्रांस के साथ युद्ध ठना हुआ था, तब जेम्स चतुर्थ ने घात पाकर इंगलैंड पर आक्रमण कर दिया। परन्तु फ्लांउन के रणक्षेत्र में वह मारा गया। उसके बाद जब जेम्स पाँचवां स्काटलैंड की गद्दी पर बैठा, तो उसने भी फ्रांस ही से मित्रता रखी। और इंगलैंड पर आक्रमण कर दिया, परन्तु सालवेमास के युद्ध में वह परास्त हुआ, और कुछ दिन बाद मर गया।

जेम्स पाँचवें की मृत्यु होने पर उसकी पुत्री मेरी स्टुअर्ट स्काटलैंड की रानी हुई। उस समय वह दूध पीती बच्ची थी। इसलिए उसकी मां अभिभाविका बन कर राज्य-प्रबन्ध करने लगी। जब वह सयानी हुई, तब इंगलैंड की गद्दी पर एडवर्ड छठा बैठा था, जो हेनरी आठवें का बेटा था। उस समय उसके मामा ड्यूक आफ समरसेट ने-जो एडवर्ड का संरक्षक था, एडवर्ड का ब्याह मेरी से करना चाहा। पर प्रथम तो एडवर्ड अल्पायु था, दूसरे वह तपेदिक का रोगी था। तीसरे वह कट्टर प्रोटेस्टेन्ट था। इसलिए स्काटलैंड वालों ने इन्कार कर दिया। इस पर ड्यूक आफ समरसेट ने स्काटलैंड पर चढ़ाई कर दी। युद्ध में स्काटलैंड की पीनकी में पराजय हुई। फिर भी उन्होंने मेरी का ब्याह एडवर्ड से

करना स्वीकार नहीं किया। उसे गुप्त रूप से फ्रांस भेज दिया गया। जहाँ उसका पालन-पोषण रोमन कैथोलिक तरीके पर हुआ, और वह कट्टर रोमन कैथोलिक हो गई। इसके बाद बड़ी होने पर उसका विवाह फ्राँस के राजकुमार से कर दिया गया।

उन दिनों फ्राँस इंगलैंड का धर्मशत्रु था और राजनीतिक शत्रु भी। इस बीच रानी एलिजाबेथ की प्रेरणा से स्काटलैंड में प्रोटेस्टेन्ट मत का प्रचार किया गया। यद्यपि मेरी की माता ने इसे रोकने की पूरी चेष्टा की, कई प्रचारक जीते जलाए भी गए, पर वह लहर रुकी नहीं, और स्काटलैंड के लार्डों ने नए धर्म को अपना कर अपना एक दृढ़ संगठन कर लिया। इस बीच मेरी का पति फ्राँस का बादशाह हो गया और उसने स्काटलैंड में नए पंथ वालों को दबाने के लिए सेना भेजी। इसके विपरीत स्काटलैंड के लार्डों की प्रार्थना पर एलिजाबेथ ने भी अपनी सेना उनकी सहायतार्थ भेज दी।

लीथ के मैदान में दोनों सेनाओं का युद्ध हुआ और फ्राँस की सेना परास्त हुई और लौट गई। इस बीच मेरी की माता मार्गरेट की भी मृत्यु हो गई और राज्य-प्रबन्ध नए पंथ के लार्डों को सौंप कर अंग्रेज़ी फौज़ वापस चली आई। इन लार्डों ने राज्य-प्रबन्ध ही नहीं, चर्च का प्रबन्ध भी अपने हाथों में ले लिया। अब स्काटलैंड से फ्राँस का हस्तक्षेप सर्वथा दूर हो गया। स्काटलैंड का यह नया शासक-मण्डल एलिजाबेथ के प्रभाव में रहा। चर्च सुधार से स्काटलैंड की जनता भी प्रसन्न हुई और एलिज़ाबेथ की उपकृत हुई। इस प्रकार इतने दिन बाद अब इन दोनों देशों की पुरानी शत्रुता कम होने लगी।

सन् १५६१ में मेरी के पति फ्राँस के बादशाह की मृत्यु हो गई। मेरी की कोई संतान नहीं थी। इसलिए वह स्काटलैंड लौट आई और राज्य-प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। वह कट्टर कैथोलिक थी, इसलिए धर्म सुधार उसे रुचिकर न थे। परन्तु स्काटलैंड में अब नए पंथ की पक्की जड़ जम चुकी थी और प्रजा की उसी से सहानुभूति थी। इस

लिए न तो लार्डों ने, न प्रजा ने स्काटलैंड में रानी का स्वागत किया। साधारण प्रचारक तक रानी के लिए अपमानजनक शब्द कहने लगे। अपनी स्थिति ठीक रखने के लिए मेरी ने अपने चचेरे भाई लार्ड डार्नले से विवाह कर लिया। परन्तु शीघ्र ही यह विवाह दुखदायी हो उठा। दोनों एक दूसरे के चरित्रों पर संदेह और आक्षेप करने लगे। इन्हीं दिनों रिटजियो नामक एक सुन्दर पुरुष से मेरी की बहुत घनिष्ठता हो गई। एक दिन उसके पति ने मेरी के शयनागार में रंगे हाथों उसे धर दबोचा और उसे मेरी के सम्मुख ही उसी के कमरे में निर्दयतापूर्वक वध कर डाला। मेरी क्रोध और क्षोभ से पागल हो गई और उसने प्रतिज्ञा की कि वह इसका बदला लेगी।

कुछ दिन बाद ही मेरी ने अपने एक दूसरे सरदार अर्ल आफ वारवर्थ से आशनाई कर ली। और वे दोनों डार्नले से पिण्ड छुड़ाने का उपाय सोचने लगे। जो अब रानी की आँखों का शूल बना हुआ था। डार्नले एडिनबरा से कुछ दूर कर्कोफील्ड नामक स्थान में अपने निजी मकान में रहता था। अभी रानी के पिछले यार को मरे पूरा एक वर्ष भी नहीं बीता था कि उसने पति के साथ घुल मिल कर रहना शुरू कर दिया और एक दिन बेहद प्रेम प्रकट करके उसे खूब शराब पिलाई। और तब वह एक भोज में सम्मिलित होने का बहाना करके वहाँ से चल दी। चलती बार उसने ये शब्द कहे—"आज ही के दिन गत वर्ष रिटजियो का खून किया गया था।" उसके इन शब्दों तथा उसके नेत्रों के भयानक भाव तथा व्यंगपूर्ण मुस्कराहट से उसके पति को संदेह तो हुआ। वह घबराया, पर बेहद शराब पीने से उसमें सोचने की कुछ भी सामर्थ्य न रह गई थी। मकान के तहखाने में बारूद बिछा दी गई थी। उसमें तुरन्त आग लगा दी गई। एक भयानक धड़ाका हुआ और महल की धज्जियाँ उड़ गईं। अभागा डार्नले चालीस गज दूर एक पेड़ से जा टकराया। उसका सिर चकनाचूर हो गया।

इस रोमांचकारी घटना के कुछ ही दिन बाद १५ जून को रानी

ने अपना ब्याह लार्ड वोर्थवेल से धूम-धाम से कर लिया।

रानी से स्काटलैंड के लार्ड और प्रजावर्गीजन कोई भी प्रसन्न न था। अब इस दुहरी भयानक कार्यवाही से सबका मन रानी के प्रति घृणा और विद्रोह से भर गया। प्रकट था कि अर्ल आव वोर्थवेल की सहायता से रानी ने अपने पति की क्रूर हत्या की थी। फिर विवाह का अभिनय तो निर्लज्जता की पराकाष्ठा थी। विवाह के बाद ही प्रजा और लार्डों ने मिल कर विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। रानी अभी अपनी सुहागरात भी अच्छी तरह न मना सकी थी, कि गिरफ्तार कर ली गई और लोचेलवेल के दुर्ग में कैद कर ली गई। जहाँ से वह अब भाग निकली थी।

परन्तु उसके भाग्य ने साथ नहीं दिया। उसके मित्रों ने बहुत जोड़-तोड़ लगाए। सेना एकत्र की, अन्त में ग्लासगो के निकट लैंगसाइट के मैदान में उसका सौभाग्य-सूर्य सदा को अस्त हो गया। रीजेन्ट मरे ने उसकी सेना को पूरी तौर पर विध्वंस कर दिया। रानी ने कर्थकाट के दुर्ग से अपनी सेना का विनाश देखा। उसकी आशालता मुरझा गई, अब उसे इंग्लैंड की महारानी अपनी बहिन एलिज़ाबेथ का ही आसरा था। अपने निजी सेवकों के साथ घोड़े पर सवार होकर वह इंग्लैंड को भागी। और अपने को एलिज़ाबेथ की दया पर छोड़ दिया। एलिज़ाबेथ ने उस पर अधिक दया न की, और उसने उसे लाकलेवल कैसल में कैद कर लिया, जहाँ उसे बन्दी रहते अब बीस बरस बीत रहे थे।

: १७ :
प्राणदण्ड

इंग्लैंड के एकान्त दुर्ग में कैद स्काटलैंड की रानी के लम्बे बीस बरस कितने नीरस, कितनी उत्तेजना से भरपूर और कितने कड़ुवे बीते थे, इसका विवरण देना असम्भव है। यद्यपि दुःख दर्द और समय ने उसे बड़े-बड़े झकझोरे दिए थे परन्तु उसका रूप लावण्य वैसा ही बना हुआ था। एलिज़ाबेथ और उसमें बड़ा अन्तर था। एलिज़ाबेथ सुन्दर न थी

श्रौर यह परम सुन्दरी थी। इतनी श्रायु होने पर, इतना वेदनापूर्ण जीवन व्यतीत करने पर भी श्रभी भी उसमें श्राकर्षण था। उसकी श्राकृति श्रब भी देखने वालों को मोहित करती थी। परन्तु एलिज़ाबेथ जैसी राज-नीति निपुण, रुश्राब श्रौर दबदबे की स्त्री थी, मेरी उतनी ही साधारण दुर्बल हृदय की खटपटी श्रौर तुच्छ स्त्री थी। सब से बड़ी बात यह थी कि रानी एलिज़ाबेथ कट्टर प्रोटेस्टेन्ट थी श्रौर मेरी कट्टर रोमन कैथोलिक। इन दोनों के वैमनस्य का एक यह भी गूढ़ कारण था। परन्तु एक श्रौर बात इससे भी श्रधिक गम्भीर थी।

रानी एलिज़ाबेथ का जन्म हेनरी श्रष्टम श्रौर रानी एनीवोलीन से हुश्रा था। हेनरी ने रानी एनीवोलीन से बिना ही पोप की श्राज्ञा के विवाह किया था, इसलिए कैथोलिक लोग इस विवाह को विधि-विहित नहीं समझते थे। श्रौर उनके मत से एनीवोलीन की पुत्री रानी एलिज़ाबेथ को भी वे इंगलैंड की गद्दी की सही श्रधिकारिणी नहीं मानते थे। मेरी, हेनरी श्राठवें की बड़ी बहिन मार्गरेट की पुत्री थी। इसलिए, एलिज़ाबेथ यदि इंगलैंड की श्रवैध उत्तराधिकारिणी प्रमाणित होती तो मेरी ट्यूडर वंश की प्रतिनिधि के रूप में इंगलैंड के सिंहासन की प्रकृत श्रधिकारिणी थी। रानी मेरी चाहे जितनी दुर्वल हृदय हो, पर वह महत्वाकांक्षिणी श्रौर खटपटी श्रवश्य थी। इंगलैंड में जब से मेरी कैद हुई थी, तभी से रोमन कैथोलिक दल इंगलैंड की गद्दी पर उसके इस दावे की चर्चा दबी ज़बान से करते रहते थे। परन्तु एलिज़ाबेथ बड़ी दबग स्त्री थी। वह बुद्धिमती श्रौर दूरदर्शिणी भी थी। वह इस धर्मसंकट से बेखबर न थी। इसीलिए उसने गद्दी पर बैठने के बाद सब से पहले चर्च का निर्णय किया था श्रौर यह बात खुले श्राम श्रागे लाई गई थी कि सरकारी धर्म क्या हो। वह न कैथोलिकों को श्रौर न प्रोटेस्टेन्टों को ही श्रप्रसन्न करना चाहती थी। हाँ, वह थी कट्टर प्रोटेस्टेन्ट। परन्तु प्रजा के लिए उसने एक बीच का मार्ग निकाला था तथा नेशनल चर्च की नींव डाली थी, जिसे चर्च श्राफ इंगलैंड के नाम से पुकारा जाता था। इसमें दोनों मतों की क्रिया-विधि

थी परन्तु पोप से सम्बन्ध बिलकुल विच्छिन्न कर दिया गया था। इसके अतिरिक्त उसने एक एक्ट आफ सुप्रीमेसी पार्लियामेंट से पास कराया था, जिसके आधार पर इंगलैंड का अधीश्वर ही चर्च आफ इंगलैंड का अधिष्ठाता होता था। इसके बाद उसने एक्ट आफ युनिफार्मेरी बना कर "बुक आफ कामन प्रेयर" का प्रयोग समस्त गिरजाघरों में अनिवार्य ठहरा दिया था। एलिज़ाबेथ के इस निर्णय से दोनों धर्मों के लोग सन्तुष्ट हो गए थे, परन्तु कट्टर कैथोलिक और पक्के प्रोटेस्टेन्ट विरोधी थे। पर रानी ने ऐसे विरोधियों को दण्ड देने के लिए एक पृथक् न्यायालय स्थापित किया था। एलिजाबेथ के इस बुद्धिमानी और दूरदर्शितापूर्ण धार्मिक निर्णय से पिछले पचास वर्षों से चले आते धार्मिक झगड़े खत्म हो गए थे और लोग धर्म विभीषिका से मुक्त हो कर अपने काम-धंधे में विकास करने लगे थे जिससे इंगलैंड की जनता को बेहद लाभ हुआ था।

परन्तु मेरी और उसके समर्थकों को चैन न था। मेरी के इंगलैंड में रहने से कैथोलिकों का साहस बढ़ गया था और वे अब धीरे-धीरे यह षड्यन्त्र रचने लगे कि एलिज़ाबेथ को मार कर मेरी को इंगलैंड के सिंहा-सन पर बिठाएँ। पर एलिज़ाबेथ का गुप्तचर विभाग निपुणता से काम कर रहा था। इस परिस्थिति से लाभ उठा कर पोप ने एलिज़ाबेथ को पतित घोषित कर दिया था और जेसोइट लोग इंगलैंड में खुले आम यह कहते फिरते थे एलिज़ाबेथ के विरुद्ध विद्रोह करना धर्म है। परन्तु इस स्थिति में एलिज़ाबेथ घबराई नहीं। उसने कड़े हाथों से अपराधियों को दण्ड देने की व्यवस्था की।

बड़े-बड़े लार्ड और जनता के प्रतिनिधि उसके साथ थे। उसकी समन्वय नीति, शौर्य और धैर्य पर सभी श्रद्धावान् थे। यद्यपि उसके चरित्र दौर्बल्य की बातें भी कही जाती थीं, परन्तु उसकी दृढ़ता भी विख्यात थी। आर्मेडा की विजय ने रानी के प्रति सब को श्रद्धावान् बना दिया था। फिर उसके मन्त्री और सहायक भी सावधान और योग्य थे। सब ने हस्ताक्षर किए कि वे तन मन धन से रानी के साथ हैं। अन्त में एक ऐसे

षड्यन्त्र का पता लगा जो रानी एलिज़ाबेथ को मार डालने के लिए किया गया था, और जिसमें मेरी स्टुअर्ट सम्मिलित थी। मेरी पर कोर्ट में मुकदमा चलाया गया और वह अपराधिनी प्रमाणित हुई, जहाँ से उसे प्राणदण्ड की आज्ञा हुई और एलिज़ाबेथ ने काँपते हाथों उसका सिर काट लेने के वारंट पर हस्ताक्षर कर दिए।

लार्ड सेल्सबरी, अर्ल आफ केन्ट, नार्थम्पटन शायर के मेअर मृत्यु सन्देश लेकर मेरी के पास पहुँचे। उन्होंने गम्भीरता पूर्वक संक्षेप में वह सन्देश सुनाया और यह भी सूचना दी कि हमारे साथ आपका वध देखने के लिए एक शाही कमीशन भी है। और कल प्रातःकाल वह इस दुखदाई घटना के लिए तैयार रहे।

यह भीषण संदेश उस पर वज्रपात की भाँति गिरा। ऐसा प्रतीत होता था कि उसका हृदय फट जायगा। उसने घृणा और कष्ट से सिर ऊँचा करके कहा—कृपया मेरे चिकित्सक को तुरन्त मेरे पास भेज दीजिए।

मृत्यु सन्देशवाहक क्षण भर कुछ सोचते रहे। उन्हें भय था कि कहीं वह रात में आत्मघात न कर ले, या कहीं ऐसा न हो कि वह वधस्थल तक जाने से इन्कार कर दे और उसे बलपूर्वक ले जाना पड़े। परन्तु उन्होंने उसकी आज्ञा का पालन किया। वे चले गए। रानी का चिकित्सक आया। मेरी उसे फ्राँस में फैली हुई अपनी रकम के सम्बन्ध में देर तक आदेश देती रही।

अब उसका अन्त समय निकट था, जिसके लिए वह चिरकाल से भयभीत थी। अब तक आशा की जो एक क्षीण रेखा थी, वह अब विलुप्त हो चुकी थी। अब, जिस कार्य के लिए उससे तैयार होने को कहा गया था, और जिसके भयानक अस्तित्व का उसे सामना करना था, उसने उसकी तमाम दुश्चिन्ताएँ, बदले की भावनाएँ, विरोध की चेष्टाएँ, प्रतिद्वन्द्वी के सिंहासन पर बैठने की सुखद कल्पनाएँ, सब कुछ एक साथ ही नष्ट कर दी थीं। उसने बहुत गहरी चाल खेली थी, पर पासा उल्टा पड़ा था। उसका दुर्भाग्य विद्रुप से हँस रहा था।

उसका पादरी किले के उस पार था। कमिश्नर लोग चाहते थे कि वह मृत्यु समय प्रोटेस्टेन्ट विश्वास के अनुसार प्रार्थना करे। उन्होंने अपना पादरी उसके पास भेजा भी, पर रानी ने उसे नामंजूर कर दिया। अपने पादरी को बुलाने की उसे आज्ञा नहीं मिली। इसलिए उसने उसे पत्र लिखा—धर्म-पिता, मेरी इच्छा अपने विश्वास और धर्म की रीति पालन करने की है। आप मेरे पास आ नहीं सकते। इसलिए मैं साधारण स्वीकृति पर ही सन्तोष करूँगी। परन्तु आप रात भर सावधान रह कर मेरे लिए प्रार्थना करें।

रात का भोजन उसने अपनी दासी के साथ प्रसन्न-मन से किया। यही उस बदनसीब का अन्तिम भोजन था। भोजन कर चुकने पर उसने अपनी दासी से कहा—क्या मैं तुम्हारा विश्वास कर सकती हूँ ?

"अवश्य श्रीमती"

"मेरे पास एक पत्र और दो हीरे हैं। मैं उन्हें मैण्डीज़ा के पास भेजना चाहती हूँ।"

दासी ने पत्र और हीरे लेकर अपने वस्त्रों में छुपा लिए और ठिकाने पर पहुँचाने का वादा किया। एक हीरा मेन्डोजा के लिए था, दूसरा फिलिप के लिए। यह इस बात का चिन्ह था कि वह निरपराध मारी जा रही है और उसके बाद उसके मित्रों और नौकरों की देख-भाल रखी जाय। उसने याद कर-कर के अपने प्रत्येक नौकरों और मित्रों के नाम बताए। अरण्डेल, पैगट' मोरगन, विशप आफ ग्लासगो, श्रोग मारटन, रोज़ का पादरी, दोनों सेक्रेटरी, वे सहेलियाँ और दासियाँ, जो कैद में उसके साथ रही थीं, सबको उसने बताया। और किस-किसको कितना देने की उसकी इच्छा है, यह भी फिलिप को लिख दिया। अपने विश्वास पात्रों पर उदारता दिखाना उसका स्वभाव था। आज भी वह उन्हें भूली नहीं थी। इसके बाद उसने अपने नए पुराने समस्त शत्रुओं को याद किया, और उन्हें धन्यवाद दिया। अब उसका किसी से द्वेष न था। उसने दासी से कहा—फिलिप से कहना—कि यह उसकी मां की आखिरी प्रार्थना है,

ग्रौर मैं चाहती हूँ कि इसे तुम गुप्त रक्खो। यह संदेश मेरी की मृत्यु के उदलक्ष्य में नहीं है किंतु इंगलैंड के भावी युद्ध के उपलक्ष्य में है। यह ग्रनिवार्य विग्रह है जो तुम्हारे लिए गौरव की बात है। जब तुम विजय प्राप्त कर लो तो तुम उन दुर्व्यवहारों को याद रखना, जो सिसिल लेसेस्टर ग्रौर बर्लसिगभ ने मेरे साथ किए हैं। लार्ड हन्टिंगटन ने टटवर ग्राने से पूर्व पन्द्रह वर्ष तक मेरे साथ कैसा व्यवहार किया था, ग्रौर सर ग्रमयास पोलट ग्रौर सेक्रेटरी वेड ने कैसे-कैसे ग्रत्याचार किए थे, यह याद रखना।

वह रात भर व्यस्त रही। काम बहुत था ग्रौर समय कम। ग्राधी रात के बाद उसने एक पत्र फ्रांस के बादशाह को लिखा, उसमें लिखा था—इंगलैंड के सिंहासन पर मेरा ग्रधिकार है। मैं ग्रधर्म से धर्म के लिए मारी जा रही हूँ। निर्दोष। ग्रंत में उसने उन रुपयों के सम्बन्ध में लिखा था, जो बादशाह के पास जमा थे ग्रौर बताया था कि उसके मरने के बाद उनके ग्रनुचरों को किस तरह दिया जाय।

पत्र लिख कर वह सो गई ग्रौर प्रातःकाल तक सोती रही।

: १८ :

खूनी कुल्हाड़ा

प्रातःकाल ज्योंही ग्राठ का घड़ियाल बजा, मेयर दो ग्रादमियों के साथ भीतर ग्राया। सामने मेरी स्टुग्रर्ट की मोहनी मूर्ति खड़ी थी। उसे देख वे मुग्ध जड़ हो गए। एक ग्रपूर्व तेज ग्रौर सौंदर्य उसके चेहरे पर छा रहा था। वह सुन्दर सफेद ग्रतलस की सदा की पोशाक के स्थान पर काली साटन की पोशाक पहने हुए थी। उसमें झालर टंकी थी ग्रौर मखमल की गोट लगी थीं। उसके नकली बाल बड़ी सुघराई से बँधे हुए थे। सिर ग्रौर कमर पर लटकता हुग्रा सफेद दुपट्टा पड़ा था। गर्दन में सोने का एक नैकलेस था ग्रौर हाथों में हाथीदाँत का सुन्दर क्रास। उसकी कमर में एक पेटी थी जिसमें जवाहरात में जड़ी पवित्र प्रार्थनाएँ ग्रंकित थीं।

पोलेट के दो आदमियों के साथ वह चली। उसके आगे मेयर था। वह दालान में आई, जहाँ से सेल्सबरी, कैन्ट, पोलेट, डूरी और दूसरे उच्चपदस्थ राजपुरुष उसकी प्रतीक्षा में खड़े थे। सर रावर्ट का भाई एण्ड्रूज मेल विल्ले, जो उसका प्रधान गृह प्रबन्धक था, वहाँ घुटने टेके आँसू बहा रहा था।

रानी ने कहा—मेल विल्ले, रोओ मत। खुश होओ कि मैं एक रोमन कैथोलिक की भाँति मर रही हूँ। मेरे मित्रों और पुत्र से कहना कि स्काटलेंड के सिंहासन का मैंने कोई अनिष्ट नहीं किया है।

मेन विल्ले ने सिसकियाँ लेते हुए कहा—विदा, अलविदा।

"पवित्र पिता और मेरी सहेलियाँ कहाँ हैं, मैं चाहती हूँ कि वे मुझे मरती हुई देखें।"

"मुझे भय है कि कहीं वे चीख मार कर बेहोश न हो जायँ, मैं समझता हूँ कि वे अपने रूमालों को आप के रक्त में रंगने का प्रयत्न करेंगे," कैन्ट ने कहा।

"वे शान्त और आज्ञाकारी रहेंगे, विश्वास रखिए। क्या तुम्हारी रानी एलिज़ाबेथ मेरी इस तुच्छ प्रार्थना को भी स्वीकार नहीं कर सकती?"

"श्रीमती, मुझे खेद है, बहुत खेद........।" कैन्ट ने कहा।

रानी ने रोते हुए कहा—"तुम जानते हो—मैं तुम्हारी रानी की बहिन और स्काटलैंड की रानी हूँ। सप्तम हेनरी का रक्त हम दोनों ही के शरीर में है। विवाह के बाद मैं फ्रांस की रानी बनी। फिर स्काडलैंड का मुकुट मेरे मस्तक पर रखा गया।"

"श्रीमती, आप केवल छः व्यक्तियों को अपने अंतिम समय में उपस्थित रख सकती हैं।"

रानी ने अपने चिकित्सक, वरगन, एण्ड्र्यू मेल विल्ले, गोरियन, और दो स्त्रियों के नाम गिना दिए। फिर उसने एक ठण्डी सांस ली और कहा—"अच्छा तो अब हमें चलना चाहिए। उसने एक गार्ड के

और मैं चाहती हूँ कि इसे तुम गुप्त रक्खो। यह संदेश मेरी की मृत्यु के उदलक्ष्य में नहीं है किंतु इंगलैंड के भावी युद्ध के उपलक्ष्य में है। यह अनिवार्य विग्रह है जो तुम्हारे लिए गौरव की बात है। जब तुम विजय प्राप्त कर लो तो तुम उन दुर्व्यवहारों को याद रखना, जो सिसिल लेसेस्टर और बर्लसिगभ ने मेरे साथ किए हैं। लार्ड हन्डिंगटन ने टटवर आने से पूर्व पन्द्रह वर्ष तक मेरे साथ कैसा व्यवहार किया था, और सर अमयास पोलट और सेक्रेटरी वेड ने कैसे-कैसे अत्याचार किए थे, यह याद रखना।

वह रात भर व्यस्त रही। काम बहुत था और समय कम। आधी रात के बाद उसने एक पत्र फ्रांस के बादशाह को लिखा, उसमें लिखा था—इंगलैंड के सिंहासन पर मेरा अधिकार है। मैं अधर्म से धर्म के लिए मारी जा रही हूँ। निर्दोष। अंत में उसने उन रुपयों के सम्बन्ध में लिखा था, जो बादशाह के पास जमा थे और बताया था कि उसके मरने के बाद उनके अनुचरों को किस तरह दिया जाय।

पत्र लिख कर वह सो गई और प्रातःकाल तक सोती रही।

: १८ :

खूनी कुल्हाड़ा

प्रातःकाल ज्योंही आठ का घड़ियाल बजा, मेयर दो आदमियों के साथ भीतर आया। सामने मेरी स्टुअर्ट की मोहनी मूर्ति खड़ी थी। उसे देख वे मुग्ध जड़ हो गए। एक अपूर्व तेज और सौंदर्य उसके चेहरे पर छा रहा था। वह सुन्दर सफेद अतलस की सदा की पोशाक के स्थान पर काली साटन की पोशाक पहने हुए थी। उसमें झालर टंकी थी और मखमल की गोट लगी थीं। उसके नकली बाल बड़ी सुघराई से बँधे हुए थे। सिर और कमर पर लटकता हुआ सफेद दुपट्टा पड़ा था। गर्दन में सोने का एक नैकलेस था और हाथों में हाथीदाँत का सुन्दर क्रास। उसकी कमर में एक पेटी थी जिसमें जवाहरात में जड़ी पवित्र प्रार्थनाएँ अंकित थीं।

पोलेट के दो आदमियों के साथ वह चली। उसके आगे मेयर था। वह दालान में आई, जहाँ से सेल्सबरी, कैन्ट, पोलेट, डूरी और दूसरे उच्चपदस्थ राजपुरुष उसकी प्रतीक्षा में खड़े थे। सर राबर्ट का भाई एण्ड्रूज मेल विल्ले, जो उसका प्रधान गृह प्रबन्धक था, वहाँ घुटने टेके आँसू बहा रहा था।

रानी ने कहा—मेल विल्ले, रोओ मत। खुश होओ कि मैं एक रोमन कैथोलिक की भाँति मर रही हूँ। मेरे मित्रों और पुत्र से कहना कि स्काटलेंड के सिंहासन का मैंने कोई अनिष्ट नहीं किया है।

मेन विल्ले ने सिसकियाँ लेते हुए कहा—विदा, अलविदा।

"पवित्र पिता और मेरी सहेलियाँ कहाँ हैं, मैं चाहती हूँ कि वे मुझे मरती हुई देखें।"

"मुझे भय है कि कहीं वे चीख मार कर वेहोश न हो जायँ, मैं समझता हूँ कि वे अपने रूमालों को आप के रक्त में रंगने का प्रयत्न करेंगे," कैन्ट ने कहा।

"वे शान्त और आज्ञाकारी रहेंगे, विश्वास रखिए। क्या तुम्हारी रानी एलिजाबेथ मेरी इस तुच्छ प्रार्थना को भी स्वीकार नहीं कर सकती?"

"श्रीमती, मुझे खेद है, बहुत खेद........।" कैन्ट ने कहा।

रानी ने रोते हुए कहा—"तुम जानते हो—मैं तुम्हारी रानी की बहिन और स्काटलैंड की रानी हूँ। सप्तम हेनरी का रक्त हम दोनों ही के शरीर में है। विवाह के बाद मैं फ्रांस की रानी बनी। फिर स्काडलैंड का मुकुट मेरे मस्तक पर रखा गया।"

"श्रीमती, आप केवल छः व्यक्तियों को अपने अंतिम समय में उपस्थित रख सकती हैं।"

रानी ने अपने चिकित्सक, वरगन, एण्ड्रचू मेल विल्ले, गोरियन, और दो स्त्रियों के नाम गिना दिए। फिर उसने एक ठण्डी सांस ली और कहा—"अच्छा तो अब हमें चलना चाहिए। उसने एक गार्ड के

कंधे का सहारा लिया ग्रौर ग्रर्ल के साथ सीढ़ियाँ उतरने लगी।

सब लोग दालान तक पहुँचे। मेरी के प्राणदण्ड का समाचार सर्वत्र लंडन में फैल गया था ग्रौर दालान के बाहर ग्रपार भीड़ ग्रा जुटी थी। चुने हुए केवल तीन सौ सरदारों ग्रौर लार्डों को इस कत्ल के साक्षी स्वरूप ग्रंदर ग्राने दिया गया था। मेज कुर्सियाँ हटा दी गई थीं। चिमनियों से ग्राग की लपटें निकल रही थीं। दालान के ऊपरी हिस्से में ग्रंगीठी के पीछे की तरफ वध मंच बनाया गया था। जो १२ फीट लम्बा-चौड़ा ग्रौर ढाई फीट ऊंचा था। वह एक काले कपड़े से ढ़का था ग्रौर काले ही कपड़े से मढ़ी हुई एक लकड़ी की पाढ़ इस पर जड़ी गई थी। मेयर के गार्ड उसके चारों तरफ घूम-घूम कर पहरा दे रहे थे ग्रौर भीड़ को उधर ग्राने से रोक रहे थे। पाढ़ पर सिर रखने की टिकटी थी। वह भी काले कपड़े से मढ़ी हुई थी। इसके पीछे एक चौकी बिछी थी ग्रौर उसके पीछे एक काली कुर्सी रखी हुई थी, जिसके दाहिनी ग्रोर लार्डों के लिए दो कुर्सियाँ वैसी ही रक्खी थीं। पाढ़ के सहारे एक विशाल कुल्हाड़ा रक्खा हुग्रा था ग्रौर दो निश्चल भयानक जल्लाद उसके निकट खड़े थे।

रानी इस तरह उधर की ग्रोर बढ़ रही थी जैसे वह कोई गम्भीर पार्ट करने जा रही हो। उसके चेहरे पर इस समय कोई विषाद की रेखा न थी। वह शांत ग्रौर गम्भीर थी। पाढ़ पर पहुँच कर उसने मुस्कुरा कर इधर-उधर देखा ग्रौर बैठ गई। सेल्सबरी ग्रौर कैन्ट के ग्रर्ल भी बैठ गए।

ग्रब बियेल ने जोर से ग्राज्ञापत्र पढ़ कर सुनाया। उस जन समुद्र में मेरी स्टुग्रर्ट ही एक ऐसा स्त्री थी जिसे ग्रपनी मृत्यु के शब्दों में दिलचस्पी नहीं थी।

"श्रीमती," लार्ड सेल्सबरी ने ग्राज्ञापत्र सुनाने के बाद कहा—"ग्रापने सुन लिया कि हम किस ग्राज्ञा के पालन करने को बाध्य हैं।"

"तुम ग्रपना कर्तव्य पूरा करो," यह कह कर वह प्रार्थना के लिए उठ खड़ी हुई।

पीटर्सबर्ग का पादरी डा० फ्लेचर उठा और पाढ़ तक पहुँचा। उसने मृदु मन्द स्वर से कहा— 'श्रीमती, उदार स्काटलैंड की महारानी····· ।"

वह और कुछ कहना ही चाहता था कि रानी ने बीच ही में बात काट कर कहा—"पादरी महोदय, मैं एक कैथोलिक हूँ और कैथोलिक की भांति ही मरना चाहती हूँ। आप मुझे मेरे निश्चय से विचलित करने का व्यर्थ प्रयत्न मत कीजिए। आपकी प्रार्थना से मेरा कोई लाभ नहीं होगा।"

"श्रीमती, आप अपने विचार बदलें। अपने पापों का प्रायश्चित्त करें और प्रभु मसीह की शरण जायँ," पादरी ने आगे बढ़ते हुए कहा।

रानी ने लड़खड़ाती आवाज़ में कहा—"अधिक कष्ट न करें, पादरी महोदय, मुझे अपने धर्म पर ही विश्वास है।" इस पर लार्ड सेल्सबरी ने आगे बढ़ कर कहा— 'श्रीमती, मुझे दुःख है कि आप अपने कैथोलिक धर्म पर इस तरह अटल हैं।"

इसी समय कैन्ट के अर्ल ने व्यंग से कहा—"जिस प्रभु मसीह की मूर्ति का आप ध्यान करती हैं, वह यदि आपके हृदय में अंकित कर दी जाय तो भी, मैं समझता हूँ, कोई लाभ न होगा।"

पर रानी ने इस व्यंग का कोई जवाब नहीं दिया। वह फ्लेचर की ओर मुड़ कर प्रार्थना करने लगी।

उन लोगों को आदेश दिया गया था कि उस समय रोमन कैथोलिक धम का जो दृश्य उपस्थित किया जाय वह यथासम्भव प्रकट न होने पाए। पर मेरी चाहती थी कि उसका स्वरूप उपस्थित जनसमूह पर भली भाँति प्रकट हो जाय। वह नीचे को झुकी और जोर-जोर से प्रार्थना करने लगी। इस प्रार्थना में लगभग सारा उपस्थित जनसमुदाय शरीक हो गया, वायुमण्डल हज़ारों कण्ठों की सम्मिलित ध्वनि से गूंज उठा। अपनी आवाज़ उस बड़े दालान में गूँजती देख उसने अपनी पूरी शक्ति से लैटिन भाषा में जोर-जोर से प्रार्थना करनी आरम्भ कर दी। बीच-बीच में वह अंग्रेज़ी भी बोलती थी जिससे श्रोतागण उसका अर्थ समझ लें।

वह सरलतापूर्वक अपने पवित्र पिता पोप से प्रार्थना कर रही थी। अधिक जोर से बोलने के कारण उसकी छाती जोर-जोर से धड़कने लगी। पादरी ने विरोध करना छोड़ दिया और मेरी शेष प्रार्थना अंग्रेज़ी में करने लगी। उसकी भाषा सतेज थी। उसने अपने चर्च के लिए प्रार्थना की, अपने पुत्र के लिए प्रार्थना की और रानी एलिजाबेथ के लिए प्रार्थना की। अंत में उसने कहा—"प्रभु, इंगलैंड पर कोप मत करना।"

इसी इंगलैंड से युद्ध करने के लिए उसने अपने पुत्र फिलिप को अंत समय तक अड़े रहने का आदेश दिया था। यहाँ उसने अपने शत्रुओं को क्षमा कर दिया। परन्तु फिलिप से इन शत्रुओं को न भूल जाने को उसने कहलाया था। अंत में उसने चिल्लाकर कहा—"प्रभु यीशू, जिस प्रकार तुम्हारी बाहें सूली पर लटकाई गई थीं, उसी प्रकार मुझे भी अपनी शरण में लो। और मेरे पापों को क्षमा करो।"

वह उठ खड़ी हुई। दोनो जल्लाद आगे बढ़े और रानी से क्षमा मांगी।

"मैं तुम्हें क्षमा करती हूँ, क्योंकि तुम मेरे कष्टों का अन्त कर दोगे," उसने शान्त वाणी से कहा।

जल्लादों ने कहा—"श्रीमती, अपने वस्त्र सम्हालने में हमें सहायता करने देंगी?"

रानी ने मुस्कराकर कहा—"सच है. ऐसे आज्ञाकारी सेवक मुझे पहले कभी न मिले थे।"

उसकी सहेलियों को ऊपर आकर उसके वस्त्र ठीक करने की आज्ञा मिल गई। यह काम नाजुक था। उसने अपने हाथ का बहुमूल्य क्रास कुर्सी पर रख दिया। जल्लाद ने उसे उपहार समझ कर उठा लिया। पर रानी ने उसे वहीं रख देने की आज्ञा दी। ओढ़ना उतार कर सावधानी से कुर्सी पर रख दिया गया, फिर काला लबादा भी उतार लिया गया। इसके नीचे मखमली पेटीकोट था। उसके भीतर काली जाकेट थी। जाकेट के नीचे अतलस की चोली थी। उसकी एक सहेली ने उसे अपनी मखमल की आस्तीनें दीं जिन्हें उसने जल्दी से पहिन लिया। अब उसे

काली पाड़ पर खड़ा किया गया। उसके चारों ओर कालीमूर्तियाँ थीं। क्षण भर को रानी के खून की गति रुक गई। सहेलियाँ अब अपने को न सम्हाल सकीं। वे फूट-फूट कर रोने लगीं। उनका आर्त्तनाद सुन कर मेरी ने कहा—"धैर्य धरो, रो कर कायरता प्रकट न करो।"

इसके बाद उसने बारी-बारी से उनका गाढ़ालिंगन किया और ईश्वर से प्रार्थना करने का आदेश दिया। फिर वह घुटने टेक कर बैठ गई। बरबरा मोब्री ने उसकी आँखों पर पट्टी बाँध दी।

रानी ने मुस्करा कर पुकारा—"एण्ड्रयू" एण्ड्रयू आगे आया। उसने उसको स्पर्श किया और कहा—"एण्ड्रयू, विदा।"

यह उसका अन्तिम नर स्पर्श और मुस्कान थी।

सब लोग पाड से उतर कर दूर चले गए। उसने घुटने टेके हुए ही कहा—"हे प्रभु, मेरा विश्वास तुम्हारे ही ऊपर है।"

उसके कन्धे उघड़ गए थे। उन पर दोनों ओर एक-एक घाव का चिन्ह था। कॅन्ट ने बेंत के संकेत से पूछा यह क्या है? सेल्सवरी ने धीरे से कान में कहा—यह उस समय के हैं, जब वह मेरे साथ शेफील्ड में रहतीथी। जब वह प्रार्थना कर चुकी तो उसने टिकटी को सम्हाला। और अपना सिर उस पर रख दिया। और कुछ गुनगुनाने लगी।

लकड़ी सख्त थी। वह उसके गले में चुभ रही थी, उसने गर्दन के नीचे अपने हाथ रख दिए। वधिकों ने उन्हे धीरे से हटा दिया, ताकि चोटें खाली न जाएँ। फिर एक ने उसे अच्छी तरह पकड़ लिया और दूसरे ने कुल्हाड़े से चोट की।

बड़ा ही भयानक करुण दृश्य था। वधिक के हाथ लड़खड़ा गए थे, और चोट रूमाल की गाँठ पर पड़ी थी, जिससे जरा-सी चमड़ी कट कर गिर पड़ी। उसने फिर चोट की और यह पूरी बैठी। गर्दन कट कर जरा-सी खाल के सहारे लटक गई और फिर अलग हो गई।

दृश्य बदल गया और उसके साथ सुन्दरी मेरी बदल गई। सब कुछ एक जादू के समान हो गया। तख्त पर पड़ी रानी की लाश उसी के गर्म

खून के सागर में डूबी हुई देख लोगों में सिहरन दौड़ गई। वधिक ने कायदे के अनुसार उसका सिर ऊपर उठा कर लोगों को दिखाया। अब भी उस कुम्हलाए मुख से दयनीयता फूटी पड़ती थी। पीटर्सवर्ग के पादरी ने चिल्ला कर कहा—"महारानी के शत्रु नष्ट हुए।"

जन समुदाय से ध्वनि उठी—"आमीन।"

ड्यूक आफ केन्ट उठ कर लाश पर पैर रख कर खड़ा हो गया। उसने चिल्ला कर कहा—महारानी और गोस्पल के शत्रुओं की यह दुर्दशा हुई।

: १९ :

पूर्व की चाबी

जिस समय लंडन में यह रोमांचकारी घटना हो रही थी, उस समय एक मजबूत समुद्री बेड़े के साथ सर फ्राँसिस ड्रेक, जो उन दिनों समूचे यूरोप में अपनी साहसिक डकैतियों के कारण "समुद्री कुत्ते" के नाम से विख्यात था, अपनी साहसिक डकैती यात्रा पर निकला हुआ था। स्पेन के आर्मेडा को विध्वंस करने के बाद उसके हौंसले बहुत बढ़ गए थे। अन्य देशों के जहाजों को लूट लेने की उसे रानी ने खुली छुट्टी दे ही रखी थी। वे दिन ही ऐसे थे जबकि स्थल पर निरन्तर खून-खराबियाँ होती रहतीं थीं और जल में डकैतियाँ। ऐसे काम तब राजनीति के अंग ही माने जाते थे और इंगलैंड में खास तौर पर ये समुद्री कुत्ते हीरो माने जाते थे। इसी से सर ड्रेक को सर का खिताब और दूसरी प्रतिष्ठाएँ रानी के दरबार से मिली थीं। हकीकत यह थी कि उन्हीं की कार्यवाहियों से इंगलैंड का क्षुद्र टापू लहरों का स्वामी बनता जाता था।

भारत का नाम यूरोप में उन दिनों अतुल सम्पत्ति के लिए विख्यात था। उधर से आने वाले डच, पोर्चगीज आततायियों की लूट के माल से भरे हुए जहाज और वहाँ के लोगों से मुगल दरबार की शान और तड़क-भड़क की चर्चा यूरोप भर में फैली हुई थी। भारत की समृद्धि की भाँति-

भाँति की कहानियाँ तब यूरोप की जातियों में विख्यात थीं, जो मध्य एशिया में होकर यूरोप पहुँचती थीं। इससे यूरोप के लगभग सभी देशों में साहसिक जन भारत में पहुंचने और वहाँ की बेशुमार दौलत लूटने को लालायित रहते थे।

यूरोप की इन जातियों में पुर्तगाल सबसे अधिक भाग्यवान् प्रमाणित हुआ था। उसका प्रसिद्ध नाविक वास्कोडिगामा केप आफ गुड होप से होता हुआ पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में ही भारत पहुँच चुका था और उस समय से लेकर पूरे सौ वर्ष तक भारत में उसकी प्रतिस्पर्द्धा करने वाला दूसरा कोई भी यूरोपियन न था। इसलिए पुर्तगाल ने भारत को मन भर कर लूटा।

पुर्तगाल वाले जिस समय भारत में पहले-पहल घुसे तो उनके एक हाथ में तलवार थी और दूसरे में क्रसिफिक्स। परन्तु जब सोने का ढेर उनके सामने आया तो उन्होंने क्रास को ताक पर रख कर जेबों में सोना भरना आरम्भ कर दिया। परन्तु सोना बहुत अधिक था, एक हाथ में न समा सकता था, इसलिए उन्होंने तलवार भी एक ओर रख दी। ठीक इसी समय यूरोप की दूसरी जाति के लोग भारत में आ पहुँचे और उन पर हावी हो गए।

इस समय पुर्तगाल और स्पेन में पूर्वी एशिया को हड़प लेने की होड़ लगी हुई थी। उन दिनों यूरोप के यही दोनों देश सर्वोपरि थे। पुर्तगाल ने पूर्व की ओर रुख किया था और स्पेन ने पश्चिम की तरफ। पुर्तगाल अफ्रीका के इर्द-गिर्द चक्कर काट कर हिन्दुस्तान आ पहुँचा था और स्पेन भारत के भुलावे में अमेरिका जा पहुँचा था। बाद में वह दक्षिण अमेरिका का चक्कर लगा कर मलक्का जा पहुँचा था। मलक्का द्वीप मसालों के लिए जगत्विख्यात था। मसाले उन्हीं प्रदेशों में पैदा होते हैं जो भूमध्य रेखा के निकट हैं। यूरोप में मसाले बिल्कुल नहीं होते थे। दक्षिण भारत और लंका में भी मसाले होते हैं, पर मलक्का ही मसालों का देश था। इसी से वह मसाले का टापू के नाम से विख्यात था। बहुत प्राचीन काल

से इन मसालों की यूरोप में बहुत खपत थी। वे यूरोप में बहुत मँहगे भी बिकते थे। रोमन लोगों के जमाने में काली मिर्च सोने के भाव बिकती थी, बहुत दिन तक यह व्यापार भारतीयों के हाथ में रहा। फिर अरबों के हाथ में आया। अब जब से स्पेन और पोर्चुगीजों ने समुद्र में डाके डालने शुरू किए तो अरबों का यह व्यापार मलियामेंट हो गया। ये समुद्री डाकू मसालों से भरे अरबों के जहाज़ लूट लेते थे, जिसकी कहीं दाद-फरियाद न थी। अंत में ये दोनों जातियाँ दुनिया का चक्कर लगाकर मसालों के देश में आ मिलीं।

जिस समय अलबुकर्क ने भारत में कदम रखा था, तब मलक्का में नए साम्राज्य की स्थापना हुई थी। पोर्चुगीजों ने वहाँ संघर्ष किया और अलबुकर्क ने मलक्का पर हमला करके मलक्का पर कब्जा कर लिया। साथ ही अरबों के व्यापार का भी खातमा हो गया और यूरोप का व्यापार पोर्चुगीजों के हाथ में आ गया, जिससे देखते ही देखते उनकी राजधानी लिस्बन यूरोप भर में मसालों और दूसरे पूर्वी मालों की मण्डी बन गई।

पोर्चुगीज बड़े निर्दयी और कट्टर धर्मान्ध थे। उन दिनों यूरोप में धर्मान्धता का साम्राज्य था ही। पुर्तगाल भी स्पेन की भाँति रोमन कैथोलिक था और उनके अपने देश में जैसे वीभत्स नंगे अत्याचार चर्च के नाम पर किए जाते तथा लोग जबरदस्ती ईसाई बनाए जाते थे। उन्होंने गोआ में इन्क्विजेशन की अदालत कायम की थी, जिसमें गैर ईसाई प्रजा को लामजहब करके जिन्दा जला दिया जाता था। उन्होंने मलक्का और भारत में भी जुल्मों की हद कर दी। अलबुकर्क ने अरबों पर बड़े जुल्म ढाये। ६० वर्ष तक यूरोप में मसालों के व्यापार में उनका कोई प्रतिद्वन्द्वी नहीं रहा। इसके बाद जब सन् १५६५ में स्पेन ने फिलिपाइन द्वीपों पर कब्जा किया तो तब पूर्वी समुद्र में दूसरी यूरोपियन ताकत का उदय हुआ। परन्तु स्पेन पूर्व में व्यापार ही नहीं करता था, वहाँ के लोगों को ईसाई भी बनाता था, मसाले के व्यापार पर उसका एकच्छत्र अधिकार था। यहाँ तक कि मिस्र और ईरान को भी मसाले उसी से मिलते थे। इस व्यापार

से पुर्तगाल बेहद मालामाल हो गया था और इसी से उसने उपनिवेश स्थापित नहीं किए। वह एक छोटा-सा अल्पसंख्यक देश था फिर भी उसने पूरे १०० वर्षों तक, पूरी सोलहवीं शताब्दी भर पूर्वी समुद्र को अपने ताबे रखा। स्पेन इस समय मेक्सिको और पेरू का स्वर्ण भंडार खींचने में लगा रहा।

स्पेन और पुर्तगाल की इस समृद्धि को देखकर यूरोप की दूसरी जातियाँ जल-भुन कर खाक हो रही थीं। स्पेन का यूरोप पर बोलबाला था। अंग्रेज़ी शक्ति नगण्य थी। इस समय अंग्रेज़ी जल सैनिक खुले समुद्र में डाकाजनी किया करते थे। और स्पेन के उन जहाज़ों को लूट लेने की ताक में रहते थे जो अमेरिका से सोना या भारत से मसाले लेकर लौट रहे होते थे। इन डाकुओं का नेता सर फ्राँसिस ड्रेक था, और इसका नाम 'समुद्री कुत्ता' सारे यूरोप में प्रसिद्ध हो गया था। लूट खसोट से तंग आकर स्पेन ने अजेय आर्मेडा लेकर इंगलैंड पर चढ़ाई की थी, परन्तु उस पर इंगलैंड ही को पूरी विजय मिली थी। इस विजय ने यूरोप को हैरान कर दिया था। उन दिनों स्पेन और पुर्तगाल पर एक ही राजा राज्य करता था। पोर्चुगीजों को इस पराजय से भारी धक्का लगा क्योंकि उनका पूर्वी साम्राज्य इस समय ६ हजार मील तक लाल समुद्र से मलक्का तक फैला हुआ था।

अब साहस पा कर ड्रेक अपने समुद्री डाकुओं के साथ खुले समुद्र में निर्भय चक्कर काटने लगा। उसे भारत की लगन थी परन्तु उस समय तक भी भूमण्डल का बड़ा भाग पानी की ओट में छिपा हुआ था। ड्रेक और दूसरे कप्तान बहुत यत्न कर के भी भारत तक नहीं पहुँच पाए थे।

सर ड्रेक अपने चार शीघ्रगामी पोतों को ले कर—जिन पर हल्की तोपें चढ़ी हुई थीं, समुद्र मे अपने शिकार की ताक में घूम रहे थे। वे अमेरिका से लौटते हुए सोने से भरे स्पेनी जहाज़ों की ताक में थे। इतने ही में उन्हें एक बेड़ा धीरे-धीरे आगे आता दीख पड़ा। ड्रेक ने तुरन्त हमला बोल दिया। थोड़े ही प्रयास से बेड़ा उनके काबू में आ गया। बेड़ा

स्पेन का नहीं, पोर्चुगीजों का था और उन जहाज़ों में मसाला भरा था। ड्रेक प्रसन्न हो गया। परन्तु उस समय वे और उसके साथी प्रसन्नता से नाच उठे, जब उनके हाथ भारत के मार्ग का एक मानचित्र लग गया। यह पूर्व की चाभी थी, जिसने अंग्रेज़ों के लिए भारत का द्वार खोल दिया।

: २० :

लुच्चों की जमात

सर ड्रेक का इंगलैंड में खूब धूमधाम से स्वागत हुआ। उस समय इंगलैंड में दो जमातें थीं—एक शरीफों की जमात, जिन्हें जैन्टलमैन कहते थे। ये पोतड़ों के रईस, खाना-पीना और मौज करना या द्वन्द्व-युद्ध करना हा जानते थे। इन्हें पेट की चिंता न थी। राजा से इन्हें बड़ी-बड़ी पुश्तैनी जागीरें मिली होती थीं। बस राजभक्ति करना और राजाओं के धर्म को मानना ही उनका काम था।

दूसरी जमात लुच्चों की थी। उन्हें साहसिक या एडवान्चरर कहा जाता था। इन लोगों का धर्म-ईमान केवल पैसा था। ये लोग डकैती करते और भाँति-भाँति के क्रूर कर्म करते थे। समुद्र पर इनका आतंक था। ज्योंही इन साहसिक जनों को यह पता लगा कि पूर्व की चाभी उन्हें मिल गई है, वे भारत में आने और यूरोप के दूसरे देशों के आदमियों की भाँति मालामाल होने के लिए उतावले हो उठे। उन्होंने भारत में व्यापार कर के धन कमाने के लिए एक कम्पनी का संगठन किया। उसका नाम रखा "दि गवर्नर एण्ड कम्पनी आव मर्चेन्टस आव लण्डन ट्रेडिंग इन टु दि ईस्ट इन्डीज"। आगे चल कर यही कम्पनी ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम से प्रसिद्ध हुई।

सर ड्रेक और उनके कुछ साथी जिन्होंने यह कम्पनी संगठित की थी, रानी से मिले। सर ड्रेक ने रानी के सामने घुटने टेक कर कहा—महारानी, हम आपकी राजभक्त प्रजा आपकी सेवा में यह विनम्र निवेदन करने आए हैं कि हमें सौभाग्य से जो पूर्व की चाभी मिल गई है, उससे

अब इंगलैंड को लाभ उठाना चाहिए। आप अब पूर्व का द्वार इंगलैंड के लिए खोल दीजिए और भारतवर्ष पर दृष्टि डालिए, जो गत सौ वर्षों से हमारे शत्रुओं के लाभ का माध्यम हो रहा है, जिन्हें हम जेर कर चुके हैं। स्पेन और पुर्तगाल पूर्व में हमारे प्रतिद्वन्द्वी हैं और महारानी को ज्ञात हो कि केवल ये ही दो क्षुद्र देश केवल भारतवर्ष से सम्बन्ध रख कर माला-माल हो गए हैं।

"तो तुम हमारी सरकार से क्या चाहते हो ?"

"केवल एक अधिकारपत्र, जिससे हमें भारत व चीन में व्यापार करने का इजारा मिल जाय।"

"लेकिन यह अधिकारपत्र शरीफों को नहीं दिया जा सकता, इससे हमारे दरबार का मान भंग होगा।'

"हम एक भी शरीफ आदमी अपनी जमात में न लेंगे। न किसी शरीफ आदमी को भारत या चीन में भेजेंगे। हमारी जमात तो केवल साहसिक जनों ही की है।"

"क्या तुम इस बात की जिम्मेदारी लोगे कि कोई शरीफ आदमी तुम्हारी इस जमात में सम्मिलित नहीं होगा।"

"हम ने तो प्रथम ही इस बात की घोषणा की हुई है और हम आपके समक्ष वचनबद्ध भी होते हैं।"

"क्या तुम्हारे प्रस्ताव को पार्लियामेंट का समर्थन प्राप्त है ?"

'निस्सन्देह। हाउस आफ लार्ड्स और हाउस आफ कामन्स में जो भी साहसिकजन हैं, हमें उनका समर्थन प्राप्त है।"

"क्या तुम समझते हो कि यह समर्थन पार्लियामेंट के बहुमत से है ?"

"निश्चय ही, श्रीमती महारानी महोदया, फिर यह केवल कुछ लोगों का व्यक्तिगत स्वार्थ ही नहीं है, यह तो इंगलैंड के उत्थान का प्रश्न है।"

"कैसे तुम इसे इंगलैंड के उत्थान का प्रश्न कहते हो ?"

"श्रीमती, हमें यह कहने की अनुमति दीजिए कि आज यूरोप में खलबली मची हुई है, बल्कि यह कहना होगा कि यूरोप का नया जन्म हो

रहा है। यह एक सर्वथा ही नई वस्तु है कि चारों ओर से घिरी हुई चीज़ें एकाएक फूट कर बाहर निकल रही हैं। अब तक जो सैकड़ों वर्षों से सामन्ती प्रथा पर बना हुआ सामाजिक और आर्थिक ढांचा था, वह टूटने लगा है। कोलम्बस, वास्कोडिगामा और समुद्री रास्तों का पता चलाने वाले दूसरे लोगों ने इस बन्धन को तोड़ा है। आपका यह दास भी एक बार सारी पृथ्वी की परिक्रमा कर आया है, और उसी के आधार पर यह निवेदन करने का साहस कर रहा है। अमेरिका और पूर्व के देशों से आई हुई स्पेन और पर्तगाल की बेशुमार दौलत से यूरोप की आँखें चौंधिया रही हैं। अब यूरोप अपने ही विषय में नहीं, दुनिया के विषय में विचार करने लगा है।"

रानी की आँखें चमकने लगीं। उसने हाथ के इशारे से सर ड्रेक को रोक कर कहा—"किन्तु क्या तुम समझते हो कि संसार व्यापी हुकूमत और व्यापार की सम्भावनाएँ सम्भव हो गई हैं ?"

"मैं यही निवेदन कर रहा हूँ महारानी, यूरोप में मध्यम वर्ग पनप रहा है और सामन्त प्रथा दम तोड़ रही है।"

"लेकिन यह तो भयानक बात है।"

"बिलकुल नहीं महारानी, यह काम तो हमसे पूर्व ही हेनरी अष्टम के काल में आरम्भ हो चुका था, जिसने बैरनों की राजा की प्रतिस्पर्धा की सारी शक्ति तोपों पर कन्ट्रोल और भूमियों पर अधिकार करके खत्म कर दी थी। अब तो नए साहित्य ने हमें आगे बढ़ाया है। अजेय आर्मेडा को दलित कर कैसे समुद्र की लहरों पर भी आपका प्रभुत्व स्थापित हो चुका है। आप ही के किंकर सर रेले ने अमेरिका में वर्जीनिया की बस्ती बसाई है, और सर गिलबर्ट ने न्यूफाउन्डलैंड को आपके चरणों में समर्पित किया है। फिर धर्म के मामले में भी हम सबसे आगे हैं। इंगलैंड ही को उदार होने का सम्मान प्राप्त है।"

"लेकिन तुम क्या समझते हो कि इससे इंगलैंड को कुछ लाभ होगा ?"

"निस्सन्देह। यूरोप में आज तीन तत्व काम कर रहे हैं। एक पुनर्जन्म, दूसरे सुधार और तीसरी क्रान्ति।"

"क्या क्रान्ति भी? यह तो बहुत भयानक है?"

"परन्तु पुनर्जन्म तो अत्यावश्यक है। सुधार का क्रान्ति ही अन्तिम रूप है। पुनर्जन्म तो कला, साहित्य और विज्ञान के विकास से हो रहा है जिससे यूरोप की भाषाएँ सुधर रही हैं। कागज़ और छपाई ने जनता को शिक्षित होने का सूत्रपात्र दिया है। सुधार ने रोमन चर्च के विरुद्ध बगावत की है, अब क्रान्ति राजा की स्वेच्छाचारिता पर अंकुश है और मुझे आज्ञा दी जाय कि मैं कहूँ कि इंगलैंड ही इस समय इस नवोत्थान में यूरोप भर में अग्रगण्य है। इसी से अब हमें साहस करके पूर्व का द्वार खोल देना चाहिए, जिसकी चाभी सौभाग्य ने हमें दी है।"

"सर ड्रेक, क्या तुम यह सही अंदाज़ा लगा सकते हो कि यदि हम तुम्हारी इस साहसिक मण्डली की प्रार्थना मंज़ूर कर लें तो हमारी सरकार पर कितना आर्थिक और राजनीतिक दबाव पड़ेगा।"

"एक रत्ती भर भी नहीं महारानी। सारा बोझा और दायित्व हमारे ही ऊपर है। इंगलैंड की सरकार केवल एक संरक्षक के रूप में ही रहेगी।"

"और यदि कोई राजनीतिक विपत्ति इंगलैंड पर आई?"

"तो हम सब साहसिक कट मरेंगे। अपनी पूँजी को खत्म कर देंगे, पर इंगलैंड पर जरा भी बोझ न पड़ने देंगे।"

"इसी लिए मैंने यह शर्त लगाई थी कि कोई शरीफ आदमी तुम्हारी इस जमात में शरीक न होने पाएगा। इससे इंग्लैंड पर खतरा आ सकता है। अब यदि पार्लियामेंट तुम्हें आज्ञा-पत्र प्रदान करने के पक्ष में है तो मैं सहमत हूँ। हाँ, तुम क्या कहते हो सर हाकिन्स?"

"महारानी प्रसन्न हो।" सर हाकिन्स ने घुटने टेक कर कहा—"कोलम्बस ने किस प्रकार स्पेन के राजा की सहायता से अमेरिका के विशाल महाद्वीप का पता लगाया, यह आप जानती हैं। यह महाद्वीप धन-

धान्य से परिपूर्ण है। उस में अनेक जातियों और सभ्यताओं का विकास हो चुका है। मैक्सिको और पेरू के निवासियों के पास जो सम्पत्ति थी, उसे स्पेन के लोग लूट कर अपने देश में ले गए। वहाँ के निवासियों का उन्होंने बुरी तरह संहार किया। परन्तु अब स्पेन वाले वहाँ बस्तियां बसा रहे हैं। और बड़े पैमाने पर खेती कर रहे हैं। मैं जानता हूँ कि वहाँ बहुमूल्य धातुओं की खानें भी हैं। उन से बेशुमार सोना, चाँदी निकाला जा सकता है। परन्तु इन सब कामों के लिए मेहनती मजदूरों की आवश्यकता है। स्पेनिश लोगों ने वहाँ के आदिवासी रेड इंडियन्स को पकड़ कर काम लेना चाहा था, पर वे वीर और स्वतन्त्रता प्रिय हैं। भयंकर अत्याचार सह कर भी वे गुलाम न बन सके। इस पर आप के अनुगत दास मेरा यह विचार हुआ कि यदि अफ्रीका के हब्शियों को पकड़ कर और उन्हें गुलाम बनाकर अमेरिका में बेचा जाय तो यह एक बड़ा लाभदायक व्यापार होगा। मैं जानता था कि ये हब्शी जिनमें न बुद्धि है न साहस, परन्तु शारीरिक बल खूब है, गुलाम आसानी से बनाए जा सकते हैं। आपने हमें अब तक सहयोग दिया परन्तु अब अन्य लोग हमारी प्रतिस्पर्धा करने लगे हैं। इस लिए आपकी सरकार से हम कुछ साहसिकजन इस लाभदायक व्यापार के लिए एकाधिकार चाहते हैं। अमेरिका में बसे हुए स्पेनिश लोगों के पास धन की कमी नहीं है और उन्हें अपने विशाल खेतों और समृद्ध खानों में काम करने के लिए, गुलामों की अजहद जरूरत है और इससे इंग्लैंड को बहुत लाभ हो सकता है।"

"क्या ये हब्शी ईसाई नहीं हैं?"

"नहीं महारानी, उनका शरीर ही किसी तरह मनुष्य का है। वे तो कोरे बैल हैं, बैल।"

"क्या उन हब्शियों में कोई जातीयता या पारिवारिक व्यवस्था भी है?"

"नहीं महारानी, वे पशु की भाँति ही रहते हैं।"

"क्या पार्लियामेंट के माननीय सदस्य तुम्हारा समर्थन करेंगे?"

"निस्सन्देह महारानी। हम लोग पार्लियामेंट के माननीय सदस्यों के ही प्रतिनिधि हैं।"

"अमेरिका में स्पेन के उपनिवेश कितने हैं ?"

"बहुत। वेस्ट इंडीज, ब्राजील, मैक्सिको, पेरू आदि विविध अमेरिकन राज्य स्पेन ही के उपनिवेश हैं।"

"क्या हम उस द्वीप में अपने उपनिवेश नहीं बसा सकते ?"

"नहीं महारानी। पवित्र पोप ने सन् १४९४ में ही यह घोषणा कर दी थी, कि यदि केप वर्द द्वीप समूह के ३७० लीग पश्चिम में एक रेखा उत्तर से दक्षिण की तरफ खींच दी जाय, तो उस रेखा के पश्चिम के सब प्रदेशों पर स्पेन का अधिकार रहेगा, और उस रेखा के पूर्व में पोर्तुगीजों का।"

रानी एकदम उत्तेजित हो गई। उसने कहा—"क्या यूरोप में ये ही दो राज्य हैं ?"

"इसका जवाब तो महारानी स्पेन की डाढ़ी में आग लगा कर दे चुकी हैं।"

"तो अभी तक पोप की यह आन अमेरिका में कायम हैं।"

"महारानी, आप की कृपा से सर वाल्टर रेले ने उसी प्रदेश में आप की पवित्र स्मृति में वरजीनिया की बस्ती बसाई है। और अब उसे समृद्ध करने के लिए गुलामों की हमें भी आवश्यकता है।"

"हम चाहती हैं कि पोप के इस प्रभुत्व और एकाधिकार का यह राजनीतिक स्वरूप इंगलैंड बर्दाश्त न करे। क्या अमेरिका में ऐसे भूखण्ड भी हैं जो अभी तक खाली पड़े हैं ?"

"जी हाँ, महारानी। स्पेन की बस्तियां तो मध्य और दक्षिणी अमेरिका में बसी हैं। कुछ प्रदेश खाली हैं, जहाँ वहाँ की प्राचीन असभ्य जातियां रह रहीं है।"

"तो हम चाहती हैं कि उन पर ब्रिटेन की सत्ता स्थापित कर ली जाय, और हम चेष्टा करेंगी कि पार्लियामेंट एक बिल गुलामों के व्यापार

के सम्बन्ध में पास कर दे। और इस काम में सभी सम्भव सुविधाएं तथा एकाधिकार आप की मण्डली को दी जाय।"

रानी को अभिवादन कर और सब भाँति कृतकृत्य हो साहसिक-जनों का यह प्रतिनिधि मण्डल गर्व से छाती ताने हुए राजप्रासाद से बाहर निकाला।

: २१ :

अर्ल आफ एसैक्स

अर्ल आफ एसैक्स एक तेजवान तरुण था। उस में हौसला था, उच्चाभिलाषा थी। रानी के अनुग्रह ने उसे धृष्ट बना दिया था, रानी की अपेक्षा वह आयु में कम था। यदि वह प्रौढ़ पुरुष होता और जरा गम्भीरता का आसरा लेता तो कदाचित् उसे उस दुर्भाग्य का सामना न करना पड़ता, जिससे उसे टकराना पड़ा।

रानी की भीषण प्रतिहिंसा को वह जान गया था। उसे भारी दंड दिया गया था। पर उस प्रतिहिंसा और क्रोध में रानी का उसके प्रति जो उत्कट प्रेम था, वह भी उसके तरुण हृदय से छिपा नहीं था। निश्चय ही उससे अपराध बन पड़ा था। उसने रानी के दुर्लभ प्यार का अपमान किया था, रानी के प्यार को एक ओर धकेल कर दासी पर दृष्टि दी थी। पर यह उसका दोष न था, तारुण्य का दोष था। कुमारी एलिनर को बिना देखे-बिना प्यार किए रहा नहीं जा सकता था, खास कर जब वह भी उसे प्यार करती थी। परन्तु रानी इसे सहन न कर सकेगी, यह वे दोनों ही जानते थे। इसी से वे अपने प्रेमाकर्षण को यत्न से गुप्त रखते चले आ रहे थे। परन्तु प्रेम की आँख प्रेमी से छिप नहीं सकती। फिर रानी तो असाधारण बुद्धिमती थी। अब अर्ल आफ एसैक्स के लिए रानी को प्रसन्न करने का एक ही उपाय था कि वह जैसे बने आयलैंड के विद्रोही अर्ल आफ ओनील को विजय करे, उसे बाँध कर रानी के चरणों में डाल दे। इससे उसे दुहरा लाभ हो सकता था। रानी उस पर प्रसन्न होकर

उसकी प्रेमिका को उसकी गोद में डाल सकती थी। दूसरे आर्मेडा के संग्राम में ड्रेक, सर जान हाकिन्स आदि उमरावों ने जो प्रतिष्ठा और वीरता की नेकनामी हासिल की थी, वह भी हासिल करे। इंगलैंड के लोग उसके भी गुणगान करें। इसलिए वह सब ओर से ध्यान हटा कर केवल अपने अभियान को सफल बनाने में जुट गया। उसने भीषण वेग से शत्रु पर भीषण आक्रमण किया। सर ओनील भी एक दबदबे का सरदार था। वह इस छोकरे को तुच्छ नजर से देखता था। यद्यपि वह जानता था कि यह इंगलैंड की रानी का प्रेमी है। परन्तु वह तो इस बात की भी मजाक उड़ाता था। पर उसने दो तीन बार की मुठभेड़ में समझ लिया कि यह छोकरा लार्ड नर्म निवाला नहीं है। सर ओनील को उसने बारंबार करारी हार दी थी। और उसे घेर लिया था। अब सर ओनील के सामने इसके अतिरिक्त कोई चारा न था कि वह इस तरुण अंग्रेज लार्ड के सामने हथियार रख दे। उसने सर एसैक्स के सम्मुख आतम समर्पण का प्रस्ताव भेज दिया। एसैक्स प्रसन्नता से फूल उठा। वह सोच रहा था कि उसने बाजी जीत ली है और अब इंगलैंड में उसी के नाम का डंका बजेगा और वह अपनी प्रेमिका पत्नी का आलिंगन प्राप्त कर लेगा। साथ ही रानी की कृपा दृष्टि भी।

परन्तु रानी अधीर हो रही थी। उसका मन चंचल और क्षुब्ध था। वह सोच रही थी कि इतना विलम्ब हो रहा है। क्यों नहीं अब तक विद्रोही सरदार विजित हुआ। इस प्रेमी तरुण लार्ड के प्रति जो प्रतिहिंसा की आग रानी के मन में अभी तक जल रही थी, उसने उसके विवेक पर भी काबू पा लिया था। फिर दरबार में एसैक्स के शत्रु भी थे। वे भी इस अवसर को चूकना नहीं चाहते थे। अर्ल के विरुद्ध रानी को भड़का रहे थे। वास्तव में वे नहीं चाहते थे कि इस विद्रोह के दमन का सेहरा एसैक्स के सिर बँधे। अंत में रानी ने एसैक्स के विरोधी लार्ड मौन्टजाय को आयलैंड भेजा। और एसैक्स को हुक्म दिया कि वह अविलम्ब वापस लौट आए।

परन्तु जिस समय अर्ल आफ एसैक्स के पास यह सूचना पहुँची, उस समय ओनील उसे आत्म-समर्पण कर रहा था। रानी की यह आज्ञा सुन कर वह क्रोध से लाल हो गया। उसने समझा कि रानी जान-बूझ कर उसका यश उसके प्रतिद्वन्द्वी को देना चाहती है। उसने क्रोधपूर्वक रानी की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया। और सर ओनील को बंदी बना वह लंदन लौटा। लार्ड मौन्टजाय से उसने बात ही न की।

इंगलैंड में आयलैंड की इस विजय की खबर उससे पहले ही जा पहुँची। सारा इंगलैंड खुशी से हर्षोन्मत हो उठा। रानी ने आज्ञा दी कि उसका धूमधाम से राजधानी में स्वागत किया जाय। और उसने भरे दरबार में उसके स्वागत करने की घोषणा भी कर दी।

: २२ .

राजप्रसाद

दरबार तड़क-भड़क से किया गया। रानी अपने सम्पूर्ण राजकीय वैभव से सिंहासन पर बैठी। सभी अमीर-उमराव, दरबारी लार्ड और लेडीं इस विजयी वीर के स्वागत के लिए दरबार में उपस्थित थे। रानी गम्भीर थी। वह संगमरमर की प्रतिमा-सी सिंहासन पर बैठीं थी। इस समय उसकी शोभा अलौकिक थीं। उसने बड़े-बड़े मोतियों का नाभि तक लटकता हार कण्ठ में पहना था। उसके मुकुट के रत्न मणि जगमग कर रहे थे। उसके बगल में लेडी एलिनर खड़ी थीं। उद्वेग से उसका हृदय धड़क रहा था। उसे आशा न थी कि रानी उसके पति का ऐसा स्वागत करेगीं। अब सारे इंगलैंड में जो उसके पति कीं धूम मची थी, उसने उसे आनन्द विह्वल कर दिया था। वह सोच रही थीं कि महारानी ने हम दोनों को न केवल क्षमा ही कर दिया है, हम पर प्रसाद भी किया है। वह मिलन के सुख-स्वप्न देख रही थी। अधीर हो रही थी।

तरुण लार्ड को भी ऐसे स्वागत की आशा न थी। उसने रानी के प्रेम का तिरस्कार तो किया ही था, राजाज्ञा का भी उल्लंघन किया था।

परन्तु बहुत बार रानी अप्रसन्न हो चुकी थी, अप्रसन्न होकर बहुत बार रानी ने ही उसे मनाया था, दूना दुलार किया था। रानी के इस प्यार को वह जानता था। हकीकत तो यह थी कि रानी को अब भी वह प्यार करता था। उसे रानी के प्यार का भरोसा था। उसी भरोसे के कारण उसने रानी की आज्ञा का उल्लंघन किया था। और अब वह रानी के प्रति अपनी उत्सुकता प्रेम भक्ति प्रकट करने के विचार से दरबारी अदब कायदे की तनिक भी परवाह न कर बिना ही दरबारी पोशाक धारण किए, रास्ते के गन्दे वस्त्र पहिने अपने कैदी को लेकर दरबार में जा पहुँचा।

दोनों ओर खड़े लार्ड और लेडियों के जयजयकार और हर्ष ध्वनि के बीच आगे बढ़ता हुआ वह सीधा रानी के सिंहासन के सम्मुख जा घुटनों के बल बैठ गया। उसके वस्त्र धूल में भरे थे, चेहरे और बालों में भी धूल भरी थी। जूते गंदे थे, परन्तु रानी ने अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया, जिसे उसने सम्मान सहित चूम लिया। इसके बाद रानी ने उसका अभिनन्दन किया। उसे खिताब और जागीर दी। एलिनर आनंद से विभोर हो गई। एसक्स ने सिर उठाया तो पत्नी की ओर देख कर मुस्कराया और दो कदम पीछे हट कर अर्ल आफ ओनील का हाथ पकड़ रानी के सम्मुख उपस्थित किया। अर्ल आफ ओनील ने घुटने ज़मीन में टेक कर रानी के चरणों में सिर झुकाया।

"हम प्रसन्न हैं सर ओनील और तुम्हें क्षमा करती हैं और हमारा विश्वास है कि अब तुम तख्त के वफादार रहोगे। तुम्हारी स्टेट हम तुम्हें लौटा रहे हैं।"

"योर मेजेस्टी, यह सेवक आपके अनुग्रह को जीवर-भर नहीं भूलेगा और अपने अपराध के लिए उस समय तक पश्चाताप करेगा जब तक कि वह राजभक्ति का कोई सक्रिय प्रमाण न दे दे।"

"उसका तुम्हें अवसर दिया जायगा, सर ओनील।"

ओनील ने सिर झुकाया और दो कदम पीछे हट गया। क्षण भर सन्नाटा रहा। रानी ने एकाएक अर्ल आफ एसैक्स की ओर देख कर स्थिर

स्वर में कहा—"अर्ल आफ एसैक्स, सीधे खडे हो जाओ।" दरबार के सभी सामन्त रानी की आज्ञा से चौंक पड़े। अब क्या होने वाला है। अर्ल आफ एसैक्स सीधा खड़ा हो गया। उसने अपनी जिज्ञासापूर्ण आँखें रानी की आँखों में डाल दीं।

परन्तु रानी ने उधर से आँखें हटा लीं। ओनील की ओर घूम कर उँगली से एसैक्स की ओर संकेत कर के कहा—'सर ओनील, आगे बढ़ो और इस आदमी की तलवार ले लो।"

दरबार में सन्नाटा छा गया। सब की आँखें एसैक्स पर आ लगीं। एसैक्स का मुँह लाल हो गया।

रानी ने कहा—"अर्ल आफ एसैक्स, तुम ने वीरतापूर्वक शत्रु को पराजित किया, इंगलैंड की सेवा की। हम ने तुम्हें इसके लिए सत्कृत किया, तुम्हारा सम्मान किया। परन्तु तुम ने राजाज्ञा का उल्लंघन किया और तुम दरबारी अदब के खिलाफ हमारे रूबरू हाजिर आए हो। इसकी यही सजा है कि तुम्हारी तलवार छीन ली जाय।"

अर्ल ओनील आगे बढ़ा। अभी दो दिन पूर्व उसे अपनी तलवार अर्ल आफ एसैक्स के सुपुर्द करनी पड़ी थी और आज वही पराजित शत्रु उसकी तलवार छीन रहा है। एसैक्स सिंह की दहाड़ मार कर चिल्लाया—"खबरदार, कदम आगे बढ़ाने का साहस न करना। वरना सिर भुट्टे-सा उड़ा दूंगा। फिर वह दा कदम बढ़ा कर रानी के सामने आया। उसन तलवार निकाली और घुटनों पर रख उसके दो टुकड़े कर रानी के सामने फेंक दिए।

रानी क्रोध से सफेद हो गई। क्षण भर वह चुप निश्चल बैठी रही। उसके होंठ चिपक गए। फिर उसने अकम्पित वाणी से हुक्म दिया—"इस विद्रोही को गिरफ्तार कर लिया जाय और कल सूर्योदय के साथ ही इसका सिर काट लिया जाय।" वह उठ कर चल दी।

दरबार में सिहरन फैल गई। लार्ड सेल्सबरी और लार्ड म.उन्टजाय

ने आगे बढ़ कर एसैक्स के कंधे पर हाथ रखा और सिपाहियों ने उस गिरफ्तार कर लिया। एलिनर की आँखों में अंधेरा छा गया।

: २३ :
रानी और औरत

रानी सीधी अपने शयन कक्ष में आई। प्रत्येक दास-दासी को उसने अपने निकट न आने के आदेश दिए। रत्नजटित मुकुट जिसका लोहा आज सम्पूर्ण यूरोप मान चुका था, उसने सिर से उतार कर दूर फेंक दिया। बहुमूल्य रत्नजटित पोशाक चीर-चीर कर डाली। रत्नहार तोड़ कर उसके मोती फर्श पर बिखेर दिए। अपने यत्न से संवारे सुनहरी बालों को उसने नोच डाला। वह जगह-जगह अपने नाखूनों से अपने अंग को क्षत-विक्षत करने लगी। उसकी दशा उस हथिनी के समान थी जिसकी छाती पर गोली लगी हो। वह रोना चाहती थी पर रोना भूल गई। चीखना चाहती थी, पर मुँह के शब्द खो गए। वह कक्ष में इस प्रकार उन्मादिनी की भाँति चक्कर लगा रही थी जैसे तत्ते तवे पर चल रही हो, जैसे उसके तलुओं में छाले पड़ गए हों। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे सारा विश्व सूना हो गया है। दुनिया के सब प्राणी मर-खप गए हैं और वही अकेली एकाकी सूने संसार में भटक रही है। निविड़ अंधकार में। जैसे सूरज की ज्योति बुझ चुकी हैं, जीवन समाप्त हो गया है। केवल वह साँस ले रही है और जैसे अंधकार उसे समूचा निगलने आ रहा है। भय से उसकी आँखें फट गईं। उसने एक आर्त्तनाद किया, जैसे गर्दन पर छुरा फेरते हुए बकरा मिमियाता है।

वह बेहोश नहीं थी। परन्तु वह विनाश और यन्त्रणा की मूर्तियाँ देख रही थी, जो उसे चारों ओर से घेर रही थीं। रानी घबरा कर खिड़की के पास आ खडी हुई। उसने खिड़की खोल दी। बड़ी डरावनी अंधेरी रात थी, आँधी बड़े जोर से चल रही थी। ठंडी तेज़ हवा के झोंकों ने उसे झकझोर डाला। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे मौत के शीतल

हाथों ने उसे छू लिया। एक बार उसने फिर चिल्लाने की चेष्टा की, पर उसके मुँह से आवाज़ न निकली। हलक उसका सूख गया था और जीभ तालू से सट गई थी। उसने बड़े यत्न से जीभ अपने सूखे होंठों पर फेरी।

उसने फिर आँखें फाड़-फाड़ कर नीचे महल के प्रांगण में देखा। वहाँ मृत्यु मंच तयार किया जा रहा था। वह थर-थर काँपने लगी जैसे उसी के गले में फाँसी का फंदा पड़ गया हो। वह जैसे हज़ारों मनुष्यों को मृत्यु वेदना से छटपटाते देख रही थी। उनके मृत्युकाल के आर्त्तनाद सुन रही थी। उसका कलेजा दहल गया। उसने चाहा कि महल से कूद पड़े। उसने झाँक कर देखा और भय से आँखें बंद कर लीं।

इस समय इंग्लैंड की अधीश्वरी उस महामहिम महारानी से अधिक भाग्यहीन और दुखी मनुष्य संसार में कौन था। सूर्यादय के साथ ही उसके प्यारे का सिर काट डाला जायगा। उसी की आज्ञा से। वह अकेली रह जायगी। सर्वथा अकेली। उसने इस तरुण रईस को कितनी बार दुलार किया था। कितनी बार वह उसकी गोद में आँख बन्द किए पड़ी सुख सागर में मग्न रही थी। कितनी बार मान-मनौवल, विग्रह और मेल हुआ था। एक ओर इंग्लैंड का महामहिम तख्त था और दूसरी ओर वह तरुण प्रियतम। कितनी बार उसने उसके कण्ठ में भुज-मृणाल डाल कर कहा था—कितनी आँखें हमें ईर्ष्या से देखती हैं। कितने हृदय हमें देख कर जलते हैं। हमारा यह राजपाट, यह तख्त इंगलैंड का यह रत्न मुकुट ही हमारे प्रेम की बाधा है। इसी के कारण, प्रियतम, मैं तुम से ब्याह नहीं कर सकती। धर्म और कानून से तुम्हारी, केवल तुम्हारी नहीं हो सकती। और, यह तख्त ही इस समय हमारे तुम्हारे बीच की सब से बड़ी बाधा है। आओ, प्यारे, चलो भाग चलें, दुनिया के उस छोर पर, जहाँ केवल हम तुम हों, और कोई न हो। परन्तु अब ? अब तो वह अकेला ही जा रहा है। और मैं यहाँ इतनी बड़ी दुनिया में अकेली रह रही हूँ। उसे जाना पड़ेगा, और मुझे रहना होगा। रहना होगा। अभी जिन हाथों से उसका दुलार किया था, उन्हीं से मैंने उसके मृत्युदण्ड पर

हस्ताक्षर किए। जिस जिह्वा से मैंने हजार बार उसे प्यार के आश्वासन दिए थे, उसी से मैंने उसका सिर काट लेने की आज्ञा दी। मेरे हाथ कट कर गिर क्यों नहीं गए। मेरी जीभ गल क्यों नहीं गई।

किन्तु, मैंने ही तो उसे प्राणदण्ड दिया है। अभी तो वह जीता जागता है। मैं उसे क्षमा भी तो कर सकती हूँ। मैं इंगलैंड की अधीश्वरी हूँ, कौन मेरी इच्छा में बाधा हो सकता है। परन्तु हाय, हाय यही तो मेरा परम दुर्भाग्य है। उसने इंगलैंड की राज-राजेश्वरी की आज्ञा का उल्लंघन किया है। उसके दरबार की मर्यादा भंग की है, उससे विद्रोह किया है। इस की सजा कम से कम मौत है। यह सजा इंगलैंड की अधीश्वरी महारानी एलिजाबेथ ने दी है। 'कौन अब उससे दया की प्रार्थना करेगा। मैं अभागिन स्त्री महामहिम महारानी से कैसे अपनी विथा कहूँ। कैसे अपने प्राण प्यारे के प्राणों की उससे भीख माँगूं। वह तेजस्विनी महारानी, मुझ दीन हीन अभागिनी औरत को देखेगी या महामहिम इंगलैंड के सिंहासन की मर्यादा का ख्याल करेगी। आखिर इंगलैंड की महारानी कोई साधारण स्त्री नहीं है। भावी इतिहास के पृष्ठ मुख खोले उसकी क्षण-क्षण की गतिविधि को निगल जाने को उद्यत हैं। मैं अपना एक तुच्छ स्त्री का सुख दुःख देखूं या इंग्लैंड के ताज की मर्यादा की आन रखूं। मैं एलिजाबेथ हूँ, इंगलैंड की महाराना। यूरोप आज जिसके नाम से थर्राता है, जिसके सामन्तों ने स्पेन के राजा की डाढी में आग लगाई थी। आयर्लैंड के विद्रोही सरदारों ने जिसके चरणों को चूमा। समुद्र की लहरें जिसकी आज्ञा के अधीन हैं। जिसने समूची दुनिया को नव जीवन प्रदान किया है। जिसके जीवन के प्रत्येक क्षण इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षर से लिखे गए हैं। नहीं, नहीं, मैं भले ही नष्ट हो जाऊँ मेरा हृदय फट जाय, पर इंग्लैंड की महामहिम महारानी एलिजाबेथ की मर्यादा भंग नहीं होनी चाहिए। उसकी आज्ञा अमिट है, वह पूर्ण होगी, वह पूर्ण होनी ही चाहिए।

किसी दुर्जय गूढ़ आवेग ने जैसे उसका गला आ दबाया। वह इतनी

उत्तेजित हो गई कि उसकी छाती मुँह और गला लाल हो गया। परन्तु क्षण भर बाद ही वह मुँह पीला हो कर सूख गया। अब वह टेबुल पर पैर रख कर इस तरह खड़ी हो गई, मानों वह राजसिंहासन पर खड़ी है और सारे राज सभासद राजपुरुष विनीत भाव से घुटने टेक कर विनीत भाव से उसके सम्मुख उपस्थित हैं। वह जैसे सतेज वाणी से कह रही है—मैं इंगलैंड की महामहिम महारानी हूँ और मेरी आज्ञा का तुरन्त पालन होना चाहिए। इस समय उसकी आँखों में अपूर्व ज्योति दीख पड़ रही थी, और वह पूरी ऊँचाई में तनी खड़ी थी। पर क्षण भर बाद ही उसकी मुख मुद्रा बदल गई। व्याकुल होकर वह अपने चारों ओर देखने लगी। उस के मुँह पर कालिमा छा गई और उसका हृदय अन्धकार में डूब गया। और वह अचेत होकर वहीं भूमि पर गिर गई।

वह स्वप्न देखने लगी। उसने देखा कि वह एक कब्रिस्तान में घूम रही है। उसके चारों ओर कब्र ही कब्र हैं और हजारों मुर्दों ने कब्र से निकल कर उसे घेर रक्खा है। अनेक अस्थि-कंकाल अपनी-अपनी कब्रों पर बैठे उसी की ओर देख रहे हैं। फिर उसने देखा कि वे सब अपने कंकाल के लम्बे-लम्बे हाथ उठाकर एक ओर को संकेत कर रहे हैं। रानी ने उधर नजर की तो उसने देखा कि उसका प्रियतम एसैक्स है। उसका कटा हुआ सिर उस की हथेलियों पर रखा हुआ है और उसमें से खून टपक रहा है। वह सिर एकटक रानी की ओर देख रहा है और वह बिना सिर का धड़ उसी की ओर आ रहा है। सारे अस्थि कंकाल खड़-खड़ करते हुए उसके पीछे हो लिए और नाचने लगे। वे कह रहे थे—आओ, आओ। यहाँ हम तुम्हें एक नई कब्र में स्थान देंगे। हमारे साथ मजे में रहना। यहाँ कोई रानी एलिजाबेथ नहीं है जो तुम्हारा सिर काटने का हुक्म देगी। यहीं हमारा शान्ति का अमर राज्य है। हा, हा, हा, हा। रानी भय से ठण्डी पड़ गई। सोते ही सोते उसकी चीख निकल गई। वह हरहरा कर उठ बैठी। उसका शरीर पीपल के पत्ते की भाँति काँप रहा था। कमरे में मोमबत्ती की धीमा प्रकार फैल रहा था। खुली

खिड़की से ठण्डी हवा के झोंके और ठक-ठक की आवाजें आ रही थीं। मृत्युमंच तैयार हो रहा था। उसने उठ कर खिड़की बन्द कर दी और दासी को बुलाने को घण्टी की रस्सी खींची। वह आँख बन्द करके एक कुर्सी पर बैठ गई। दासी के आने पर उसने कहा—हम अभी लेडी एलिनर को देखना चाहती हैं। दासी ने सिर झुकाया और दरवाजा आहिस्ता से बन्द करती हुई बाहर चली गई।

: २४ :

विप्रलम्भ नायिका

एलिनर सहमती हुई आकर रानी के क़दमों में लोट गई। बहुत देर तक तो रानी सकते की हालत में गुम-सुम बैठी रही, फिर उसने एलिनर को उठा कर छाती से लगा लिया। दोनों नारियाँ रो रहो थीं। दोनों ने प्यार का घाव खाया था। दोनों ही की वेदनाएँ असीम थीं।

बहुत देर बाद एलिनर ने सुबकियाँ लेते हुए कहा—"महारानी, दया करो, रहम करो। मुझे मरवा डालो। उसे छोड़ दो। ओ महान् महारानी, रहम, रहम।"

रानी ने भरे कण्ठ से कहा—"रहम किस पर मेरी प्यारी एलिनर"

"उस भले लार्ड पर महारानी, जिसकी वीरता का ताजा उदाहरण आपको मिला है, जिसे अभी आपने गार्टर की प्रतिष्ठा बख्शी है।"

'उस औरत पर नहीं, जो इंगलैंड की राज-राजेश्वरी है? अथवा उस पर भी नहीं, जिसे इंगलैंड की रानी सबसे ज्यादा प्यार करती है?"

"ओह, महारानी आप बड़ी दयालु हैं। आपके तो एक संकेत से ही वह सुन्दर लार्ड स्वतन्त्र वायु में साँस ले सकता है।"

"किन्तु तुम किससे प्रार्थना कर रही हो, मेरी प्यारी?"

"आप से, इंगलैंड की महारानी से, जिसके तेज और प्रताप के आगे यूरोप का सिर झुका हुआ है।"

"ओह, अच्छा होता यह प्रार्थना तुम अपनी ही जैसी किसी दुखिया

औरत से करतीं, उसका हृदय तुम्हारा यह आर्त्तनाद, यह तरुण विषाद सुन कर जरूर पिघल जाता। एलिजाबेथ यदि एक औरत होती, सिर्फ औरत, तो आज उसे तुम्हारे साथ आँसू न बहाने पड़ते, किन्तु अब तो कुछ भी आशा नहीं है। प्यारी एलिनर, तुम्हें सब्र करना पड़ेगा। और एलिजाबेथ को भी, जो तुमसे ज्यादा दुःखी और असहाय है।"

"हाय महारानी, तो क्या अब कुछ भी आशा नहीं है ?"

"तू क्या एक ऐसी औरत को नहीं देखती जो तुझसे भी हज़ार गुना अभागिन और एकाकी है। तुझे तो इंगलैंड की महारानी का आसरा है, पर उस अभागिनी का तो कहीं भी आसरा नहीं है। उसे तो अकेले ही आँसू पी कर रहना है।"

"तो महारानी, क्या आप मेरे वध की उसके साथ ही आज्ञा नहीं दे सकतीं ?"

"मेरी प्यारी, क्या इंगलैंड की महारानी इतनी मूढ़ है और उसका निर्णय इस कदर घृणित है ?"

"वह तो मैं नहीं कहती, महारानी।"

"तो मेरी प्यारी, सहन कर। एक औरत का किसी मुल्क के तख्त पर बैठना कितना मुश्किल है। मैं इस मुश्किल को पहले ही जानती थी। और इसीलिए मैंने विवाह नहीं किया। कुँवारी ही रही। मैं जानती थीं कि तख्त पर बैठ कर तलवार की धार पर चलना पड़ता है। दिल का सौदा नहीं हो सकता। मगर मेरे भीतर जो एक कमजोर औरत बैठी थी, उसने मुझे यह दिन दिखाया।"

"तो क्या महारानी, कुछ भी आशा नहीं है ?"

"नहीं मेरी प्यारी, बिल्कुल नहीं। इंगलैंड की महारानी की आज्ञा पूरी होगी। इंगलैंड के तख्त की शान यदि कहीं गिरी तो आगे इंगलैंड के इतिहास में काले अक्षरों में ये शब्द लिखे जाएँगे कि आखिर तख्त पर एक कमज़ोर औरत ही तो थी।"

"तो मेरी सब प्रार्थना बेकार है ?"

"बिल्कुल बेकार। रानी तुम्हारी प्रार्थना स्वीकार करने योग्य नहीं है, पर मेरी प्यारी, तू रानी की प्रार्थना स्वीकार करके उस पर अहसान कर सकती है।"

"क्या महारानी मुझसे कह रही हैं?"

"महारानी नहीं प्यारी, एक औरत, महज मामूली औरत, जो तुझसे भी ज्यादा बदनसीब और कमजोर है। लेकिन तुझे वह प्राण से ज्यादा प्यार करती है। उसका नाम है बदनसीब एलिजाबेथ—उस प्यार के नाम पर उसकी एक आरजू पूरी कर। इस नेक काम का बदला तुझे ईश्वर देगा। एक तड़पती हुई आत्मा तुझे आशीर्वाद देगी।"

"कहिए महारानी।"

"एक बार उसे मरने से पहले मुझसे मिला दो बहन, सिर्फ एक क्षण के लिए।"

"ओह महारानी, यह असम्भव है, बिल्कुल असम्भव।"

"मेरी प्यारी, एलिनर अपनी रानी को उपकृत कर।"

"महारानी, मुझ पर दया कीजिए या मुझे कत्ल करा दीजिए।'

"दुर्भाग्य है एलिनर, लेकिन तुम्हारा दोष नहीं। मैं खूनी हूँ, कातिल हूँ, तुम सच कहती हो।'

"महारानी", एलिनर उसके पैरों में लोट गई।

"अच्छा विदा एलिनर, तुमने एक असहाय औरत का दिल तोड़ दिया। मैंने तो तुमसे सिर्फ तुम्हीं से उम्मीद की थी। इस दुनिया में और किसी के सामने मैं अपना हृदय नहीं खोल सकती थी। लेकिन खैर। अब तम चली जाओ। तुम अपना बदला ले चुकी, अब मुझे अकेला छोड़ दो। बिल्कुल अकेला।"

एलिनर उठ कर खड़ी हो गई। उसने आँसू पोंछ डाले और कहा—"महारानी, आपकी आज्ञा का पालन मैं करूँगी। मैं जाऊँगी।"

"लेकिन तुम्हारी रानी इसका बदला न चुका सकेगी। इंगलैंड का तख़्त दे कर भी नहीं।"

"बदले की बात नहीं, महारानी। आखिर मैं भी एक औरत हूँ और दर्द की वेदना मैं समझती हूँ। महारानी के विश्वास को मैं व्यर्थ नहीं जाने दूंगी। मैं जाऊँगी।"

"लेकिन यह बात किसी पर प्रकट न होने पाएगी।"

"हवा को भी नहीं। विश्वास कीजिए।"

"तो जा मेरी प्यारी, ईश्वर तेरी रक्षा करे।"

एलिनर ने रानी का हाथ चूमा, ज़मीन तक झुकी और चल दी।

: २५ :
जीवन का प्यार

वध ? सूर्योदय से पूर्व ही मेरा वध किया जायगा। मेरा सिर काट लिया जायगा। उसके लिए तैयारियाँ हो रही हैं। वह रह-रह कर राजबन्दी गृह की लोहे के सींखचों को पार करती हुई ठक-ठक की आवाज़ आ रही है। मेरे लिए वधस्थली बनाई जा रही है। मेरा वध होगा, केवल वध होगा, केवल यही एक विचार मेरे मस्तिष्क में है। बस, वह है और मैं हूँ। उसके असह्य भार से विदलित। मेरी मेधाविनी निष्फलित बुद्धि, स्वप्न जगत में भटक गई है। वह एक काल्पनिक अस्त-व्यस्त जीवन का चित्र बना रही है जिसमें सहस्रों स्वप्न-वासनाएं और जीवन की कोमल भावनाएँ हैं। उसमें धर्म-बन्धन है, यशस्विनी विजय है, जीवन और आलोक हैं और वह अनिंद्य सुन्दर मुख है जो मेरा हो चुका, पर अभी मैंने उसका स्पर्श नहीं किया। शायद कभी न कर सकूंगा।

मैं बन्दी हूँ। मेरा शरीर लोहे की जंजीरों से बंधा हुआ यहाँ काल-कोठरी में बन्द है। मेरे हृदय में बस वह एक भयानक-वीभत्स विचार है अटल, निश्चित और गहन, कि मैं प्राणदण्ड की आज्ञा प्राप्त कैदी मात्र हूँ। मुझे थर्रा देने वाला यह विचार मेरी प्रत्येक सुख कल्पना को, जो मेरे जैसे स्वस्थ तरुण में नैसर्गिक है, तत्क्षण मुझ से दूर कर रहा है। वह

मेरे सम्मुख मूर्ति मान उपस्थित है, तनिक भी मैं मस्तिष्क में निश्चिन्तता लाता हूँ तो वह अपने शीतल हाथों से मुझे जकड़ लेता है। उसे भूल जाने से सम्बन्धित मेरे जितने विचार हैं, उन सब पर उसका असाधारण अधिकार है।

लोगों की उत्सुक भीड़ तो अभी से जमा होनी आरम्भ होती जा रही है। उसकी अस्पष्ट आवाज़ मैं सुन रहा हूँ। कैसा आश्चर्य है, मैं अभी अभी गहरी नींद सो कर उठा हूँ। जब कि मेरे लिए वधमंच बनाने वाले रात भर काम करते रहे हैं। मैं औरों की भाँति ही जीता और साँस ले रहा हूँ, पर मैं जानता हूँ कि उनके और मेरे बीच एक दुर्भेद्य दीवार है। ओह, वे लम्बी और प्रशस्त खिड़कियाँ, चमकीला सूर्य, स्वच्छ आकाश, सुन्दर पुष्प, अब तो सभी कुछ नीरस हो गए।

क्या मृत्यु सब के लिए अनिवार्य नहीं है ? फिर मेरी ही दशा में यह परिवर्तन क्यों है ?

कैसा आश्चर्य है, जेल की अंधेरी कालकोठरी, गन्दी प्यालियों का वह शोरवा और गंदी काली रोटी के टुकड़े, जो कल रात मुझे मिले थे, जिन्हें जल्लाद सूर्यास्त से प्रथम ही मुझ से छीन लेगा। मैं सभ्य शिष्ट सम्भ्रान्त आदमी हूँ। अथवा कल तक था। परन्तु अब क्या, अब तो मैं कैदी हूँ जिसका सिर सूर्योदय होते ही काट लिया जायगा। कितनी भयानक बात है। उफ यह कालकोठरी भी अद्भुत है, इसे तो मैंने अभी तक ध्यान से देखा ही नहीं। इसमें न खिड़कियाँ हैं, न रोशनदान, न काँच के दरवाजे। सिर्फ लोहे के बड़े-बड़े सीखचे लगे हुए हैं। यह तो वह महल नहीं है जिसमें रहने का मैं अभ्यस्त हूँ। परन्तु अब इससे क्या ? यहाँ तो मैं कुछ घड़ियों ही के लिए हूँ और अब सूर्योदय में भी देर नहीं है। दारोगा और वार्डर अब भी मुझ पर दया करते हैं। छिः छिः कितनी घृणित है इन तुच्छ लागों की दया। इन जैसे कितने मेरी दया के पात्र थे। मैं अर्ल आफ एसैक्स हूँ। आयरलैंड की ईंट से ईंट बजा देने वाला। लेकिन एक दावात और कलम यदि मुझे मिल जाती ? मैं क्षण-क्षण की चिंताओं

ग्रौर ग्रंधाधुंध मन में उठने वाले तूफानी विचारों को लिखना चाहता हू, परन्तु किस लिए ? क्या इससे कोई यह समझ सकेगा कि प्राणदण्ड पाए हुए को कैसी पीड़ा भोगनी पड़ती है । परन्तु इससे मुझे क्या लाभ होगा ? निरर्थक है । बिलकुल निरर्थक । फिर भी उन्हें इतना तो जानना चाहिए कि जिस मनुष्य को वे मार डालना चाहते हैं, उसे ग्रपने जीवन की रक्षा करने की तीव्र ग्रभिलाषा है, उसमें एक ग्रात्मा है जो ग्रमर है । वे तो इसी बात का गर्व कर रहे हैं कि केवल ज़रा-सी पीड़ा दे कर ही मेरा प्राण हरण करेंगे । पर उस मानसिक पीड़ा के सामने, जो रात भर मैंने भोगी है, वह क्षणिक पीड़ा क्या हैसियत रखती है, जो सिर काटने के समय होगी । यद्यपि मेरा उसका प्रथम ग्रनुभव नहीं है पर वह तो केवल क्षण भर ही की होगी । उसे तो मैं खुशी से बर्दाश्त कर लूंगा । परन्तु यह सूरज, ये रंगीन फूलों के हरे-भरे बगीचे, प्रभात के चहचहाते पक्षीगण, यह उज्ज्वल ग्राकाश, यह स्वतन्त्रता, यह जीवन. यह तो ग्रब मुझ से छूटा, सदा के लिए, हाँ हाँ सदा के लिए ।

लेकिन ठहरो, मैं तो ग्रपनी ही बात सोच रहा हूँ । ग्रौर भी तो हैं । मेरी बेचारी वृद्धा माता ? खैर, उसका मुझे ज्यादा सोच न करना चाहिए, वह सत्तर वर्ष की है, जल्द मर जाएगी । निस्संदेह, इस चोट की मार से वह ज्यादा दिन जियेगीं नहीं। कुछ दिन जीई भी, तो ग्रपने दिन रो-रोकर काट लेगी । ग्रफसोस मुझे ग्रपनी पत्नी का है । हाँ, उसे पत्नी ही कहना चाहिए । उसका उस दिन मेरे साथ विवाह हुग्रा है, यद्यपि मैंने ग्रभी उसके शरीर को नहीं स्पर्श किया । तो इससे क्या ? हम दोनों एक दूसरे को ज़ान से ज्यादा प्यार करते हैं । ग्रब इस बात को छिपाने से क्या फायदा ? यह तो कोई ऐसा गुनाह नहीं है, पर वह बहुत नाजुक बदन है । उसका दिल फट जायगा । ग्रजी, वह जरूर पागल हो जायगी । ग्रफसोस तो यह है कि पागल लोग जल्द नहीं मरा करते । ग्रोह कितना ग्रसह्य होगा उसका यह चिर जीवन ? इसकी याद कलेजा चीरे डाल रही है ।

खैर, जरा इस कोठरी की तो कैफियत देखी जाय। कैसे ग्रनघड़ पत्थरों से बनी है। इसका फर्श बाहर की जमीन से ऊँचा है। सिर के ऊपर ग्राकाश की जगह गुम्बजदार छत है। पता नहीं यह फूंस कितने दिन का है। उफ, इसी पर मैं मजे में तीन-चार घण्टे सोता रहा हूँ। ग्राश्चर्य है। छत में न जाने कितने मकड़ी के जाले लटके हुए हैं। खिड़की एक भी नहीं। दरवाजे की किवाड़ों में जो जालियाँ हैं, उन्हें लोहे की चादर से ढाँप दिया गया है। बस वह सूराख है जिसमें से उस संतरी की मनहूस ग्राँखें हर ग्राधे घण्टे बाद झाँकती रहती हैं। जब वह ग्राता है मुझे पता लग जाता है उसके भारी-भारी बूटों की ग्रावाज़ से। ग्रौर बरबस मेरी ग्राँखें भी उस ग्रोर उठ जाती हैं। यह देखिए, दीवारों पर नक्शे, तस्वीरें बनी हैं, दस्तखत हैं। इन पर तारीखें हैं। ये सब उन बदनसीब कैदियों के हैं जो मुझसे पहले यहाँ रैन बसेरा ले चुके हैं। वे कोई न कोई ग्रपना स्मृति चिह्न छोड़ गए हैं। कोयले से लिख कर या खड़िया से या ग्रपने खून से। यह तो ग्रद्‌भुत रहस्यमयी पुस्तक है जिसके पन्ने सदैव खुले रहे हैं। मैं चाहता हूँ कि इन विचारों की गन्ध, जो इन दीवारों पर थिरकी हुई है, एक जगह एकत्र कर लूं ग्रौर फिर इन ग्रधूरे वाक्यों को बिखरी हुई पंक्तियों को, ग्रर्थहीन शब्दों को जो सिर कटी लाश की भाँति यहाँ पड़े हैं, जीवन पर्यन्त मनन करूँ। मगर वाह, ग्रब जीवन है ही कहाँ? ग्रब तो केवल कुछ घण्टों की ही बात है। ग्रजी, ग्रब तो समय ही नहीं रहा!!! लेकिन यह क्या? यह देखो, दीवार पर दो हृदय ग्रंकित हैं, उनमें तीर मारा गया है, ग्रौर उनसे रक्त की धार बह रही है। नीचे क्या लिखा है—पढ़ा नहीं जाता, रोशनी बहुत कम है, ग्रक्षर मिट गए हैं। पर पढूंगा तो ज़रूर। बस पढ़ लिया है। लिखा है "जीवन का प्यार, वाह, वाह। बस मैं भी इसी के नीचे ग्रपने दस्तखत कर दूं। पर स्याही कलम कहाँ है? खूब याद ग्राया, मेरी रगों में खून तो है। ग्रजी, बहुत है। लो लिख दिया मैंने ग्रपना नाम, ग्रब कोई न कोई तो इसे पढ़े ही गा। ग्रभी तो ग्रौर कैदी यहाँ ग्राएँगे। मेरी ग्रौर उन सब की तरह।

मरने वाले मर गए, और बस अब कुछ घण्टे शेष हैं। मैं भी उनमें शुमार हो जाऊँगा।

ओह, इस लैंप का प्रकाश कम होता जा रहा है, दिन निकल रहा है। लो, छह बज रहे हैं। पर यह खटका कैसा हुआ ? दरवाजों में चाभी घूम रही है। वो आ रहे हैं। पर मैं भी तैयार हूँ। अरे-अरे बदनसीब, इन पत्थरों की दीवारों के उस पार केवल एक ही वस्तु है, मृत्यु, मृत्यु !!!

कोई काले लबादे में लिपटा हुआ आ रहा था। कैदी उठ कर खड़ा हो गया। लेकिन यह क्या ? यह क्या ? आगन्तुक दौड़ कर कैदी की भुजाओं पर गिर गया। कैदी ने उसे अंक में भर लिया।

यह तो आशा से भी अधिक है मेरी प्यारी, प्राणाधिक प्रिय एलिनर खूब आई। मगर रोती क्यों हो, सिसकियाँ मत लो। जरा मेरी ओर देखो, यहाँ, आकर तुमने मेरी मृत्यु को आशीर्वाद बना दिया। एलिनर ने बड़ी कठिनाई से अपने को दृढ़ किया, उसने थर्राती हुई वाणी से कहा—"समय बहुत कम है। मैं बड़ी ही कठिनाई से आ पाई हूँ। मुझे रानी ने भेजा है।"

'तो उन्होंने अपने सारे ही निर्दय आचरण का परिमार्जन कर लिया। अंतिम क्षणों में तुम्हें मेरी गोद में डाल दिया ?"

"किन्तु तुम्हें उनसे मिलना होगा। प्रियतम, वह भी मेरी भाँति स्त्री है, उन्हें क्षमा करना होगा।"

"ओफ क्या यह भी सम्भव है ?"

"उन्होंने अनुनय की है, प्रार्थना की है, अस्वीकार न करो प्रियतम।"

एलिनर कैदी की गोद में बिखर गई। कुछ देर सन्नाटा रहा। फिर एलिनर सावधान होकर खड़ी हो गई। उसने कहा —"प्रियतम, तुम वीर शिरोमणि हो, अपना श्रेष्ठ उत्सर्ग प्रकट करो।"

"ठीक कहती हो, प्रिये।"

"तो चलो प्यारे, रानी के पास चलो, समय टला जा रहा है।"

"कुछ परवाह नहीं, आओ कुछ देर मेरे पास बैठ जाओ। ये अमूल्य क्षण हैं। मैं आँख भर कर तुम्हें देख लूं।"

"ओफ, पर समय कहाँ है। मैंने बड़ी कठिनाई से अपने सब गहने और जमा पूंजी देकर पहरेदारों को राजी किया है।"

"क्या रानी ने………"

"वे कैसे यह बात प्रकट कर सकती थीं ?"

"सच है। लेकिन क्या वे मेरी मृत्यु को सहन कर लेंगी ?"

"मुझे संदेह है।"

"लेकिन तुम ?"

"मैं सह लूंगी। तुम्हारी यह मृत्यु बड़ी शानदार है। इंगलैंड में इसका जवाब नहीं है।"

"शायद।"

"रानी से मैंने क्षमा याचना की थी, पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया।"

"कैसे कर सकती थीं ? वे इंगलैंड की महामहिम महारानी हैं। उनका कुछ कर्तव्य भी है।"

"मैं जान गई। उस कर्तव्य पर उन्होंने आत्म बलिदान कर दिया। वे तुम्हें नहीं, अपने ही को कत्ल कर रहीं हैं।"

'सच है। सच है। लेकिन तुम ?"

"मेरा प्रेम उनके प्रेम के मुकाबले धूल के कण बराबर भी नहीं है। मैं उनके समक्ष एक अति तुच्छ दुर्बल हृदय स्त्री हूँ। वे तो उस सर्वोच्च पर्वत शृंग के समान हैं जिस तक पहुँचना ही दुर्लभ है।"

"बिल्कुल ठीक है प्रिये। तेजस्वी पुरुष के स्पर्श करने से तो जलना ही पड़ता है। तो प्रिये विदा। तुम से तो मैं अभी विदा ले लूं। फिर तो अक्सर मिले ही गा नहीं।"

"विदा प्रियतम, तुम्हारे प्रेम को मैं अनमोल मोती की भाँति यहाँ हृदय में धरोहर की भाँति रखूंगी।"

"अफसोस कि मैं जल्दी में कुछ भी नहीं कर सका। लेकिन मैंने अपनी सम्पूर्ण स्टेट तुम्हारे नाम दे दी है। रानी से कह देना।"

"इन बातों की चर्चा न करो, प्रियतम। अपना प्रेम रानी को दो और कृपा मुझे। बस। केवल इतना ही।"

"तुम धन्य हो, प्रिये।"

"अब चलो।"

"चलो, प्रिये।"

: २६ :

सुन्दर प्रभात

"कैसा सुन्दर प्रभात है ?"

कैदी ने रानी को देखते ही मुस्करा कर कहा। एलिनर आँखें पोंछती हुई वहाँ से खिसक गई। संतरियों ने कैदी की जंजीरें खोल दीं और बाहर चले गए। एक सूने और अंधेरे कमरे में रानी पत्थर की मूर्ति के सामन अचल बैठी थी। उसने सिर से पैर तक काले वस्त्र पहने थे। कमरा बहुत बड़ा था और उसमें कोई सजावट का सामान न था। रानी की आँखें पथरा रही थीं। वे सूज कर लाल हो गई थीं। कैदी की बात का उसने कोई जवाब नहीं दिया। उसने फिर कहा—"बहुत सुन्दर दिन है, है न ?" कैदी ने फिर हंस कर ये शब्द कहे। वह दो कदम आगे बढ़ा। सुपरिचित शब्द थे। रानी इन शब्दों को उसके मुँह से हजार बार सुन चुकी थी। पर आज भी !

"लेकिन तुम हँस रहे हो एसैक्स ? मुझे श्राप नहीं दोगे।"

"किस लिए महारानी ?"

"क्या मैंने तुम्हारे साथ घोर दुष्कर्म नहीं किया ?"

"कौन ऐसा कहता है, उसका नाम मुझे बताओ और मेरी तलवार मुझे दो। मरने से प्रथम उसका सिर काट कर तुम्हारे चरणों में डाल दूं।"

"तो क्या तुम अपनी रानी को अब भी प्यार करते हो ?"

"रानी की मैं इज्जत करता हूँ। मैं उसकी राजभक्त प्रजा हूँ।"

"और एलिजाबेथ ?"

"उसे मैं प्राणों से बढ़ कर प्यार करता हूँ। करता रहा हूँ। वह मेरे हृदय की अधिष्ठात्री है।"

"किन्तु वह ?

"वह भी मुझे प्यार करती है, यह जितना मुझे आज मालूम हुआ उतना पहले कभी नहीं।"

"प्राणदण्ड पाकर ?

"तो इससे क्या ? यह अँगूठी अभी तक मेरी उंगली में है। छीनी नहीं गई। इस पर उसका नाम अंकित है। उसने अपने हाथों मुझे पहिनाई थी।" एसैक्स ने अंगूठी चूम ली।

रानी कुर्सी से उठ खड़ी हुई। वह आगे बढ़ी, पर लड़खड़ा कर गिर गई। कैदी ने उसे अपने भुजदण्डों में उठा कर अंक में भर लिया। रानी टूटी हुई पुष्पमाला की भाँति उसकी गोद में बिखर गई। उसने टूटते स्वर में कहा—"मैं जानती थी, कि तुम मुझे क्षमा कर दोगे।"

"मेरी प्यारी एलिजाबेथ, मेरे रक्त की एक-एक बूंद तुम्हें प्यार करती है।"

"और यही हाल मेरा है प्रियतम। अब तुम तो चले शान से, मैं कैसे अकेली रहूँगी। मगर तुम तो हँस रहे हो ?"

"मेरा रोम-रोम आनन्द से भरपूर है।"

"यह कैसा आनन्द है प्रियतम, क्या मेरे विछोह से तुम खुश हो ?"

"नहीं, इंगलैंड की राज राजेश्वरी के अखण्ड तेज प्रताप से मेरा दिल बाग-बाग है। महारानी, तुम यदि ऐसा न करती तो मैं तुम्हें घृणा करता। तुमने इंगलैंड की रानी की मर्यादा रख ली और मुझे मेरे जीवन की सबसे महान प्रतिष्ठा दी।"

"ओह तुम ऐसा सोचते हो, प्रियतम।"

"क्यों न सोचूँ भला। कौन इंगलैंड में मेरे बराबर भाग्यशाली है जिसने इंगलैंड की रानी का प्यार भी पाया और सम्मान भी ?"
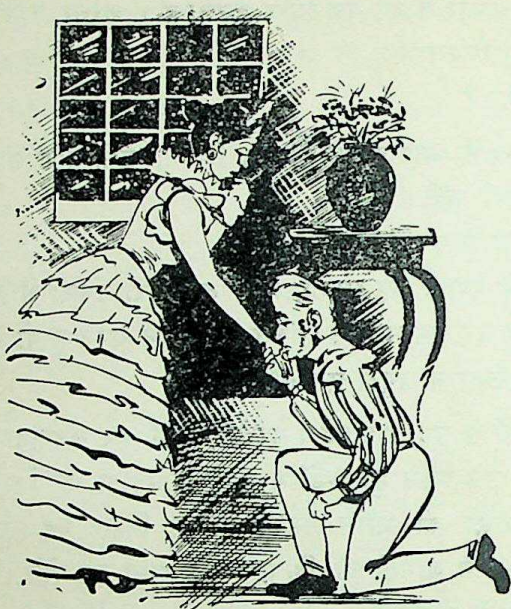
"घातक के कुल्हाड़े को तुम सम्मान कहते हो।"

"आज मैं कहता हूँ। कल से सारी दुनिया कहेगी।"

"ओह प्यारे, तुम ऐसे वीर पुरुष हो, मैं तुम्हारी इसी वीर मूर्ति को हृदय में रख अब जीती रहूँगी। विश्वास रखो जीते जी मेरे हृदय के सूने सिंहासन पर कोई दूसरा न आ सकेगा।"

"इस बात को तो सुन कर प्रिये, मैं सौ बार सिर कटा सकता हूँ।"

"हाय प्रियतम, यह रानी होना ही मेरे दुर्भाग्य का कारण हुआ। काश कि मैं एक किसान की बेटी होती, तो हम तुम किसी एकांत मनोरम स्थान में आनन्द के दिन व्यतीत करते, जैसे बत्तख का जोड़ा, आनन्द करता है।"

"उस तरह रह कर जीवन तो प्रिय पशु-पक्षी और साधारण जन व्यतीत करते हैं। महामहिमावान पुरुष तो ऐसे ही जीते हैं जैसे इंगलैंड की महामहिम महारानी।"

"और महापुरुष ऐसी ही वीरता से मृत्यु का आलिंगन करते हैं जैसे तुम प्रियतम ?"

"मुझे तो सारा बल तुम्हारे प्यार का ही है, एलिजाबेथ।"

"तो विदा प्रियतम।"

"विदा प्रिये, चिर विदा।"

"लेकिन तुम एलिनर से बिना मिले ही चले जाओगे ?"

"वह तो तुम्हारी गोद में है प्रिये, मुझे उसकी क्या चिंता है।"

"तो प्रियतम, तुम्हारी जुदाई के सदमे में हम दोनों का सांझा है। जब तक जीती हैं तब तक।"

"यह अधिक से भी अधिक है महारानी।"

वह मुड़ा। रानी उसके अंकपाश से खिसक कर धरती में गिर गई, फूलों के ढेर की तरह। एसैक्स के चलते हुए कदम रुक गए। उसने एक नज़र रानी पर डाली, जो धरती में पड़ी सिसक रही थी। हाथ ऊँचा कर के जोर से वह चिल्लाया—"महारानी चिरंजीविनी हो। इंगलैंड की अधीश्वरी चिरंजीविनी हो।"

और बिना पीछे मुड़े वह कक्ष से बाहर चला गया। दालान में एक वृद्ध पुरुष ने उसका स्वागत किया। वह पादरी था। उसने अपने नेत्र आकाश की ओर उठा कर कहा—"पुत्र, क्या तुम तैयार हो ?'

एसैक्स ने हँस कर कहा—"निस्सन्देह धर्मपिता, परन्तु आप तो बहुत बूढ़े हैं। मैं इस बात को भूल ही गया था कि कुछ लोग बूढ़े भी होते हैं।"

"पुत्र, साहस करो।"

दरवाज़ा खुला और काली पोशाक में एक लम्बे कद के आदमी ने प्रविष्ट हो कर झुक कर कैदी को सलाम किया। उसके हाथ में एक सर-

कारी परवाना था। उसने कहा—"श्रीमान्, मैं कोर्ट आफ जस्टिस का मीर-मुन्शी हूँ। और पब्लिक प्रोसीक्यूटर से एक सन्देश लाया हूँ।"

"पब्लिक प्रोसीक्यूटर मेरा सिर चाहते हैं न ?"

उसने आज्ञापत्र पढ़ा। फिर उसने कहा—"जब आप की इच्छा हो।"

"देर काहे की। शुभस्य शीघ्रं।"

"तो मैं श्रीमान् की प्रतीक्षा में खड़ा हूँ।"

"तुम ? और भी तो हज़ारों हैं मित्र, चलो फिर।"

वह छोटा-सा जुलूस वधस्थल की ओर चला।

: २७ :

शरीफ तमाशाई

अर्ल आफ एसैक्स कोई साधारण पुरुष न था। वह महारानी एलिजाबेथ के दरबार का सब से कम उम्र, सब से अधिक खुशमिजाज़, सब से अधिक उदार हृदय और सब से अधिक सौभाग्यशाली सामन्त था। दरबार के बहुत लोग तो अवश्य उससे ईर्ष्या करते थे। परन्तु जनता में उसके प्रति प्यार और आदर बहुत था। यह जनता का प्रिय भाव कुछ तो उसके गुणों के कारण था, कुछ इसलिए भी कि उसके साथ रानी का प्रणय सम्बन्ध है। उन दिनों ऐसे सम्बन्ध भी दिलचस्प समझे जाते थे।

अर्ल की वधआज्ञा अप्रत्याशित ढंग से हुई थी। तथा इतनी शीघ्र उसके दण्ड को अमल में लाया जाने वाला था कि लोग दंग हो गए थे। हकीकत यह थी कि यह किसी को भी कल्पना न थी कि रानी अपने परम प्रिय सरदार को ऐसा भीषण दण्ड देगी। इसलिए प्राणदण्ड की यह खबर सारे लण्डन में आग की तरह फैल गई और चारों ओर से ठठ के ठठ लोग वधस्थल के आस-पास आ जुटे थे। जिन-जिन मकानों की खिड़कियों से अच्छी तरह-तरह वह भयानक वध देखा जा सकता था, वे सब बड़े-बड़े किराए पर उठ गई थीं। वजहदार आदमी यह दिलचस्प तमाशा देखने रात ही से आ जुटे थे।

वृहस्पतिवार की सन्ध्या को कुहरा खूब गहरा छाया हुआ था और ठण्ड भी बड़ी ज़ोर की थी। हवा तीर की तरह शरीर की हड्डियों को कंपा रही थी। उस अंधकार में राजप्रसाद की विराट परछाईं डरावनी लग रही थी और बाहर दालान में जहाँ रानी के चैम्बर की खिड़की के नीचे मृत्यु मंच बनाया जा रहा था, काम करते हुए कारीगर भूत जैसे लग रहे थे। लोग बड़े चाव से ये सब तैयारियाँ देख रहे थे। कुछ लोग शाही बन्दीगृह की ओर संकेत कर के कह रहे थे। कैदी उन्हीं सींखचों के अंदर है। जहाँ से छन कर मंद-मंद रोशनी आ रही थी।

ज्यों ही घड़ियाल ने दस पर चोट की कि एक कीमती गाड़ी स्नोविल्ला काफीखाना के द्वार पर आकर रुकी। और उसमें से पाँच आदमी उतर पड़े। गाड़ी से उतरते ही एक ने साईस से कहा—"कल सुबह नौ बजे यहीं गाड़ी ले आना।"

साईस ने अदब से कहा—जैसी सरकार की आज्ञा।"

दूसरे ने कहा—"नौ बजे गाड़ी क्यों बुलाते हो। साढ़े आठ बजे ही तो मामला खत्म हो जायगा।"

"परन्तु सिर कटने के बाद जब कैदी के शरीर के काट-काट कर टुकड़े कर डाले जाएँगे वह तमाशा भी तो हम देख कर चलेंगे।"

"वाह, इस बात का तो मुझे ख्याल ही न रहा था। हम कोई दृश्य देखे बिना छोड़ेंगे थोड़े ही।"

इस पर सब साथी हँस पड़े और काफीखाने में घुस गए। वहाँ जो कमरा इनके लिए ठीक किया गया था, वह ठीक उस मृत्युमंच के सामने ही था। कमरे में आग जल रही थी और आरामदेह गद्दीदार कुर्सियाँ वहाँ पड़ी थीं। चारों महामहिमावान् महापुरुष कुर्सियों पर जम गए। होटल वाले ने आनन-फानन में शराब की बोतलें और प्याले लाकर टेबुल पर सजा दिए। वे शराब उड़ाने और गप-शप करने लगे। बीच-बीच में हँसी के ठहाके भी उड़ते जाते थे। इस दल में प्रसिद्ध अर्ल आफ कैन्ट थे जिनकी मूंछें बड़ी-बड़ी थीं। दूसरे एक प्रसिद्ध ड्यूक के नौजवान बेटे

थे, जो हाउस ग्राफ लार्डस के सदस्य भी थे। तीसरे लार्ड हरिंगटन थे, जो शौकीनी ग्रौर इश्क-मिजाजी के लिए लण्डन भर में प्रसिद्ध थे। चौथे कप्तान मोरिस थे, जो किसी का उधार लेकर देना जानते ही न थे। पाँचवें थे बूढ़े मार्क्विस नार्थम्पटन जिनकी रंगीनियाँ लण्डन भर में प्रसिद्ध थीं।

हँसी-ठट्ठे ग्रौर कहकहों का बाज़ार गर्म था। ग्रर्ल ग्राफ कैंट ने जम्हाई लेते हुए टेबुल पर दोनों पैर पसार दिए ग्रौर वे कोई वाहियात-सा गीत गुनगुनाने लगे। कप्तान मोरिस ने घंटी की रस्सी इतने जोर से खींची कि कैफे का स्वामी घबड़ाया हुग्रा दौड़ा ग्राया ग्रौर हाथ बाँध कर हुक्म की इन्तजारी में खड़ा हो गया।

कप्तान ने ग्रांखें तरेर कर कहा—"गर्म पानी ग्रौर ब्रांडी ले ग्रा वदजात।"

मार्क्विस ने कहा—"ग्रौर बढ़िया चुरुट भी।"

लार्ड हरिंगटन ने कहा—"ग्राग जला ग्राग, बदमाश।"

होटल का मालिक सिर झुका कर वहाँ से चला गया ग्रौर थोड़ी ही देर में ब्राण्डी, गर्म पानी, सुगन्धित चुरुट ग्रौर फलों को सजा गया।

लार्ड हरिंगटन ने कहा—"बहुत बढ़िया। ग्रब हमारी रात मजे में कट जायगी। मगर ग्रब यह खूसट यहाँ क्यों खड़ा है?" उन्होंने लाल-लाल ग्राँखों से होटल वाले को घूर कर कहा।

वह वहाँ से भाग खड़ा हुग्रा। ग्रब लार्ड हरिंगटन ने हँस कर कहा—"बनाग्रो दोस्त, शर्बत बनाग्रो।"

कर्नल ने कहा—"मगर बनाऊँ क्या खाक? रम तो है ही नहीं। न लेमोनेड है।"

"इस साले होटलवाले को ग्रभी फाँसी दे दो।" इतना कह कर मार्क्विस ने फिर जोर से घण्टा बजा दिया। होटलवाले के देवता कूच कर रहे थे। उसने इस बड़े लोगों की मण्डली में ग्राने का साहस नहीं किया। ग्रपनी स्त्री को भेज दिया।

उसे देखकर तरुण ड्यूक ने कहा—"रम कहाँ है, और लेमोनेड कहाँ है, ठड्ढो।"

बुढ़िया सिर झुका कर चली गई। और सब चीज़ें ले आई। ड्यूक ने कहा—"गारत हो जाँय ये सब छोटे लोग।"

"जहन्नुम में जाँय, जहन्नुम में। मेरा बस चले तो सबको फाँसी पर लटका दूँ!"

"खुदा की कसम, मैं भी ऐसा ही करूँ। बदजात हैं, ये सब पक्के बदजात।" युवक ड्यूक ने कहा और वे कोई अश्लील गीत गाने लगा।

मार्क्विस ने कहा—"कप्तान, लेमोनेड में शराब और चीनी मिला कर मजेदार शर्बत बनाना।"

अर्ल आफ कैंट ने कहा—"छोड़ो यार। यह बात कप्तान पर छोड़ दो। इस समय लण्डन भर में उस जैसा शर्बत बनाने वाला नहीं है। लेकिन यह तो सोचो कि इस वक्त बेचारे एसैक्स की क्या दशा होगी।"

"मैं समझता हूँ वह बहादुरी से मौत का मुकाबिला करेगा," ड्यूक ने कहा।

"यह भी हो सकता है कि रानी उसे ठीक समय पर माफ कर दे," अर्ल ने कहा।

"तब तो सारा मजा ही किरकिरा हो जायगा। हम लोग जो इतना कष्ट उठा कर यहाँ आए हैं, निराश लौटना होगा।" तरुण ड्यूक ने कहा।

बूढ़ा मार्क्विस बोला—"सचमुच, यह तो बड़ी खराब बात होगी। परन्तु क्या एसैक्स माफी मांगेगा?"

"उम्मीद तो नहीं, वह है कांटेदार आदमी।"

"अजी मैं हज़ार-हज़ार गिन्नी की शर्त बदता हूँ। सुबह सवा आठ बजे उसका सिर कट कर रहेगा।"

"दृश्य शानदार होगा।"

"क्या रानी यह दृश्य देखेगी?"

"क्यों नहीं, मैं जानता हूँ वह उससे घृणा करती है।"

"ठीक है। एसैक्स का सिर काटा जाना हीं चाहिए। साथ ही इस बदमाश कैफेवाले से कह दिया जाय कि वह रात भर जागता रहे और ध्यान रखे कि हमें ठीक सुबह सात बजे बढ़िया नाश्ता मिल जाय।"

"लेकिन वह खूसट बुढ़िया ऊपर आई तो क़सम खुदा की मैं उसे कच्चा ही चबा जाऊँगा।" इतना कह कर युवक ड्यूक ने जोर से फिर घण्टी का रस्सा खींच लिया।

बेचारा डरपोक दुबला-पतला होटल वाला कांपता हुआ आ खड़ा हुआ। उसे देखते ही बूढ़े मार्क्विस तड़प कर कुर्सी से उठ खड़े हुए। उन्होंने डपट कर कहा—"बदजात, तू हमें इतनी देर तक इंतजार में रखता है। क्या तुझे उस तख्ते से बांध कर लटका दिया जाय?"

होटल वाले ने नम्रता से कहा—"दमे का मरीज हूँ हुजूर, सीढ़ी चढ़ने में मुझे देर हो गई।"

"अबे देर के बच्चे। सुन, हमें सुबह सात बजे बढ़िया नाश्ता तैयार मिल जाय। बोल, क्या-क्या है?"

"भुना हुआ सूअर का गोश्त और ताजे अण्डे।"

"खैर, मगर गुर्दे जरूर देना, और कबाब भी गर्मागर्म।"

"बहुत अच्छा सरकार।"

मार्क्विस ने गिन्नियों से भरी थैली उसके मुंह पर दे मारी। थैली उसकी आँख में लगी। मार्क्विस ने कहा—"जा भाग, और रात भर जागता रह।"

'बहुत अच्छा सरकार, बहुत अच्छा।" कहता हुआ होटल वाला नीचे भाग चला। थैली का वजन भाँप कर उसने देख लिया, रकम काफी थी। इसलिए उसने चोट की जरा भी परवाह नहीं की।

लण्डन के शरीफों की यह मण्डली अब इतमीनान से शराब पीकर और खुश गप्पियाँ उड़ा कर रात काटने लगी।

कुल्हाड़े की करामात

कत्ल का नज़ारा देखने सारा लण्डन ही इस समय सैंट जेम्स पैलेस पर आ जुटा था। ऐसी भीड़ मेले तमाशों में ही इकट्ठी होती थी, परंतु यह भी मेला ही था। वधस्थल तीरंदाजों, गारदों और घुड़सवारों ने घेर रक्खा था। मंच इतना नीचा था कि निकट वाले ही या खिड़कियों पर बैठे लोग उसे देख सकते थे। स्त्रियाँ भी धड़कते हृदय से यह दृश्य देख रही थीं। लोग रह-रह कर महल के झरोखों की ओर ताक लेते थे, जहाँ से रानी के वध का दृश्य देखने की लोगों को आशा थी। कुछ लोग कह रहे थे कि वह माफी मांग लेगा। परन्तु कुछ कह रहे थे कि वह भेड़िये की तरह बहादुर है, माफी नहीं मांगेगा।

जब एसैक्स वधमंच पर आया तो लोगों में एक प्रकार की सिहरन दौड़ गई। वह सिर्फ सैंतीस वर्ष का तरुण था। शरीर से हट्टा-कट्टा और सुन्दर था। बाल उसके बड़े सुन्दर और सलोने थे। आँखें गहरी काली और चमकदार थीं। यद्यपि उसका चेहरा इस समय पीला पड़ गया था, पर उस पर खून चमक रहा था। उसने एक बार चारों ओर मुँह उठा कर देखा। जन-समूह को देख कर वह कुछ विचलित हुआ। अधिकांश दर्शक उसकी वीरता और उदारता का बखान कर रहे थे। इस समय कुहरा छाया हुआ था और थोड़ा-थोड़ा पानी बरसना भी आरम्भ हो गया था। फिर भी जिधर देखिए, मनुष्यों के सिर ही सिर दिखाई दे रहे थे। पुरुष, स्त्रियाँ और बालक सभी जन भींड़ में थे। चारों तरफ के मकानों की खिड़कियों में नर-नारी भरे थे परंतु रानी छज्जे पर नहीं थी।

रातवाली सम्भ्रान्त मण्डली उम्दा नाश्ता करके खिड़की पर डटी थी।

जल्लाद ने आकर एसैक्स के हाथ बाँधने चाहे। पर उसने कहा—"इसकी कोई जरूरत नहीं है। तुम सिर्फ अपने कुल्हाड़े को ठीक रखो।

एक लार्ड ने पास आकर उससे पूछा—"क्या आप कुछ कहेंगे ?"

एसैक्स ने रानी की सूनी खिड़की की ओर देखा। फिर उसने अपना हाथ ऊँचा उठाया जिसमें रानी की दी हुई अंगूठी थी। उसने उसे चूम लिया और तीन बार चिल्ला कर कहा—"इंगलैंड की महामहिम महारानी एलिजाबेथ की जय, महारानी एलिजाबेथ की जय। इंगलैंड की महारानी चिर जीए।" और उसने अपना सिर टिकटी पर रख दिया। बाजे जोर से बज उठे। और तभी जल्लाद का कुल्हाड़ा उसके सिर पर पड़ा। सिर कट कर टोकरी में जा गिरा। लाश खून में डूब गई।

सवारों और तीरन्दाजों ने भीड़ को तितर-बितर करना आरम्भ कर दिया। बाद में लाश के टुकड़े-टुकड़े किए गए। बड़े लोग अन्त तक तमाशा देखते रहे और फिर हँसी-दिल्लगी करते अपने घर गए।

: २९ :

पवित्र रोमन-साम्राज्य

७९५ ईस्वी में लियो तृतीय पोप की गद्दी पर बैठा। परंतु लियो के विरोधी बहुत थे। उनके भय से उसे रोम से भागना पड़ा। उन दिनों इटली पर बादशाह शार्लमेगनन का अधिकार था। यह युग सामन्त पद्धति के विकास का था। अव्यवस्था और अराजकता बहुत थी। कोई भी विजेता सरदार अपनी ताकत से कुछ प्रदेशों पर अधिकार कर लेता—फिर उसे साथियों में बाँट देता था, वह राजा और उसके साथी आश्रित सामन्त बन जाते थे। यही पद्धति उन दिनों जारी थी। ये सामन्त यद्यपि राजा से जागीर पाते थे पर अपने प्रान्तों के स्वतन्त्र स्वामी होते थे—राजा के साथ उनका यह सम्बन्ध रहता था कि आवश्यकता होने पर वे राजा को सैनिक सहायता देते थे। उन्हें कोई निश्चित टैक्स नहीं देना पड़ता था। केवल समय-समय पर भेंट राजा को देते रहते थे। जब तक ये विद्रोह न करें, उनका और उनके उत्तराधिकारियों का अपनी जागीर पर अधिकार रहता था। सामन्त भी अपनी जागीर अपने साथियों में बांट देते

थे। और उनका सम्बन्ध भी अपने स्वामियों से वैसा ही होता था जैसा उनका अपने स्वामी से। जहाँ कोई विजेता बड़ा सरदार राजा नहीं होता था—वहाँ की जनता अपने प्रदेश के किसी एक शक्तिशाली व्यक्ति को अपना सरदार चुन लेती थी। वह अपने से अधिक शक्तिशाली पड़ौसी सरदार का आश्रय ले लेता था। इस प्रकार उस काल की सामन्त पद्धति एक ऐसे भवन के समान थी जिसमें सबसे ऊपर एक प्रतापी राजाधिराज होता था, उसके नीचे कुछ बड़े-बड़े सामन्त, उनके नीचे अनेक राव, उमराव और सबसे नीचे जागीरदार गिरासिए होते थे। इन सब राजाओं में विग्रह निरन्तर होते रहते थे—जो हार जाता था वह विजेता का सामन्त बन जाता था। सामन्त शक्ति प्राप्त कर अपने स्वामी से विद्रोह कर स्वतन्त्र राजा भी बन जाते थे।

उन दिनों शार्लमेगनन उन सब प्रदेशों का महाराजाधिराज था, जहाँ आज फ्राँस, बैलजियम, हालैंड, जर्मनी और आस्ट्रिया के राज्य हैं। इन प्रदेशों के जो छोटे-बड़े सामन्त राजा उमराव थे—वे सब उसे महाराजाधिराज मानते थे। उत्तरी इटली और रोम भी उसके अधीन था।

पोप लियो तृतीय रोग से भाग कर शार्लमेगनन की शरण चला गया। कुछ दिन बाद शार्लमेगनन की सहायता से उसने रोम में आकर फिर पोप की गद्दी पर अधिकार कर लिया।

जिस साल उसने पोप की गद्दी प्राप्त की, उसी साल क्रिसमस के दिन जब शार्लमेगनन सैन्ट पीटर के गिरजे में प्रार्थना करके उठा—पोप लियो तृतीय ने उसके सिर पर राजमुकुट रख कर उसे 'सीज़र आव आगस्टस" कह कर सम्बोधित किया। ये उपाधियां प्राचीन रोमन सम्राटों की थीं। शार्लमेगनन को—ये उपाधियाँ देकर लियो तृतीय ने रोमन साम्राज्य का पुनरुद्धार कर दिया। ये रोमन सम्राट् पोप से अभिषिक्त होकर सम्राट् पद को प्राप्त करते थे। अतः इन्हें पवित्र रोमन सम्राट् और इनके राज्य को पवित्र रोमन साम्राज्य कहा जाता था। परन्तु इस रोमन साम्राज्य का विनाश पाँचवी शताब्दी में हीं हो चुका था। अब

लियो तृतीय ने ईस्वी ८०० में इसका पुनरुद्धार किया। परन्तु अब यह कहने ही को रोमन साम्राज्य था, पर इसकी शक्ति का केन्द्र इटली न होकर जर्मनी था। ये नए रोमन सम्राट् एकच्छत्र शासक न थे। उनकी शक्ति सामन्तों पर निर्भर थी। जो प्रायः विद्रोह करते ही रहते थे। यह पवित्र रोमन सम्राट् का पद भी देर तक शार्लमेगनन के वंश में क़ायम न रहा। वह दूसरे सशक्त राजाओं के वंशों में चला गया।

इंगलैंड पवित्र रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं रहा। ऐंग्लो सैक्सन जाति के लोगों ने वहाँ रोमन शासन का अन्त कर दिया था, और उसी के वंशधर वहाँ शासन कर रहे थे। सामन्त पद्धति का विकास वहाँ भी हुआ।

छठी शताब्दी में मुहम्मद ने इस्लाम के झण्डे के नीचे अरब को संगठित किया और देखते ही देखते अरब का साम्राज्य पूर्व में सिन्ध नद और पश्चिम में स्पेन तक फैल गया। इस समय सिन्ध, बिलोचिस्तान पर्शिया, ईराक, आर्मीनिया, काशगर, तुर्किस्तान, एशिया माइनर, पैलेस्टाइन, ईजिप्ट, उत्तरी अफ्रीका और स्पेन अरब साम्राज्य में समाए हुए थे। ईसाइयों की धर्म भूमि पैलेस्टाइन भी उनके अधिकार में थी। परंतु अरबों का यह समृद्ध साम्राज्य देर तक क़ायम नहीं रहा। दसवीं शताब्दी में उत्तर-पूर्व से उस पर तुर्की के आक्रमण होने लगे। जिससे अरब साम्राज्य खण्ड-खण्ड हो गया। परन्तु विजेता तुर्कों ने अरबों का इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया तथा उनसे गणित, ज्योतिष, चिकित्सा तथा संस्कृति और सभ्यता के पाठ सीखे। पर तुर्क लोग अरबों जैसे सभ्य और सहिष्णु न थे। उन्होंने पैलेस्टाइन में आने वाले ईसाई तीर्थ यात्रियों पर अत्याचार करने शुरू कर दिए। यह घटना ग्यारहवीं शताब्दी की है। उन दिनों अर्बन द्वितीय पोप था। उसने यूरोप के सब ईसाई राजाओं को अपना युद्ध बन्द कर पैलेस्टाइन की पवित्र भूमि को तुर्कों से मुक्त कराने की अपील की। सन्त पीटर सारे यूरोप में इस बात का आन्दोलन करता हुआ घूम गया। वह नंगे पैर, हाथ में विशाल क्रास लिए, मोटे कपड़े पहने सब जगह जाता और बाज़ारों, मंडियों, शहरों, गांवों में

लोगों को धर्म-युद्ध के लिए प्रेरित करता था। उसके प्रयत्न से सारे यूरोप में धार्मिक जोश फैल गया और समूचे यूरोप की सम्मिलित सेनाएँ धर्म-युद्ध के लिए निकल पड़ीं। यूरोप की जनता में एकता की भावना पैदा होने का यह इतिहास में पहला ही अवसर था। इस धर्म-युद्ध में राजा-सामन्त ही नहीं—सर्व साधारण किसान, कारीगर तक बड़ी संख्या में सम्मिलित हुए थे। ग्यारहवीं शताब्दी के समाप्त होते-होते ईसाई क्रूसेडर घनघोर युद्ध और भयंकर खून-खराबी के बाद पैलेस्टाइन पर दखल कर पाए। परन्तु उन्हें सलाउद्दीन ने फिर वहाँ से निकाल बाहर किया। इस प्रकार धर्म-युद्ध से असली उद्देश्य तो पूरा नहीं हुआ पर यूरोप में संगठन और विशालता का दृष्टिकोण पैदा हो गया।

इस समय भी यूरोप में चर्च का बड़ा प्रभाव था। उधर राजा लोग प्रजा के सुख-दुःख का ज़रा विचार न करते थे। उन्हें आपस की लड़ाई झगड़ों ही से फुर्सत न थी। सामन्त पद्धति के कारण वे असंगठित और अव्यवस्थित थे। परन्तु चर्च का प्रभाव असीम था। चर्च का संगठन भी खूब था। पोप राजाओं के सिंहासनों का भी स्वामी था। उस समय यूरोप में विद्या व शिक्षा सब चर्च के ही अधीन होती थी।

पदारियों में अन्ध विश्वास भी खूब था। वे लोगों को इहलोक और परलोक के सुख मोटी-मोटी रक़में लेकर बेचते थे। चर्च में अतोल संपदा चारों ओर से चली आती थी। निस्संतान पुरुष चर्च को अपनी सब सम्पत्ति दे देते थे। चर्च की सम्पत्ति पर राजकर नहीं लगता था। चर्च लोगों से राजकर के समान टैक्स लेता था। चर्च का संगठन भी राज्यों के समान था। प्रत्येक पुरुष चर्च की सरकार के अधीन होता था। चर्च के आदमियों को राज्य न्यायालय दण्ड नहीं दे सकता था। प्रत्येक राजा चर्च के अधीन था। चर्च किसी भी राजा को पदच्युत कर सकता था। धर्म बहिष्कार से लोग बहुत डरते थे। राजा यदि चर्च विरोधी काम करता था तो वहाँ पादरी अपना काम बन्द कर देते थे। बच्चों का बपतिस्मा नहीं होता था। गिरजों के घन्टे बन्द हो जाते थे। मृतकों का संस्कार

नहीं होता था। पाप श्रवण, पाप क्षमा और मुक्तिदान नहीं होता था। इससे प्रजा में हाहाकार मच जाता था। इस कारण कोई बड़े-से-बड़ा राजा भी चर्च का विरोध करने का साहस नहीं कर सकता था।

बारहवीं शताब्दी के अंत में फ्रेडरिक द्वितीय पवित्र रोमन सम्राट् के पद पर था। बचपन में यह सिसली में रहा था। जो अरबों के अधीन रह चुका था। अरब विचारधारा और संस्कृति का उस पर प्रभाव था। उसने अरब अध्यापकों से शिक्षा पाई थी। उस काल के अरब संकीर्ण --धर्मान्ध और असहिष्णु न थे, फ्रेडरिक की चेतना में भी उनकी उदात्त भावना घर कर गई थी। वह चर्च और पोप का विरोधी हो उठा। परन्तु पोप ने उसे धर्म बहिष्कृत कर दिया। उसे हार माननी पड़ी। पर धीरे-धीरे अब राजा पोप के विरुद्ध सिर उठाने लगे। चौदहवीं शताब्दी में जब पोप ने फ्राँस के राजा को धर्मबहिष्कृत करना चाहा तो उसने पोप को गिरफ्तार ही कर लिया। इसके बाद पोप का प्रभाव घटने लगा। अन्त में वाल्डो-जानहस्स, विल्किफ ने पोप के विरुद्ध आवाज़ बुलंद की। उन दिनों राजा-अमीर उमराव-सामन्त और सर्व-साधारण अपढ़ होते थे। शिक्षा मठों में होतीं थी। बाइबिल और उसकी भाषा ही अध्ययन के उच्च आदर्श माने जाते थे। तथा गुरु-शिष्य चर्चों में लैटिन पढ़ते-पढ़ाते थे। अंग्रेज़ी, फ्रेन्च, जर्मन, इटालियन आदि भाषाएँ उन दिनों देहाती अशिक्षितों की बोलियाँ थीं। उनमें साहित्य था ही नहीं। विद्वान् केवल ग्रीक व लैटिन पढ़ते थे। उन दिनों पैरिस और आक्सफोर्ड के विश्वविद्यापीठ भी ईसाई मठों के अंग थे। ज़ादू-टोना, भूत-प्रेत तन्त्र-मंत्र रसायन का बडा ढोंग था। वे ढोंगी भी प्रायः पादरी ही होते थे।

पन्द्रहवीं शताब्दी में जर्मनी के लूथर ने धर्म सुधार की आवाज़ ऊँची की। उसका बहुत विरोध हुआ परन्तु अन्त में इंगलैंड में उसने प्रोटेस्टेन्ट मत की स्थापना कर दी। इससे यूरोप दो भागों में विभक्त हो गया। रोमन केथोलिक और प्रोटेस्टेन्ट। अब राजा लोग चर्च के अधिपति बनते जाते थे। इंगलैंड के राजा हेनरी आठवें ने तो चर्च आफ रोम तथा पोप

से सम्बन्ध त्याग दिया। और प्रथम चर्च आफ इंगलैंड की स्थापना की। परन्तु यह आसानी से नहीं हुआ। लाखों नर-नारी निर्दयतापूर्वक धर्म की वेदी पर बलि हुए।

सत्रहवीं शताब्दी में पवित्र रोमन साम्राज्य का अधिष्ठाता आस्ट्रिया का बादशाह हुआ करता था। इन दिनों जर्मनी और मध्य यूरोप में तीन सौ से अधिक छोटी-छोटी रियासतें थीं। ये सब मिल कर रोमन साम्राज्य के अन्तर्गत थीं।

उन दिनों जर्मनी प्रोटेस्टेण्ट और रोमन कैथोलिक फिरकों की लड़ाई का अखाड़ा बना हुआ था। क्योंकि वहाँ दोनों दल बराबर थे। पर इंगलैंड इस लड़ाई से पाक-साफ था। वह प्रथम ही चर्च आफ रोम से नाता तोड़ चुका था।

इस समय यूरोप के दक्षिण-पूर्व में तुर्क लोग कुस्तुन्तुनिया पर क़ब्ज़ा जमाए हुए थे। और उनका साम्राज्य हंगरी को छू रहा था। दक्षिण-पश्चिम कोण पर अरबों के उत्तराधिकारी मुस्लिम सशसीन ग्रेनेडा से खदेड़ दिए गए थे और स्पेन का सम्मिलित शासन वहाँ अमल में था। स्पेन में ईसाइयों और मुसलमानों की शताब्दियों तक जो तलवारें चलीं, उसने स्पेन को कट्टरता से कैथोलिक मज़हब को चिपका दिया था। वहाँ भयंकर इनक्विजिशन अपना आतंक जमाए था। अमेरिका की खोज के घमण्ड और वहाँ की दौलत के नशे में स्पेन किसी की गर्दानता ही न था। यूरोप के मध्य भाग में जर्मन साम्राज्य था, जो राजाओं, ड्यूकों, पादरियों, निर्वाचकों आदि की अधीनता में छोटी-छोटी रियासतों का अजीब झुण्ड था। स्विटज़रलैंड का प्रजातन्त्र पृथक् था। वेनिस और इटली के भी प्रजातन्त्र थे। रोम के चारों ओर पोप की ज़मींदारी थी जो पैपल स्टेट्स कहाती थी। इसके दक्षिण में नेपल्स और सिसली के राज्य थे। पूर्व में जर्मन राज्यों और रूस के बीच पोलैंड और हंगरी का बड़ा राज्य था।

सोलहवीं शताब्दी में लगभग एकसाथ ही चार्ल्स पाँचवाँ पवित्र रोमन साम्राज्य का सम्राट् और सुलतान सुलेमान कुस्तुन्तुनिया का सम्राट् था।

यह वह समय था कि जब उत्तर-पश्चिम से बाबर ने आ कर हिन्दुस्तान में एक नया राज्य कायम किया था। इस समय तुर्की, ईरान, मध्य एशिया और भारतवर्ष में कला का विकास हो रहा था। चीन के मिंग राजाओं के समृद्ध शासन में कला चोटी तक पहुँच चुकी थी। इटली भी कला में अपना सानी नहीं रखता था। इस तरह सोलहवीं शताब्दी का यूरोप रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्टों के बीच बंटा हुआ था। उन दिनों राजा की गणना होती थी, देशों की नहीं। और इस समय यद्यपि नवीन जागरण तो अवश्य यूरोप में हो रहा था, पर राजाओं की सत्ता सर्वोपरि थी। वे सर्वशक्तिमान थे। प्रजा उकस रही थी और क्रान्ति का विस्फोट अवश्यम्भावी था। मध्यम वर्ग स्फोटोन्मुखी ज्वालामुखी बना हुआ था। आर्मेडा संग्राम में परास्त होने से सेना का सिर नीचा हो गया था। अब इस समय फ्रांस का बादशाह यूरोप में सब से अधिक स्वेच्छाचारी था। वह अपने साम्राज्य को अपनी निजी जायदाद समझता था। कार्डिनल-रिचलू एक पादरी उस समय फ्रांस का प्रधानमन्त्री था। वह फ्रांस में प्रोटेस्टेन्टों को बेरहमी से कुचल रहा था। उधर हैप्सबर्ग का फिलिप-द्वितीय जब नीदरलैण्ड का राजा हुआ तो उसने शहरों के अधिकारियों और नए मत को कुचलने में कोई कसर नहीं रखी थी। उसने एल्वा के ड्यूक को नीदरलैण्ड का गवर्नर बना कर भेजा था, जो कि एक घोर निर्दयी पुरुष था। इसने इनक्विजिशन कायम कर के और एक खूनी मजलिस की स्थापना कर के हज़ारों को जीता जला दिया या फांसी के घाट उतार दिया। उसने नीदरलैंड के सारे निवासियों को ही ला-मज़हब कह कर कत्ल करवा डाला था। इस प्रकार तीस लाख स्त्री-पुरुष कत्ल किए गए थे। वह एक के बाद दूसरे नगर पर घेरा डालता, नगरनिवासी स्त्री-पुरुष जब तक उनसे बनता लड़ते और अंत में मौत के घाट उतार दिए जाते। इस समय जर्मनी में तीस साला युद्ध हो रहा था। जिसमें निरन्तर कत्लेआम और लूटमार का बोलबाला रहा। न खेतीबाड़ी हुई न व्यापार। सारा देश तबाह हो गया। उस समय यूरोप का सारा वाता-

वरण ही धोखेबाजियों, साजिशों, हत्याओं और अत्याचारों से भरा था। ऐसे ही वे दिन थे।

इन दिनों इंगलैंड का बादशाह जेम्स प्रथम था, जो प्रसिद्ध विद्वान था। वह बड़ा शानदार भाषण दे सकता था। पर आकृति उसकी भद्दी और बेडौल थी। वह आलसी, आराम-तलब, खुशामदपसंद, घमंडी और जिद्दी था। फ्रांस का तत्कालीन बादशाह उसे ईसाई संसार का सब से अधिक मूर्ख कहा करता था।

वह स्काटलैंड से आया था तथा स्काटलैंड और इंगलैंड का प्रथम संयुक्त बादशाह था। इसलिए इन दोनों देशों के शताब्दियों के विग्रह समाप्त हो गए थे। परन्तु वह इंगलैंड में लोकप्रिय नहीं हुआ। यद्यपि विद्वान था, परन्तु उसकी अहंमन्यता इंगलैंड के लोगों को रुची नहीं, वह राजा के दैवी अधिकारों पर विश्वास रखता था। इसका मतलब यह था कि राजा पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि है। इसलिए राजा को देश के शासन के लिए दैवी अधिकार प्राप्त हो। वह डंके की चोट कहता था कि जैसे ईश्वर के सर्वशक्तिमान होने में शंका करना अधर्म है, उसी प्रकार राजा के कार्यों पर भी टीका-टिप्पणी करना अधर्म है।

परन्तु सोलहवीं शताब्दी में राजाओं को स्वेच्छाचारी होने में जो सुविधाएँ प्राप्त थीं; अब सत्रहवीं शताब्दी में नहीं रहीं थीं। अब परि-स्थिति भी बदलती जाती थी। विदेशी आपत्तियाँ अब इंगलैंड पर नहीं थीं। और इंगलैंड तेजी से राजनीतिक सुधार कर रहा था। रानी एलिजा-बेथ के शासन काल में—धर्म सुधार, विद्या का पुनर्जन्म, साहित्य का नूतनीकरण एवं समुद्र यात्राओं के जो बड़े-बड़े अभियान हो चुके थे, उस से न केवल इंगलैंड के लोगों के विचार उन्नत होने लगे थे—वे नए-नए विदेशी व्यापारों से धनी भी होने लगे थे, और उनके रहन-सहन सुधरने लगे थे। इससे अब इंगलैंड की जनता राजा की स्वेच्छाचारिता को सहन नहीं कर सकती थी। पर जेम्स बात-बात पर अपने दैवी अधिवादों की दुहाई देता था। उसके खर्च भी अनियमित थे, इससे वह नए-नए टैक्स

लगाता जाता था। इससे भी उसके प्रति जनता का मन खिन्न हो गया था और पार्लमेंट अपने देशवासियों की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए—राजा के सम्मुख तन कर खड़ी हो गई थी। परन्तु राजा अपने अधिकारों की धींगामुश्ती करता ही चला जा रहा था और पार्लमेंट और राजा में अच्छी खासी रस्साकशी होने लगी थी। पार्लमेंट राजमन्त्रियों पर अपना अंकुश रखना चाहती थी, पर जेम्स यह सहन न कर सकता था। एलिज़ाबेथ के काल का प्रसिद्ध विद्वान् वेकन, जो प्रसिद्ध निबन्ध-लेखक और आधुनिक विज्ञान का जन्मदाता था, उस समय प्रधान न्यायाधीश के पद पर था। उस पर पार्लमेंट ने रिश्वत का अभियोग चलाकर उसे जेल भेज दिया—पर जेम्स ने उसे छुड़वा दिया। जेम्स अपने उत्तराधिकारी पुत्र चार्ल्स का विवाह स्पेन की राजकुमारी इन्फैंटा से करना चाहता था—पर पार्लमेंट ने अड़ंगा लगाया कि राजकुमार का विवाह प्रोटेस्टेंट से ही होना चाहिए। इस पर जेम्स ने क्रुद्ध होकर पार्लमैंट की विधान पुस्तक से वे पृष्ठ ही फाड़ डाले जिनमें राजा पर प्रतिबन्ध की चर्चा थी।

इस प्रकार राजा और प्रजा के बीच जो अधिकारों का द्वन्द्व चल रहा था—उसमें तत्कालीन धर्म प्रतिबन्ध ने और चार चाँद लगा दिए थे। इस समय इंगलैंड में मुख्य तीन धार्मिक दल थे—एक रोमन कैथोलिक दल, जो अब तक पोप को ही धर्म गुरु मानते थे। दूसरा इंग्लिश चर्च था, जो धर्म सुधार का पक्षपाती था, जिसका नेता इंगलैंड का बादशाह होता था।

तीसरा प्योरिटन लोगों का दल था। जो चर्च आफ इंगलैंड के संशोधन को यथेष्ट नहीं समझता था—वह प्रगतिशील जनों का दल था। तीनों ही दल जेम्स का सहयोग पाने की खटपट करते रहते थे। कैथोलिकों को इस लिए आशा थी कि जेम्स की माता स्काटलड की रानी मेरी पक्की कैथोलिक थी। चर्च आफ इंगलैंड इसलिए आशा करता था कि वह इंगलैंड का बादशाह और चर्च का प्रधान था। प्योरिटन यह आशा करते थे कि वह स्काटलैंड से आया है, जहाँ—प्योरिटन सिद्धान्तों का ज़ोर

है। परंतु जेम्स चर्च ग्राफ इंगलैंड को ही पसन्द करता था। क्योंकि इसी में उसका लाभ था। उससे वह धर्म का सर्वोपरि अधिष्ठाता बन जाता था। प्योरिटन लोगों से उसे चिढ़ थी। वह डरता था कि यदि उनके सिद्धान्तों के अनुसार जनता चर्च के अधिकारी को चुनना सीख जाएगी तो एक दिन वह राजा को भी चुनेगी। और प्रजातन्त्र की इंगलैंड में स्थापना हो जायगी। इससे वह कहा करता था—कि पादरी नहीं तो राजा भी नहीं।

रोमन सम्राट् फर्डीनेन्ड प्रोटेस्टेन्टों पर बेहद अत्याचार करने लगा। इससे प्रोटेस्टेन्ट रियासतें उसके विरुद्ध हो गईं और बोहेमिया वालों ने जेम्स के दामाद पेलेंटिनेट के राजा फ्रेडरिक को बोहेमिया के सिंहासन पर ला बिठाया। उन्हें आशा थी कि जेम्स की सहानुभूति उन्हें प्राप्त होगी, पर जेम्स ने सहायता न की। सब प्रोटेस्टेन्ट रियासतों ने उनका साथ दिया। इस पर रोमन कैथोलिक रियासतें ग्रस्ट्रिया के झंडे के नीचे ग्रा जुटीं। इस प्रकार मध्य यूरोप में प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथोलिक रियासतों में तुमुल संग्राम छिड़ गया जो बीस वर्षों तक चला। अन्त में आस्ट्रिया की सेना ने बोहेमिया के राजा फ्रेडरिक को बुरी तरह परास्त किया। और स्पेन की सेना ने नीदरलैंड से जेम्स के दामाद फ्रेडरिक और उसकी रानी—जेम्स की पुत्री एलिजाबेथ को निकाल बाहर किया; फिर उसने पैलेन्टिनेट पर भी कब्जा कर लिया। राजा रानी दोनों को वहाँ से खदेड़ दिया गया।

: ३० :

दिलचस्प मुकदमा

इन दिनों लंदन में एक रोमन कैथोलिक भलामानुस रहता था। उस का नाम एडवड फ्लायर्ड था। ज्यों ही इंगलैण्ड में यह खबर पहुँची—कि बोहेमिया के राजा फ्रेडरिक से प्राग छीन लिया गया, और उसे और उस की रानी एलिज़ाबेथ को—जो इंगलैण्ड के राजा की पुत्री थी—स्पेन की

सेना ने पेलेंटिनेट से निकाल बाहर किया, तो इस रोमन कैथोलिक भले-मानुस ने मज़ाक में यार दोस्तों से कहा—"खूब हुआ यारो, मुर्गा-मुर्गी दरबे से निकाल बार किए गए।" इस समय उक्त समाचार से इंगलैण्ड में उत्तेजना फैली ही हुई थी, अब इस रोमन कैथोलिक भलेमानुस के ये शब्द हवा में तैरते हुए पार्लमेंट के पत्थरों को भी पार कर गए। पार्लमैंट के माननीय सदस्य क्रुद्ध हो उठे, उन्होंने कहा—यह न केवल प्रोटेस्टेन्ट लोगों की हार की खिल्ली उड़ाई गई है अपितु हमारे बादशाह की राजकुमारी का भी भयानक अपमान और राजद्रोह है। अतः इस अभियुक्त को गिरफ्तार कर लिया गया और उस पर पार्लमैंट में मुकदमा चलाया गया।

इस संगीन मुकदमे में पार्लमेंट के दोनों सदन—हाऊस आफ लार्डस और हाऊस आफ कामन्स की गहरी दिलचस्पी थी। उन दिनों राजा की इच्छा ही कानून था—और श्रीमन्त सरदार अपनी पसन्द—और रुचि से दण्ड निर्णय किया करते थे। बहुधा पार्लमैंट गहरे मामले, मुकदमे स्वयं ही सुनती थी। पढ़े-लिखे आदमी उन दिनों इंगलैण्ड में बहुत कम थे—हाऊस आफ लार्डस के अनेक माननीय सदस्य अपढ़ थे। चूंकि पार्लमैंट इंगलैण्ड की सब से बड़ी राजनीतिक संस्था थी—इस लिए उसके दण्ड भी बड़े-बड़े विस्तार वाले, अनोखे और प्रभावशाली होते थे। प्रायः पार्लमैंट के माननीय सदस्य या तो उन दिनों जुआ खेलने या द्वन्द युद्ध में गहरी दिलचस्पी रखते थे—या ऐसे विशिष्ट मुकदमों में। खून खराबी, उत्पीड़न और नर-वध के दृष्य उन दिनों सर्वसाधारण के लिए अधिक मनोरंजन के केन्द्र हुआ करते थे—और पार्लमैंट में जो भारी केस आता था—उसका दण्ड प्राण वध होगा यही नहीं—परन्तु लोग यह भी आशा रखते थे कि—प्राण वध सीधा-सादा नहीं—अनेक निर्दय क्रूर उपदण्डों, उपसर्गों से संयुक्त होगा। ऐसी ही मनोवृत्ति उन दिनों इंगलैण्ड के सब छोटे-बड़े जनों की थी।

मुकदमा संगीन था। पर मुकदमे की सुनवाई में ज्यादा देर न लगी।

दोष प्रमाणित हो गया। अभियुक्त को राजद्रोह और धर्मद्रोह का भयंकर अपराधी मान लिया गया, और उसे हाऊस आफ कामन्स ने दण्ड निर्णय करने के लिए हाऊस आफ लार्ड्स में भेज दिया।

लार्ड लोग गम्भीरता से दण्ड विधान पर सम्मतियाँ देने लगे। सर फिलिप एक तेज मिज़ाज तरुण थे। उन्हें सब से पहले बोल उठने का शौक था। सुन्दर और ठाठ के आदमी थे। उन्होंने सम्मति दी—चूँकि इस का अपराध अपरिसीम है, इस लिए दण्ड भी ऐसा ही होना चाहिए। मेरी राय है कि अपराधी को एक गधे पर उसकी दुम की ओर मुँह करके सवार कराया जाए और वैस्ट मिनिस्टर से लंडन टावर तक घुमाया जाए तथा उसकी टोपी पर ये शब्द लिख कर चिपका दिया जाँए—'यह एक पोप-पन्थी नराधम है। जिसने द्रोह भाव से शहन्शाह की संतति पर दोषारोपण और व्यंग किया हैं।' इसके बाद इसे टावर में रख कर इस क़दर यन्त्रणाएं दी जाएँ कि जितनी वह बर्दाश्त कर ले। और वह जल्द मर भी न जाए।

सर फ्रैन्सिस सी म्योर एक लम्बे तगड़े साँड के समान भयानक आदमी था। मुँह उनका भेड़िए के समान था। जो अधपके गल-मुच्छों से ढका था। ज़ोर-जोर से असंयत भाषा में बोलने के अभ्यस्त। जब ये ज्यादा चीखते-चिल्लाते थे तो इनकी आवाज फटे बाँस जैसी कर्कश और अप्रिय हो जाती थी। उन्होंने कहा—सदन के अधिकार के अन्तर्गत मैं चाहता हूँ कि अपराधी को यहाँ से टावर तक नंगा करके और एक छकड़े से वाँध कर घसीटते हुए ले जाया जाए। उसके दोनों हाथ उसकी गर्दन में हों, और उस पर निरन्तर कोड़े बरसाए जाएँ।

सर एडवर्ड गिल के गालों की हड्डियाँ ऊपर को निकली हुई थीं तथा उनके बड़े-बड़े दाँत सदा ओठों से बाहर निकले रहते थे। वे जरा अटक-अटक कर, कभी-कभी हकला कर बोलते थे। उन्होंने कहा—उसे जब कोड़े मारे जाएं तो उसके पैर और सिर पिलौटी में डाल दिए जाएं।

सर फ्रैन्सिस डरसी को अपनी वाग्मिता पर भारी भरोसा था। आवाज

उनकी बुलन्द और गूँजती हुई थी। पर बोलते-बोलते नम्रता का कभी-कभी ऐसा अभिनय करते थे कि लोग मुँह पर ही हँसने लगते थे। साँडों की लड़ाई में इन्हें बड़ी दिलचस्पी थी—इन्होंने राय दी कि—इस की ज़बान भी गर्म लोहे से छेद दी जाय। सर जर्मी होरेस भी नवयुवक थे। हाल ही में एम० पी० हुए थे। सदैव चमड़े का शिकारी कोट और चमड़े के दस्ताने पहने रहते थे। बातचीत और बोलने का ढंग बच्चों जैसा था। उन्होंने सज़ा में इज़ाफा किया कि इसकी ज़बान काट ही डाली जाए।

सर जार्ज गोरिंग एक खब्ती से आदमी थे। सिर इन का गंजा और चेहरा तेल में डूबा हुआ सा था। पता ही नहीं लगता था कि क्या कह रहे हैं। पर जब बोलते थे तो बोले ही जाते थे। लोग उन्हें झक्की समझते थे—उन्होंने राय दी—सज्जनो, आप के इन नर्म-दयापूर्ण प्रस्तावों स मैं सहमत नहीं हूँ। इसके नाक-कान और ज़बान पहले काट ली जाए। और तब इसे निरन्तर कोड़े मारे जाएँ। इसके बाद इसे गधे पर उस की दुम की ओर मुँह कर के सवार कराया जाए। यह उसकी दुम हाथों में पकड़े रहे। प्रत्येक साँस के साथ इसे माला के मनके निगलवाए जाएँ। और निरन्तर कोड़े बरसाते हुए टावर में ले जा कर फाँसी पर लटका दिया जाए।

सर जोजेफ जैक्सन की यह विशेषता थी कि मिज़ाज के क्रोधी और परले सिरे के शक्की थे। बात-बात में उलझते थे पर थे पक्के राजभक्त। उन्होंने कहा—मेरी राय में तो यह मुनासिब प्रतीत होता है कि एक कमेटी बनाई जाय। वह सोच-विचार कर इस आदमी के दण्ड की गम्भीर व्यवस्था करे। और कोड़े तो उसे प्रतिदिन लगाए जायें।

विचार बहुत हुआ पर निर्णय कुछ भी नहीं हुआ। अन्तिम निर्णय फिर के लिए मुल्तबी कर दिया गया। इसके अतिरिक्त हाउस आव-लार्डस ने यह विचार प्रकट किया कि इस गुरुतर अपराध के दण्ड का

निर्णय जब हाउस आफ कामन्स करे तो उसमें प्राथमिकता का अधिकार हाउस आफ लार्डस का रहे।

हाउस आफ कामन्स में भी खूब गर्मागर्म बहस हुई और उन्होंने अपना निर्णय हाउस आव लार्डस के सामने उपस्थित कर दिया। जिस पर हाउस आव लार्डस ने अच्छी तरह विचार करने के बाद निम्नलिखित दंड अपराधी के लिए तजवीज किया—

१—यह कि यह एडवर्ड फ्लायड भद्रपुरुष की भाँति शस्त्र धारण के अयोग्य समझा जाय, तथा वह एक कुत्सित व्यक्ति समझा जाय और कहीं किसी कोर्ट या मामले में वह साक्षी देने के योग्य न माना जाय।

२—यह कि—आगामी सोमवार के दिन—भोर ही में उसे वेस्ट मिनिस्टर हाल में ले जाया जाय। वहाँ वह घोड़े की पीठ पर दुम की ओर मुँह करके सवार कराया जाय और उसके हाथ घोड़े की दुम में बाँध दिए जायँ। उसके सिर पर एक कागज़ उसका अपराध लिख कर चिपका दिया जाय और इस तरह उसे चीप हाउस की पिलौरी तक ले जाया जाय। जहाँ वह दो घंटे पिलौरी में रखा जाय। और तब उसके माथे पर 'K' अक्षर गर्म लोहे से दाग दिया जाय।

३—उसे दूसरे दिन गाड़ी से बाँध कर कोड़े मारते हुए फ्लीड लेन से वेस्ट मिनिस्टर तक घसीटते हुए ले जाया जाय। उसके सिर पर उसके अपराध का कागज लगा रहे। इसके बाद उसे दो घंटे पिलौरी में पैर और सिर डाल कर रक्खा जाय।

४—वह बादशाह को पाँच हज़ार पौंड जुर्माना दे।

५—वह न्यूगेट जेल में आजीवन कैद रहे।

उन दिनों पार्लमैंट में ऐसे ही मुकदमे आम हुआ करते थे और अपराधियों को ऐसे ही दण्ड दिए जाते थे। पिलौरी एक लकड़ी का शिकंजा होता था जिसमें अपराधी के पैर और सिर फंसा दिया जाता था। जिससे उसे घोर यन्त्रणा होती थी। ऐसे दण्ड प्रायः सार्वजनिक स्थानों में दिए जाते थे, और आम जनता बड़े चाव से इन निर्दय दण्डों से कराहते और

छटपटाते अपराधियों को देख कर प्रसन्न हुआ करती थी। ऐसी ही क्रूर और सख्त मनोवृत्ति उस काल इंगलैंड के छोटे-बड़े सब लोगों की थी।

: ३१ :

अभिनिष्क्रमण

रोमन कैथोलिक और प्रोटेस्टेन्टों के झगड़े चलते ही रहे। जिन-जिन राजाओं ने जो-जो सम्प्रदाय स्वीकार किए थे, उसी को प्रजा भी स्वीकार करे, इस बात पर जोर दिया जाता था। सत्रहवीं शताब्दी में यूरोप के ऐसे अनेक लोगों को अपनी मातृभूमि छोड़नी पड़ी थी, जिन्होंने इस सम्बन्ध में राजाज्ञा नहीं मानी थी। ऐसे लोगों को बहुधा आजीवन बन्दी होने की यातना भी भोगनी पड़ती थी।

इंगलैंड के राजा ने जब प्रोटेस्टेन्ट धर्म स्वीकार कर अपने को चर्च का अधिपति घोषित किया और रोमन कैथोलिक सम्प्रदाय का त्याग किया तो कुछ धर्म भीरु लोगों ने इंगलैंड को त्याग दिया। उन दिनों जो लोग चर्च और इगलैंड की विधि से धर्माचार करना अस्वीकार करते, उन्हें या तो कोड़े लगाए जाते थे, या उन्हें क़ैद में डाल दिया जाता था, या उनके कान काट लिए जाते थे।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही कुछ स्वतन्त्र विचारों के लोगों ने इंगलैंड की भूमि को त्यागा और उन्होंने अमेरिका में जा कर वर्जीनिया तट पर एक छोटी-सी बस्ती बसाई। आजकल इसी स्थान पर बोस्टन नगर बसा हुआ है। यह बस्ती बढ़ती ही गई और भगोड़े लोग यहाँ आ-आ कर बसते गए। परन्तु धार्मिक मामलों में यहाँ के लोग भी बड़े कट्टर थे। जो इनकी कर्मविधि को नहीं मानता था, वे उसे अपनी बस्ती में नहीं रहने देते थे, इसका परिणाम यह हुआ कि अमेरिका में भिन्न-भिन्न स्वतन्त्र विचार वालों के छोटे-छोटे उपनिवेश स्थापित होते चले गए। इन लोगों में यूरोप के अन्य देशवासी भी थे। कुछ स्वीडन के थे, कुछ डच थे, उन्होंने जो बस्ती बसाई थी, उसे उनसे अंग्रेज़ों ने छीन

लिया था, आज वही बस्ती संसार के प्रसिद्ध नगर न्यूयार्क के नाम से विख्यात है।

इसी समय फ्रांस के रोमन कैथोलिक बादशाह के प्रताड़ित कुछ फ्रैंच परिवार देश छोड़ कर वर्जीनिया के दक्षिण स्थल में आ बसे थे। यहाँ अंग्रेजों की बस्तियाँ प्रथम ही बस गई थीं। इनमें यूरोप की अन्य जातियों के भी लोग थे। पर प्रमुख अंग्रेज़ और फ्रैंच ही थे। शीघ्र ही इन दोनों पड़ोसी जाति वाले विस्थापितों में प्रतिद्वन्द्विता का बीज अंकुरित हो उठा।

अंग्रेज़ विस्थापितों की बस्तियाँ अमेरिका के पूर्वी तट पर फैलती चली गई थी। फ्रैंचों की अपनी बस्तियों का विस्तार सैन्ट लारेन्स नद के तटवर्ती प्रदेशों पर बड़ी झील तक था। तथा वहाँ से उनका झुकाव ओहियो नदी के किनारे-किनारे लुसियाना तक था। अंग्रेज़ों की बस्तियाँ बड़ी तेज़ी से बढ़ती जाती थीं। ब्रिटिश द्वीपों तथा यूरोप के दूसरे प्रदेशों से बहुत से परिवारों ने आ-आ कर वहाँ अपने घर बसा लिए थे। देखते ही देखते ये छोटी-छोटी बस्तियाँ बड़े-बड़े बन्दरगाहों के रूप में परिवर्तित होती रही थीं। ये बस्तियाँ देश के भीतरी भागों में फैलती जाती थीं। लोग देश में भीतर घुसते जाते और अपने खेत-खलिहान गाँव बसाते जाते थे। इस काम में अंग्रेज़ अधिक तेज़ थे। वे अधिक से अधिक भूमि को घेरते गए और जब वे पूर्वी तटवर्ती पर्वत श्रेणियों तक पहुँचे तो ओहियो नदी की विस्तृत घाटी में फैलने लगे। जहाँ प्रथम ही से फ्रैंच बस्तियाँ स्थापित हो चुकी थीं। उनके पास काफी भूमि थी। यूरोपियन जातियों के वहाँ आने से प्रथम केवल रेड-इण्डियन ही वहाँ रहते थे। जो बहुत अल्पसंख्यक थे। फ्रांसीसियों को ब्रिटेनवासियों का इस प्रकार पश्चिम की ओर प्रसार करना पसन्द न था। क्योंकि वहाँ की भूमि को वे प्रथम ही अधिकृत कर चुके थे और सैण्ट लारेन्स तट पर मज़बूत क़िले भी बना चुके थे। उन्होंने अंग्रेज़ों को वहाँ से खदेड़ना आरम्भ कर दिया। और इस प्रकार एंग्लो-फ्रैंच संघर्ष की नींव जमी।

: ३२ :

पार्लमेन्ट का पत्थर

तेरहवीं शताब्दी में ब्रिटेन के उमरावों ने तत्कालीन राजा की एक-तन्त्री सत्ता के विरुद्ध आवाज़ उठाई। उन्होंने संगठित हो बादशाह को यह समझौता करने पर विवश किया, कि किसी की सम्पत्ति बिना कानूनी कारण जब्त न हो सकेगी, न कोई आदमी बिना मुक़दमा चलाए जेल भेजा जा सकेगा। इस समझौते ने दो महत्वपूर्ण सिद्धान्तों को जन्म दिया, एक तो यह कि बादशाह कानून के आधार पर शासन करे, स्वेच्छाचार से नहीं; दूसरे क़ानून जन-निर्वाचित प्रतिनिधि निर्माण करें। इन्हीं सिद्धान्तों ने आगे चल कर इंगलैंड में वैधानिक राजतन्त्र संगठित किया। इसके बाद ही इंगलैंड की पार्लमेंन्ट का संगठन हुआ—केवल यह विचारने के लिए, कि बादशाह को राज कोष का कितना रुपया खर्च करने का अधिकार है। इस पार्लमेन्ट के सदस्य केवल दर्बारी उमराव ही होते थे। केवल दो-दो सदस्य प्रत्येक प्रान्त्व तथा नगर के जन-प्रतिनिधि भी होते थे। पर उन के दृष्टिकोण उमरावों से पृथक् थे। इसी से पार्लमेन्ट में दो दल हो गए। एक हाऊस आव कामन्स दूसरा हाऊस आव लार्डस। हाऊस आव कामन्स सदैव चुन कर संगठित होता था, परन्तु हाऊस आव लार्डस में या तो खानदानी अमीर-उमराव होते थे, या राजा उन्हें पदवी देकर उमराव बना देता था। विशप और चर्च के प्रधान भी इसी हाऊस आव लार्डस में बैठते थे। राजा जब कभी धन की इच्छा करता था तभी वह एक अनुरोध पत्र हाऊस आव कामन्स को लिखता था कि वह जनता को आज्ञा देना चाहता है कि वह अमुक-अमुक कर दे। हाऊस आव कामन्स इस का समर्थन करे। इस का यह स्पष्ट अर्थ था कि हाऊस आव कामन्स को राजा के धन ग्रहण सम्बन्धी अधिकारों पर नियन्त्रण था। अब, यदि राजा कोई ऐसा काम करता जो हाऊस आव कामन्स की पसन्द का न होता तो हाऊस आव कामन्स उस अनुरोध के बदले अनुरोध करता कि यदि बादशाह वह काम

न करने की प्रतिज्ञा करे तो उसके धन ग्रहण का समर्थन किया जा सकता है। निस्संदेह यह बादशाह पर एक जबर्दस्त नियन्त्रण था। बहुधा बादशाह को यह सहन नहीं होता था।

ऐसी ही परिस्थिति में बादशाह चार्ल्स प्रथम के राज्य काल में झंझट उठ खड़ा हुआ।

पार्लमेन्ट को अपनी सत्ता दृढ़ करने में और सौ वर्ष लगे। परन्तु इस समय तक भी वह अमीरों ही की संस्था थी। हाऊस आव कामन्स में भी धनीजनों के ही प्रतिनिधि आ पाते थे। क्योंकि चुनाव के ढंग खर्चीले थे। इस समय ब्रिटेन का साम्राज्य फैलने लेगा था। देश देशान्तरों में जो युद्ध हो रहे थे, उनमें भारी खर्च हो रहा था। यह पार्लमेन्ट उसका समर्थन करती जाती थी, क्योंकि इस से उसकी व्यापार वृद्धि होती थी। जो अमीरों के स्वार्थ की वस्तु थी। पार्लमेन्ट के अनेक सदस्य भी व्यापार करते थे। इस समय तक शिल्पोत्थान और मशीनों के निर्माण के कारण इंगलैंड तेजी से धनी होता जाता था। अब वह सत्रहवीं शताब्दी का अर्धसभ्य देश न था। अब तो नगर, अट्टालिकाएँ, सड़कें बनती जाती थीं। अनेक लोग लखपती बन गए थे। अनेक फैक्ट्रियां, व्यापार केन्द्र तथा भाँति-भाँति की दूकानें खुल गईं थीं। इन व्यापारों को मध्यम वर्गीय पुरुष चला रहे थे, जिनकी एक पृथक् जाति बनती जाती थी। जो न गरीब थे, न ज्यादा अमीर। पर वे सर्व साधारण की अपेक्षा सम्पन्न और सुशिक्षित थे, धीरे-धीरे इन मध्यम वर्गीय नागरिकों का संगठन बढ़ता गया, और इन्होंने पार्लमेन्ट में सुधार का आन्दोलन प्रारम्भ किया। यह आन्दोलन दीर्घ काल तक चलता रहा। बहुधा उसने संघर्ष का रूप भी धारण कर लिया। सुधार बहुत से हुए।

परन्तु जिस काल का वातावरण इस उपन्यास में है उस समय तक भी वहाँ सच्ची लोक-शाही नहीं बन पाई थी। परन्तु इसके लिए संघर्ष चल रहे थे। और लोकशाही का तीसरा दल मज़दूरवर्ग अपना संगठन कर रहा था।

चार्ल्स प्रथम १६२५ में सिंहासन पर बैठा। उसने अपने राज्यकाल के पहले चार वर्षों में तीन पार्लमेंट बुलाईं और प्रत्येक से लड़ कर उसे तोड़ दिया। इस समय इंगलैंड से स्पेन का युद्ध छिड़ा हुआ था और चार्ल्स को रुपयों की बड़ी आवश्यकता थी। परन्तु पार्लमेंट ने उसे साफ कह दिया था कि जब तक वह ड्यूक आफ बकिंघम का साथ न छोड़ेगा, पार्लमेंट उसका खर्च मंजूर न करेगा स्पेन से युद्ध में इंगलैंड हार गया, तो अब फ्रांस से युद्ध छिड़ गया। चार्ल्स ने अब प्रजा से जबर्दस्ती कर उगाहने की चेष्टा की और मार्शल-ला जारी कर दिया। पर सफलता नहीं मिली। अंत में राजा झुका। पर फिर उसने वचन भंग कर दिया और विरोध करने पर पार्लमेंट तोड़ दी तथा ग्यारह साल तक निरंकुश शासन किया। अंत में निरुपाय हो उसने फिर पार्लमेंट बुलाई। जिसने राजा के अन्य स्वेच्छाचारी सलाहकारों को फाँसी पर चढ़ा दिया। और राजा के खिलाफ एक ग्लानि पत्र तैयार किया, जिसमें उस पर २०४ दोष लगाए गए। इसके बाद पार्लमेंट ने सेना पर अधिकार कर लिया। इससे क्रुद्ध होकर चार्ल्स ने पार्लमेंट मे युद्ध ठान दिया। इस युद्ध का कारण यह था कि चार्ल्स राजाओं के दैवा अधिकारों का समर्थक था और निरंकुश शासन करना चाहता था। दूसरा कारण धार्मिक था, वह सभी को चर्च आफ इंगलैंड का अनुयायी बनाना चाहता था। इसके अतिरिक्त अपनी कैथोलिक रानी के प्रभाव में था और कैथोलिकों को सुविधा देना चाहता था। परन्तु पार्लमेंट के अधिकाँश सदस्य प्यूरिटन थे, और वे अपने धर्म को राजधर्म बनाना चाहते थे।

युद्ध के बाद आलिवर क्रामवैल ने वीरों का एक 'लौह दल' तैयार किया। और पार्लमेंट की सेना का सुधार किया। अन्त में युद्ध में चार्ल्स की हार हुई। पार्लमेंट ने चार्ल्स पर अभियोग चलाने की एक विशेष अदालत बनाई गई और उसने उसे जाति द्रोही अपराधी घोषित करके प्राण दण्ड दे दिया।

: ३३ :

ह्वाइट हाल की सींखचों में

ह्वाइट हाल के सींखचों में बादशाह कैद था। अब उसके जीवन की यही एक रात शेष थी। ह्वाइट हाल पर तीन पल्टनों का सख्त पहरा था। फिर भी क्रामवैल बेचैन था।

राजा के कमरे में दो मोमबत्तियां जल रहीं थीं। जिनका धीमा प्रकाश उसमें फैल रहा था। राजा उदास मन बैठा भूत भविष्य की सोच रहा था। अपने मित्रों से उसे अभी भी आशा थी। उसका स्वामी भक्त नौकर पेरी एक कोने में पड़ा सिसक रहा था। बादशाह टेबुल पर झुका हुआ अपने तमगे की ओर देख रहा था, जिस पर उसकी पत्नी और लड़की के चित्र बने थे। वह अपने पादरी जुक्सन की इस समय प्रतीक्षा कर रहा था। बाहर आग जल रही थी।

रात अंधेरी थी। पास वाले चर्च से घन्टा बजा। किसी के पैरों की आहट सुन कर वह चौंका। दरवाज़ा खुला। मसाल लिए एक मनुष्य भीतर आया। उसके पीछे एक मनुष्य श्वेत वस्त्र धारण किए था।

बादशाह चिल्ला उठा—"जुक्सन, धन्यवाद मेरे अंतिम मित्र, खूब मौके पर आए।

पादरी ने तेज नज़र से कोने की ओर देखा—जहाँ पेरी सुबक-सुबक कर रो रहा था।

"पेरो आओ, रोओ मत। पवित्र पिता हमारे पास आए हैं।"

"यह यदि पेरी है तो कोई हर्ज नहीं।" पादरी ने अपना लबादा उतार कर फेंक दिया। उसने कहा—महाराज, मुझे अभिवादन करने की आज्ञा दीजिए।

राजा के मुँह से चीख निकलने वाली ही थी कि आगन्तुक ने उंगली ओठों पर रख कर राजा को चुप रहने का संकेत किया।

"तो तुम हो मेरे प्यारे आरमस, तुम ? तुम यहाँ कैसे आ पहुँचे ?"
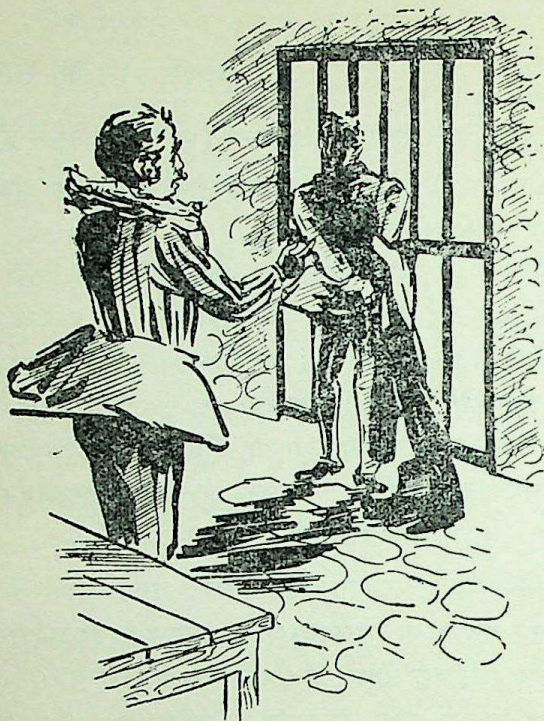
"महाराज शान्त रहें।"

"किन्तु वे तुम्हें यहाँ देख पाएँगे तो टुकड़े-टुकड़े कर डालेंगे।"

"महाराज, मेरी चिन्ता मत कीजिए। मैं यह सूचना देने उपस्थित हुआ हूँ कि आप के मित्रों की दृष्टि आप पर है। वे अपना काम कर रहे हैं"

"अच्छा, तो कुछ आशा अब भी है?"

"बहुत कुछ श्रीमान्, आप रात भर न सोइए, क्षण-क्षण प्रतीक्षा कीजिए। किसी बात से चौंकिए मत।"

"मेरे प्यारे आरमस लेकिन मैं तो कल दस बजे मर जाऊँगा। सुन रहे हो नीचे मृत्युमंच बन रहा है?"

"हाँ, परन्तु बधिक ग़ायब है। आप का वध अगले दिन के लिए स्थगित हो जाएगा। हमारे लिए यह समय बहुत है।"

"अच्छा"

"कल रात को हम आपको निकाल ले जाएँगे।"

"किस तरह ?"

"महाराज, इंगलैंड के सबसे चतुर व्यक्ति ने कहा है कि कल रात को दस बजे आप स्वतन्त्र होंगे।"

"समझ गया, तुम मेरे मित्र डी आर्टगनन की बात कह रहे हो। खैर वह काम में सफल हो या नहीं—उसे मेरा धन्यवाद कहना।"

"महाराज, हम बड़े चौकस हैं। शत्रु की राई-रत्ती गतिविधि हम पर प्रकट है।"

"तो तुम एक राजा की प्राण रक्षा कर रहे हो मित्र। नहीं, एक स्त्री के पति की, बच्चों के पिता की, लो मेरा हाथ तो दबाओ। यह हाथ तुम्हारे ऐसे मित्र का है, जो अन्तिम श्वास तक तुम्हें प्यार करता करेगा।"

इसी समय द्वार पर खटका हुआ। उस व्यक्ति ने पादरी का लबादा पहन लिया। एक पादरी भीतर घुस आया।

"आप क्या चाहते हैं धर्म पिता ?"

"मैं जानना चाहता हूं कि स्टुअर्ट चार्ल्स की स्वीकृति खत्म हुई या नहीं।"

"उससे आप का क्या मतलब है", राजा ने कहा।

'मेरा एक भाई मरने वाला है, मैं उसे मृत्यु के लिए तैयार करने आया हूँ।"

"तो पवित्र पिता से मुलाकात करने के बाद मैं आप से प्रसन्नता से बात कर सकूंगा।"

वह पादरी और राजा पर तेज नज़र डालता हुआ चल दिया।

'शिविलियर, होशियार रहना, कोई आपत्ति न आ जाय।"

"धन्यवाद महाराज, पर मैं लबादे के नीचे कवच पहने हूँ, और एक खंजर भी मेरे पास है।"

"तब जाओ मित्र, तुम्हें बहुत काम है। ईश्वर तुम्हारा कल्याण करे। यही आशीर्वाद मैं उस समय दिया करता था जब मैं बादशाह था।"

आरमस बाहर चला गया। बादशाह द्वार तक आया। आरमस ने पादरी की भाँति आशीर्वाद दिया और हथियार बन्द पहरेदारों से भरे कमरे से होता हुआ शान से गाड़ी में जा बैठा। पहरेदारों ने मस्तक झुका दिए। गाड़ी पादरी जेक्सन के मकान की ओर चल दी।

: ३४ :

विफल प्रयत्न

पादरी जुक्सन बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा कर रहा था। आरमस को देखते ही उसने कहा—"आ गए ?"

"सब ठीक हुआ—पहरेदार, सरदार सब ने मुझे समझा कि आप ही हैं।"

"पुत्र, ईश्वर ने तुम्हारी रक्षा की। क्या कुछ आशा है ?"

"अजी बहुत" उसने झटपट पादरी के अपने उतारे और कपड़े पहन कर चल दिया।

गली के मोड़ पर ही पोरथस उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था। उस ने हाथ मिला कर कहा—"कहो, क्या राजा से मुलाकात हुई ?"

"हो गई। पर और साथी कहाँ हैं ?"

"उसी होटल में सब ११ बजे मिलेंगे।"

"अभी तो साढ़े दस बजे हैं, खैर जल्दी चलना चाहिए।"

दोनों तेजी से चल दिए।

*　　　　*　　　　*

"सब ठीक है न ?" मित्रों ने पूछा।

"ठीक है, तुम क्या कर आए," उसने अथस से पूछा ।

'मैं ने एक नाव किराए पर ठीक की है, डाग्स के ठीक सामने ग्रीनविच पर वह हमारी प्रतीक्षा करेगी । इस पर एक कप्तान और चार आदमी और हैं। पहले हम टेम्स में दक्षिण की ओर चलेंगे । फिर दो घण्टे में ही खुले समुद्र में पहुँच जाएँगे । वहाँ पहुँच कर समुद्री डाकुओं की तरह किनारे-किनारे चलेंगे । यदि समुद्र अनुकूल हुआ तो वोलोगने की ओर चलेंगे, याद रख लो । यदि मैं मारा जाऊं तो कप्तान का नाम रागर्स है । नाव का नाम लाइटनिंग है । निशानी के लिए रूमाल है जिस के कोनों पर गाँठें बंधी हैं ।"

"अच्छी योजना है । पर डि आर्टगनन कहाँ हैं ?"

इसी समय ही आर्टगनन ने लपकते हुए कमरे में प्रवेश किया । उस ने आते ही कहा—"निकालो किस की जेब में क्या है ? और सौ पौण्ड इकट्ठे कर के मुझे दो ।" उसने अपनी जेब उलटते हुए कहा—"यह तो खाली हो गई ।"

रकम तुरन्त ही इकट्ठी हो गई । उसे जेब में रख कर उसने कहा—"यह काम तो पूरा हो गया, डी आर्टगनन बाहर चला गया, और थोड़ी देर में लौट आया ।

"क्या वधिक लंदन से चला गया ?" अथस ने पूछा ।

"जा कर वह लौट भी सकता था । परन्तु वह हमारी क़ैद में है । इसी होटल में । मोस क्येटन पहरे पर बैठा है । लो चाभी !"

"खूब ? लेकिन अब ?"

'अब यह खत है । होमलो मिस्त्री को बुलाया है पाड़ बनाने को ।"

"सीधी बात है – अथस तुम होमलो बन जाओ और बाकी उस साथी । कारीगरों के कपड़े पहन लो और जानबुल . तरह अंग्रेजी बोलो ।"

अथस प्रसन्नता से चीख उठा। झटपट चारों ने कपड़े बदले, एक ने आरी ली, दूसरे ने वसूला, तीसरे ने छैनी हथौड़ा। और वे चल दिए।

*   *   *

आधी रात के समय खिड़की के नीचे बहुत शोरगुल सुन कर बादशाह की नींद टूट गई। हथौड़ों कीं चोटों और लकड़ी चीरने-फाड़ने की आवाज़ आ रही थी। राजा ने कहा—"पेरी, द्वारपाल से कहो—कि वह मजदूरों से कह दे—कम शोर करें। कम से कम अन्तिम रात्रि में तो मुझे आराम से सोने दें। क्या मैं कभी उनका राजा न था?"

पेरी ने जाकर संतरी से कहा। पर उसने पहरा छोड़ कर जाना पसन्द नहीं किया। इस लिए पेरी को ही जा कर उन से मना करने की आज्ञा दे दी। महल का चक्कर लगा कर पेरी खिड़की के नीचे पहुँचा। पाड़ तैयार की जा रही थी। एक आदमी कील से काला कपड़ा ठोक रहा था। पाड़ की ऊँचाई खिड़की तक थी। कई मज़दूर तेज़ी से काम कर रहे थे। पेरी ने घृणा पूर्वक उन्हें देखा, एक आदमी हथौड़े की चोट से दीवार में चोट कर रहा था। पत्थर टूट-टूट कर गिर रहे थे। पेरी ने उस के पास जा कर कहा—"दोस्तो, अपना काम ज़रा आहिस्ता से करो, मैं प्रार्थना करता हूं। राजा इस समय सो रहे हैं, और उन्हें पूरे विश्राम की आवश्यकता है।"

चोट मारने वाला रुक गया। उसने मुँह फेर कर पेरी की ओर देखा। उसने पेरी पर कड़ी दृष्टि डाली और उसके मुँह पर उङ्गलियाँ रख दीं। पेरी हड़बड़ा कर पीछे हट गया। मज़दूर ने कहा—'जाओ दोस्त, राजा से कह दो आज नहीं तो कल वे सुख से सोएंगे।"

इस वाक्य के दुहरे अर्थ होते थे। और मजदूरों ने भी कठोरता से हाँ कही। पेरी वहाँ से भागा।

राजा कुहनी के सहारे पलंग पर लेटा था। पेरी ने जल्दी से द्वार

बन्द कर दिया। वह हाँफ रहा था। उसने कहा—"शुभ समाचार है स्वामी।"

"तुम क्या कह रहे हो पेरी ?"

"वे सब तो अथस, मन्शेर और उसके साथी हैं।"

"सच ?"

"वे दीवार में सूराख कर रहे हैं।"

"अरे ! किस लिए ?"

"लट्ठा रखने के लिए श्रीमन्। वह पोथरस था।"

"क्या तुम ने स्वयं देखा ?"

"मैं तो उस से बातें भी कर आया।"

"हे ईश्वर, तो उनका मतलब........"

"बस इसी छेद की राह आप निकल भागेंगे, पाड़ के पीछे जहाँ काला कपड़ा ढका हुआ है, आप छिपे रह सकते हैं। फिर मजदूर जैसे कपड़े पहन कर उनके साथ बाहर आ सकते हैं। पहरेदार मजदूरों को बिना सन्देह चला जाने देंगे।"

"अच्छी सरल योजना है। पर अब काम कितना शेष है ?"

"बस, अब खत्म ही होने वाला है। वे सब फ्रैंच कारीगरों का छद्म वेश बनाए हुए हैं।"

राजा ने एक गहरी साँस ली और तकिए पर सिर डाल दिया।"

* * *

भोर हो रहा था। उनत्तीस जनवरी का प्रातःकाल था। लकड़ी और कोयले की आग जल रही थी। कुछ कारीगर अपना काम पूरा कर वहाँ आ कर आग तापने लगे। केवल अयस और पोरथस का काम पूरा नहीं हुआ था। छेद काफी बड़ा हो गया था। एक काले कपड़े में राजा के पहनने योग्य कपड़े लपेट कर अयस उसमें से भीतर घुस गया। पोरथस

ने उसे कुल्हाड़ी थमा दी। डी. आर्टगनन ने एक काला कपड़ा कीलों से लगा कर छेद को ढक दिया।

'बस, अब दो घण्टे में अथस राजा के पास पहुँच जायगा। चलो, ब्रिस्टल से एक साथी और पकड़ लाएँ। बधिक तो है ही नहीं। बध कल होगा। हमें पूरा दिन है। देखो. हम दोपहर को ह्वाइटहाल के सामने मिलेंगे। अथस ने भीतर से कहा, अब तुम पादरी से सहायता प्राप्त कर एक बार राजा से मिलने की चेष्टा करो। राजा से कह देना कि अब वह अकेले हों तो फर्श खटखटा दें। ताकि मैं बेफिकरी से काम करता रहूँ। और पेरी चिमनी का पत्थर सरकाने में मेरी मदद करे। यदि कमरे में पहरेदार हो तो उसे मार डालो, दो हों तो एक को पेरी मार डालेगा। तुम मर जाओ तो भी डरना मत।"

"घबराओ मत। मैं दो कटार ले जाऊँगा। एक पेरी को दूँगा।"

"यही ठीक होगा। अब जाओ। सावधान रहना। जब तुम लड़ रहे होगे, राजा आँख बचा कर भाग आएँगे। छेद का किसी को पता न लगेगा। कम से कम दस मिनिट तक तो यह पता ही न लगेगा कि राजा किधर को भाग गए। फिर तुम मरना या जीना। दस मिनटों में तो हम राजा को ले कर अपनी राह लेंगे।"

"ऐसा ही होगा दोस्त, लाओ हाथ मिलाओ।"

अथस ने हाथ निकाल कर आरमस के हाथ में दे दिया फिर कहा—"हो सकता है, मुझे यहाँ मरना ही पड़े, डी आर्टगनन और पोरथस को मेरा प्रणाम कहना।"

"विदा दोस्त।"

"विदा।" वह चल दिया। होटल में उसके साथी आग के पास बैठे शराब पी रहे थे। वे पार्लमेन्ट को कोस रहे थे। आरमस ने कहा—"सब ठीक हो गया। दोस्तो. भागने के समय हमें वहाँ हाजिर रहना चाहिए। पाड़ के नीचे छिपने की बहुत जगह है। डी आर्टगनन, मैं, ग्रेमाण्ड और मास्करन उनके आठ आदमियों को मार सकते हैं। एक आदमी दो मिनिट

लेगा। यानी कुल चार मिनट। मास्कटन श्रौर एक मिनट लेगा। ये हुए पाँच मिनट। इतनी देर मे तो पोरथस. तुम लोग आधा रास्ता पार कर लोगे।"

"फिक्र न करो। सब ठीक हो जायगा। आरमस ने एक टुकड़ा रोटी खाया श्रौर शराब पी कर उठ खड़ा हुआ। अब मैं पादरी जुक्सन के पास जा कर एक बार राजा से मिलने की चेष्टा करता हूँ।'

दोस्तों से हाथ मिला कर वह चल दिया।

* * *

पादरी जुक्सन श्रौर अरमस उसके सहायक के वेश में राजा के कक्ष में जा पहुँचे। आरमस को देख कर राजा प्रसन्न हो गया। जुक्सन ने गत रात की बात जोर से कही। राजा ने कहा—उन बातों से मुझे शांति मिली है। अब मैं श्रौर भी कुछ कहना चाहता हूँ।

यह सुन कर पहरेदार सब हट गए। दरवाज़ा बंद हो गया। अरमस ने कहा—"महाराज, आप बच गए, बधिक हमारे कब्ज़े में हैं। दूसरा बधिक आज नहीं मिल सकता। अथस आप से केवल दो फुट के अंतर पर है, आप इस डंडे से खटखटाइए तो वह जवाब देगा।

राजा ने खटखटाया। उधर से भी शब्द हुआ।

राजा ने कहा—"क्या यह मेरा प्यारा अथस ही है?"

"वही है श्रीमान् वह रास्ता बना रहा है। पेरी, यह खंजर सम्हालो। इससे तुम्हें यह पटिया उकसाने में अथस का सहायता करनी पड़ेगी। पर खबरदार धार न खराब कर देना। इससे श्रौर भी काम लेना पड़ेगा।"

अचानक गैलरी में बहुत से आदमियों का शोर सुनाई पड़ा। अब साफ पैरों की आवाज आने लगी। अथस काम कर रहा था। उसकी आवाज़ आ रही थी। आरमस ने खटखटाहट का संकेत किया। आहट बंद हो गई। दरवाज़ा खुला। चारों आदमी खड़े हो गए। कुछ सिपाही आ कर क़तार बाँध कर राजा के दोनों ओर खड़े हो गए।

पार्लमेंट का एक कमिश्नर काली वरदी में अंदर आया। उसने झुक कर राजा को अभिवादन किया। और चमड़े की वसली खोल कर एक कागज़ निकाला। और एक वाक्य पढ़ा।

"इसका क्या मतलब ?" अरमस ने जुक्सन की ओर देख कर कहा।

"मैं भी नहीं जानता," जुक्सन ने कहा।

'क्या आज ही वध होगा ?" राजा ने जुक्सन और अरमस की ओर देखते हुए पूछा।

"श्रीमान् को पहले ही सूचित कर दिया गया है कि आज ही का दिन नियत हुआ है।" कमिश्नर ने कहा। "परन्तु यह काम कुछ देर के लिए रोक दिया जायगा, ताकि आप इहलोक और परलोक का भली-भांति चिंतन कर लें।"

आरमस का रंग एकदम काला पड़ गया। उसने आँखें बंद कर लीं और मेज पर हाथ टेक दिया।

राजा ने आगे बढ़ कर कहा—"आओ दोस्त, धीरज रखो। और जो होना है उसे सहन करो।" फिर उसने कमिश्नर की ओर मुड़ कर कहा—"मैं तैयार हूँ, पर मेरी दो इच्छाएँ हैं। आपको इसमे कुछ देर लगेगी। एक तो मैं कम्यूनियन का स्वागत करूँगा। दूसरे, अपने बच्चों को गले लगा कर अंतिम विदा लूंगा। क्या मुझे आज्ञा मिल जायगी ?"

"हाँ श्रीमान्।" कमिश्नर ने उत्तर दिया और चला गया।

"जुक्मन, बैठ जाओ," राजा ने घुटने टेकते हुए कहा।" मेरी स्वीकृति तो सुन लो। अरमस जाओ मत, पेरी तुम यहीं रहो। गोपनीय कुछ भी नहीं है। मैं तो चाहता था सारा संसार उसे सुन ले।"

जुक्सन बैठ गया। और राजा सेवक की भाँति अपनी स्वीकृति कहने लगा।

* * *

स्वीकृति समाप्त कर चार्ल्स ने कम्यूनियन का स्वागत किया। फिर बच्चों से मिलने की आज्ञा मांगी।

घंटे ने दस बजाए।

जनता की भीड़ एकत्र हो चुकी थी। आस-पास गली में भी लोग आ गए थे। उन के शोर गुल और भयंकर कोलाहल को सुनकर राजा खिन्न हो गया।

राजा चुपचाप खड़ा था। वह सोच रहा था कि अथस पास ही है। वह संकेत की बाट देख रहा है। कहीं आहट पाकर वह अपना काम न शुरू कर दे। वह चुपचाप मूर्तिवत् खड़ा रहा।

*　　　　*　　　　*

अथस सोच रहा था, मामला क्या है। यह इतना शोरगुल कैसा है, परदा खोल पाड़ की पहली मंज़िल में उतर आया। जब वह पाड़ के किनारे पर पहुँचा तो देखा सामने बन्दूक धारी सिपाहियों की कतार खड़ी है। पीछे भीड़ का भयानक कोलाहल है। "यह क्या हो रहा है। आदमी बढ़े चले आ रहे हैं। दर्शक खिड़की की ओर एकटक देख रहे हैं। वह, डी आर्टंगनन क्यों घूम रहा है। क्या बधिक भाग निकला?"

इसी समय अचानक ढोल बजा। उसने अपने सिर के ऊपर बहुत से पैरों की भारी आवाज सुनी। और, पाड़ पर कौन-कौन घूम रहा है? आशा, भय, विस्मय से वह विमूढ़ हो रहा था।

यह लो, भीड़ में सन्नाटा छा गया। लोगों के बोझ से पाड के तख्ते नीचे को खसक गए। उसने सुना "कर्नल, मैं लोगों से कुछ कहना चाहता हूँ,"

अरे, यह तो राजा है।

उसने जरा सा कपड़ा हटा कर देखा, एक आदमी चला आ रहा है। उसके हाथ में नरघाती कुल्हाड़ा है। पाड़ पर पहुँच कर उसने कुल्हाड़ा रख दिया। उसकी आवाज से अथस का कलेजा दहल गया।

बधिक के पीछे दो पादरियों के साथ बादशाह शान्त भाव से आगे बढ़ रहे थे।

• ४८ •

नरघाती कुल्हाड़ा

वह एक मझले क़द का आदमी था। वह सिर से पैर तक काले वस्त्र पहने था। उसकी उम्र पक चुकी थी। पेशानी पर सफेद बाल लटक रहे थे, हाथ में उसके जगद्विख्यात ब्रिटेन का नरघाती कुल्हाडा था।

राजा की शान्त, भव्य मूर्ति प्रभावशाली दीख रही थी। देख कर भीड निस्तब्ध हो गई।

राजा को बोलने की आज्ञा मिल गई। वह कह रहा था कि जनता ने अपने राजा के साथ कैसा व्यवहार किया है। अन्त में उसने इंगलैंड की शुभ कामना कीं। शत्रुओं को क्षमा किया। मित्रों को अलविदा कहा।

अथस के प्राण मुँह में आ रहे थे। ओह, मैं जो कुछ सुन रहा हूँ, स्वप्न नहीं है। क्या ईश्वर ने अपने प्रतिनिधि को ऐसी बुरी मौत मरने के लिए पृथ्वी पर भेजा था। मैं तो उन से मिल भी न पाया। अन्तिम प्रणाम भी न कर पाया।

बधिक ने कुल्हाडा उठाया। राजा ने कहा, अभी कुल्हाड़े को मत छुओ। अथस के माथे पर पसीने की बूदें छुलछुला आईं। भीड़ में सन्नाटा था।

अब अंतिम तैयारियाँ हो रहीं थी। राजा ने करुण दृष्टि से भीड को देखा। फिर उन्हों ने अपना आर्डर उतारा, जिसे वे पहने हुए थे। यह वही हीरे का स्टार था जिसे रानी ने उस के पास भेजा था। इसे राजा ने जुक्सन के साथी पादरी को दे दिया। फिर उन्होंने अपनी छाती पर से एक छोटा हीरे का क्रास निकाला। यह भी महारानी हेनरेटा ने भेजा था। राजा ने कहा—'पवित्र पिता, मैं इस क्रास को अंतिम क्षण तक अपने हाथ में रखूंगा। जब मैं मर जाऊँ तो इस आप ले लेना।"

"जो आज्ञा, यह आरमंस की आवाज थीं, जिसे अथस ने पहचान लिया।

बादशाह ने अपना हैट उतारा। फिर उन्होंने एक-एक कर के कोट के बटन खोल डाले और कोट भी उतार कर फेंक दिया। सर्दी बहुत थी। उन्होंने अपना ऊनी बनियान मांगा. जो दे दिया गया। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि राजा पलंग पर सोने की तैयारी कर रहा है।

अन्त में अपनी गर्दन पर से बालों को उठाते हुए उसने बधिक से पूछा— 'यदि ये तुम्हारे काम में बाधक हों तो तुम इन्हें बांध सकते हो।"

राजा ने शान्त और सौजन्यपूर्ण दृष्टि से बधिक की ओर देखा। बधिक राजा से आँख न मिला सका। उसने मुँह फेर लिया। जब राजा ने दुबारा वह प्रश्न किया तो उसने भर्राई हुई आवाज़ से कहा—"आप उन्हें गर्दन पर से हटा लें तो काम चल जायगा।'

राजा ने अपने दोनों हाथों से बालों को गर्दन के दोनों ओर इकट्ठा कर लिया। फिर सिर टेकने की लकड़ी देख कर बोला—यह तो बहुत नीची है। क्या जरा ऊँची नहीं हो सकती ?"

'यह तो जैसी होनी है वैसी ही है." बधिक ने कहा।

"क्या तुम्हें निश्चय है कि एक ही चोट से तुम मेरा सिर काट लोगे।"

"मुझे तो यही आशा है।"

प्रश्नोत्तर सुन कर सब श्रोता थर-थर काँपने लगे। केवल राजा अचल अकम्पित खडा था। उसने फिर कहा—

"अच्छा सुनो तो।"

बधिक राजा की ओर चला और कुल्हाड़ी पर झुक गया।

"मैं नहीं चाहता कि मैं तुम पर आश्चर्य करूँ। मैं प्राथना करने को झुकूंगा, उस समय तुम मुझ पर चोट मत करना।"

"तो मैं कब चोट करूँ ?" बधिक ने पूछा।

"जब मैं अपना सिर टिकटी पर रख दूं और अपने हाथ फैला दूं और कह दूं—सावधान, तब तुम ज़ोर से चोट करना।"

बधिक ने झुक कर अभिवादन किया।

तब राजा ने अपने पास खड़े लोगों से कहा—"सज्जनो संसार त्यागने की बेला आ गई है। मैं तुम्हें मंझधार में छोड़े जा रहा हूँ, और उस देश में जा रहा हूँ जहाँ से फिर कोई नहीं लौटता। विदा।"

उन्होंने आरमस की ओर देख कर कोई संकेत किया और कहा—"सब कोई चले जाओ, और मुझे प्रार्थना करने दो।" फिर बधिक से कहा—"मैं तुम से भी यही विनती करता हूँ। फिर तो मैं तुम्हारा ही हो जाऊँगा।"

सब के हट जाने पर चार्ल्स झुक गए। क्रास का संकेत हुआ। उन्होंने

प्लेटफार्म चूमने के बहाने फ्रेंच भाषा में कहा—"अथस, तुम यहाँ हो, सुन रहे हो ?"

अथस की छाती पर साँप लोट गया। उसने कहा—"हाँ श्रीमन्।"

"विश्वासी मित्र, अब मैं किसी तरह नहीं बच सकता। मैंने ऐसे पुण्य ही नहीं किए थे। मैं इन सब से बोल चुका हूँ, ईश्वर से बोल चुका हूँ। अब अन्त में तुम से बोल रहा हूँ। मेरे पूर्वजों की गद्दी जा रही है। सुनो, सोने की एक लाख मुहरें, न्यू कासिल की छत में मैंने उसे छोड़ते समय छिपा दी थीं। इस रुपये से तुम मेरे बेटे की व्यवस्था करना। अथस, अब विदा।"

"विदा, बलिदान होने वाले पवित्र महाराज, विदा !"

राजा उठ खड़ा हुआ। बधिक मंच पर आ गया। राजा ने टिकटी पर सिर रख कर अपने दोनों हाथ फैला दिए और गर्ज कर कहा—"सावधान।"

अभी शब्द निकले ही थे कि भयानक चोट पड़ी। पाड़ हिल गई। धूल उड़ने लगी।

खून की गर्म बूंदें अथस के मस्तक पर गिरने लगीं। वह घुटनों के बल गिर गया। उसने अपना रूमाल राजा के रक्त में तर किया। भीड़ कम होती जा रही थी। वह नीचे उतरा। दो घोड़ों के बीच से होता हुआ वह भीड़ में मिल गया, फिर अपने हाथों माथे का खून पोंछने लगा और बेहोश हो कर गिर गया।

: ३६ :

इंगलैण्ड डगमग

पार्लमैंट के हाऊस आफ कामन्स के जिन अस्सी सदस्यों की मण्डली ने बादशाह चार्ल्स का सिर कटवाया था, वही अब राष्ट्र सभा के रूप में इंगलैण्ड का राज्य सूत्र अपने हाथों में ले बैठी। यह एक प्रकार का डगमग प्रजातन्त्र था। ब्रैडशा इस का प्रधान था। यह वही व्यक्ति था जिस

ने चार्ल्स को प्राण दण्ड की आज्ञा दी थी। प्रसिद्ध कवि जान मिल्टन विदेश मंत्री और क्रामवैल मुख्य सदस्य था। आयर्लैण्ड की प्रजा राज-पक्ष की समर्थक थी, अतः उसने चार्ल्स प्रथम के पुत्र को चार्ल्स द्वितीय के नाम से अपना राजा मान लिया। इस पर क्रामवैल ने आयर्लैण्ड पर चढ़ाई कर दी और उसे परास्त करके वहाँ के ज़मींदारों की जायदादें छीन कर अंग्रेजों को बाँट दीं। आयर्लैण्ड में अशान्ति व्याप गई। यही स्काटलैण्ड में भी हुआ। निरपराध चार्ल्स प्रथम का पुत्र फाँस में जा शरणा-पन्न हुआ। इसके बाद क्रामवैल ने हालैण्ड पर विजय प्राप्त की और अब वह इंगलैण्ड का प्रोटेक्टर बन बैठा। यद्यपि उसने इंगलैण्ड, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्ड को परस्पर मिला कर पहली बार ही ब्रिटेन में राज-नीतिक एकता स्थापित की थी। परन्तु उसका शासन सैनिक और एक-तन्त्री था। पार्लमेंट ने जब जब उसके अधिकारों पर अंकुश लगाना चाहा तो उसने पार्लमैंट को हर बार तोड़ दिया। उसने धार्मिक स्वतन्त्रता तो दी—पर सब प्रकार के राग-रंग, नाच-थिएटर, खेल-तमाशे बन्द कर दिए। इस से देश में उदासी छा गई और क्रामवैल अप्रिय हो गया। वह एक वीर, शक्तिशाली, बुद्धिमान किन्तु क्रूर शासक था। उसने इंगलैण्ड को यूरोप की महाशक्ति बना दिया। वह केवल पाँच बरस प्रोटेक्टर रह कर मर गया। उसके मरने पर उस का पुत्र उत्तराधिकार के बल पर प्रोटेक्टर बना, पर उसे हटा कर इंगलैण्ड वालों ने चार्ल्स के पुत्र को बुला कर सिंहासन पर ला बैठाया। वह काफी कष्ट भोग चुका था। वह उपहास-प्रिय, शिक्षित और आनन्दी तरुण था। पर उसका चरित्र ठीक न था। फ्रांस के दूषित वातावरण ने उसे स्त्रैण बना दिया था। इसके अतिरिक्त वह सिद्धान्तहीन और स्वार्थी व्यक्ति था। उस का विवाह पुर्तगाल की राजकुमारी से हुआ, जिस के दहज में उसे बम्बई का टापू मिला था। वह पच्चीस वर्ष राजा रहा। उसके राज्य-काल में इंगलैण्ड में अनेक महत्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। उसके बाद उस का छोटा भाई जेम्स द्वितीय के नाम से इगलैण्ड का राजा हुआ।

जेम्स द्वितीय कट्टर रोमन कैथोलिक था। गद्दी पर बैठ कर उस ने रोमन कैथोलिक धर्म का प्रचार आरम्भ कर दिया। इंगलैण्ड के बादशाह के नाते वह चर्च आफ इंगलैण्ड का नेता था— उस का यह आचरण धर्म विरोधी था। पर उसने जनता के विरोध की परवाह न की। लोग उस के विरोधी हो गए और उन्होंने विद्रोह कर दिया। जेम्स ने विद्रोहियों को कड़े दण्ड दिए। तीन सौ से अधिक को गुलाम बना कर बेच दिया। जिन्हें वैस्ट इण्डीज के टापुओं में कड़ी धूप में मिट्टी खोदने का काम दिया गया। उसने राज नियम के विपरीत कैथोलिक लोगों को राज्य के उच्च पद देने आरम्भ कर दिए। इस समय इंगलैण्ड मे दो विश्व विद्यालय थे, एक कैम्ब्रिज दूसरा आक्सफ़ोर्ड। दोनों में प्रोटेस्टेण्ट ही अध्यापक थे। इस ने कैथोलिक व्यक्ति को आक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय का अधिष्ठाता बना दिया। इसी समय जेम्स के एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जिस का संस्कार रोमन कैथोलिक रीति से किया गया। इस पर प्रजा बिगड़ खड़ी हुई। वह नहीं चाहती थी कि इंगलैण्ड की गद्दी का वारिस कैथोलिक हो। जनता ने राजा के विरुद्ध विद्रोह खड़ा कर दिया। और हालैण्ड के राजा विलियम को सहायता के लिए बुला भेजा। विलियम जेम्स द्वितीय का भानजा और और दामाद था। वह प्रोटेस्टेण्ट था। वह इंगलेण्ड सेना लेकर आ पहुँचा। इस समय वह फ्राँस का लुई चौदहवें से भी प्रोटेस्टेण्टों की रक्षार्थ युद्ध कर रहा था। इगलैण्ड की सेना और जनता ने उस का हर्ष से स्वागत किया। जेम्स का साथ सेना ने छोड दिया। और वह अपने प्राण ले कर लुई की शरण में फ्रांस भाग गया।

: ३७ :

फ्राँस की माया नगरी

जिस समय इंगलैंड अपने बादशाह का सिर काट रहा था. इंगलैंड के चिर धर्म और राज्य शत्रु पड़ौसी फ्राँस में स्वेच्छाचारिता का बोलबाला था। वहाँ के राजा अपने को ईश्वर का अवतार ही समझते और प्रजा

की गाढ़ी कमाई और प्रजा के तरुणों के जीवन का जैसे चाहते उपयोग करते थे। प्रजा पर भारी टैक्सों का बोझ था। परन्तु अमीर उमराव और पादरी इससे बरी थे। इस समय चौदहवाँ लुई फ्राँस पर शासन कर रहा था। जिसने ७२ साल तख्त को सुशोभित किया। उसने वार्साई के बड़े-बड़े आलीशान महल बनवाए। राजा अपने हज़ारों पार्शदों के साथ वार्साई के राज प्रसाद में रहता था। राजा और उसके दर्बारियों के भोगविलास की केन्द्रस्थली यह मायानगरी पेरिस से बारह मील के अंतर पर थी। जिसमें अस्सी हज़ार फैशनेबुल वजहदार लोग रहते थे। ये इतने नर-नारी यहाँ राजा और उसके दर्बार की आवश्यकता की पूर्ति के लिए ही रहते थे। राज प्रसाद तीस करोड़ की लागत का बना था और यह विपुल धन-राशि जनता से कर के रूप में सख्ती से वसूल की गई थी। राज दर्बार में पन्द्रह सौ आदमी थे। अकेली रानी के निजी सेवक ही पाँच सौ थे। राजा के खर्च की कोई सीमा न थी। उसके निजू घोड़ों पर ही प्रति वर्ष एक करोड रुपया खर्च हो जाता था। पचास लाख से अधिक रुपया दावतों में उड जाता था, जो आए दिन वहाँ होती ही रहतीं थीं। राजा के आमोद-प्रमोद शान-शौकत भोगविलास की मद में छः करोड़ रुपया प्रतिवर्ष स्वाहा होता था। यह सब रुपया ग़रीब जनता के पसीने की गाढ़ी कमाई से ज़ोर-जुल्म द्वारा टैक्सों से वसूल की जाती थी।

यह सब तो था। परन्तु फ्राँस का शासन बहुत ढीला था। राजा और उसके दर्बारियों तथा कर्मचारियों को शासन की कुछ परवाह ही न थी। वे तो अपने आमोद-प्रमोद, नाच-रंग, मौज-मजा में ही मस्त रहते थे। राजा जिसे चाहते उसे ही गिरफ्तार कर लेते थे। केवल राजा ही नहीं, उसके रिश्तेदारों, कृपा-पात्रों, कर्मचारियों और सरदारों को भी यह अधिकार प्राप्त था। राजा एक मुद्रित पत्र अपनी मुहर से जारी करता था। जिस पर अपराध, अपराधी और दण्ड की जगह खाली रहती थी। जिस आदमी के पास वह मुद्रित-पत्र होता था वह खाली जगह की खाना पुरी करके जिसे चाहते, उसे जो चाहे सजा दे डालते थे। यह सरासर न्याय

और स्वतन्त्रता का खून था। इस प्रकार जनता का जीवन राजा और उसके कृपापात्रों के रहम पर ही आधारित था। प्रजा से टैक्स वसूल करने का भी तरीक़ा बेहूदा था। ये टैक्स वसूल करने के हक़ एक निश्चित राशि पर नीलाम किए जाते थे। फिर ठेकेदार को हक़ होता था कि वह प्रजा से जैसे चाहे और जितना चाहे टैक्स वसूल कर ले। उसके निदय अत्याचार की कहीं दाद-फर्याद न थी। किसानों को अपनी उपज का आधा टैक्स देना पड़ता था, परन्तु बड़े-बड़े ज़मीदार टैक्स से मुक्त थे। राजा जो चाहे सो खर्च कर सकता था। राज्य और राजा के खर्च में कोई अंतर न था। न उसमें आपत्ति करने का किसी को अधिकार था। फ्राँस में उन दिनों न कोई पार्लमैंट थी, न राज सभा। बस राजा का ही अबाध शासन था। फ्राँस कोई एक राष्ट्र भी न था, न वहाँ कोई एक स्थायी क़ानून पद्धति ही थी। कहीं रोमन क़ानून था, कहीं कोई दूसरी सामाजिक रचना जन्म मूलक थी। सब फ्राँस निवासियों के समान अधिकार न थे। कुछ के बड़े-बड़े अधिकार थे। कुछ के कुछ भी नहीं। कुछ लोग बहुत बड़े थे, कुछ बहुत छोटे। मोटी दृष्टि से तीन श्रेणियाँ थीं, कुलीन, पादरी और सर्वसाधारण।

राजा के बड़े-बड़े पद नीलाम हुआ करते थे। और कुलीन ही उन्हें प्रायः खरीद लिया करते थे। इन कुलीनों में जुआ और शराबखोरी की बुरी लत थी। राजा की कृपा से तत्क्षण मनुष्य श्रीमन्त हो जाता था। फ्राँस में रोमन कैथोलिक चर्च का बोलबाला था। यह चर्च राज्य के भीतर दूसरा राज्य था। इसकी अपनी सरकार और अपने राज कर्मचारी थे। देश की चालीस फ़ीसदी जमीन चर्च के अधिकार में थी। चर्च की वार्षिक आमदनी तीस करोड़ रुपए थी। उच्च पुरोहित ६ हज़ार के लगभग थे, तथा जो बड़े ठाठ-बाठ से महन्तों की भाँति रईसी ढंग पर रहते थे। इनमें से बहुतों की आमदनी लाखों रुपए थी, धार्मिक मामलों में इनकी कोई रुचि न थी। सहभोजों और शराब की दावतों में ये लाखों रुपए फूंकते थे। जार्ज नोर्मल ने विशप होने के उपलक्ष्य में जो भोज दिया

था उसका ब्योरा सुनिए—मदा १५० मन, एलटर ५० मन, अन्य मदिराएँ २८०८ मन, मसालेदार मदिरा एक पीपा, बैल ८०, जंगली साँड़ ६, बछड़े ३००, सुअर ३०० भेंड़ १००८, सुअर के बच्चे ३००, हिरन ४००, राजहंस ३०००, मुर्गे ३०००, मुर्गी २०००, मोर १००, चकवा २००, कबूतर ४०००, खरहा ४०००, बकरी के बच्चे २००, तीतर ५००, काठफोड़ा २०००, प्लोवर पक्षी ४००, विटर्न पक्षी २०४, बगुले १०००, हंस ४००० क्रौंच १००, बटेर १००, केजर १००, मृग माँस के पकौड़े १५०० अण्डे, पकौड़े ४०००। इसके अतिरिक्त ११ हज़ार भिन्न-भिन्न प्रकार के पक्वान्न और एक हज़ार से कुछ अधिक ही प्रकार की मछलियाँ, कितने ही प्रकार के मुरब्बे बिस्कुट, केक आदि थे। एक हजार परसने वाले, ६२ पकाने वाले रसोइए और ५१५ पर्यवेक्षक और प्रबन्धक थे।

साधारण पादरियों की संख्या एक लाख थी। जनता को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त न थी। प्रत्येक को रोमन चर्च के अधीन होना अनिवार्य था। रोमन कैथोलिकों से अन्य लोगों के विवाह और उनसे उत्पन्न संतान भी वैध मानी जाती थी। ऐसे लोगों की मृत्यु के बाद उनके रोमन कैथोलिक रिश्तेदार दावा करके प्रकृत वारिस को रद्द कर स्वयं उसकी सम्पत्ति के अधिकारी बन जाते थे। विधर्मियों को इनक्विजिशन के द्वारा जीता जलाया और यन्त्रणा ग्रहों में यन्त्रणाएँ दी जाती थीं। मज़दूरों और किसानों की दशा बदतर थी। किसान भूखे और नंगे थे। फिर भी इनके ऊपर भारी टैक्सों का बोझा था। व्यापार साधारण मन्द गति से चल रहा था। यातायात के साधन खराब थे। पेरिस से मार्सेल्स जाने में ही ग्यारह दिन लग जाते थे।

उन दिनों फ्रांस के सब फैशनेबुल लोग सुन्दर नकली बाल लैसदार कफ और कीमती पोशाकें पहनते थे। पर कभी नहाते न थे। उनका शरीर मैल और गन्दगी से भरा रहता था। चौदहवें लुई के सम्बन्ध में, जो इतना शानदार बादशाह था—एक मशहूर अंग्रेज़ लेखक ने लिखा था

कि यदि उसके ऊपर से बादशाही का चोगा उतार दिया जाय तो सिवा एक भद्दी दो जड़ वाली मूला के, जिसमें अजीब तौर पर सिर बना दिया हो. और कुछ नहीं रहता। उस जमाने में राजाओं और राजनीतिज्ञों की मनोदशा का दिग्दर्शन फ्लोरेन्स निवासी तत्कालीन लेखक मेकियावली के इस लेख से होता है—"सरकार के लिए मज़हब की ज़रूरत है, इसलिए नहीं कि आदमी सदाचारी बने। बल्कि इसलिए कि उन पर हुकूमत की जा सके। शासन का यह भी कर्त्तव्य हो सकता है कि वह उस मज़हब का भी समर्थन करे जिसे वह झूठ समझता हो।" राजा को यह भी जानना चाहिए कि एक ही साथ हैवान और इन्सान का, भेड़िए और लोमड़ी का पार्ट कैसे अदा किया जा सकता है। राजा के लिए हमेशा ईमानदार रहना बहुत ही खतरनाक है। लेकिन सदाचारी, दयावान, श्रद्धालु होने का ढोंग कायम रखना आवश्यक है। सद्‌गुणों का दिखावा बनाए रखने से ज्यादा फायदेमन्द कोई दूसरी चीज़ नहीं है।

: ३८ :

हिन्द महासागर में समुद्री कुत्ते

पन्द्रहवीं शताब्दी में वास्को-ड-गामा के भारत पहुँचने के साथ ही हिन्द महासागर यूरोपीय समुद्री डाकुओं से भर गया। सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दियों में यूरोप के सभी देशों के साहसिकवर्गी लोग और व्यापारी हिन्द महासागर में अपने पुश्तैनी डाकेज़नी का भारतीय धंधा करने लगे। ज्यों-ज्यों भारतीय व्यापार की वृद्धि होती गई, त्यों-त्यों विभिन्न यूरोपीय समुद्री डकैत हिन्द महासागर मे भरते चले गए।

सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ में पुर्तगालियों का बंगाल में व्यापार फैलने लगा था। यद्यपि बंगाल का कोई भाग पुर्तगालियों के शासन में नहीं आया था। पर लूट-खसोट ज्यादतियाँ गुलाम-बंदियों को पकडना उन का वही क्रम जारी रहा। जो उनके व्यापार का ही हिस्सा था। उस समय शाहजहाँ ने उन्हें चेतावनी दी थी, पर उन्होंने नहीं सुनी। तब शाहजहाँ

ने एक सेना भेजी। उसने पुर्तगालियों को बीन-बीन कर मार डाला। हुगली की कोठी ढहा दी। जहाज़ जला डाले। बहुत से पुर्तगालियों को क़ैद कर के आगरे पकड़ मंगाया। यहाँ उनके नाक कान काट डाले गए। जो बच गए वे बम्बई में आ कर शरणापन्न हुए।

बम्बई का टापू पुर्तगालियों का था। पीछे सन् १६६१ में वह इंगलैंड के बादशाह चार्ल्स द्वितीय को दहेज में दे दिया गया था। इस समय ये भगोड़े, चोर, डाकू सब बम्बई में एकत्र हो गए थे। और इसी क़िस्म के अंग्रेज़ों ने भी वहीं अपना अड्डा आ बनाया था। और वह बंबई का बन्दरगाह अब इन चोर उचक्कों का अड्डा बना हुआ था।

इस समय तक पोर्चुगीज़ों को भारत में रहते सौ बरस बीत चुके थे। और मंगलौर, कंचिन, लंका, दिव, गोआ और बम्बई के टापू इन लोगों ने हथिया लिए थे। और अब वे उनके मालिक बने बैठे थे। इसके अतिरिक्त अब इनके जहाज़ भारत के पूर्व और पश्चिमी तटों पर बराबर घूमते रहते थे। और किसी भी भारतीय जहाज़ के पास आ निकलने पर वे उसे लूट लेते थे। अपने जहाज़ों में बैठ कर ये लोग किनारे की आबादियों पर भी धावा बोल देते थे। और उन्हें लूट लेते थे। कभी-कभी मौका पा कर वहाँ के स्त्री-पुरुषों को पकड़ कर गुलाम बना लेते थे। बहुत से पोर्चुगीज़ जहाज़ इस समय अफ्रीका तथा दूसरे देशों से गुलाम जहाज़ों में भर कर लाते तथा भारत के बाज़ारों में और जो स्थान उनके अधीन होते थे, सस्ते दामों बेच देते थे। जिन प्रदेशों पर भारत में पोर्चुगीज़ों का कब्जा हो गया था, वहाँ की प्रजा पर निर्दय अत्याचार किया करते थे। वे कट्टर कैथोलिक ईसाई थे। और प्रजा को जबर्दस्ती ईसाई बनाना उनका मिशन था। ग़ैर ईसाइयों को ला-मज़हब कह कर वे उनके नाक कान काट लेते थे। या ज़िन्दा जला देते थे। या कोड़े लगवाते थे। सन् १६८८ में बम्बई का टापू ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने बादशाह से खरीद लिया। तब से वहाँ अंग्रेज़ों की और भी वृद्धि हो गई। जिनसे ये डाकू और इनके डाके का माल खरीदने बेचने वाले सौदागर ही अधिक थे।

सन् १६३५ में काब ने और उसके बाद सर विलियम कोर्टन ने भारतीय जहाज़ों को लूटा। इस पर सूरत के सूबेदार ने सूरत की कोठी के सब अंग्रेज़ों को क़ैद में डाल दिया। वे दो महीने वहाँ सड़ते रहे और एक लाख सत्तर हज़ार रुपए जुर्माना अदा करने पर उनका छुटकारा हुआ।

मगर इसके बाद तो अनगिनत यूरोपियन समुद्री डाकू हिन्द महासागर में भर गए। वे अपने एकाकी जहाज में खुले समुद्र में चक्कर काटते और किसी राष्ट्र के व्यापारी जहाज़ को देख कर लूट लेते थे। इन समुद्री डाकुओं मे टीच, राडोरी, किड, राबर्ट्स, इंगिलश और ट्यू बहुत मशहूर थे। इन डाकुओं में अंग्रेज ही अधिक थे। दूसरे देश के डाकू अपने जहाज़ों पर अंग्रेजी झंडा उड़ा देते थे। इस कारण उनके डाकों का इल्ज़ाम भी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों पर लगता था। सज़ा भी वे ही पाते थे।

सन् १६९५ के सितम्बर में प्रसिद्ध अंग्रेज डाकू हेनरी ब्रिजमैन ने जो एव्होरी के नाम से प्रसिद्ध था, फतेह मुहम्मदी नामक जहाज़ को लूट लिया। इस जहाज़ में बहुत-सा कीमती माल भरा था। यह जहाज़ सूरत के मशहूर व्यापारी अब्दुल ग़फ़ूर का था। अभी यह मामला ठंडा नहीं हुआ था कि एव्होरी ने अरब जाने वाले एक दूसरे जहाज़ गंज-ए-सवाई' को बम्बई और दमन के बीच में घेर लिया। जहाज़ पर बहुत से हज के यात्री थे तथा बहुत-सा कीमती माल भी लदा था। उस समय एव्होरी कई डकैत जहाज़ों के साथ मोखा से लौट रहा था। जहाज़ पर ज़बर्दस्त गोलाबारी की गई जिसके बचाव का बेचारे जहाज़ वालों के पास कोई साधन ही नहीं था। जहाज़ में आग लग गई। और तब डकैत उस पर चढ़ गए। उन्होंने तीन दिन तक जहाज को जी भर लूटा। अपने लुटे हुए उस ध्वस्त जहाज़ को ले कर उसके नाविक सूरत लौट आए। जहाज़ के हज-यात्रियों ने सूरत में इस लूटमार और अत्याचार का ऐसा रोमांचकारी वर्णन किया कि मुसलमानों का खून खौल उठा। उन्होंने यह भी बताया

कि यह आक्रमण बम्बई के अंग्रेज़ों ने किया था। सूरत का फौजदार एतमाद खाँ अंग्रेज़ों का दोस्त था। उसने बड़ी ही कठिनाई से उत्तेजित मुसलमानों से अंग्रेज़ों की रक्षा की।

: ३९ :

औरंगजब का धर्मानुशासन

जिन दिनों ये अंग्रेज़, डच पोर्चुगीज यूरोपियन भारत में पैर फैलाते जा रहे थे, उन दिनों कट्टर हिन्दू धर्म विद्रोही औरंगज़ेब का निर्बाध धर्मानुशासन भारत पर चल रहा था। सन् १६६९ में उसने सब प्रान्तीय शासकों को आज्ञा दी कि हिन्दुओं के देवमन्दिर और ब्राह्मणों के विद्यालय नष्ट कर दिये जाएँ। साथ ही यह भी आज्ञा दी कि क़ाफिरों के उपदेश और धार्मिक अनुष्ठान तथा त्योहारों की धूमधाम भी रोक दी जाय।

इस समय औरंगज़ेब की चढ़ती जोत थी। उसे राज्यारोहण किए दस बरस हो चुके थे। उसके सब शत्रु और विरोधी समाप्त किए जा चुके थे। परन्तु आसाम और अफ़ग़ानिस्तान में संघर्ष चल रहा था। सन् १६६० में उसने मीरजुमला को ख़ास तौर पर बंगाल का सूबेदार बना कर इस लिए भेजा था कि वह बंगाल और खास तौर पर आसाम तथा अराकान के विद्रोही ज़मीदारों को यथोचित दण्ड दे। मीरजुमला ने बहुत शीघ्र इन विद्रोही सरदारों को ताबे कर लिया। अहोम के राजा जयध्वज ने अपनी बेटी और राजपुत्रों को शाही सेवा में भेजना स्वीकार कर लिया। इस के अतिरिक्त उसने २० हज़ार तोला सोना और सवा लाख तोला चाँदी तथा बीस हाथी बादशाह की सेवा में भेजे। साथ ही मीरजुमला और मुग़ल सेनापति दिलेरखा को भी बीस-बीस हाथी दिए। इस भेंट के अतिरिक्त उसने अगले बारह महीनों में तीन लाख तोला चाँदी और ९० हाथी तीन क़िश्तों में भेजने का, तथा इसके बाद प्रति वर्ष बीस हाथी भेजने का वचन दिया।

यद्यपि मीरज़ुमला का यह आसाम अभियान सफल हुआ था। उसने

राजा को अपमानजनक संधि करने पर वाध्य किया। पर इसमें आसाम के जंगलों में बहुत आदमी मर गए। बहुत रोगी हो गए। वह स्वयं भी आसाम के जंगलों में रोगी हो कर लौटते-लौटते मर गया।

औरंगज़ेब इससे और चिढ़ गया। अपने इस अनन्य मित्र की मृत्यु का जिम्मेदार उसने हिन्दुओं ही को ठहराया, जिन पर उसने चढ़ाई की थी। सितम्बर सन् १६६९ में इसने काशी के प्रसिद्ध विश्वनाथ के मन्दिर गिरवा कर उस पर मस्जिद बनवा दी। और उद्धव नाम के एक रमते वैरागी को हवालात में डाल दिया। मथुरा का सब से बड़ा केशवराय का मन्दिर, जिसे बुन्देले राजा नरसिंह देवजू ने तेतीस लाख रुपयों की लागत से बनवाया था, जनवरी सन् १६७० में जमींदोज कर दिया। और उस जगह भी एक मस्जिद बनवा दी। केशवराय भगवान् का दिव्य मङ्गल विग्रह आगरे की जहांनारा की मस्जिद की सीढ़ियों में गाढ़ दिया, जिससे वह मस्जिद में आने जाने वाले मुसलमानों के पैरों से कुचला जाय। काठियावाड़ के दक्षिणांचल का प्रसिद्ध सोमनाथ का मन्दिर मिस्मार करवा दिया और वहाँ की पूजा बन्द कर दी। छोटे-छोटे मन्दिर जो ढहाए गए उनकी कोई गिनती ही नहीं थी। मेवाड़ पर चढ़ाई के दौरान में मेवाड़ के १७५ मन्दिर गिराए गए। जिन में वहाँ का प्रसिद्ध सोमेश्वर का मन्दिर और उदयपुर के तीन विशाल देवालय भी थे।

सन् १६७९ में उसने हिन्दुओं पर जजिया लगाया। जो गरीब हिन्दू इस कर को उठा देने के लिए औरंगज़ेब से प्रार्थना करने उस की राह रोके खड़े थे, उन्हें हाथियों से कुचलवा दिया गया। मार्च सन् १६९५ के शाही फरमान के अनुसार राजपूतों के अतिरिक्त और सब हिन्दुओं को हथियार बाँधने, हाथी, पालकी एवं अरबी तथा फारिस घोड़ों पर सवार होने की मनाई कर दी। शाही दफ्तरों के सब हिन्दू कर्मचारी बर्खास्त कर दिए गए। मुसलमानों को बरी करके हिन्दुओं पर दुगना टैक्स लगा दिया गया।

यह उन दिनों की घटनाएँ हैं, जिन दिनों मुग़ल प्रताप अस्त हो रहा

था और उदीयमान ब्रिटिश प्रताप की क्षीण ज्योति टिमटिमाने लगी थी। इस प्रकार के प्रजा पीड़न उस काल के अंग्रेज साहसिक व्यापारियों की आँखों के आगे होते रहते थे। और निरीह प्रजा उसे चुपचाप सहन करती थी। यह स्वाभाविक था कि इन यूरोपियनों पर भी उस की छाया पड़े। और उन्हें भी ऐसे ही अत्याचार करने का साहस हो। वे कोई शरीफ आदमी तो थे ही नहीं। भला बुरा उचित अनुचित सोचना उनकी प्रकृति न थी। बस, अवसर पाते ही उन्होंने भी अत्याचारों का आश्रय लिया। क्रूरता अत्याचार, खून-खराबी निर्दयता उन के खून में, संस्कृति में थी। इसी से अंग्रज और यूरोप की दूसरी किसी भी जाति ने भारतीयों पर अत्याचार करने में कुंठा का अनुभव नहीं किया।

: ४० :

सौदा-ए-ख़ास

भारतीय जल-मार्ग के नक्शे मिलने के तीस साल बाद सन् १६०८ में पहला अंग्रेजी जहाज 'हेक्टर' सूरत की बन्दरगाह पर आ कर लगा। उन दिनों सूरत का बन्दरगाह भारतीय विदेशी व्यापार का बड़ा भारी केन्द्र था। जहाज का कप्तान हाकिन्स था। वही पहला अंग्रेज बच्चा था जिस ने प्रथम बार भारत की भूमि को स्पर्श किया।

उन दिनों भारत में सम्राट् जहाँगीर तख्त पर था। हाकिन्स ने आगरे जा कर इंग्लिस्तान के बादशाह जेम्स प्रथम का पत्र और सौगात बादशाह को भेंट की। मुग़ल बादशाह के ऐश्वर्य और आगरे की बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ महल और शहर के ठाठ-बाठ देख कर उस की आँखें चुंधिया गईं। ऐसी शान का शहर उस ने पहले कभी नहीं देखा था। न ऐसे महान् बादशाह की ही उसने कभी कल्पना की थी। उसने दोज़ानु हो कर मुग़ल पद्धति से बादशाह को तसलीमात अर्ज की। जहाँगीर ने हाकिन्स की बहुत ख़ातिरदारी की, और अंग्रेज़ों को सूरत में कोठी बनाने और व्यापार करने

का फर्मान जारी कर दिया। उस ने यह भी इजाज़त दे दी कि मुग़ल दरबार में अंग्रेज़ एलची रहा करे।

कुछ दिन बाद सर टामसरो को इंग्लिस्तान के बादशाह ने मुग़ल दरबार में अपना पहला एलची बना कर भेज दिया। जिस ने अंग्रेज़ व्यापारियों के लिए और भी सुविधाएं प्राप्त कर लीं। उन्हें कालीकट और मछलीपट्टम में भी कोठी बनाने की आज्ञा मिल गई। अंग्रेजों की प्रार्थना पर उस ने यह भी फर्मान जारी कर दिया कि अपनी कोठी के अन्दर रहने वाले कम्पनी के किसी मुलाज़िम के क़सूर करने पर अंग्रेज़ स्वयं उसे दण्ड दे सकते हैं।

इस न्यायी और भावुक बादशाह को यह स्वप्न में भी विचार न आया होगा कि एक दिन अंग्रेज बादशाह के उत्तराधिकारियों तक को दण्ड देने लगेंगे। और यदि उनका विरोध किया जायगा तो वे प्रजा का संहार कर डालेंगे तथा बादशाह के उत्तराधिकारी को बाग़ी कह कर आजीवन क़ैद कर लेंगे।

सन् १६१२ में अंग्रेज़ों ने अपनी पहली कोठी सूरत में स्थापित की। और स्थल मार्ग से आगरा और दिल्ली के बीच व्यापार विनिमय आरम्भ किया। बाद में उन्होंने पटना और मछलीपट्टम में भी कोठियाँ स्थापित कर लीं।

मछलीपट्टम उन दिनों गोलकुण्डा राज्य के अन्तर्गत अच्छा बन्दरगाह था। बाद में उन्होंने एक कोठी बालासोर और दूसरी कटक से पच्चीस मील दूर हरिहरपुर में खोली। बाद में विजयनगर के महाराज से धरती माँग कर मद्रास में सैंट जार्ज का किला बनाया। मुगल राज्य से बाहर अंग्रेजों का एक स्वतन्त्र केन्द्र था। उन दिनों वे पटना के उत्तर सिंघिया या लालगंज से शोरा नावों में डाल कर लाते थ। रेशम और चीनी भी मोल ले कर बंगाल में लाते थे। उन्हें एक निशान तत्कालीन बंगाल के सूबेदार शाहजादा शुजा ने अपनी ओर से लिख कर दे दिया था कि अंग्रेज प्रतिवर्ष तीन हज़ार रुपये सब तरह की चुंगी और अन्य करों के

बदले में देते रहें, और उन्हें बंगाल में व्यापार करने दिया जाय। उन दिनों यूरोप से आने वाले सारे ही जहाज़ों का माल वालासोर ही में उतारा-चढ़ाया जाता था और हुगली बंगाल के व्यापार का मुख्य केन्द्र था।

*   *   *

सन् १८५० में वाटन ने कम्पनी के लिए बिना महसूल दिए बंगाल में व्यापार की आज्ञा ले ली।

सन् १६५८ में जब इंगलैण्ड की कम्पनी के अधिकारियों ने अंग्रेज़ी कोठियों को नए सिरे से व्यवस्थित किया, तब अंग्रेज़ों की सारी कोठियाँ सूरत में नियुक्त अध्यक्ष और उसकी परिषद के अधीन कर दी गईं। केवल हुगली और मद्रास में प्रधान एजेन्सियाँ रह गईं। उन दिनों बंगाल में अंग्रेज़ों का धन्धा मुनाफे में चल रहा था। कच्चा रेशम बहुतायत से मिल जाता था। भाँति-भाँति के रेशमी वस्त्र भी सुन्दर और सस्ते मिल जाते थे। उम्दा किस्म का शोरा भी बहुत सस्ता था। इंगलैण्ड से भेजे गए सोने-चाँदी की भी भारत में अच्छी खपत थी। कुछ दिन बाद मद्रास के केन्द्र में एक स्वतन्त्र अध्यक्ष नियत कर उसे भी सूरत के समान ही एक स्वतन्त्र केन्द्र बना दिया गया और बंगाल की सब कोठियों को मद्रास के अधीन कर दिया गया। अब बंगाल में अंग्रेज़ों का व्यापार तेजी से बढ़ रहा था। उन दिनों डेढ़ करोड़ पौण्ड मूल्य का माल बंगाल से बाहर भेजा जा रहा था।

१६६१ में चार्ल्स द्वितीय ने कम्पनी को भारत में अपना सिक्का चलाने, रक्षा के लिए फौज रखने, किले बनाने और आवश्यकता हो तो लड़ाई लड़ने के भी अधिकार दे दिए। यह एक चमत्कारिक बात थी--कि जिस भारत से इंगलैण्ड के राजा का कोई सम्बन्ध ही न था—उस से व्यापार करने वाली इस कम्पनी को वह ये राजनीतिक अधिकार दे रहा था। जो आगे उसे अपना साम्राज्य स्थापित करने के काम आएँ।

अब हुगली केन्द्र के अधीन ढाका और मालवा की कोठियों की भी

स्थापना हो गई थी। इन दिनों रेशम की रंगाई सीखने इंगलैण्ड स बहुत आदमी बंगाल में आ रहे थे। समुद्र के मुहाने से हुगली तक गंगा में आने-जाने का मार्ग ठीक करने के लिए अंग्रेजों ने एक नाविक दल बनाया था। और अब अंग्रेजी जहाज बंगाल की खाड़ी से होते हुए गंगा में ऊपर तक आ रहे थे।

परन्तु अब बंगाल के स्थानीय अधिकारी बहुत धाँधलेबाजी करते थे। यह धाँधलेबाजी जैसे सबके लिए थी, वैसे ही अंग्रेज़ों के लिए भी थी। वे दूसरे की भाँति अंग्रेज़ों से भी बहुत-सा रुपया वसूल करते थे और उनके व्यापार में बाधा डालते रहते थे। वे बहुधा अंग्रेज़ कम्पनी की नावों को रोक कर उनमें रखा हुआ सारा माल जब्त कर लेते थे। शाहज़ादा शुजा से जो इक़रार हुआ था। अब उसकी आन नहीं मानी जाती थी और अंग्रेज़ों से सारे माल पर चुंगी वसूल की जाती थी। इसके अतिरिक्त राहदारी, पेशकश मुंशियाने के हक़ का रुपया भी वसूल किया जाता था। फर्माइश करके प्रान्त का सूबेदार जो माल मंगाता था, उसका रुपया नहीं दिया जाता था। बहुधा ऐसा होता था कि बंगाल के सूबेदार शाइस्ता खाँ और शाहजादा अज़ी मुश्शान खाँ तथा अन्य उच्च मुग़ल अधिकारी वहाँ से गुजरने वाले माल की बन्द गाँठ को खोल कर अपनी पसन्द का माल निकाल लेते थे, और अपनी इच्छानुसार उचित से बहुत कम उसका मूल्य चुकाते थे। शाहज़ादा अजीमुश्शान ने तो यह धंधा बना लिया था कि बल पूर्वक कम कीमत में माल लेकर उसे बाज़ार में पूरी कीमत में बेच देता था। इस प्रथा को 'सौदा-ए-खास' कहते थे।

चुंगी और लूट-खसोट से बचने के लिए अंग्रेज़ों ने बहुत हाथ पैर मारे। शाइस्ता खाँ को बहुत रुपया भी देना चाहा—पर नतीजा कुछ भी नहीं निकला। तब अंग्रेज़ों ने भारतीय शासकों का आसरा छोड़ अपनी ही ताकत के बलबूते पर अपनी रक्षा का प्रबन्ध किया। उन्होंने निश्चय कर लिया कि किसी सुविधापूर्ण भारतीय तट को जीत कर अपना स्वतंत्र किला बनाया जाय। जिससे उनके व्यापार में कोई छेड़-छाड़ न हो।

: ४१ :

हरमद

चटगांव ज़िले को लेकर शताब्दियों तक बंगाल के मुसलमान शासक और अराकान के मंगोल राजाओं में संघर्ष होता रहा। सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ ही में केनी नदी को दोनों राज्यों की सीमा मान लिया गया था। परन्तु जहाँगीर के ढीले-ढाले शासन और उसके उत्तराधिकारी शाहजहाँ के विद्रोह के कारण बंगाल में मुग़ल सत्ता बहुत कमज़ोर हो गई थी। उधर अराकानियों के बेड़े में बहुत से विदेशी नाविक आ मिले थे। ये पुर्तगीज़ फिरंगी चटगाँव में बस गए थे। और उन्होंने वहीं की औरतों से ब्याह कर लिए थे। जिनसे एक नई अधगोरी जाति का जन्म वहाँ हो रहा था। जिसकी खून की एक-एक बूंद में डाकेजनी, खून-खराबी और दुनिया भर के अपराध समाए हुए थे। किंतु वे सब वहाँ के राजा की राजभक्त प्रजा थे। वे सब अराकान के राजा के जल बेड़े में नाविक हो गए थे। ये बड़े साहसिक और चतुर नाविक थे। सत्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इनके कारण इस नाविक बेड़े की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। पूर्वी तट के सब नदी-नालों और जल मार्गों पर माघों का पूरा अधिकार हो गया था। और वे अब समुद्री डाकुओं का पेशा करते थे।

अराकान के इन समुद्री डाकुओं के बेड़े में माघ और फिरंगी दोनों ही शामिल थे। वे जल मार्ग से निरंतर बंगाल में घुस आते थे और लूट-मार करके भाग जाते थे। बंगाल की उन आततायियों से रक्षा करने वाला कोई न था। इन आततायियों के कारण दिन-दिन बंगाल उजाड़ होता जाता था और उनसे अपनी रक्षा करने की शक्ति बंगाल की जनता में भी खत्म हो चली थी। फिरंगी लुटेरे अपनी लूट का आधा अराकान के राजा को देते थे और आधा खुद बांट लेते थे। वे लोग 'हरमद' के नाम से प्रसिद्ध थे। हरमद शब्द आरमेडा का ही अपभ्रष्ट रूप था—जो पोर्चुगीज़ों के जहाज़ी बेड़े का नाम था। इन डाकुओं के पास युद्ध सामग्री स लैस तेज

चलने वाले कोई सौ जहाज़ थे।

पूर्वी बंगाल में नदी किनारे के प्रदेश उजाड़ और निर्जन हो गए और उनकी आय बहुत कम हो गई। इससे बादशाह की नज़र उधर गई। उसने यह भी देखा कि इससे शाही मर्यादा को भी धक्का लग रहा है। इसलिए चटगाँव के इन सामुद्रिक डाकुओं को नष्ट करना बादशाह के लिए आवश्यक हो गया। उसने शाइस्ता खाँ को बंगाल का सूबेदार बना कर भेजा। और उसे हिदायत दी कि इन डाकुओं को खत्म कर दे। परन्तु यह काम आसान न था। इन दिनों मुग़ल साम्राज्य का एक जहाज़ी बेड़ा बगाल में रहता था। परंतु शुजा के अव्यवस्थित काल में वह बिल्कुल बर्बाद हो गया था। अब एक सुसज्जित जहाज़ी बेड़ा संगठित करना शाइस्ता खाँ का मुख्य काम था। और उसने तुरन्त ही इस काम में हाथ लगा दिया। शाइस्ता खाँ महत्वाकांक्षी और उत्साही व्यक्ति था। उसने शीघ्र ही नए जहाज़ों का एक मज़बूत बेड़ा एक ही वर्ष में तैयार कर लिय। और उसे युद्ध सज्जा से हर तरह सजा दिया।

सन् १६६५ में एकाएक आक्रमण कर के उसने सन्दीप का टापू जीत लिया। और वहाँ मुग़ल सैन्य का एक मज़बूत दस्ता रख दिया। अच्छी नौकरियों का लालच दे कर शाइस्त खाँ ने डाकू फरंगियों को भी अपनी ओर मिला लिया। इससे अराकानियों और फिरंगियों में झगड़ा हो गया। बहुत फिरगी मारे गए। राजा ने सारे फिरंगियों को अपने राज्य से निकाल दिया। वे मुग़ल अमलदारी में आ बसे। उनके मुखियाओं को बड़ी-बड़ी तनख्वाहें दे कर मुग़लों ने उन्हें अपने बेड़े में तैनात कर लिया। अब समुद्री उपद्रव बन्द हो गए और बंगाल को राहत मिली।

अब शाइस्ता खाँ ने चटगाँव को फ़तह करने का इरादा किया। उसने अपने बेटे बुजुर्ग उम्मीद खाँ को एक भारी सेना दे कर उधर रवाना किया। दिसम्बर सन् १६६५ में वह ढाके से रवाना हुआ। सेना समुद्र के किनारे-किनारे स्थल मार्ग से आगे बढ़ी। उधर शाही बेड़ा इब्न हुसेन की कमान में साथ ही साथ समुद्र में एक दूसरे की सहायता करता हुआ

बढ़ा। फरहाद खाँ की कमान में एक दल ने आगे बढ़ फेनी नदी पार की और मुग़ल फौज अराकान में घुस गई। इसी समय मुग़ल जहाज़ी बेड़े का प्रधान अधिपतिकुमारिया की खाड़ी से निकल कर आगे बढ़ा। अराकानियों का भी बेड़ा कठालिया की खाड़ी से निकल कर उसके सामने जा पहुँचा। मुग़ल बेड़े में अपने फन के उस्ताद फरंगी अफसर डटे हुए थे। मुठभेड़ होते ही उन्होंने ऐसा भयंकर आक्रमण किया कि गुर्राबों में बैठे हुए माघ दहशत के मारे नावें छोड़ समुद्र में कूद पड़े। गुर्राबों पर मुग़लों ने अधिकार कर लिया। माघ भाग खड़े हुए। किन्तु अराकानियों के बड़े-बड़े जहाज़ हुरला की खाड़ी से निकल कर अब खुले समुद्र में आ गए थे। अब कड़ा मुकाबिला होने लगा। मुग़ल गोलियाँ बरसाते आगे बढ़ रहे थे, और अराकानी उनका जवाब देते हुए पीछे हट रहे थे। इसी प्रकार कर्णफूल नदी का मुहाना आ गया। मुहाने में घुस कर अराकानियों ने चटगाँव से ले कर नदी की मझधार में स्थित एक टापू तक अपने सब जहाज़ों को एक क़तार में खड़ा कर के मोर्चा बना था। इस नदी के किनारे पर उन्होंने बाँसों के तीन बाड़े बनाए हुए थे। इब्न सऊद ने स्थल मार्ग से हमला कर के बाड़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया और नदी में बलात् घुस गया और अराकानियों पर टूट पड़ा। चटगाँव के क़िले से मुग़लों पर गोले बरस रहे थे। पर इब्न सऊद ने भीषण आक्रमण किया। अंत में अराकानी भाग खड़े हुए। कुछ मार डाले गए कुछ क़ैद हो गए। उनके १३५ जहाज़ इनके हाथ लगे। बाद में चटगाँव के किले पर भी इब्न सऊद ने अधिकार कर लिया। इसके बाद ही फरहाद खाँ के मातहत मुग़ल फौजें घने जंगलों में होती हुई चटगाँव जा पहुँचीं। माघ राह-बाट के नाके छोड़-छोड़ कर भाग गए। फरहाद खाँ ने विजयी सेनापति की भाँति किले में २६ जनवरी सन् १६६६ धूमधाम से प्रवेश किया। अराकानी समुद्री डाकू क़ैद कर लिए गए और हज़ारों बंगाली किसान, जिन्हें वे गुलाम बना ले गए थे मुक्त कर दिए गए। वे स्वतन्त्र हो स्वदेश को लौट पड़े। चटगाँव में मुग़ल थाना स्थापित कर दिया गया और एक मुग़ल

फौजदार के अधीन वह प्रान्त बना दिया गया। चटगाँव का नाम बदल कर इस्लामाबाद रख दिया गया।

: ४२ :

कलकत्ते की स्थापना

जिस दिन इंगलैंड का बादशाह जेम्स द्वितीय बेंत से पीटे हुए कुत्ते की भाँति दुम दबा कर इंगलैंड से भागा, उसी दिन तीन अंग्रेज़ हुगली के बाज़ार में ज़बरदस्ती घुस आए। उन दिनों बादशाह औरंगज़ेब के मामू नवाब शाइस्ता खाँ बंगाल का हाकिम था। वह अंग्रेज़ों की आए दिन की बदमाशियों से तंग था और ईस्ट इन्डिया कम्पनी को 'नीच, झगड़ालू लोगों और जुआ चोरों की जमात कहा करता था। सन् १६३४ में बादशाह शाहजहां ने पुर्तगालियों को बंगाल से निकाल कर अंग्रेज़ों को बंगाल में तिजारत करने की आज्ञा दी थी। परन्तु उन्हें हुगली तक ज़हाज लाने की इज़ाजत नहीं थी। हुगली से बहुत नीचे पिपली में आकर उनके ज़हाज रुक जाते थे। हुगली के बाज़ार में आने की अंग्रेज़ों को सख्त मुमानियत थी। क्योंकि बाज़ार में आकर ये लोग अन्धेरगर्दी मचा देते थे। इन में सदाचार नाम की तो कोई चीज़ ही नहीं थी। वे बिना ही सरकारी चुंगी अदा किए और लोगों को उनके माल का दाम चुकाए माल ले भागते थे। इस लिए नवाब शाइस्त खाँ ने इन उठाईगीरों को बाज़ार में आने देने की सख्त मनाही कर दी थी। और हुक्म था कि यदि कोई अंग्रेज़ बाज़ार में घूमता देखा जाय तो उसे फौरन गिरफ्तार कर लिया जाय।

तीनों अंग्रेज़ शराब पीकर बाज़ार में घूमने और हुदंग करने लगे। जब उन्हें गिरफ्तार किया जाने लगा तो वे तलवारें ले ले कर पिल पड़े। वास्तविक बात तो यह थी कि वे झगड़ा करने के इरादे से ही आए थे। परन्तु लड़ाई में वे घायल हुए और गिरफ्तार हो गए। शाही सिपाही उन्हें रस्सियों से बांध कर हुगली के फौजदार के पास ले चले। इस पर

कप्तान लेस्ली जो निकट ही छिपा खड़ा था, अपने सिपाहियों को लेकर शाही गारद पर टूट पडा। पर उसके कई आदमी मारे गए और वह भाग खड़ा हुआ। कैदियों को शाही गारद ने लाकर फौजदार के सामने पेश किया। फौजदार ने उन्हें अपने घर से सटे हुए कैदखाने में बन्द कर दिया। पर उसी शाम को अंग्रेजी छावनी से सैनिक सहायता लेकर कर्नल लेस्ली फिर शहर में घुस आया। उसने फौजदार के मकान को लूट कर उस में आग लगा दी। हुगली का बाज़ार लूट लिया। उसी दिन रात के समय अंग्रेज़ों के जहाज भी हुगली में घुस आए और वहां लंगर डाल कर पड़े हुए एक शाही जहाज़ और उसके माल-मते पर कब्जा कर लिया। लूट मार कर और सब माल-मता लेकर अंग्रेज हुगली से चल दिए और 'सुतनती' में आकर ठहरे। जहां वर्तमान कलकत्ता बसा हुआ है।

नवाब ने सुना तो आग बबूला हो गया। वह सख्त आदमी था, पर रियाया का उसे ख्याल भी बहत था। उन दिनों बंगाल में उसके हुक्म से रुपए का आठ मन चावल बिकता था। उसने अंग्रेज़ों को दण्ड देने को फौज भेजी। कुछ लड़ाई हुई। अंग्रेज़ों ने मटिया बुर्ज के पास वाले नमक के शाही गोदामों में आग लगा दी और वर्तमान कलकत्ता के दक्षिण पूर्व में जहां आजकल 'गार्डनरीच' है, बने हुए थाना शाही क़िलों पर आक्रमण कर दिया। उनके जहाज़ गंगा में आगे बढ़ आए, और उन्होंने हिजली टापू पर अधिकार कर लिया। इस के बाद बंगाल की खाड़ी में अपनी समूची जल-थल सैन्य को एकत्र कर युद्ध को सन्नद्ध हो बैठे।

शाइस्ता खां को बहुत गुस्सा आया। उसने सिपहसालार अब्दुल समद खां को बारह हज़ार सेना लेकर इन लुच्चो की जमात को हिजली से मार भगाने को भेज दिया। थोड़ी ही लड़ाई हुई और अंग्रेज़ अपनी सब तोपें साथ का सब सामान, सारा गोला बारूद लेकर अपने झण्डे उड़ाते और बाजा बजाते हुए हिजली का किला खाली करके चल खड़े हुए। उन दिनों मुगल रणनीति ऐसी ही निस्तेज हो चली थी। साहसिक यूरोपियनों की रणनीति के सामने उनकी भारी संख्या भी बेकार साबित होती थी।

इसक बाद कारनाक एक डेपुटेशन के साथ शाइस्ता खाँ की सेवा में उपस्थित हुआ। शाइस्ता खाँ अंग्रेज़ों से बहुत नाराज़ था, वह उनकी कोई बात सुनना नहीं चाहता था। परन्तु जब कारनाक ने बहुत खातिर खुशामद की, तो शाइस्ता खाँ ने उसके मण्डल से मुलाकात की। और कहा—"अब तुम हम से क्या उम्मीद करते हो।"

"हुज़ूर, हम लोगों के साथ हद दर्जे की ज्यादती और बेइन्साफी की गई है, हमारा इन्साफ होना चाहिए।"

"लेकिन तुम लोग जो जुआ चोरी करते हो, रियाया को लूटते हो? हमारी सरकार से बग़ावत करते हो?"

"तो हुज़ूर, हमारी छानबीन की जाय। हम तो निहायत अदब से सरकारी क़ौल-करारों की याद दिलाने हुज़ूर की सेवा में हाजिर आए हैं।"

"कैसा कौल-करार?"

"हुज़ूर बंगाल के विगत सूबेदार शाहज़ादा शुजाउद्दौला ने निश्चित कुल मिला कर केवल तीन हज़ार रुपए लेकर लाए हुए सारे माल की असल कीमत पर से हमेशा के लिए चुंगी देने की छूट दे दी थी।"

"लेकिन शाहज़ादा शुजा सिर्फ एक सूबे के सूबेदार थे। अपनी सूबेदारी के दौरान में यदि उन्होंने किसी एक तिजारती गिरोह की रियायत करके, और सिर्फ थोड़ा सा रुपया लेकर ही उन्हें खास सुविधा दी थी तो उनके बाद होने वाले सूबेदार के लिए शुजा का वह निशान उस वक्त तक तसलीम नहीं किया जा सकता, जब तक कि उसमें दी गई शर्तें बादशाह मंज़ूर फर्मा कर शाही ऐलान न कर दें। बस, तुम्हारी अर्जी हम मंज़ूर नहीं फर्मा सकते।"

"लेकिन हज़ूर, हज़रत बादशाह सलामत ने भी एक फर्मान हमें इनायत किया था, जिसकी मंशा यह थी कि सूरत की बंदरगाह में एक बार चुंगी चुका सकने के बाद हिन्दुस्तान के किसी भी हिस्से में बिना कोई कर चुकाए या चुंगी दिए अंग्रेज़ बेरोकटोक व्यापार कर सकते हैं।"

"सरासर तुम्हारी यह माँग बेजा है। उस वक्त सिर्फ सूरत के बन्दर-

गाह पर ही तुम्हारे जहाज़ आते थे। और वहीं से तुम्हारा माल खुश्की के रास्ते आगरा, दिल्ली, पटना, मुंगेर तक आता था। मगर अब तो तुम्हारे जहाज़ सीधे बालोसार में आते हैं। इसके अलावा मद्रास और मछलीपट्टम में भी तुम्हारे जहाज़ सीधे आते हैं। जो शाही इलाक़ा नहीं है। शाही फरमान का यह मंशा न था कि तुम इंगलैंड व चीन से सूरत तक हो कर सीधे बंगाल जाने वाले दूसरे माल पर भी चुंगी न दो। तुम्हारी यह मांग भी तुम्हारी चालाकी की दलीलों के बावजूद मानी नहीं जा सकती। क्योंकि ऐसे माल पर जो सूरत के रास्ते नहीं आ रहा हो—सूरत में कोई चुंगी नहीं वसूल की जाती।'

तब अंग्रेज़ एलची ने खीझ कर दूसरी ज्यादतियों और लूट-खसोट का ज़िक्र किया। बूढ़े सूबेदार ने हंस कर कहा—"पहले तुम सब फरंगी खुद सचाई और ईमानदारी से अपना कारोबार करो और सरकारी चुंगी और कर अदा करो। रियाया पर मनमानी लूट न करो और हमारी फर्माबर्दार रियाया की तरह हिन्दुतान में रहो, तो तुम्हारी सब तकलीफों पर हम ग़ौर फर्माएँगे।"

इस पर कारनाक और उसके साथी बहुत रोए गिड़गिड़ाए। अन्त में बहुत लानत मलामत के बाद शाइस्ता खाँ ने उन्हें वर्तमान कलकत्ता से बीस मील दक्षिण 'उलुबेरिया' नामक स्थान पर क़िला बनाने और हुगली में व्यापार करने की फिर आज्ञा दे दी।

अब अपना मतलब साध कर कारनाक अपने जहाज़ों के साथ लौट आया और उसने 'सुतनती' में पड़ाव डाल दिया।

अगले वर्ष कप्तान हीथ इंगलैंड से आया। कारनाक के स्थान पर वह बंगाल का एजेन्ट बना। उसने वहाँ की मलेरियल आबो-हवा से घबरा कर तथा और कई बातों पर विचार कर बंगाल की कोठियाँ बंद कर वहाँ से चल देने का निश्चय किया। उसने पुराने बालासोर के मुग़ल किले पर हमला किया। बाद में नए बालासोर पर भी क़ब्ज़ा कर लिया। और सारे बंगाल के आयोजन समाप्त कर मद्रास भाग गया।

परन्तु सन् १६९० में कारनक फिर मद्रास से सुतनती पहुँचा।

उसके पास वज़ीरेआज़म के हाथ का लिखा बंगाल के दीवान के नाम एक शाही हस्व-उल-हुक्म था जिसमें लिखा हुआ था कि अंग्रेज़ों को चुंगी और दूसरे करों के बदले ३ हज़ार रुपए सालाना देते रहने पर उन्हें बंगाल में बिना रोकटोक व्यापार करने की इजाज़त दे दी जाय।

और फिर वह अन्ततः सुतनती गाँव धीरे-धीरे बढ़ कर आज का विराट् कलकत्ता बन गया।

: ४३ :

गंज-ए-सवाई

सितम्बर सन् १६९५ में प्रसिद्ध अंग्रेज समुद्री डाकू हेनरी ब्रिजमैन ने जो एलोरी के नाम से प्रसिद्ध था—"फतेह मुहम्मद", नामक बहुमूल्य व्यापारी सामान से लदा हुआ जहाज़ लूट लिया। यह जहाज़ सूरत के प्रसिद्ध व्यापारी अब्दुल गफ़ूर का था। अभी इस घटना को कुछ ही दिन हुए थे कि उसने एक दूसरा जहाज "गंज-ए-सवाई" नाम का लूट लिया। यह जहाज बहुत से हज के यात्रियों और व्यापारी माल को ले कर मक्का जा रहा था। मोखा से लौटते हुए बम्बई और दमन के बीच एलोरी ने कुछ अन्य लुटेरे जहाज के साथ उसे जा घेरा। और दबादब गोले बरसाने शुरू कर दिए। जहाज में आग लग गई और डाकू उस में कूद पड़े। तीन दिन तक वे जहाज को निर्द्वन्द लूटते रहे। बहुत से हज यात्री मार डाले गए। बहुतों की भयानक दुर्दशा हुई। अपने लुटे हुए यात्रियों को लेकर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हालत में जहाज सूरत के बन्दरगाह में लौट आया।

जहाज के यात्रियों ने जब अपने ऊपर अत्याचार के रोमांचकारी वर्णन किए तो सूरत के मुसलमानों का खून खौल उठा। उन दिनों सूरत का फौजदार एतमाद खाँ अंग्रेज़ों का दोस्त था। उस ने कुछ मुसलमान ले उस समय तो अंग्रेजों की रक्षा कर ली। पर इन लुटे-पिटे हाजियों तथा सूरत के मुसलमानों ने इस्लाम नगर जा कर बादशाह के सामने अपने

ऊपर फिरंगी डाकुओं के अत्याचार की पूरी कहानी जा सुनाई।

शाही झण्डे वाले जहाज़ के लूटे जाने और हज के पवित्र यात्रियों पर किए अत्याचार और धर्म वाधा से औरंगजेब अत्यन्त क्रुद्ध हो गया। और उसने सूरत के सब अंग्रेज़ों को कैद करने का हुक्म दे दिया।

औरंगजेब के चिढ़ने और गुस्सा करने का एक कारण यह भी था—कि वह एक बार इन फ़िरंगियों की हरकत को माफ़ कर चुका था। उस समय भारत की सब अंग्रेज़ कोठियों का संचालक सर जान चाइल्ड था। वह सूरत से बम्बई भाग गया था और शाही फ़ौजों से लड़ने की तैयारी कर रहा था। इस पर सूरत के मुगल फौजदार ने सूरत की अंग्रेज़ी कोठी पर चारों ओर से घेरा डाल दिया और कोठी की परिषद के अध्यक्ष बैंजिमन हेरिस और उसके सहायक सेम्युएल एनस्ले को उसके सब अंग्रेज़ साथियों तथा उनके साथी भारतीय दलालों को कैद कर लिया, तथा कोठी के बाहर फौज का घेरा डाल दिया।

सर जान चाइल्ड एक जहाजी बेड़ा ले कर सुवाली पहुँचा, और सूरत के फौजदार को अंग्रेज़ों की शिकायत की सूची भेज कर अंग्रेज़ों के विशेषाधिकार की पुष्टि की। साथ ही अधिकारों को बढ़ाने की माँग की। फौजदार ने सुवाली पर सेना भेज दी। लड़ाई हुई, सर जान निकल भागा और उसने सूरत के पास बहने वाली नदी का मुहाना बन्द कर दिया तथा जहाजी बेड़े में समुद्री तट का चक्कर लगा कर वहाँ के सारे ही भारतीय जहाजों पर अधिकार कर लिया।

इसके जवाब में फ़ौजदार ने सूरत के सारे अंग्रेज़ क़ैदियों के पैरों में भारी-भारी बेड़ियां डाल दीं, और उसी हालत में उन्हें सोलह महीने बिताने पड़े। इसी बीच मुग़ल जल-सेना के शाही नायक जंजीरा के सिद्दी ने बम्बई पर हमला बोल कर वहां के बाहरी भागों पर अधिकार कर लिया। बम्बई के अंग्रेज़ एक किले में घिर गए। किले को शाही सेना ने घेर लिया। अन्त मे हार कर सर चाइल्ड ने अबुहमर्मवारो को औरंगजेब की सेना में भेजा और दया-याचना की। डेढ़ लाख रुपया जुर्माना और लूटा

हुआ सारा माल वापस लौटाने पर अंग्रेजों को छुटकारा मिला और फिर व्यापार करने की उन्हें आज्ञा मिल गई।

इस बार वह बुरी तरह क्रुद्ध हो उठा था। कैद में पड़ा हुआ एनस्ले बारम्बार बादशाह की सेवा में अर्जी भेजता रहा। उसने क़समें खा कर कहा कि गंज-ए-सवाई की लूट में अंग्रेज़ों का कुछ भी हाथ नहीं है। उधर बम्बई का गवर्नर सर जान गामर बारंबार बादशाह से अंग्रेज़ों को छोड़ देने और न्याय करने पर ज़ोर दे रहा था। परन्तु बादशाह समुद्र की इस डाकेज़नी को सर्वथा खत्म करना चाहता था। डच लोगों ने अवसर पाकर बादशाह से प्रस्ताव किया कि यदि उन्हें साम्राज्य में व्यापार का एकाधिकार दिया जाय तो वे हिन्द महासागर को डाकुओं के इस गिरोह से पाक साफ कर सकते हैं। और मक्का जाने वाले तीर्थ-यात्रियों की सुरक्षा की भी ज़िम्मेदारी ले मकते हैं। पर बादशाह ने स्वीकार नही किया।

सूरत के फौजदार ने एनस्ले से कहा—कि या तो अंग्रेज़ शाही जहाजों की समुद्री डाकुओं से सुरक्षा के प्रतिज्ञा पत्र पर हस्ताक्षर कर दें, नहीं तो दस दिन के भीतर भारत को छोड कर सब अंग्रेज चले जायें। बादशाह ने डच और फ्रांसीसियों को भी यही हुक्म जारी कर दिए। एनस्ले ने कहा कि यदि बादशाह अंग्रेज़ कम्पनी को प्रति वर्ष चार लाख रुपये दे तो वे यह जिम्मेदारी ले सकते हैं।

अन्त में बादशाह ने कुछ रुपए देना स्वीकार कर लिया और एनस्ले ने प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इस पर सब अंग्रेज़ क़ैद से छोड़ दिए गए।

तब अंग्रेज़ों ने एक जहाज़ 'एडवांचर' नाम का अच्छी तरह युद्ध सज्जा से सज्जित किया। और इसे हिन्द महासागर से सारे समुद्री डाकुओं को मार भगाने का काम सौंप दिया। विलियम किड इस जहाज़ का कप्तान बनाया गया। पर कालीकट पहुँच कर किड स्वयं एक समुद्री डाकू बन गया। और भी अनेक उपद्रवी अंग्रेज उसके दल में मिल गए। उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ही कई जहाज लूट लिए। फिर उसने एक बड़ा

व्यापारी जहाज़ कंदा मरचेंट लूट लिया जो अमीर मुखलिस खाँ का था। इसी समय डच डाकुओं ने सूरत के प्रसिद्ध व्यापारी हसन खाँ का एक माल से भरा हुआ जहाज़ लूट लिया। जिसमें कोई चौदह लाख के मूल्य का माल भरा था। बादशाह ने सूरत के फौजदार को आदेश दिया कि डच, फ्रेन्च और अंग्रेज़ तीनों ही पर इस डकैती का दायित्व है। अतः तीनों ही राष्ट्रों के व्यापारी मिल कर चौदह लाख रुपए दें। नहीं तो सब को क़ैद कर लिया जाय।

अन्त में समुद्री डाकुओं के दमन का बीड़ा तीनों ही राष्ट्रों ने उठाया। भविष्य में होने वाले नुक़सान का हर्जाना भरने का तीनों ने वचन दिया। और इस आदेश के प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर कर दिए।

परन्तु इसके थोड़े ही दिन बाद फिर एक जहाज़ लूट लिया गया। जिस पर सूरत के फौजदार ने यूरोपियन कम्पनी के सारे ही यूरोपीय और भारतीय दलालों को गिरफ्तार कर लिया। अंग्रेज़ और डचों से तीन-तीन लाख रुपए वसूल किए, तब उन्हें छोड़ा। परन्तु इसके तुरन्त बाद ही डच डकैतों ने मक्का से लौटने वाले एक हज यात्रियों का जहाज़ फिर लूट लिया। और सब हज यात्रियों को क़ैद कर लिया जिनमें प्रसिद्ध संत नूरउल हक और फख्र-उल-इस्लाम भी थे। यह बादशाह को एक चुनौती थी। अन्त में बादशाह ने हर्जाने की शर्त रद्द कर के इन क़ैदियों को छुड़वाया। इसी समय बूढ़ा आलमगीर मर गया। मुग़ल तख्त डगमगा गया, और समुद्री कुत्तों को अपने शिकार पर हाथ साफ करने की खुली छुट्टी मिल गई।

ऐसे ही वे दिन थे जब इन सफैद आततताई लुच्चों की जमात भारत में जैसे बने अपना उल्लू सीधा करने में लगी हुई थी।

: ४४ :

आलमगीर

पूरे पच्चीस बरस तक दक्षिण में घोड़े की पीठ पर रह कर औरंगज़ेब इस समय उत्तरी भारत के साथ ही दक्षिण का भी प्रतिद्वन्द्वी विहीन

सम्राट् बन चुका था। आदिलशाह, कुतुबशाह और राजा शम्भू तीनों ही का पतन हो चुका था और उनके राज्य मुग़ल साम्राज्य में मिला लिए गए थ। इस दृष्टि से औरंगज़ेब अपनी चिरवांछित अभिलाषाएँ पूरी कर चुका था। पर सच पूछा जाय तो अब मुग़ल साम्राज्य इतना विस्तृत हो गया था कि उस काल में किसी एक व्यक्ति द्वारा या किसी एक केन्द्र से उसका शासन नहीं हो सकता था। शत्रु सर्वत्र सिर उठा रहे थे। वह उन्हें हराता था, पर उन्हें निश्शेष करने की शक्ति उसमें न थी। उस समय उत्तरी और मध्य भारत में अराजकता का बोलबाला था। बादशाह पच्चीस बरस से उधर गया ही न था। शासन-प्रबन्ध अस्त-व्यस्त और भ्रष्टाचार से परिपूर्ण था। दक्षिण के अनन्त युद्ध में शाहजहाँ का अटूट स्वर्ण भण्डार खर्च हो चुका था। इस समय उसकी आयु अस्सी तक पहुँच चुकी थी। और अब वह अपनी नई राजधानी इस्लामपुरी में बैठ कर और उसे अपना सैनिक अड्डा बना कर अभी तक युद्ध के जंजाल में फंसा हुआ था। इस उम्र में भी घोड़े की पीठ उसने छोड़ी न थी। उत्तर भारत, पंजाब, सिन्ध और अफगानिस्तान भी उसने अपने ज्येष्ठ पुत्र शाह आलम को सौंप दिए थे। वह न व्यसनी था, न बुद्धिहीन, न आलसी। उसकी मानसिक सतर्कता असाधारण थी। वह बड़ा धार्मिक भी था। ज्ञान और विद्या के भण्डार पर उसका अधिकार था। अपने पिता के शासनकाल ही में उसने युद्ध और कूटनीति की पूरी शिक्षा पाई थी। फिर भी उसके पचास बरस के शासन का परिणाम असफलता और अराजकता ही थी। उसका जीवन एक लम्बी दुखद कहानी था। निष्ठुर भाग्य के साथ वह असफलतापूवक लड़ता ही रहा—पूरे पचास बरस। अब वह अपने अस्त होते हुए जीवन में, अपनी आँखें बंद होने से पूर्व ही देख रहा था कि मुग़ल साम्राज्य का गौरव और खजाने का दिवाला निकल चुका है। उसकी शासन व्यवस्था नष्ट हो चुकी है, और मुग़ल सत्ता देश में शांति बनाए रखने और राज्य की एकता कायम रखने में असमर्थ रही है। इस समय उत्तर में सिख सम्प्रदाय ने सैनिक बाना पहन लिया था। दक्षिण में मराठा राज्य वंश की चिता

से मराठा जातीयता हुंकार ले रही थी, और भारत के प्रसिद्ध भावी शासक अंग्रेज़ मद्रास, कलकत्ता और बम्बई में साम्राज्य के भीतर दूसरा साम्राज्य बना रहे थे।

निरन्तर पच्चीस वर्षों तक चलने वाले दक्षिण के युद्ध में प्रति वर्ष शाही सेना के एक लाख सैनिक और दूसरे लोग तथा उससे तीन गुने हाथी, घोड़े, ऊट, बैल आदि व्यर्थ ही मारे जाते रहे थे। शाही पड़ावों में सदैव महामारी का प्रकोप रहता था और उसके पीछे तीन ही चार मील के अन्तर पर मराठा छापा मार सेना लगी रहती थी। प्रति दिन सैकड़ों मनुष्य मरते थे। खेतों में न फसलें बोई जाती थीं, न जंगलों में वृक्ष थे। मनुष्यों और पशुओं की हड्डियाँ ही सर्वत्र बिखरी दीखती थीं। सारा प्रदेश इस क़दर बर्बाद और वीरान था कि निरन्तर तीन चार दिन तक यात्रा करने पर भी न आग के दर्शन होते थे, न पानी के, न मनुष्य के, न किसी बस्ती के।

वह न तो अपने दादा जहाँगीर की भांति कला और साहित्य का प्रेमी था, न उसे अपने पिता शाहजहाँ की तरह शिल्प से प्रेम था। वह एक पक्का जाहिद और कट्टर मुसलमान था। वह अपने मज़हब को छोड़ किसी मज़हब को नहीं सह सकता था। वह फकीर था। हिन्दुओं पर ज़ुल्म करने की नीति उसने जानबूझ कर ग्रहण की थी। पचास बरस राज्य कर वह सन् १७०७ में दक्षिण में मरा।

: ४५ :

शाहेबेखबर

बादशाह औरंगजेब के मरने पर सन् १७०७ में उसका बेटा शाहजादा मुअज्जम अपने भाई आज़म को क़त्ल करके बहादुरशाह के नाम से मुगलों के अभागते तख्त पर बैठा। वह इस क़दर बूढ़ा निकम्मा और पोच आदमी था, कि लोग उसे 'शाहेबेखबर' कहकर उसका मजाक उड़ाने लगे थे। परन्तु वह बदनसीब इस उम्र में भी अपनी खानदानी परम्परा को न भूला था।

वह अपने दूसरे भाई कामबख्श से लड़ने और उसे क़त्ल करने के लिए—जो दखिन में फौजकशी कर रहा था, दिल्ली से भारी सेना लेकर निकला था। और अब वह अजमेर के निकट पीपाड़ के जंगल में डेरा डाले पड़ा था। इस समय सारे देश में विद्रोह की आग सुलग रही थी। दिल्ली के दर्बार में षड़यन्त्र हो रहे थे। पंजाब में सिख और दखिन में मराठे हुंकार भर रहे थे। राजस्थान के राजपूतों ने अपनी तलवारें फिर मजबूती से पकड़ लीं थीं। पर यह अभागा बादशाह इन सब बातों से बेखबर था। वह इस बात पर भी विचार नहीं करता था कि उसकी कब्र तैयार है। वह तो बाप की तरह अखण्ड और अकङ्टक राज्य चाह रहा था। और इस हास्यास्पद अभियान के लिए निकल पड़ा था।

पीपाड़ में छावनी डाले, बादशाह जोधपुर के राजा अजीतसिंह और जयपुर के राजा जयसिंह की प्रतिक्षा कर रहा था। जिन्हें बुलाने के लिए उसने परवाने भेजे थे। चाँदनी रात थी। एकाध बादल सफैद बगुले की भाँति जहाँ-तहाँ आकाश मे दीख पड़ रहा था। बूढ़ा बादशाह अकेला अपने खीमें में बेचेनी से टहल रहा था। पलंग खाली पड़ा था। खिदमतगार हुसेन खाँ चुपचाप एक कोने में हाथ बांधे खड़ा था। एकाएक बादशाह ने रुक कर खिदमतगार की ओर देख कर कहा—

'राजपूतों का यह मुल्क बड़ा ही वाहियात है। रात को एकदम अंधेरा, दिन में ऊबड़ खबड़ जंगल-पहाड़ आंधी। न बाग, न फूल, न फल। ऐं! यह गरज कैसी? वह चौंक पड़ा। क्या बादल गरज रहे हैं, तूफान तो नहीं आएगा, खीमा तो न उड़ जायगा। बाप रे, कितनी खौफनाक़ गरज है। हुसेन खाँ, देखो तो, बाहर क्या बारिश हो रही है? नहीं, बाहर मत जाओ, यहीं से देखो।"

"खुदावन्द, हवा पहाड़ी से टकरा रही है", खिदमतगार ने हाथ बांध कर कहा।

"गज़ब की हवा चलती है इस मुल्क में मिया, यह हवा अगर मेरे

खीमे से टकरा जाय तो ? खीमे की धज्जियां न उड़ जाएंगी। बोलो, क्या कहते हो। यहाँ तो हर घड़ी जान का खतरा है। सब से ज्यादा मुझ शहनशाहे हिन्द की जान का", बादशाह ने संदेह से खिदमतगार को देख कर कहा। लेकिन उसने शान्त स्वर में कहा—

"नहीं हुजूर, खीमे को कोई खतरा नहीं है। खीमा काफी मजबूत है।"

"कितना मजबूत है। पहाड़ से भी मजबूत ? इस हवा से तो पहाड़ तक हिल जाते हैं। कुछ रुक कर उसने कहा—यह देखो, फिर गरजा। खीमे के चारों तरफ़ खूँखार शेर तो नहीं घूम रहे ? यह खटका कैसा हुआ। क्यों मिया हुसेन, बोलते क्यों नहीं ?"

"जहाँपनाह, शेर तो जंगल में रहते हैं, मगर खीमे से बहुत दूर हैं।"

"दूर हैं तो पास आने में कितनी देर लगती है। किस ने ऐसी खतरनाक जगह में शाही लश्कर डाला है।" बादशाह ने गुस्से से आँखें तरेर कर खिदमतगार की ओर देखा।

खिदमतगार ने अदब से झुक कर कहा—खुदावन्द, बाहर पहरे का काफी इन्तज़ाम है। मीलों तक शाही लश्कर पड़ा है। कुछ भी खतरा नहीं है। हुजूर आराम फर्माएँ।

"कौन है पहरे पर ? ऐ पहरेदार।"

पहरेदार ने आकर कोर्निस की।

बादशाह ने उसे घूर कर कहा, "तुम्हारी बन्दूक में कितनी गोलियां भरी हैं ?"

"हुजूर, बन्दूक में एक ही गोली भरी है।"

"एक गोली भरी है ? बदबख्त, एक गोली से एक ही शेर मरेगा। और निशाना चूक गया तो वह भी नहीं। तब क्या वह मेरे खीमे में न घुस आयगा ?"

पहरेदार घबरा गया। हुसेन ने अपनी हंसी रोक कर कहा—

"सरकार, पहरे पर पांच सौ सिपाही तैनात हैं। और सब के पास भरी हुई बन्दूकें हैं। और जेबों में गोलियां और बारूद भी हैं।"

बादशाह ने कुछ अनिश्चित भाव से कहा—"तब ठीक है।" पर तुरन्त ही वह बोला, "मगर तसल्ली नहीं हुई", फिर पहरेदार की ओर देखकर कहा—"देखो, खूब खबरदार रहो। शेर नजर आए कि दन से गोली दाग़ दो।"

"बहुत खूब खुदावन्द," पहरेदार सलाम कर के जाने को मुड़ा। लेकिन बादशाह ने रोक कर कहा—"ठहरो, ज़रा सुनो। बराबर जागते रहो। घूमते रहो, आवाज़ लगाते रहो, समझे।"

"जो हुक्म हुज़ूर।"

"जाओ, नहीं ठहरो, तुम्हारे पास तलवार है?"

"जी हाँ हुज़ूर, है।"

"कहाँ है देखूं।"

पहरेदार ने तलवार खींच कर कहा—"यह है खुदावन्द।"

"बस-बस म्यान में करो। इसे पास रखो। गोली चूक जाय तो खट से इससे दो टूक कर दो। जाओ।"

पहरेदार चला गया तो बादशाह ने खिदमतगार की ओर घूम कर कहा—"हुसेन?"

"जी, जहाँपनाह।"

"हमारी तलवार भी हमारे पास रख दो। हाँ, एहतियात शर्त है?"

"बहुत अच्छा खुदाबन्द।"

"और तुम रात भर यहीं खड़े रहो, इसी तरह।"

"जो हुक्म हुज़ूर। अब आप इतमीनान से आराम फर्माइए।"

"दुश्मनों के इस मुल्क में आराम से सोया ही नहीं जा सकता। नींद ही नहीं आती। यह हवा क्या रात भर पहाड़ों से टकराया करती है? मगर क्यों जी, इसके खीमें से टकराने का तो कुछ अन्देशा नहीं है?"

"हर्गिज नहीं हुज़ूर, खातिर जमा रखिए।

"और अगर टकरा गई ?"

"तो हुजूर, गुलाम का सिर कलम करवा दीजिए ।"

बादशाह पलंग पर बैठ गए। हुक्के की नाल मुँह में लगाते हुए बोले—"अच्छी बात है हुसेन, याद रक्खो, अगर हवा खीमे से टकरा गई तो तुम्हारे सर की खैर नहीं ।"

"बहुत अच्छा जहाँपनाह, अब आप आराम फर्माइए ।"

"मगर मैं खूब खबरदार होकर सोना चाहता हूँ ।"

इसी समय एक बाँसुरी की सुरीली आवाज उसके कान में पड़ी। इससे चौंक कर बादशाह फिर पलंग से उठ बैठा। उसने कहा—"ऐं, इस वक्त बाँसुरी कौन बजा रहा है ।" उसने पुकारा 'ओ पहरेदार'।

पहरेदार ने फिर आकर सलाम किया। बादशाह ने कहा,

"क्या इस जंगल में जिन भी रहते हैं ?"

"नहीं खुदावन्द ।"

"तो इस वक्त यह बाँसुरी कौन बजा रहा है। यह तो जिनों की ही करामात मालूम होती है ।"

"हुजूर, शाहज़ादी दरिया किनारे पत्थर पर बैठी बाँसुरी बजा रही हैं। शाम से वहीं बैठी हैं। आती ही नहीं ।"

"कौन, रजिया ? बेवकूफ बेकही लड़की। जो जी में आता है करती है। लो और सुनो, बाँसुरी ही ले बैठी। उसे अभी हमारे हुज़ूर में हाजिर करो ।"

पहरेदार झुक कर सलाम करके चला गया। बादशाह आप ही आप कहने लगे—बदनसीब अकबर की यतीम लड़की, मैं इस पर रहम करना चाहता हूँ, मगर यह आवारा गर्दी मैं बर्दास्त नहीं कर सकता। हुसेन ?

"जी हुजूर" "तुम क्या कहते हो ?"

'जी कुछ नहीं ।"

इतने ही में रजिया ने आकर कहा—"आपने मुझे याद फर्माया है चचाजान ।"

अकबर बादशाह औरंजेब का बड़ा बेटा था। उसने बाप से बग़ावत की थी, और उसमें असफल होकर बाप के खौफ से मक्का भाग गया था। रजिया उसकी बेटी थी। जिसे वह राठौर दुर्गादास की सुरक्षा में छोड़ गया था। उस समय दुर्गादास जोधपुर के राजा का सावंत था। औरंगज़ेब ने राजा जसवंत सिंह के मरने पर जोधपुर दखल कर लिया था, और उनके लड़के को दिल्ली पकड़ मँगाया था। जिसे रानी दुर्गादास की मदद से ले भागी थी। गुप्तवास में बालक राजा अजीत सिंह और रज़िया दोनों साथ-साथ खेल कर दुर्गादास की संरक्षकता में बड़े हुए थे। यौवन की देहरी पर आकर दोनो प्रेमपाश में फँस गए थे। इसे जोधपुर के लिए अनिष्टकारक समझ दुर्गादास ने रजिया को बादशाह की सेवा में पहुँचा दिया था। रज़िया उन्मुक्त वातावरण में पली हुई तन मन से स्वस्थ युवती थी। मुग़लों की लताफत बचपन से मुसीबतें झेलते-झलते उसमें से गायब हो चुकी थी। और दुर्गादास जैसे महापुरुषार्थी वीर राजपूत के साथ रह कर वह साहसी और निर्भीक हो गई थी। वह अजीतसिंह को प्यार करती थी। परन्तु उसे निराश होना पड़ा था। इसी से वह अकेली खोई-खोई एकान्त में रहती थी। उसे देखते ही बादशाह ने कहा—"तू वहाँ जंगल में अकेली बाँसुरी बजा रही थी, तुझे खौफ नहीं लगा ?"

"खौफ ? जहाँपनाह, ज़रा खीमे से बाहर निकल कर तो देखिए, कैसी सुहावनी रात है। चौथ का दुबला-पतला चाँद पहाड़ों से होकर झाँक रहा है। आसमान में तारे जगमग कर रहे हैं। वह छोटी-सी नदी ताव पेच खाती चुपचाप वही चली जा रही है। चलिए चचाजान, देखिए तो ?"

"तोबा, तौबा, इस मनहूस मुल्क में शेर गरजते हैं। हवा पहाड़ों से टकराती हैं।

"चचाजान, यह बहादुर राजपूतों का मुल्क है। आराम तलब ऐयाश मुग़लों का शहर नहीं।"

"यह क्या कलमा कहा तूने, मुग़ल क्या बहादुर नहीं होते ?"

"कभी होते थे, जब उनकी औरतें घोड़ों की पीठ पर बच्चे जनती

थीं। जब उन्होंने पठानों के सख्त कलेजे चीर कर हिन्दुस्तान में अपना तख्ते-सल्तनत क़ायम किया था। मगर, अब नहीं। दिल्ली और आगरे के आजकल के मुग़ल बहादुर नहीं हैं।"

"कैसे नहीं हैं। मुग़ल बहादुर नहीं हैं। यह बात कोई दूसरा कहता तो............।"

"आप उसकी ज़बान कटवा लेते। मगर चचाजान, आप भी तो मुग़ल हैं। जो पहाड़ों से हवा के टकराने से डरते हैं। रात को बाहर निकलने से घबराते हैं। ज़रा सी खटखटाहट से खौफ खाते हैं। मुग़लों की बेगमों ने अब ऐसे ही बहादुर पैदा करने शुरू कर दिए हैं।"

"कौन ! मैं डरता हूँ। हुसेन, मेरी तलवार रखी है न ?"

"जी हाँ खुदाबन्द।"

"तो फिर ? मैं शहन्शाह हिन्द, तख्ते मुग़लिया का वारिस। यह लड़की कहती है कि मैं डरता हूँ।"

"चचाजान, बादशाह जहांगीर के ज़माने से ही मुग़लों के हरमों में ऐश और आराम का दरिया बहा है। उसमें मुग़लों की बहादुरी और जवाँमरदी बह गई है। आज फौजों के साथ शराब और ऐशो आराम के साजो-सामान चलते हैं। हमारे बुजुर्ग बाबर, हुमायूं और अकबर ने जिगर का खून खींच कर मुग़ल सल्तनत की जो नींव पक्की की थी, उसमें आराम तलबी और ऐश-परस्ती का घुन लग गया है। आज मुग़ल शाहज़ादे सर्द तहखानों में ईरानी क़ालीनों पर मसनद के सहारे लेटे शीराज़ी और इस्तम्बोल की चुम्बी लेते हुए ऐश के दरिया में डूबते-तिरते अपनी जवानी गंवाते हैं। उन्हें मर्दुमी और बहादुरी तो ख्वाब में भी देखने की फ़ुर्सत नहीं मिलती।

"फ़ुर्सत नहीं मिलती ? क्यों नहीं मिलती। मुझी को देखो, बहादुरी ही से तो मैं ने बादशाहत हासिल की है।"

रज़िया खिलखिला कर हँस पड़ी। उसने कहा—"और बहादुरी ही का जौहर दिखाने आप दक्कन जा रहे हैं।"

"बेशक, काम बख्श को मैंने माफ करना चाहा था।"

"मगर माफ़ न कर सके। अब फ़ौज ले कर उन्हें क़त्ल करने जा रहे हैं। अलहम्दुलिल्लाह, चलिए जहाँपनाह, देखें, आप किस बहादुरी से छोटे भाई का सिर काटते हैं। यह तमाशा तो मैं भी देखना चाहती हूँ। अफसोस कि शाहज़ादे आज़म के कत्ल का नज़ारा मैं न देख सकी।"

"तुम्हारे अब्बा, शाहज़ादा अकबर··· ··"

"बड़े बदकिस्मत थे कि आप की तलवार से सर कटवाने का सवाब न हासिल कर सके। मुग़ल खानदान की यह बहादुरी भी तवारीख के पन्नों पर कभी न मिटने वाली स्याही से लिखी जायगी। जो अपने भाई-बहनों की गर्दन पर आजमाई जाती है।"

"रज़िया तेरी बातों से मेरा गुस्सा भड़कता है। मैं तुझे बेटी की तरह प्यार करता हूँ। अकबर नहीं है मगर मैं तो हूँ......"

"मैं आप की अहसानमंद हूँ जहाँपनाह। मगर वैसे मुझ गरीब यतीम लड़की पर गुस्सा करने में कोई हर्ज भी नहीं है। हाँ, अगर अब्बा होते और उनके हाथ-पाँव खुले होते तो जहाँपनाह का गुस्सा ही आप के लिए काल बन जाता। वे जब तक रहे—शेरे बबर की तरह दुश्मनों के छक्के छुड़ाते रहे। अच्छा हुआ वे खुदा की इबादत करने चले गए। दादा जान को कैद करने का गुनाह माफ़ हो जायगा। खुदा का शुक्र है कि उन्हें इस बदनसीब तख्त के लिए भाइयों के खून से हाथ नहीं रंगने पड़े।"

"खुदा की कसम, ये तो बड़ी ही सरकस बातें हैं। मैं ने अकबर को माफ कर दिया, उस की बेटी को पनाह दी और यह तो मेरे ही सामने ज़हर उगलती है। हुसेन!"

"जी हुज़ूर ?"

"तुम इस पर क्या कहते हो ?"

"जहाँपनाह आराम फर्माएँ—आधी रात बीत चुकी है।"

"मगर यह रज़िया ?"

"शहज़ादी को मैं उनके खीमे में पहुँचा आऊँगा, खुदावन्द।"

रज़िया गम्भीर हो गई। उसने कहा—"अच्छा चचाजान, हम और आप भीं मक्का शरीफ चलें। इस बुढ़ापे में भाई के खून का अब और अज़ाब गर्दन पर न लीजिए।"

"मगर सल्तनत कौन सम्हालेगा ?"

"कुछ दिन बाद आप के फौत हो जाने पर जो सम्हालता, वही सम्हालेगा। छोड़िए चचाजान, यह झंझट।"

"इस अमर पर गौर करने की जरूरत है, हुसेन तुम क्या कहते हो?"

"खुदावन्द, अब आप आराम फर्माईए। और शहज़ादी, आप भी चलिए, मैं आप को खीमे में पहुँचा आऊँ। चलिए शहज़ादी, खुदा के लिए चलिए।"

उस ने एक तुच्छ दृष्टि से बादशाह को देखा और चल दी। बादशाह बेचैनी से टहलने और बड़बड़ाने लगे—साँप की बेटी है, कैसी फुंकारती है। सीधा तीर-सा जवाब देती है। कैसी खौफनाक बात याद दिला गई—मेरे फौत होने पर—या अल्लाह, अभी तो तख्त पर कदम ही नहीं रखा है—अभी से मौत के पैग़ाम आने लगे, ज़ईफी! अफसोस किस बे मौके ज़ईफी आई है।

एक ठण्डी साँस खींच कर बादशाह पलंग पर धम से बैठ गया।

: ४६ :

चिराग़ गुल पगड़ी ग़ायब

यह बूढ़ा और सनकी बादशाह—शाहेआलम, जिसे हम ने शाहे-बेखबर के उपयुक्त खिताब से सम्मानित किया है, इस समय तीन लाख सेना लिए पीपला के जंगलों में पड़ा हुआ था, जिस में प्रथम श्रेणी का तोपखाना भी था। इस के अतिरिक्त उस का एक सेनापति महराब खाँ पचास हज़ार सेना ले कर अजमेर में बैठा था और दूसरा सेनापति ज़फर पच्चीस हज़ार सेना ले कर जयपुर जोधपुर को घेरे पड़ा था। रसद का भी उसके पास काफी प्रबन्ध था। उधर सिकन्दराबाद में काम बख्श के पास भी पचास हज़ार से कम सेना न थी। फिर मराठे और निज़ाम इतनी ही सेना ले कर उसकी पीठ पर थे। यह कोई सामान्य सैन्य-बल न था। औरंगजेब यद्यपि मर गया था, पर उसका आतंक अभी तक भी कायम था। यदि मुग़ल खानदान में उस समय भी कोई एक औरंगजेब जैसा कर्मठ व्यक्ति होता तो अब भी डगमग मुग़ल तख्त को नए सिरे से मज़बूत कर सकता था। परन्तु इधर ये बदनसीब बादशाह और शाहज़ादे जहाँ एक-दूसरे के सिर काटने की ताक में थे, वहाँ इन में राजनीतिक भावना राई-रत्ती भी शेष नहीं रह गई थी। वे नहीं जानते थे कि यूरोप की आई हुई जाति, जिस की सैन्य शक्तियाँ इस समय भी नगण्य थीं, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास में अपनी राजधानियाँ बना कर मुगल

साम्राज्य के भीतर ही दूसरा नया साम्राज्य बना रहे हैं। राजपूत, सिख और मराठे भीतर ही भीतर पनप रहे हैं।

बेचारा शाहे बेखबर पाँच बरस तख्त पर बैठ कर मर गया। इसके बाद आया जहांदार, अपने भाइयों को मरवा कर, और वह एक साल ही में मरवा डाला गया। फिर उसका भतीजा फरुखसियर, छह बरस तक सिखों से अटकता और अंग्रेज़ों को बढ़ावा देता रहा। उसने ईस्ट-इण्डिया कम्पनी को बंगाल में बिना महसूल व्यापार करने का इजारा देकर अपने ही पैरों में कुल्हाड़ी मार ली। अन्त में वह स्वयं भी अपने दरबारियों के हाथों मारा गया। अब आया उसका उत्तराधिकारी मुहम्मदशाह रंगीला—एक १८ बरस का युवक, जो तीस बरस तक जम कर तख्त पर बैठा। इसी के राज्य काल में नादिरशाह और अब्दाली के भयानक आक्रमण हुए। और मुगल साम्राज्य टुकड़े-टुकड़े हो कर बिखर गया—बंगाल में अली-वर्दी खाँ ने, अवध में सआदत खाँ ने, दक्षिण में निज़ामुल्मुल्क ने अपने स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिए। फिर तो कीड़े-मकोड़े मुग़ल तख्त पर आए-गए—जिन में दो खास—एक शाहे आलम जिस ने बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी अंग्रेज़ों को दे कर अपने हाथ कटाए। फिर अन्धा और अपाहिज की भाँति मरा। फिर बहादुरशाह ज़फर, जिस की तकरीर में दीवाने-खास में अभियुक्त की भाँति खड़े होने के लेख लिखे थे।

: ४७ :

हुगली की छाती पर

जिस समय शाहे बेखबर पीपाड़ की घाटियों में हवा के पहाड़ों से टकराने से डर रहे थे, उसी समय गंगा के किनारे राजमहल से समुद्र तक जो तीन सौ मील भूमि है, उसमें शहर से अनगिनत नहरें बड़े खर्च और परिश्रम से काटी गई थीं कि व्यापार के लिए माल ले जाने में सुविधा रहे। इन नहरों के दोनों ओर छोटे-छोटे नगर और गाँव बसे हुए थे। जिनमें हिन्दुओं की घनी बस्ती थी। ये लोग चावल, गन्ना, सरसों, तिल

ग्रौर दूसरे ग्रनाजों की खेती करते ग्रौर खुशहाल रहते थे। इन गाँवों में शहतूत के पेड़ बहुतायत से होते थे। जिनके पत्तों पर रेशम के कीड़े पाले जाते थे। इन गंगा की नहरों के बीच में जो भूमि के जो छोटे-छोटे टुकड़े थे—वे बहुत ही सरसब्ज़ थे। ग्रौर मेवे तथा केले ग्रौर ग्रनन्नास के वृक्षों से भरे रहते थे। जिनकी छाया में हज़ारों नावें बहती रहती थीं ग्रौर ऐसा प्रतीत होता था कि वृक्षों की महरावों के नीचे लम्बी-लम्बी घास की रविशें हैं।

इन्हीं टापुग्रों ग्रौर नहरों में से गुज़रती हुई एक सात डाँडों वाली बड़ी नाव धीरे-धीरे पीवली से हुगली की ग्रोर जा रही थी। नाव में एक भद्रपुरुष ग्रौर उनकी युवती पत्नी सवार थी। दो-तीन सेवक ग्रौर दो तिलंगे सिपाही भी नाव में थे। एक दासी थी। भद्रपुरुष प्रौढ़ ग्रायु के थे। वे वर्द्धमान के ज़मीदार हरिकृष्ण वंद्योपाध्याय थे। हरिकृष्ण बड़े भारी ज़मींदार थे। लोग उन्हें राजा ही कहते थे। बंगाल के नवाब उन्हें बहुत मानते थे। वे निष्ठावान् ब्राह्मण थे। ग्रास-पास उनके नाम की धूम थी।

वर्षा ऋतु थी। भादों का महीना। क्षुद्र पीवली नदी इस समय ग्रपनी सीमाग्रों को पार कर रही थी। सन्ध्या हो चुकी थी। घटाएँ छा रहीं थीं। ग्राशा थी कि पानी बरसेगा।

भद्रपुरुष ने कहा—"मालूम होता है पानी बरसेगा। ग्रच्छा हो कि नाव घाट पर लगा दो। वह सामने कौन गाँव है बिहारी !"

"ग्रपना हरि पुर है सरकार।"

"तो ग्रच्छा है। यहीं घाट पर नाव लगा दो। पर ध्यान रखना, नाव नदी किनारे से ज़रा दूर रहे। सुना है घाट पर ग्रादमखोर बाघ लगता है, रात को नाव पर से ग्रादमी को उठा ले जाता है।"

"ग्राप निश्चन्त रहें सरकार। मेरे पास विलायती बन्दूक है। ग्रावे बाघ, देखलूंगा।"

"फिर भी सावधान तो रहना चाहिए, इधर फिरंगी डाकू भी बहुत आते हैं।"

"देखा नहीं सरकार, राह के सारे गाँव उन दुष्टों की करतूत से उजाड़ पड़े हैं। न बादशाह देखता है न नवाब। इन फिरंगियों ने तो अन्धेर मचा रक्खा हैं, पर आप उनकी भी चिन्ता न करें। हमारे तिलंगों पर भी बन्दूक है और सब मल्लाह तीर कमान और भाले सुर्की से लैस हैं। हमारे पास गोली बारूद भी काफी है।"

हरिकृष्ण बाबू ने अघाकर साँस ली। नौकर मुश्की तमाखू चढ़ाकर सटग रख गया। हरिकृष्ण मसनद के सहारे उठंग कर तमाखू पीने लगे।

इसी समय उनकी पत्नी कल्याणी आकर उनके पैरों के पास बैठ गई। कल्याणी हरिकृष्ण की तृतीय पत्नी है। उम्र अभी बाईस तक पहुँची है। संतान की अभिलाषा अभी उसके मन में ही पनप रही है। दीनों दुनिया से बेखबर हैं। न उसे यह पता है कि जब वह चलती है—तब उसकी ठोकर से छलक कर कितना यौवन राह में बिखर जाता है। न वह यह जानती है कि उसकी कारी कजरारी आँखें—कहाँ किसे घायल कर देती हैं। वह जानती है अपने प्रौढ़ पति हरिकृष्ण को, उनकी भारी भरकम तोंद को, उनके खूब गोरे वक्ष को और चश्मा चढ़ी आँखों को। यह सब देख कर वह हंसती है। क्यों हंसती है, यह वह नहीं जानती, हरिकृष्ण पूछते हैं तो घपले में पड़ जाती है।

कल्याणी ने पति को पान के दो बीड़े देकर बैठते हुए कहा—

"हुगली कब पहुँचेंगे।"

"बस, कल शाम तक। एक पहर रात रहते ही चल देंगे।"

"यहाँ तो बड़ा अंधेरा है, डर लग रहा है।"

"डर की क्या बात है।

"हरिदासी कह रही थी कि यहाँ फिरंगी डाकू बहुत आते हैं।

"पगली है वह। हमारे पास सिपाही हैं, बिहारी हैं, मल्लाहों के पास भी हथियार हैं। फिर सामने ही तो अपना हरिपुर है।"

"मैंने कहा था मत चलो—ऋतु अच्छी नहीं।"

हरिकृष्ण अभी जवाब भी न दे पाए थे कि बिहारी ने आकर कहा—"ऐसा मालूम होता है तूफान आएगा। हवा तेज हो रही है।"

"तो नाव को अच्छी तरह बाँध दो, लंगर भी डाल दो।"

इसी समय उन्होंने सुना—मल्लाह लोग चिल्ला-चिल्ला कर शोर मचाने और पाल उतारने लगे। देखते ही देखते नाव हिचकोले खाने लगी—पानी की भारी तरंगों ने उसे उछालना आरम्भ कर दिया।

हरिकृष्ण ने बाहर आकर देखा। आकाश में बादल छाए थे। माँझी जी-जान से नाव की हिफ़ाज़त में व्यस्त थे। उन्होंने एक बूढ़े मल्लाह से कहा—कोई जोखिम का अंदेशा तो नहीं है फज़लू।"

"नहीं सरकार, आप चिन्ता न करें। मुल तूफान बहुत जोर का आ रहा हैं।"

बिहारी ने आकर कहा—"हुज़ूर, माँ जी बहुत डर रही हैं। आप भीतर जाइए।"

"वह कमबख्त हरिदासी बड़ी खराब है, मुफ़्त ही में उन्हें डरा देती है।" उन्होंने भीतर जाने को मुँह फेरा ही था—कि दूर क्षितिज पर जा कर उनकी दृष्टि रुक गई, उन्होंने कहा—"देखना बिहारी, वह क्या है।"

बिहारी ने आँख पर हाथ धर कर देखा—गहन अन्धकार में कुछ और गहनतम काले-काले धब्बे दूर क्षितिज पर दीख रहे हैं।

बिहारी नामी गरामी लठैत था। पर देख कर उसका कलेजा भी कांप गया। उसने कुछ संदिग्ध स्वर में कहा—"कुछ है तो ज़रूर सरकार। हमें होशियार रहना चाहिए।"

'मुझे तो फिरंगी डाकुओं का जहाज़ मालूम देता है।'

"हो सकता है। पर नाव यहाँ से हटाई नहीं जा सकती। आप माँजी को ले कर गाँव में चले जाएँ।"

पर इतने ही में बूंदें पड़ने लगीं। और कुछ ही क्षणों में आँधी, पानी और तूफान का गर्जन-तर्जन होने लगा। निरुपाय हरिकृष्ण भीतर चले गए।

चलती बार वे बिहारी से कह गए, अब गाँव में जाना सम्भव नहीं है। तुम लोग हथियार से लैस रहो। सम्भव है वह कोई व्यापारी नावें ही हों। तूफान के भय से यहाँ घाट पर आश्रय लेने के लिए इधर आ रही हों।"

बिहारी ने जवाब नहीं दिया। वह सिपाहियों और मल्लाहों को आवश्यक आज्ञा देने में व्यस्त हो गया। हरिकृष्ण भी भीतर जा कर अपनी पिस्तौल में गोलियाँ भरने लगे। हरिदासी रोने लगी। कल्याणी ने भयभीत हो कर कहा—"अब क्या होगा ?"

"कुछ भी नहीं होगा। तुम भीतर जा कर सो जाओ। जगने से तबियत खराब हो जायगी।"

"नहीं मैं यहीं बैठी हूँ।"

इसी समय ज़ोर का धड़ाका हुआ। एक गोला आ कर नाव पर गिरा। नाव के तख्ते उछल कर हवा में बिखर गए। नाव में तेज़ी से पानी भरने लगा।

बिहारी ने घबराए हुए आ कर कहा—"मालिक, नाव डूब रही है, माजी को ले कर नीचे उतरिए, जल्दी कीजिए।"

हरिकृष्ण बौखला उठे। उन्होंने कहा—"पहले औरतों को उतारो बिहारी, घबराओ मत।" वे कल्याणी का हाथ पकड़े बाहर आए। छोटी डोंगी तैयार थी। हरिमोहन, कल्याणी और हरिदासी तीनों बैठ कर किनारे की ओर चले, परन्तु छोटी सी डोंगी उस तूफान का मुक़ाबिला नहीं कर सकी। डोंगी उलट गई। मल्लाह और बिहारी नाव से कूद कर तैरते हुए उनकी रक्षा के लिए आगे बढ़े। हरिकृष्ण और हरिदासी को उन्होंने निकाला। पर कल्याणी का पता न लगा। किनारे पर आ कर हरिमोहन ने कहा—"मालकिन कहाँ है ?"

बिहारी का चेहरा फक हो गया। उसने कहा—"सरकार, मालूम होता है मालकिन डूब गईं।"

हरिकृष्ण ने आर्तनाद कर के कहा—"जाओ, जाओ, जैसे बने, उन्हें बचाओ। जीती-मरी जैसे मिले लाओ।" नाव का सब माया-मोह छोड़

कर सब मल्लाह और बिहारी पानी में कूद गए। इसी समय डाकुओं ने आ कर हरिकृष्ण को घेर लिया। वे तमंचा चला ही न सके। उन्होंने उन्हें रस्सी से कस कर बाँध लिया। दोनों सिपाही मारे गए। हरिकृष्ण बेहोश हो गए।

: ४८ :

डाकुनहा

होश में आने पर हरिकृष्ण ने देखा कि वे एक बहुत बड़ी कोशा में हैं। उनके हाथ-पैर रस्सी से बंधे हैं। उनके चारों ओर ओर पन्द्रह-बीस स्त्री-पुरुष इसी तरह बंधे पड़े हैं। उन्हीं स्त्रियों में हरिदासी भी है। हरिदासी रो रही है। हरिकृष्ण की आँखों में अंधेरा छा गया। कोशा बीच गंगा में खड़ी थी। उसके चारों ओर बहुत सी छिप और छोटी नावें भी थीं। सब में फिरंगी डाकू भरे थे। वे शराब पी कर लूट के माल के बंटवारे पर लड़-झगड़ रहे थे। एक ओर कुछ आदमी मुर्गियों के गले पर छुरी फेर रहे थे। मुर्गियाँ पर फड़फड़ा कर अंतिम चीत्कार कर रही थीं। पर वे उसकी परवाह न कर उनके पर नोच-नोच कर एक ओर ढेर करते जा रहे थे। दूसरी ओर मछलियोंके पेट चीर-चीर कर उन्हें साफ किया जा रहा था। एक ओर दो-तीन सूअर जिबह किए जा रहे थे। वे भयानक रूप में मृत्यु का आर्तनाद कर रहे थे। जिससे कोशा का वायु मण्डल थर्रा रहा था। एक-एक सूअर को चार-चार फिरंगी दबोचे बैठे उस पर छुरा फेर रहे थे। वह छटपटा रहा था। दुर्गन्ध और गंदगी का पार न था। सूर्य निकलने में अभी देर थी। पर उषा की लाली पूर्व में फैल रही थी। आदमी गंदे-घिनोने और कुत्सित वेश में लापरवाही से इधर-उधर जा आ रहे थे। बहुत-सी बन्दूकें ढेर पडी थीं। बीच में लूटे हुए माल का अंबार लगा हुआ था। तूफान अब थम चुका था।

जब हरिकृष्ण का चित्त ठिकाने हुआ तो उन्होंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि अच्छा हुआ कल्याणी यहाँ नहीं है। वह डूब गई या मर गई,

अच्छा ही हुआ। नहीं तो मैं अपनी आँखों से कैसे यहाँ उसे देखता। उन्होंने एक ठण्डी साँस ली और सिर नीचा कर लिया। पहर दिन चढ़ गया। क़ैदियों को खाने के लिए रोटी के टुकड़े दिए गए। पर हरिकृष्ण ने उन्हें छुआ भी नहीं। इसी समय कुछ लोग कोशा पर चढ़ आए। हरिकृष्ण ने आश्चर्य से देखा कि उनमें भुवन भी है। भुवन उनका पुत्र है। वह उनकी प्रथम पत्नी से उत्पन्न हुआ था। भुवन की उम्र बाईस बरस की है। कल्याणी की भी यही उम्र थी। ये माता और पुत्र समवयस्क थे। इस बात को ले कर भुवन 'कल्याणी माँ' को बहुधा चिढ़ाया करता था। दोनों बहुत हँसते थे। कल्याणी भुवन को बहुत प्यार करती थी। भुवन भी इस गुडिया-सी माँ से खेला करता था। हरिकृष्ण ने देखा, भुवन और उसके साथी क़ैदी नहीं हैं। वे स्वतन्त्र हैं। उसका मन हर्ष से उछलने लगा। बड़ी कठिनाई से उन्होंने अपनी चीख़ रोकी।

भुवन ने अभी उन्हें नहीं देखा था। पर ज्योंही उसने क़ैदियों के बीच में पिता को रस्सियों से बंधा देखा, वह जड़ रह गया। वह आवेश में आ कर आगे बढ़ा, वह कुछ कहना ही चाहता था कि हरिकृष्ण ने मुँह पर उँगली रख कर संकेत से उसे रोक दिया। भुवन ने साथियों को पिता को दिखा दिया। सब मिल कर सलाह करने लगे।

वास्तव में वे जहाज़ पर दासों को ख़रीदने के लिए आए थे, पर यह तो किसी ने सोचा भी न था कि पुत्र पिता को ख़रीदेगा।

कोशा का स्वामी प्रसिद्ध पोर्चुगीज डाकू डाकुनहा था। इस फिरंगी लुटेरे के नाम का बंगाल में बड़ा आतंक था। इसने बंगाल को लूट लूट कर तबाह कर दिया था। वह नदी किनारे के गावों को लूटता। वहाँ के स्त्री-पुरुषों को कैद करके दूसरे स्थानों में गुलाम की भाँति बेच देता, और गाँव में आग लगा कर आगे बढ़ता। वह साँड की भाँति बलवान, किन्तु साठ बरस का बूढ़ा भयानक आदमी था। परन्तु बातचीत में वह बहुत शान्त शिष्ट था। वह भेड़िये के समान निर्दयी और लोमड़ी के समान चालाक था। उसके साथ दो सौ हथियारबन्द डाकू थे। सब पक्के लुटेरे

खूनी और हत्यारे। दया, माया, इन्सानियत उनसे कोसों दूर थी। रुपया इनका माई-बाप। शराब और औरत उनका प्रिय विनोद। डाके और खून उनका धंधा।

डाकुनहा तेजी से आया। वह एक चमड़े का तंग कोट पहने था। उसके हाथों में चमड़े ही के दस्ताने थे। उसके साथ ही पादरी था। सब कैदियों को एक पंक्ति में रस्सियों से बंधे ही बंधे खड़ा किया गया। उनके दोनों ओर हथियार बन्द डाकू पंक्ति बाँध कर खडे हो गए। डाकुनहा ने कहा—"जो कैदी ईसाई होना चाहते हैं, उन्हें छोड़ दिया जायगा। बाकी सब गुलामों को ऊंची बोली बोलने वाले के हाथ बेचा जायगा।

कैदियों में सिस्कारियाँ उठने लगीं। पर कोई बोला नहीं। पादरी ने कहा—पवित्र पिता की शरण आ जाओ और अपने को शैतान के ग़जब से बचाओ। उसने एक-एक कैदी से आग्रह किया। कोई चुप रहे, कोई रोने लगे। कुछ ने स्वीकार किया। जिन्होंने स्वीकार किया उन्हें मुक्त कर के एक ओर ले जाया गया। जिन्होंने इन्कार किया उन्हें चाबुकों की सज़ा देने के लिए खम्भे से बांध किया गया। शेष की बोलियाँ बोली जाने लगी।

भुवन ने कहा—"मैं उस बूढ़े को खरीदना चहता हूँ।"

"वह तो कोई अमीर आदमी मालूम पड़ता है। उसके दाम ज्यादा देने पड़ेंगे।" डाकुनहा ने हंसते हुए नर्मी से कहा।

"आखिर कितने?" भुवन ने बेसबरी से कहा।

"दो हज़ार, मगर ये बहुत ही कम हैं।"

"परन्तु हम और भी तो दासों को खरीदेंगे।"

"तभी तो सस्ता दे रहा हूँ।"

"खैर यही सही। परन्तु उस बूढ़ी दासी के कितने दाम हैं?"

"तुम शरीफ गाहक हो। उसे मैं पांच सौ ही में दे दूंगा।"

"दोनों की रस्सियां खोल दो। ये तोड़े सम्हाल लो।

हरिकृष्ण और हरिदासी उस नरक से मुक्त हो कर डोंगी में बैठ कर जब किनारे पर आए तो हरिकृष्ण ने देखा, यह तो उनका अपने ही गांव का घाट था।

उन्होंने सिर के बाल नोचते हुए कहा—"मेरा भाग्य तो देखो, अपने ही घर में मैं गुलाम की तरह बेचा गया। बेटे ने बाप को खरीदा।"

"बाबूजी, धीरज न खोइए, लेकिन माँ कहाँ है ?"

"वह अब कहाँ, गंगा उसे निगल गई। अच्छा ही हुआ, नहीं तो क्या इस वक्त मैं कहीं मुँह दिखाने योग्य रहता।"

धीरे-धीरे उन्होंने सब घटना कह सुनाई। सुन कर भुवन का मुँह भारी हो गया। उसने कहा—"बाबू जी, आप घर जाइए। मैं माँ की तलाश में जाता हूँ।"

"मैं भी चलता हूँ बेटा।"

"नहीं बाबू जी, आप घर जाइए। आपके साथ रहने से हमारे काम में देर होगी।"

"परन्तु ये डाकू क्या हमारे गाँव को न लूटेंगे ?"

"नहीं। उन से समझौता हो गया है। उन्हें हर्जाना भर दिया गया है।"

"तो मैं चलता हूँ।"

"नहीं आप घर जायँ।"

तरुण भुवन पिता को समझा बुझा कर घर भेज स्वयं एक तेज चाल वाली डोंगी में अपने विश्वासी सेवक गोपाल को संग ले चल दिया।

: ४६ :

मजेदार-आदमी

सन् १७५० ई० के अक्तूबर में सत्रह बरस का एक तरुण कलकत्ते आया। दस महीने रात-दिन उसने जहाज में यात्रा की थी। वह एक दुबला-पतला बीमार सा युवक था। उन दिनों कलकत्ते का फोर्ट विलियम

नाममात्र का ही फोर्ट था। वास्तव में वह एक साधारण इक मंजिली इमारत थी, जिस के चारों ओर खूब फैला हुआ मैदान था। जिस में अनेक प्रकार के वृक्ष लगे हुए थे, जिन से कोठी ढक सी गई थी। कोठी की गच कच्ची थी। और छत्तों से पानी टपकता था। इसी कोठी में उन दिनों—ईस्ट इण्डिया कम्पनी का दफ्तर था। दफ्तर में व्यापार सम्बन्धी सब काम-काज, हिसाब-किताब यहाँ होता था। खरीद-फरोख्त यहाँ नहीं होती थी। यहाँ केवल खरीद-फरोख्त का बहीखाता ही रहता था।

माल की खरीद हुगली और कासिम बाजार की कोठियों में होती थी। और भारत से जाने वाले माल का लदान वालासोर के बन्दरगाह से होता था। वहीं विलायत के माल से भरे हुए जहाज उतरते भी थे। माल सीधा हुगली या कासिम बाजार की कोठियों में पहुंचाया जाता था। परन्तु लेखा-जोखा कलकत्ते की इस कोठी में होता था, जिसे फोर्ट विलियम कहते थे।

उन दिनों बंगाल में अंग्रेज़ों का व्यापार धड़ल्ले से चल रहा था। खाँड यहाँ बहुत अच्छी जाति की उत्पन्न होती थी। उस की यूरोप भर में माँग थी। इसके बाद रूई और रेशम का उत्पादन वहाँ इतनी अधिकता से होता था कि इन दोनों चीज़ों का बंगाल—केवल भारत ही के लिए नहीं सारे यूरोप का—गोदाम कहा जाता था। रूई के महीन, मोटे, सफेद, रंगीन, छपे हुए वस्त्रों का ढेर बाज़ारों में लगा रहता था। और उनके खरीदारों के ठठ बाज़ार में लगे रहते थे। जिन में बहुतायत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के देशी और अंग्रेज एजेन्टों की होती थी। कम्पनी इन कपड़ों का बहुत भारी निर्यात जापान और यूरोप को करती थी। सूती कपड़ा बहुतायत से लाहौर और काबुल होता हुआ रूस तक जाता था। रेशम और रेशमी कपड़े का भी यही हाल होता था। यद्यपि बंगाल का रेशम उतना अच्छा नहीं होता था जितना ईरान, शाम, सैदा और बेरूत का। परन्तु यहाँ रेशम सस्ता बेहद था। उस में से यदि अच्छा रेशम छांट लिया जाय और उसे अच्छी तरह साफ किया जाय तो उस से बहुत नफास कपड़ा बनता

था। इन दिनों सात आठ सौ आदमी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के क़ासिम बाज़ार के कारखाने में काम कर रहे थे। डचों के कारखानों में भी इतने ही आदमी थे। बंगाल में शोरे की भी बहुत बड़ी मण्ड़ी थी। शोरा बहुत भारी मात्रा में पटने के रास्ते यूरोप और अन्य देशों को जाता था। इसके अतिरिक्त गोंद, अफीम, मोम, कस्तूरी, पीपल और अनेक औषधियों की भी यहाँ अच्छी मण्ड़ी थी। घी को यूरोपियन तुच्छ नज़र से देखते थे, परन्तु घी भी बहुत मात्रा में विदेश जाता था।

बंगाल के मुरब्बे भी बहुत प्रसिद्ध थे। यूरोप के लोग इन मुरब्बों को बड़े चाव से खाते थे। और पुर्तगाल के लोग मुरब्बा बनाने में एक ही थे, वे बहुत बढ़िया मुरब्बे बनाते थे। पोर्चुगीजों का मुरब्बे का व्यापार हुगली, ढाका, मुर्शिदावाद में खूब होता था। वे लोग चकोतरों का मुरब्बा, जिन्हें अंग्रेज बहुत पसन्द करते थे, निहायत बढ़िया बनाते थे। फिर, आम, अनन्नास, सेब, आंवला जो भारत के प्रसिद्ध फल थे, उनके मुरब्बे तथा नीबू और अदरक का मुरब्बा ऐसा बनाते थे, कि उन दिनों उनके बिना किस शानदार यूरोपियन की टेबुल अधूरी ही रह जाती थी।

गेहूँ यद्यपि बंगाल में नहीं होता था, और बंगाली चावल ही खाते थे, परन्तु गेहूँ यहाँ बहुत सस्ता बिकता था। उससे डच, अंग्रेज, और पोर्चुगीज बिस्कुट और पाव रोटियां बनाने थे, उनकी भी काफी खपत थी। इन सब पदार्थों के उत्पादन का प्रधान केन्द्र हुगली था। जहाँ बहुत से अंग्रेज, दोगले पोर्चुगीज तथा अन्य ईसाई, जिन्हें डचों ने अन्य उपनिवेशों से निकाल दिया था, आ बसे थे। और ये ही धंधे करते थे। इस समय केवल हुगली में आठ-नौ हजार यूरोपियन रहते थे। तथा समूचे बंगाल में उनकी संख्या पच्चीस हज़ार थी। इन में वेजेसोइट और अगस्टियस पादरी भी थे जो ईसाई धर्म का प्रचार करते और ईसाइयों की संख्या बढ़ाते जा रहे थे। इन्हीं सब बातों को सुन-सुन कर, और ललचा कर भाग्योदय के सुपने देखता हुआ यह तरुण अंग्रेज़ इतनी लम्बी यात्रा करके कलकत्ते में आया था।

इन दिनों भारत और यूरोप में फ्रैंच संघर्ष चल रहा था। भारत स्थित फ्रैंच गवर्नर डुप्ले ने भारतीय साम्राज्य के सुपने देखने आरम्भ कर दिए थे। चेष्टा भी की थी, इसी से अंग्रेजों को विवश लाभ का धंधा छोड़ कर उन के विरुद्ध शस्त्र ग्रहण करना पड़ा था। इस लिए फोर्ट विलियम की इस कोठी को संगीन बनाया जा रहा था। हज़ारों मज़दूर इसकी सफीलें बना रहे थे तथा बुर्जियों को पुख्ता करने में लगे हुए थे।

तरुण घूम फिर कर यह सब देखता हुआ कोठी के भीतर घुस गया। वहाँ एक क्लर्क से उसने सैक्रेटरी का कमरा पूछा और उसके सामने जा खड़ा हुआ।

सेक्रेटरी एक बूढ़ा और चिड़चिड़े मिजाज़ का अंग्रेज़ था। वह रिश्वती और लालची भी था। पहले वह फौज में कोई अफसर था, वहाँ से इसी दोष में निकाल दिया गया था। परन्तु उसका यह धंधा तो यहाँ भी जारी था। उससे लोगों की नस दवती थी। इससे लोग रिश्वतें दे दे कर ही काम निकालते थे। उन दिनों रिश्वत और घूसखोरी आम बात थी। इसी से वह हर किसी गर्ज़ू से रुखाई से बातें करता था। मुट्ठी गर्म होने पर नर्म हो जाता था। सेक्रेटरी ने उसे घूरते हुए कहा—

"कौन हो और क्या चाहते हो?"

तरुण ने जवाब न दे कर एक खत उसे पकड़ा दिया। खत मद्रास के गवर्नर का था, जिसमें उसे कोई क्लर्की की नौकरी देने की सिफारिश की गई थी। सेक्रेटरी के पास ऐसे खत तो आते ही रहते थे। उसने तरुण से कहा—"तुम्हारे पास यह खत ही है या और भी कुछ है।"

"यह दोस्ती का हाथ है," उसने हाथ बढ़ा दिया।

"मज़ेदार आदमी मालूम पड़ते हो, उस स्टूल पर बैठ जाओ। काम से फारिग हो कर मैं तुम्हारे मामले पर गौर करूँगा।" यह कह कर वह फिर अपने काम में लग गया।

युवक बैठा नहीं। कोठी में घूम-फिर कर तस्वीरों, मकान की धरनो

श्रौर वहाँ के फर्नीचर तथा वहाँ रखी श्रन्य चीज़ों को घूम-फिर कर देखने लगा।

सेक्रेटरी ने नज़र उठा कर उसकी श्रोर देखा श्रौर कहा—

"तुम ने सुना नहीं। मैंने कहा—वहाँ बैठ जाश्रो।"

"सुन भी लिया, समझ भी लिया। पर मैं बिना काम के खाली नहीं बैठ सकता।"

"मज़ेदार हो, नाम क्या है तुम्हारा।"

"वह सब तो इस खत में लिखा है।"

"लेकिन तुम भी तो बता सकते हो?"

"मैं समझता हूँ श्रब मैं यहीं रह कर तुम्हारे साथ काम करूँगा तो तुम सब जान लोगे।"

"मज़ेदार हो। मज़ेदार हो। मगर तुम ने कहीं कुछ काम भी किया है?"

"यह तो तुम देख ही लोगे, जब मैं काम करूँगा।"

"मज़ेदार हो, लेकिन यहाँ तुम्हें श्राज्ञा-पालन श्रौर श्रनुशासन सीखना पड़ेगा।"

"वाहियात बात है। हम तुम एक दोस्त की तरह मिल-जुल कर काम करेंगे।"

सेक्रेटरी हँस पड़ा। हँसते-हँसते कहा—"भई खुदा की क़सम, मज़ेदार श्रादमी हो। चलो, मैं तुम्हें श्रपने हीं श्राफिस में क्लर्क की जगह देता हूँ। क्या कल से काम पर श्राश्रोगे?"

"मैं तो श्रभी तैयार हूँ।"

"मज़ेदार हो। मगर कल ही श्राश्रो। तुम ने रहने का ठौर ठीक जमा लिया है?"

"श्रभी नहीं, क्या तुम कुछ मदद नहीं कर सकते?"

"ज़रूर करूँगा, शाम को मेरे घर आना। यार मज़ेदार आदमी हो। तबियत तुम्हारी बातों से ख़ुश हो गई।"

"शुक्रिया, तरुण ने सेक्रेटरी से हाथ मिलाया और चल दिया।"

: ५० :

वारेनहेस्टिंग्स

फोर्ट विलियम से निकल कर युवक कलकत्ते के बाज़ारों में चक्कर काटने लगा। उन दिनों कलकत्ते का एक ही बाज़ार था। जिसके बीच में एक चौड़ी सड़क थी, जिस पर जगह जगह गढ़े हो रहे थे और उनमें पानी भरा था। सड़क के दोनों तरफ इकमंज़िली कच्ची दूकानें थीं। जिनमें अधिकांश की छतें खपरेल या फूस के छप्पर की थीं। दूकानों में नानबाई, मछुए, कसाई, मोदी, पंसारी अपनी-अपनी जिन्सें लिए बैठे थे। हर दूकान पर हरे नारियलों के ढेर पड़े थे। यूरोपियन बड़े शौक़ से उनका पानी पीते थे। यह बाज़ार उस स्थान पर था जिसे आज धर्मतल्ला कहते हैं। वह बहुत देर तक घूमता-फिरता रहा। फिर वह धीरे-धीरे सेक्रेटरी के निवास स्थान की ओर चला। सेक्रेटरी ने स्वागत कर के बिठाया। और अब दोनों आदमी बेतकल्लुफी से बातें करने लगे। सेक्रेटरी ने कहा—

"कलकत्ता में तो नए ही आए हो ?"

"कलकत्ता ही में क्यों, हिन्दुस्तान में ही नया हूँ।"

"तो कलकत्ता अभी नहीं देखा ?"

"एक चक्कर बाज़ार में लगा आया हूँ, जिन्स बहुत सस्ती है।"

"मज़ेदार हो, क्या कुछ सौदेबाज़ी भी कर आए ?"

"नहीं, सिर्फ घूम ही आया हूं। एक रुपए में बीस मुर्ग़ियां बिक रही थीं।"

"बत्तखों और मुर्ग़ाबियों का भी यही भाव है।"

"मछलियों का तो कोई भाव ही नहीं है। टोकरे बिक रहे थे।"

"मछलियाँ यहाँ पैदा भी तो बहुत होती हैं। समुद्र और हुगली तो

है ही, लोग घर-घर एक पोखर रखते हैं। जहाँ मछली पाली जाती है।"

"अच्छा मोटा सूअर आठ आने को बिक रहा था।"

"इसी से तो ये कम्बख्त पोर्चुगीज सूअर ही का माँस खाते हैं। वे ही क्या, अंग्रेज़ और डच भी सूअर के माँस को नमक लगा कर अपने जहाज़ों में रख लेते हैं।"

"बेशक बंगाल में भोजन की सामग्री बहुत सस्ती है।"

"क्या कहते हो। भोजन ही क्यों? यहाँ औरतें सुन्दर भी हैं और सस्ती भी।"

बुड्ढे खुर्राण्ट की रसिकता पर युवक झेंप गया। उसने जवाब नहीं दिया। केवल मुस्करा कर कहा—"सस्ती कैसे?"

"वे बहुत कम खाती हैं। वह भी सिर्फ तरकारी, चावल और घी या मछली। इन पर दाम बहुत कम लगता है।" तरुण हँसने लगा।

बूढ़े ने कहा—"यहाँ की उपजाऊ भूमि और औरतों की सुन्दरता देख कर सब यूरोपियन यही कहा करते हैं। बंगाल में आने की तो सैकड़ों राह हैं, पर जाने की एक भी नहीं।"

"यहाँ की आबोहवा कैसी है?"

"साल में आठ महीने ऐसी गर्मी पड़ती है कि धरती जल जाती है। जुलाई में जब गर्मी की हद हो जाती है तब वर्षा आरम्भ हो जाती है और लगातार तीन माह तक चलती रहती है। इससे गर्मी कम पड़ जाती है और धरती खेती के लायक हो जाती है। लेकिन हिन्दुस्तान का मौसम है बड़ा अजीब।"

"वह कैसे?"

अक्तूबर में जब वर्षा खत्म हो जाती है, तब दक्षिण समुद्र दक्षिण की ओर बहने लगता है। और उत्तर से ठंडी हवा बहती है जो चार-पाँच महीने तक एक ही ओर बहती रहती है। इसके बाद दो महीने वह अनिश्चित चलती है। इसके बाद समुद्र उत्तर की ओर बहने लगता है और दक्षिणी हवा चलने लगती है। चार-पाँच महीने यही हाल रहता

हैं और फिर दो महीने हवा निश्चित चलती है। इन दो महीने समुद्र यात्रा में बहुत तकलीफ होती है। और जब दक्षिण हवा चलती हो तब यात्रा सुहावनी और सुगम हो जाती है। इसी लिए भारतवासी बड़ी-बड़ी समुद्र यात्रा कर लेते हैं।

"क्या भारतवासी भी अच्छे नाविक हैं ?"

"मजेदार हो। अजी, वे बंगाल से तनासरम, कोचीन, मलाया, स्याम मेडागास्कर की ओर अथवा मछलीपट्टम, सरनद्वीप, मालद्वीप, मुखा, बंदर अत्वास तक अपने जहाज़ ले जाते हैं।"

"पर कभी तो उन्हें विपरीत वायु के कारण विपत्ति उठानी पड़ती होगी।"

"उन्हें ही क्यों, यूरोपीयन भी कठिनाई में फँस जाते हैं, खास कर दक्षिणी हवा चलने के बाद दो महीने तक जहाज़ों का चलना बहुत कठिन पड़ जाता है। इससे बढ़ कर भयंकर कोई ऋतु नहीं होती। इस समय समुद्र के शाँत होने पर भी किनारों पर पचास-साठ मील तक आँधी चलती रहती है। इसी से वर्षा ऋतु समाप्त होते ही हम सूरत या मछली-पट्टम के बंदरों पर लंगर डालते हैं। क्योंकि जहाज़ों के भूमि से टकरा जाने का भय रह है। मगर एक नसीहत मैं तुम्हें दूँगा।"

"ज़रूर दीजिए।"

"हमेशा इस बात ध्यान रखना कि दस-बारह नौकर छाँट कर अपने पास रखना। इस मुल्क में देसी नौकर बहुत सस्ते मिल जाते हैं, पर खुदा की मार उन पर, काम में बहुत सुस्त होते हैं, और बेईमान परले सिरे के। तुम ख्याल रखना कि वे 'पंच' बना कर न पीने पाएं और तुम भी दोस्त, देसी औरतों और शराब तथा तमाखू बेचने वालों से दूर रहना। लेकिन अंगूरी शराब या कच्ची शीराजी पीने में हर्ज नहीं है। यहाँ की जलवायु में उससे फायदा ही होता है।"

"आपने बहुत काम की बातें बताईं महाशंय। धन्यवाद। अब आप मेरे डेरे की कुछ व्यवस्था कर दें तो बड़ी कृपा हो।"

"मजेदार हो दोस्त। व्यवस्था हो गई। मेरा आधा बंगला खाली है। उसी में आ जाओ। मज़ा रहेगा। गप्पें उड़ेंगी। किराया बहुत कम है। मछलियों और नारियलों के लिए कहीं जाना ही न पड़ेगा।"

"धन्यवाद महाशय ! मैं कल डेरा-डंडा उठा लाऊँगा, अब नमस्कार।"

"लेकिन दोस्त, तुम्हारा नाम ?"

"क्या आपने पढ़ा नहीं ?"

"मजेदार हो, अब तुम्हीं बता दो, मैं तो भूल गया।"

"मैं वारेन हेस्टिंग्स हूँ" नमस्कार।

"नमस्कार मिस्टर हेस्टिंग्स।"

सेक्रेटरी ने हाथ मिलाया, तरुण चल दिया।

: ५१ :
क़ासिम-बाजार

क़ासिम बाज़ार आज ध्वस्त हो चुका। उसका नाम शेष रह गया है। पर उन दिनों क़ासिम बाज़ार बंगाल का सबसे अधिक गुलज़ार शहर था। यहाँ के तंग बाज़ार रात-दिन देश-देशान्तरों के मनुष्यों से भरे रहते थे। भिन्न-भिन्न वेष-भूषा, भिन्न-भिन्न भाषा। हिन्दुस्तानी, बंगाली, डच, पोर्चुगाज, अंग्रेज, फ्रेंच, आरमीनिया, भोटिए, व्यापारी कोई बेचने और कोई खरीदने के लिए बाज़ार में सूर्योदय से सूर्यास्त तक चक्कर लगाते रहते थे। इन देश-विदेश के व्यापारियों की गगन स्पर्शी अट्टालिकाएँ, गंगा के किनारे पर अनगिनत जहाज़, बिक्री के लिए आए हुए माल के पहाड़ जैसे ढेर, नदी तट पर मीलों तक गुदामों की पंक्ति, दर्जनों रेशम के कारखाने, फैक्टरियाँ। जुलाहों की लम्बी-लम्बी कपड़ों की दूकानों की क़तारें, दूकानों के सामने चित्र-विचित्र रंग-बिरंगे लटकते हुए कपड़े, भाँति-भाँत के छींटे के डिजायन, क़ासिम बाज़ार की शोभा का विस्तार करते रहते थे। काम-काजी लोगों की भीड़ में व्यस्त कर्कश आवाज़ से सौदा-सुलफ करते, लड़ते-झगड़ते दलालों की चखचख से कान बहरे होते

थे। व्यापारियों के हथकण्डे, लटके चुटकुले रोते आदमी को हंसाते और उड़ते पंछी को फसाते थे। क़ासिम बाज़ार गंगा और जलंगी नदी के संगम पर था। ये दोनों नदियाँ दो दिशाओं से इस सम्पन्न नगरी को अंक में लपेटती हुई-सी प्रतीत होती थीं। गंगा को वहां हुगली कहते थे। यह समृद्ध नगर मुर्शिदाबाद से एक ही मील के अन्तर पर बसा हुआ था। मुर्शिदाबाद बंगाल के नवाबों की राजधानी थी और क़ासिम बाज़ार फिरंगियों की क्रीड़ा स्थली।

क़ासिम बाज़ार में अंग्रेजों की एक कोठी थी। कोठी गंगा के किनारे पर थी। उसे अंग्रेज फैक्टरी कहते थे। उन दिनों यूरोपियन बनिए व्यापार के प्रधान नगरों में इन फैक्टरियों की स्थापना करते थे। उनमें विलायत से आया हुआ माल बेचा जाता तथा भारतीय पैदावार अथवा वहाँ की बनी हुई वस्तु विलायत भेजने की जाँच की जाती थी। इन फैक्टरियों का प्रवन्ध एक प्रेसीडेन्ट और उसके अधीन एक कौंसिल द्वारा होता था। ये फैक्टरियाँ प्रायः समुद्र या नदी तट पर ही होती थीं और उनकी रक्षा के लिए शस्त्रधारी रक्षक नियत रहते थे। इन फैक्टरियों की सीमामें यहां के अध्यक्ष का ही अबाध अधिकार होता था। राज्य उनके मामलों में कोई दखल नहीं दे सकता था।

इन दिनों दक्षिण में कर्नाटक के उत्तराधिकार का झगड़ा चल रहा था और क्लाइव की रणदक्षता ने फ्रेंचों की भारतीय साम्राज्य की चिर अभिलाषा पर पानी फेर दिया था। परन्तु अभी इस झगड़े का असर बंगाल तक नहीं पहुँचा था। बंगाल में सभी विदेशी मिल-जुल कर व्यापार, लेन-देन करते थे—बंगाल की अग्रेज़ कोठियों में इस समय केकल कम्पनी की कोठियों के बहीखाते तथा माल के बीजक ही होते थे। जिन पर कोठी के अध्यक्ष से लेकर छोटे-छोटे कर्मजारी का पूरा ध्यान रहता था।

गर्मी बड़ी सख्त थी। उन दिनों गर्मी के दिनों में कोठी के दफ्तर का सब काम-काज, लेन-देन वहीवट सिर्फ दोपहर तक हो जाता था। कम्पनी के गुमाश्ते, कर्मचारी जहाँ बैठ कर कोठी का काम काज देखते थे, वही

कच्ची ईंटों की दीवारों पर खडा एक हालनुमा बड़ा कमरा था। इस समय अंग्रेज़ी फैक्टरी में दो सौ आदमी काम करते थे। इन में सिपाही ही अधिक थे। इसी कमरे के एक कोने में बैठा हुआ वारेनहेस्टिंग्स मेज़ पर झुका अपने आगे बही खाता रखे हिसाब में उलझा हुआ था। उसका रंग ढंग दूसरे साथियों से निराला था। कलकता आने के कुछ दिन बाद ही उसकी बदली क़ासिम बाज़ार की कोठी में हो गई थी। और लोग आपस में हंसी मज़ाक गपशप बीच-बीच में करते जाते थे, परन्तु वह चुपचाप बैठा अपने काम में लगा था।

दोपहर हो गया। और सब कर्मचारी उठ कर भोजन के कमरे में जाने लगे। वारेन ने सिर उठा कर खिड़की से सामने बहती गंगा को देखा, वह उठा और चुपचाप भोजन के कमरे में आकर एक टेबुल पर बैठ गया। उसने जेब से एक छोटी सी पुस्तक निकाली और ध्यान से उसे पढ़ने और उस पर पैन्सिल से निशान करने लगा। बैरा खाना परस गया, पर उसने आंख उठा कर उसकी ओर नहीं देखा। इसी ससय एक मोटा सा अधेड़ उम्र का अंग्रेज़ आकर उसी मेज पर एक कुर्सी खींच कर आ बैठा। उसने उसकी जांघ पर एक दुहत्थड़ मार कर कहा—"यार बड़े मनहूस मालूम होते हो, दफ्तर में भी काम में उलझे रहे, यहाँ भी किताब ले बैठे।"

"मैं क्षमा चाहता हूँ। क्या तुम्हें इस से कुछ असुविधा हुई !"

"असुविधा कैसी यार, पर दो गाल हँसो-बोलोगे नहीं तो शैतानों के इस मुल्क में मर जाओगे।"

"अच्छा, इतना कह और किताब को जेब में डाल कर वह भोजन करने लगा। मोटे आदमी ने कहा—"कौन किताब है वह ?"

"अंग्रेज़ी-बंगला गाइड़ है। मैं ज़रा बंगला सीख रहा हूँ।"

"मैं समझ गया। लो शर्त बदता हूँ। ज़रूर तुम्हारी आँख किसी बंगालिन से लड़ गई है।"

"यह तुम ने कैसे जाना ?"
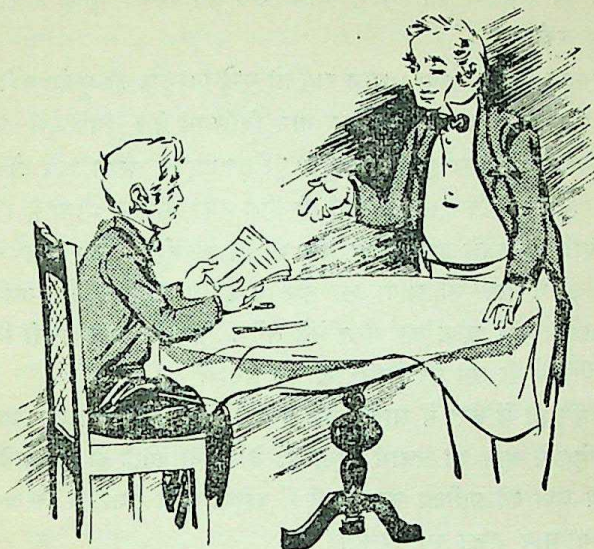
"नहीं तो बंगला सीखने की तुम्हे क्या ज़रूरत थी। लो खोल दो राज़, यहाँ भी दिल फैंक ग्रादमी हैं। तबियत हो तो ग्राज रात को रंग रहे।"

"धन्यवाद। मगर ग्रफसोस है कि मुझे शौक नहीं।"

"बनते हो यार, तुम्हारी ग्राँखें ही कह रही हैं।"

"खैर, इतना तो मैं कह सकता हूँ कि ग्राप हैं रंगीले ग्रादमी।"

"ग्ररे यार ज़िन्दगी में है क्या, बस दो गाल हँस-बोल लेना। ग्रौर इस मनहूस मुल्क में हम कोरे मच्छरों का भोजन बनने नहीं ग्राए हैं। यहाँ की शराब, ग्रौर यहाँ की ग्रौरतें। समझते हो न? ये साले काले नेटिव गुमाश्ता लोग जिन की नस हमारे नीचे दबी रहती है, इस मामले में बड़े फ़रवट हैं। क़सम खुदा की, वह ताजा माल टटोल लाते हैं कि जिस का नाम। ग्रौर बन्दे का तो बंधा दस्तूर है रिश्वत का रुपया पैसा हम छूते नहीं। साफ कहते हैं, माल लाग्रो। एक दम फ्रैश। फिर शराजी!! बस

बहिश्त का मजा। चलो यार, आज रात को छने। तुम्हारा खर्च न होगा। डरो मत।"

"बहुत-बहुत शुक्रिया। आज रात तो मुझे बिल्कुल ही फुर्सत नहीं है।"

"खैर तो याद रखना, मेरा नाम विलियम है। विलियम डडले। बस आज से हम तुम पक्के दोस्त हो गए। हो गए न, लाओ हाथ दो दोस्त, आज न सही तो फिर सही। यहाँ तो नित नया चालान आता है।"

विलियम डडले हाथ मिला कर रूमाल से मुँह पोंछता हुआ चलता बना। दूसरे लोग भी खाना खा कर कोई ताश खेलने बैठ गए कोई गप्पें मारने, कोई चुरुट का मजा लेने लगे। हेस्टिंग्स फिर अपनी किताब लेकर पैन्सिल से उस पर लकीरें खींचने लगा।

इतने ही में बैरा ने आकर उसे सलाम किया। और कहा, "साहिब, बड़े साहेब ने आप को सलाम बोला है, वे अपनी कोठी के पिछवाड़े वाले लान में आप की प्रतीक्षा कर रहे हैं। बखुदा अभी तशरीफ ले जाइए। साहेब परेशान नजर आ रहे हैं।"

हेस्टिंग्स ने किताब बन्द कर के जेब में रखी। और उसी समय साहेब से मिलने उनकी कोठी की ओर चल दिया।

: ५२ :

वाटसन की घबराहट

वाटसन साहब, क़ासिम बाज़ार की कोठी के प्रधान गुमाश्ते और मैनेजर थे। इनकी उम्र पचास को पार कर गई थी। चेहरा इनका गंभीर और चाँद गंजी थी। इस समय इनके चेहरे पर हवाइयाँ उड़ रहीं थीं और वह जल्दी-जल्दी बदहवासी से चहल क़दमीं कर रहे थे। हेस्टिंग्स के पहुँचते ही वे लपक कर उसके पास जा पहुँचे। उन्होंने उसके कालर का कोट पकड कर कहा—"क्या मैं तुम पर भरोसा कर सकता हूँ वारेन।"

"मैं समझता हूँ कि इसके लिए आप को कभी पछताना न पड़ेगा।"

"इसीलिए मैंने तुम्हीं को चुना है।

"मामला क्या है सर।"

"बहुत गम्भीर। नवाब बदज़ाती करने पर उतर आया है।"

"क्या कोई नई बात हुई है ?"

"देखो, ये दोनों खत मुझे अभी मिले हैं। एक नावब का है, दूसरा कलकत्ते के गवर्नर मि० डेक का है।" उसने दोनों पत्र हेस्टिंग्स को दे दिए। उसने दोनों पत्र पढ़े। डेक ने लिखा था—कि नवाब ने अल्टीमेटम दिया है कि यदि २५ तारीख तक फोर्ट विलियम न ढहा दिया गया तो कलकत्ते पर चढ़ाई करके किला ढहा दिया जायगा और सब अंग्रेज़ मार डाले जाएँगे। दूसरे खत में नवाब ने वाटसन को लिखा था कि किसन दास को यदि २५ तारीख तक नवाब के हवाले न किया जायगा तो क़ासिम बाज़ार की फैक्टरी को लूट कर उसमें आग लगा दी जायगी।"

"२५ तारीख तो आज ही है।"

"हाँ, आज ही।"

"फोर्ट विलियम तो ढहाया नहीं जा सकता।"

"कैसे ढहाया जा सकता ? देखते नहीं, फ्रेंचों की तमाम फौज पांडी-चेरी से आ आ कर चन्द्रनगर में इकट्ठी होती जा रही हैं। न जाने कब वे कलकत्ते पर टूट पड़ें।"

"नवाब से यह बात नहीं कही गई ?"

"सिराज को हम नवाब ही नहीं मानते। आनरेबुल कम्पनी की कौन्सिल ने उसे नवाब स्वीकार ही नहीं किया है। हमारा संबन्ध तो सीधा दिल्ली के बादशाह से है

लेकिन बंगाल का नवाब तो नाम के ही लिए दिल्ली के अधीन है। वास्तव में वह तो यहाँ का स्वाधीन शासक ही है।"

"फिर भी मुग़ल साम्राज्य अभी अखण्ड है। अब तो हमें देखना यह है कि बंगाल का शासक यदि दिल्ली से स्वतन्त्र ही है, तो वह आनरेबुल ईस्टइंडिया कम्पनी है या वह दब्बू छोकरा, जो अपने को नवाब कहता है।" इसलिए जब नवाब ने अपना दूत कलकत्ते इस आशय का पत्र लेकर

भेजा था आया कि क़िला ढहा दिया जाय और खाई भर दी जाय, तब ड्रेक ने जवाब दिया था—'हम ऐसा करने को तैयार हैं पर यह खाई मुसलमानों के सिरों से भरी जायगी।'

"लेकिन क्या उसकी ताक़तों का हम मुक़ाबिला कर सकते हैं। अब भी उसके पास भारी फौज़ें हैं। यदि लड़ाई हुई तो उसके सामने हमारी पेश जानी मुश्किल है।"

"मुश्किल को हम आसान करेंगे मेरे नवयुवक मित्र। यहाँ हमको ताकत का संतुलन नहीं करना है, हमें यह देखना है कि मुग़ल साम्राज्य सोने और चाँदी से भरपूर है। वह साम्राज्य सदा से निर्बल और रक्षा रहित रहा है यह आश्चर्य की बात है कि सामुद्रिक शक्ति रखने वाले किसी यूरोपियन राजा ने बंगाल को जीतने की अभी तक कोशिश नहीं की। यहाँ तो एक ही मार में सोने-हीरे मोती का इतना भारी ढेर प्राप्त किया जा सकता है कि जिसके सामने ब्राजील और पेरू की खानें मात पड़ जायगी। तुम उनकी फौजों के सिपाहियों की गिनती करते हो—मगर यह भी तुमने देखा कि वे अपने मुसाहिबों और शराब के किस क़दर गुलाम हैं।"

"लेकिन यह नौजवान नवाब तो जागरूक मालूम पड़ता है। जो हमारे क़िलों और फौज कशी पर चौकन्ना हो गया है।"

"बेशक वह नहीं चाहता कि हम क़िले बनाएँ या फौज रखें। उसे डर है कि यदि वह इन बातों से बेफिक्र रहा तो मुल्क खो बैठेगा। बूढ़ा नवाब अलीवर्दी खाँ बडा घाघ था, उसने उसे हमारी कूट नीति से आगाह कर दिया है। पर हम जानते हैं कि वह मूर्ख, हठी और अदूरदर्शी है। राज-नीति वह नहीं जानता। उसमें कोई गुण नहीं हैं, जो हैं, उन्हें, काम में लाने की उसमें शक्ति नहीं है। फिर अभी तो उसकी मूंछें भी नहीं निकलीं।"

"परन्तु उसके दर्बारी उमरा-सलाहकार और वजीर भी तो हैं।"

"परन्तु वह परिस्थितियों का शिकार बनेगा। वह इस बात से

बेखबर हैं कि उसे कैसे भयानक और शक्तिशाली दुश्मनों का सामना करना है। उसका जोश तो महज़ बचपन की नादानी है।"

"खैर; यह रामकिशन दास का मामला क्या है?"

"जैसा कि तुम कहते हो, हम फौजी ताक़त में उसका मुक़ाबिला नहीं कर सकते। महज़ अपनी रक्षा तथा नवाब पर दबाव डालने की योग्यता बढ़ाने के लिए क़िलों को दृढ़ कर रहे हैं तथा फौज़ें बढ़ा रहे हैं। परन्तु हमारी दूसरी कार्यवाहियाँ भी जारी है। तुम देखते हो हम व्यापारी हैं। कम्पनी बहादुर का बंगाल में करोड़ों का व्यापार है। हमारे गहरे सम्बन्ध मुल्क के बड़े-बड़े व्यापारियों से है। उनके भी भारी-भारी हित हम पर निहित हैं। अब तक तो खैर व्यापार में लाभ उठाने ही का मामला था, परन्तु अब तो हमारी नज़र मुल्क की हुकूमत पर है। अब नवाब के रंग को देखकर हमें अपनी कार्यवाहियों को तेज करना पड़ा हैं। हमने नवाब के वजीरों और यहाँ के प्रभावशाली व्यापारियों को अपने साथ मिला लिया है। वे गुप्त रूप से भीतर ही भीतर हमारे साथी और सहायक हैं। इन लोगों में दर्बारी मुसलमान तो वे लोग हैं जो नवाब को गद्दी से उतार कर नवाबी मसनद पर अधिकार करना चाहते हैं और हिन्दू व्यापारी वे हैं जिन्हें हमने विश्वास दिलाया है कि यदि शक्ति हमारे हाथ में आ गई तो उन्हें बेहद इनाम और मुनाफा मिलेगा। किशनदास ऐसा ही आदमी है। वह मुर्शिदाबाद का करोड़पति सेठ है। वह हमारा पक्का दोस्त और मददगार है। नवाब ने हमारी दोस्ती के जुर्म में ही उसका घरबार लूट लिया है तथा परिवार के सब लोगों को क़ैद कर लिया है। केवल वह भाग कर हमारी शरण आया है। इसे हम कैसे नवाब के सुपुर्द कर सकते हैं?"

"बेशक नहीं कर सकते, खैर, अब मुझे क्या हुक्म है?"

"कलकत्ते में मैंने मि. ड्रेक के पास खबर भेज दी है कि सावधान रहें। हमले का खतरा है। इधर मैं भी तैयार हूँ। अब तुम इतना करो कि मुर्शिदाबाद जाओ और देखो कि हक़ीकत में वहाँ क्या तैयारी हो रही

है। सम्भव हो तो नवाब के इरादे का भी पता लगाओ। और जितना जल्द हो मुझे लौट कर खबर दो। तुम यहाँ अभी अपरिचित हो। अतः किसी को कानोंकान भी खबर तुम्हारे आने-जाने की न पड़ेगी। परन्तु तुम घोड़े पर नहीं, पैदल जाओ जिससे किसी की नज़र तुम पर न पड़े। मैं समझता हूँ कि मुर्शिदाबाद में तुम्हें कोई नहीं जानता।"

"जी नहीं।"

"इसी लिए मैंने तुम्हें चुना है क्या, मैं तुम पर विश्वास करूँ?"

"अवश्य महाशय।"

वाटसन साहब ने कुछ गुप्त आदेश दिए। कुछ पत्र दिए फिर कहा—

"तो बस अभी चल दो। सिर्फ एक मील ही तो है।"

वारेन तुरन्त ही तेज़ क़दमों से उसी दम चल खड़ा हुआ।

: ५३ :

मुर्शिदाबाद

मुर्शिदाबाद बंगाल, बिहार और उड़ीसा के सूबेदार नवाबों की राजधानी थी। राजधानी बंगाल में अपनी वही शानशौकत रखती थी जो उत्तर में आगरा और दिल्ली को प्राप्त था। क़ासिम बाज़ार की अपेक्षा मुर्शिदाबाद पुराना शहर था। नवाबों के यहाँ बड़े-बड़े महल-प्रासाद थे। जिनमें नवाबों ज़नानखाने रहते थे। बड़े-बड़े दफ़्तर थे। जहाँ हज़ारों अमले काम करते थे। बड़े-बड़े मेहक़मों के सब दफ़्तर और फ़ौजदारी अदालतें मुर्शिदाबाद ही में थी।

वारेन यद्यपि यहाँ अब तक नहीं आया था और गली-कूचों से भी वाकिफ़ न था, फिर भी वह यहाँ दो-चार आदमियों के नाम लाया था। इनमें एकाध को तो वह स्वयं जानता या, बाकी के नाम वाटसन ने दिए थे। परन्तु उसने पहले ही एक चक्कर सारे शहर का लगाया। घूमते-फिरते वह राजमहल के फाटक पर भी पहुँचा। शहर में भीड-भाड़ भी इतनी थी कि कंधे छिलते थे। यहाँ आ कर उसने देखा फ़ौजें सफ बाँध कर

तैयार हो रही हैं। हाथी घोड़े प्यादों के दल पंक्तिबद्ध खड़े हैं। अफ़सर सेना की व्यवस्था कर रहे हैं। इतनी भारी सेना देख कर उसका कलेजा दहल उठा। वह बड़ी देर तक सेना के इर्द-गिर्द चक्कर लगाता रहा। किसी ने उसे टोका भी नहीं और वह भी किसी से नहीं बोला। इस वक्त आकाश में बादल घिर आए थे। अब बूंदा-बाँदी भी होने लगी थी। वारेन के वस्त्र भीगने लगे तब उसे आश्रय की आवश्यकता हुई। उसने नोटबुक निकाल कर एक पत्र निकाला और गली-कूचों को पार करता हुआ नगर के किनारे पर एक अंधेरी गली में जा घुसा। गली में सफ़ेद पुता हुआ एक दुमंज़िला मकान था। और मकान सब कच्चे थे। यही एक पक्का था। घर के द्वार पर पहुँच कर उसने द्वार खटखटाया। एक वृद्ध पुरुष ने आ कर द्वार खोला। साहब को देख कर बोला—

"तुम कौन हो और मुझ से तुम्हारा क्या प्रयोजन है।"

"क्या आप ही मोहनलाल घोष हैं?"

"हाँ, मैं ही हूँ।"

"तो मैं आप ही के पास आया हूँ। आप यह निशान तो पहचानते ही होंगे?" उसने डायरी खोल कर एक निशान दिखा दिया। वृद्ध ने भयभीत हो इधर-उधर देखा। फिर आहिस्ता से कहा—"भीतर आओ।"

वारेन के भीतर घुसने पर उस द्वार की साँकल चढ़ा ली।

स्वस्थ हो कर बैठने पर घोष बाबू ने कहा—

"कहो क्या काम है?"

"काम मेरा नहीं, कम्पनी बहादुर का है।"

"वही कहो।"

"यह शहर में धूमधाम कैसी है? फौज की तैयारियाँ कैसी हैं?"

"फौज कलकत्ता जा रही हैं।"

"मगर किस लिए?"

"आज पच्चीस तारीख है न।"

"तो इससे क्या?"

"क्या तुम नहीं जानते ?"

"नवाब ने अल्टीमेटम दिया था। यही न।"

"हाँ, मैं कलकत्ता सूचना भेज चुका हूँ।"

"क़ासिम बाज़ार क्यों नहीं भेजी ?"

"खतरा था। नवाब मुझ पर शक करने लगे हैं।"

"क्या क़ासिम बाज़ार पर भी फौज भेजी जायगी।"

"कह नहीं सकता। हो सकता है।"

"बापू देव शास्त्री का घर कहाँ है ?"

"यहाँ से काफी दूर है।"

"तो चलिए, मुझे वहाँ पहुँचा दीजिए, जल्दी कीजिए।"

घोष बाबू कंधे पर शाल रख कर उठ खड़े हुए। दोनों चुपचाप चल दिए। बापू देव शास्त्री मुर्शिदाबाद के प्रसिद्ध विद्वान् और ज्योतिषी थे। नवाब अलीवर्दी खाँ उन्हें बहुत मानते थे। बंगाल में उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। वारेन ने उन्हें वाटसन का पत्र दिया। पत्र पढ़ कर वे वारेन को एकान्त में ले गए। वहाँ उन्होंने देर तक उससे बातें कीं। जब वारेन वहाँ से निकला तो सन्ध्या होने में देर थी तथा बूंदाबाँदी अब भी हो रही थी।

वारेन ने घोष से कहा—"घोष महाशय, आपको अभी मेरे साथ क़ासिम बाज़ार चलना होगा।"

"अच्छी बात है, मैं चलता हूँ।"

"तो आप तुरन्त दो घोड़ों का बन्दोबस्त कीजिए। हमें तुरन्त ही वहाँ पहुँचना चाहिए।"

"मैं एक घोड़ा तुम्हें अभी दे सकता हूँ। तुम उसे ले कर चलो, मैं पीछे आता हूँ।"

दोनों तेज़ी से एक गली में घुस गए। वहाँ से घोड़े पर सवार हो कर वारेन तेज़ी से क़ासिम बाज़ार की ओर सरपट दौड़ा। चलती बार उसने घोष महाशय से कहा—"आप मुझे कान्त बाबू के मकान पर मिलिए घोष महाशय।"

आक्रमण

बज वारेन सरपट घोड़ा दौड़ाता हुआ क़ासिम बाजार पहुँचा तो शाम हो चुकी थी। चिराग़ जल गए थे। नदी तट की अट्टालिकाओं में से जलती दीपावली की कांपती हुई प्रतिच्छाया बड़ी मनोहर लग रही थी। अंग्रेजी छावनी में अंग्रेजी बेण्ड बज रहा था। पार्श्ववर्ती हिन्दुस्तानी बस्तियों में बसने वाले जुलाहों और वैष्णवों की खंजरी और करताल की ध्वनि वातावरण को मुखरित कर रही थी। सब की मिली-जुली आवाज कानों को बड़ी प्रिय लग रही थी।

बहुत से साहब लोग हवा खोरी के लिए कोठियों से बाहर निकले हुए थे। वे दो-दो चार-चार की संख्या में टोलियां बनाए दोस्तों से हँसी ठठोली करते हुए नदी की ओर जा रहे थे। बहुत से अफसर घोड़ों, पालकियों, फीनसों आदि में बैठ कर बागीचों में जा रहे थे। बहुत से किश्तियों पर सवार हो अपनी-अपनी मेमों के साथ गंगा पर ठण्डो हवा का आनन्द ले रहे थे। धनी अमीर घोड़ों की जोड़ियों पर या चौकड़ी में घूमने निकले थे।

वारेन तावड़ तोड़ अंग्रेजी फैक्टरी की ओर दौड़ा जा रहा था। इतने में ही उसने दूर से बहुत सी बंदूकों का शब्द सुना, लोगों ने कहा—कि अंग्रेजी फैक्टरी नवाब की सेना ने घेर ली है। और दोनों ओर से गोलियों की घोर वर्षा हो रही है। बहुत से अंग्रेज और हिन्दुस्तानी गुमाश्ते चीखते-चिल्लाते बदहवास से भागे चले आ रहे हैं। किसी को किसी का ध्यान ही नहीं है। वारेन वहीं अटक कर एक बगल आड़ में खडा हो कर सोचने लगा कि वह क्या करे। पर उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। फैक्टरी में घुसना तो असम्भव ही था। अन्त में उसने बापू देव के परामर्श पर अमल करने का निश्चय किया। और घोड़े की बाग कान्तानाथ की हवेली की ओर मोड़ी। परन्तु तिलंगों ने उसे देख लिया। बहुत से तिलगे शोर

मचाते और गोलियाँ दाग़ते उसके पीछे दौड़े। अब भागने में जान-जोखिम समझ वारेन ने घोड़ा रोक लिया। तिलंगों ने उसे चारों ओर से घेर कर उसके हथियार और घोड़ा छीन लिया। और उसे रस्सियों से बाँध कर धकेलते हुए ले चले। उस भीड़ भड़क्के में धक्के खाते हुए उसने देखा, घोष महाशय भी साथ ही साथ चल रहे हैं। अवसर पाकर उसने घोष बाबू से कहा—कान्ता बाबू को खबर कर दीजिए।

मतलब समझ कर घोष बाबू भीड़ से छिटक कर एक ओर चल दिए। तिलंगों ने वारेन को एक कोठरी में ले जा कर बन्द कर दिया। धीरे-धीरे और भी बहुत से अंग्रेज रस्सियों से बंधे हुए वहाँ आने लगे। उन में वाटसन साहब भी थे।

: ५५ :

अगला क़दम

सब कैदियों को मुर्शिदाबाद ले जाकर शाही कैदखाने में बन्द कर दिया गया। वहाँ यह भी खबर पहुँची कि कलकत्ते पर भी नवाब ने आक्रमण किया था। वहाँ के गवर्नर मि० ड्रेक और कमाण्डर ने भाग कर हुगली और दामोदर के संगम पर स्थित फल्टा द्वीप में आश्रय लिया। फोर्ट विलियम पर नवाब ने क़ब्ज़ा कर लिया, वहाँ के अंग्रेज़ और हिन्दुस्तानी कर्मचारियों को कैद कर दिया गया। कैदियों में हालवेल साहब भी थे।

कांत बाबू के साथ वारेन का पहले ही से परिचय था। उन्होंने घोष बाबू के साथ आकर जेल में कैदियों से बातचीत की। वाटसन साहब ने कहा—हमारे छुटकारे की बात आप छोड़िए। यह काम मुश्किल भी है। तथा उसमें खर्च भी बहुत होगा। लाभ भी उससे कुछ नहीं है। आप वारेन को किसी तरह छुड़ा लीजिए। कान्त बाबू ने बहुत दौड़-धूप की—ख़र्चा भी किया। अन्त में एक डच व्यापारी की ज़मानत पर वारेन की जेल से मुक्ति हो गई। वारेन नया आदमी था। उसे कोई नहीं जानता

था। जेल से बाहर आने से प्रथम वाटसन साहब ने कहा—तुम यहीं मुर्शिदाबाद में चक्कर काटते रहना, तथा—अवसर पाते ही हमें सब घटनाओं की सूचना देते रहना। कान्त बाबू और घोष बाबू तुम्हारी सहायता करेंगे और तुम्हें सब सुविधाएँ मिलती रहेंगी। साथ ही तुम फेल्टा में बैठे हुए हमारे गवर्नर से भी सम्पर्क स्थापित करना और उनकी गतिविधि की सूचनाएँ भी हमें देते रहना। मुर्शिदाबाद और कलकत्ते में घटने वाली घटनाओं की भी सूचना उन तक पहुँचाते रहना। खबरदार रहना।

सब बातों को सोच समझ कर वारेन बाहर आया और मुर्शिदाबाद में कान्ता बाबू के घर में गुप्त रूप से रहने लगा। कान्ता बाबू नहीं चाहते थे कि उनका अंग्रेज़ों से सम्पर्क प्रकट हो जाय। इसके गुप्त रहने ही में भलाई थी। परन्तु कान्ता बाबू ने साहस का परिचय दिया, वारेन को अपने घर में शरण दी, आने वाली विपत्तियों की परवाह न की।

इस समय वारेन के पास एक फूटी कौड़ी न थी। कान्त बाबू ने उसे रुपए भी दिए। क़ासिम बाज़ार में अंग्रेज़ी कोठी के पास ही कान्त बाबू के पिता की दूकान थी। कोठी के आदमियों से उनका परिचय और लेन-देन था। कान्ता बाबू उठती उम्र के तरुण थे। वे बुद्धिमान भी थे और साहसी भी। वे उन दिनों अंग्रेज़ी कोठी में दलाली करते थे। वारेन से दो-चार बार उनका काम पड़ा था। इससे जान-पहचान घनिष्ट हो गई थी। इस बार जो कान्त बाबू ने उन्हें रिहा करा कर और अपने घर रख कर, तथा धन से सहायता करके उन्हें उपकृत किया, इससे वारेन कांता बाबू के अतिशय उपकृत हो गए। फिर उनके निकट सहवास तथा उनकी योग्यता और सौजन्य से प्रभावित होकर वे परस्पर अभिन्न मित्र हो गए।

मुर्शिदाबाद की जेल से रिहा होकर वारेन मुर्शिदाबाद और क़ासिम बाज़ार में बिना रोक-टोक घूमा करते थे। ज़मानत पर छूटे हुए कैदी समझ कर उन्हें कोई नहीं रोकता था। वे सब जगह आ जा सकते थे। मुर्शिदाबाद में नवाब के 'खलीते' नित्य आते थे। उन 'खलीतों' के ज़रिए

वारेन को नवाब के राई-रत्ती हालात मिल जाते थे। जिन्हें वह वाटसन और मि० ड्रेक के पास निरन्तर पहुँचाते रहते थे।

उन दिनों हुगली, मुर्शिदाबाद और क़ासिम बाज़ार में अंग्रेज़ों की पकड़-धकड़ चल रही थी। पर वारेन को कोई न छूता था। ज़मानती रिहाई का परवाना दिखाते ही उन्हें छुट्टी मिल जाती थी। उन्होंने जान हथेली पर रख कर फेल्टा द्वीप की यात्रा नाव में अकेले ही की। यह बड़े साहस का काम था। पर किसी साथी को ले जाने से भेद खुलता था। इससे वह अकेले ही गए। और मुर्शिदाबाद तथा कलकत्ते के सब हाल-चाल मि० ड्रेक को सुनाए। उनकी हिदायतें लीं। ड्रेक ने उनसे संतुष्ट होकर अनुरोध किया कि वे इस कठिन समय में अंग्रेज़ों के भेदिए रह कर उनकी सेवा करें। वारेन ने इसे स्वीकार किया और फिर वह दूसरे तीसरे दिन उनके पास जाने लगे। अब घन्टों मि० ड्रेक से उनकी बातें होती रहतीं। वारेन और कान्ता बाबू के उद्योग से फेल्टा द्वीप में एक बाज़ार भी लगाने की नवाब ने अनुमति दे दी, जिससे गवर्नर ड्रेक साहब और उनके साथियों को खाने-पीने की आवश्यक सामग्री मिलने लगी। इस समय वारेन ने जो बुद्धिमत्ता, कार्यपटुता और कौशल का परिचय दिया, उससे प्रभाव से वह इतना विश्वासपात्र हो गया कि गवर्नर ने अपनी कौंसिल में वारेन को भी शामिल कर लिया। और अब वह मुर्शिदाबाद से एकदम भाग कर फैल्टा ही में रहने लगे। भाग्योदय का यह उनका पहिला क़दम था।

: ५६ :

राबर्ट क्लाईव

सन् १७४२ में फ्रेंच सेनापति ने भारतीय राजाओं को शतरंज के मुहरे बना कर राजनीति की शतरंज खेलनी आरम्भ की। उन्हीं दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी का प्रभाव भी तेज़ी से बढ़ रहा था। इस समय यूरोप में एंग्लो-फ्रेंच युद्ध चल रहा था। इससे दोनों शक्तियां टकरा गईं।

इस टक्कर ने भारत में प्रमुखता प्राप्त करने की प्रतिस्पर्द्धा ने उग्ररूप धारण कर लिया। इस समय डुप्ले पाण्डीचेरी का फ्रैंच गवर्नर था। वह असाधारण प्रतिभाशाली था। दिल्ली में इस समय मुहम्मद शाह रंगीले की रंगरेलियाँ अस्ताचल को जा रही थीं। नादिरशाह ने डगमगाते मुग़ल तख़्त में ऐसी करारी ठोकर मारी थी कि उसके जोड़-जोड़ हिल चुके थे। सन् १७५० में डुप्ले ने ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दी कि भारत के शासकों पर फ्रांस की शक्ति का आतंक बैठ गया। और यह समझा जाने लगा कि फ्रांस की सेनाएँ सारे देश पर छा जाएँगी। डुप्ले के मिजाज़ आसमान पर थे, पांडीचेरी में बड़ा भारी विजयोत्सव मनाया गया। मुज़फ्फरजंग स्वयं डुप्ले के हाथों से राजतिलक कराने के लिए विजयोत्सव में सम्मिलित हुआ। डुप्ले कृष्णा और कुमारी अन्तरीप के मध्यवर्ती प्रदेश का गवर्नर बना दिया गया।

इन दिनों मद्रास की अंग्रेजी फैक्टरी में एक उदासीन-सा युवक क्लर्की का काम कर रहा था। पर क्लर्की के काम में उसका मन नहीं लगता था। इसके अतिरिक्त वह सब से लड़ाई मोल लेता रहता था। इसलिए दफ्तर में इसका कोई दोस्त-हमदर्द भी न था। उसको अफ़सर भी पसंद नहीं करते थे। वह उनसे भी उलझ चुका था। उन दिनों मद्रास का फोर्ट सेन्ट डेविड अंग्रेज़ों का केन्द्र था।

जब मद्रास फैक्टरी में अंग्रेज़ों के हारने के समाचारों से खलबली फैली हुई थी तब क्लाइव ने अपनी सेवाएँ अंग्रेज़ी सेना के अफ़सर के सम्मुख पेश कीं। उसने कहा—"यदि अवसर दिया जाय तो मैं कुछ कर के दिखा सकता हूँ।" अफ़सर एक ऐसे ही साहसी की खोज में था। उसने उसे दो सौ अंग्रेज़ और तीन सौ हिन्दुस्तानी सिपाहियों की टुकड़ी दे कर अर्काट भेज दिया। उसने अपने से कई गुना अधिक शत्रुओं को दलित कर के अर्काट जीत लिया। इससे अंग्रेज़ हर्ष से उछल पड़े। यह अप्रत्याशित विजय थी। इसके बाद ही कलकत्ते की पराजय और अपमान की खबर सुन कर उसने कलकत्ता जाने की अनुमति माँगी। जनरल ने

उसे सारी स्थल सेना का कमाण्डर बना कर बंगाल को रवाना कर दिया। क्लाइव ने कलकत्ता पहुँच कर आनन-फानन यहाँ के क़िलेदार मानिकचन्द को वहाँ से खदेड़ दिया और किले पर अंग्रेज़ी झंडा फहरा दिया। इस कार्यवाही में लोहे ने उतना काम नहीं किया जितना सोने ने। नवाब डर गया। और उसने क्लाइव से सन्धि कर के कलकत्ते पर अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्वीकार कर लिया और उन्हें अपना सिक्का ढालने की भी अनुमति दे दी।

परन्तु क्लाइव के हौसले कुछ और ही थे। वह अब बंगाल का वारान्यारा करने पर तुला था। और यह सन्धि उसने केवल नवाब के विरुद्ध अपनी तैयारी के लिए की थी। क्लाइव इस कूटनीति का केन्द्र था और सिराजुद्दौला उसका शिकार।

इस समय यहाँ उसकी दो बाधाएँ थीं, एक फ्रैंच दूसरा नवाब। फ्रैंचों का अड्डा चंद्रनगर में था। क्लाइव ने दोनों को अलग-अलग नष्ट करने का निश्चय किया। नवाब को तो उसने मीठे शब्दों की लोरियों में सुला दिया। और कलकत्ते पर अधिकार करने के एक ही महीने बाद चंद्रनगर पर आक्रमण कर दिया। नवाब दूर खड़ा मँह ताकता रहा। क्लाइव ने चंद्रनगर पर क़ब्ज़ा कर लिया।

नवाब अलीवर्दी खाँ पन्द्रह बरस नवाबी की मसनद पर बैठा और सन् १७५६ में मर गया। वह कोई दबंगशासक न था। पर उसका काल अच्छी तरह बीता। चोर-डाकुओं का उसने दमन किया, ज़मींदारों के विद्रोह को दबाया। उसका उत्तराधिकारी उसका दोहता सिराजुद्दौला जब गद्दी पर बैठा, तब वह बीस बरस का नवयुवक था। इस समय तक अंग्रेज़ों की सूरत, बम्बई, मद्रास और कलकत्ते की फैक्टरियाँ पूरे तौर पर क़िले का रूप धारण कर चुकी थीं। वहाँ अब सैनिक संगठन तेज़ी से होते जा रहे थे। अब वे व्यापार के नाम पर खुल्लमखुल्ला ज़ोर ज़बर्दस्ती और डाकेज़नी कर रहे थे। नवाब की ओर से उन्हें रोका जाता था तो वे झगड़ा करने को तैयार हो जाते थे।

अलीवर्दी खाँ ने मरते समय सिराजुद्दौला से कहा था कि 'इन

फिरंगियों पर सख्त नजर रखना। मैं ज़िन्दा रहता तो तुम्हें इस डर से मुक्त कर देता, अब तुम्हें ही यह काम करना होगा। बादशाहों की आपसी लड़ाइयों के बहाने उन्होंने हमारी सम्पत्ति को अपने लोगों में बाँट लिया है। इनमें अंग्रेज़ ज़्यादा ज़ोरावर हैं। उन्हें क़िले या फ़ौज में आगे मत बढ़ने देना, वरना मुल्क खो बैठोगे।

पर सिराजुद्दीन जब गद्दी पर बैठा तो राजनीति से कोरा था। वह आराम और लाड़-प्यार में पला था। वह अदूरदर्शी और हठी था। बुद्धिमान भी न था। न उसकी सोहबत ही अच्छी थी। वह लबार और कायर भी था। उसमें गुण थे ही नहीं, जो थे उन्हें उपयोग में लाना नहीं जानता था। गद्दी पर बैठते ही उसके पर निकले। अपने लफंगे दोस्तों की सलाह से उसने राजशाही के राजा रामकृष्ण की बहन रानी भवानी की बेटी तारा को अपने हरम में ज़बर्दस्ती पकड़ लाने के लिए सेना भेज दी। इससे सारे बंगाल में तहलका मच गया। रानी भवानी और राजा रामकृष्ण के प्रति बंगाल में बड़ी श्रद्धा थी। ये दोनों देवस्वरूप व्यक्ति थे। तरुण नवाब के इस दुस्साहसपूर्ण कलंक चेष्टा से बहुत लोग उसके शत्रु हो गए। और जगत सेठ, राजा राम दुर्लभ, राजा राजवल्लभ, मीर ज़ाफर, अमीरचन्द, ख्वाजा वाजिद आदि प्रमुख सम्भ्रान्त और राजपुरुष उसे सिंहासन से च्युत करने के गुप्त षड्यन्त्र रचने लगे।

वह न राजनीति जानता था, न कोई बात राज्य की समझता था। वह अपने दर्बारी अमीर, उमरावों और मन्त्रियों पर निर्भर था। क्लाइव तो ऐसे ही अवसर की ताक में था। उसने अपने मतलब के आदमी छांट लिए। मीर ज़ाफर को उसने बंगाल की मसनद कुछ शर्तों पर देने का प्रलोभन दिया। वाटसन को अपने प्रतिनिधि की हैसियत से नवाब के दर्बार में बैठा दिया। जो षड्यन्त्र का मध्यबिन्दु बना। तीसरा था सेठ अमीचन्द, जो मीर ज़ाफर और वाटसन के बीच दूत कर्म करता था। उसे यह लालच दिया गया था कि उसे नवाब के खज़ाने से तीस लाख रुपए दिए जाएँगे। इसके अतिरिक्त खजाने का पाँच प्रतिशत और दिया

जायगा । और हिन्दू सेठ व्यापारी, एजेन्ट राजपुरुष मीर जाफर के प्रभाव में थे । इस प्रकार वाटसन के नेतृत्त्व में सिराजुद्दौला के चारों ओर फांसी का फंदा लटकाया जा रहा था, परन्तु बदनसीब सिराजुद्दौला बेखबर सो रहा था ।

: ५७ :

सुर्ख़ तलवार

मुर्शिदाबाद से बीस मील दूर पलास के जंगल में वह विश्व विदित निर्णायक युद्ध हुआ । जिस ने भारत के भाग्य पर दो सौ बरस के लिए दासता की मुहर लगा दी । यह एक जादू का युद्ध था, जिस में केवल आधे घण्टे ही विश्वासघात और षडयन्त्र की फुलझड़ियाँ छूटीं और युद्ध जय हो गया । एक ओर था सिराजुद्दौला, फूलों की सेज पर पला हुआ, संसार की गति-विधि से बेखबर, अदूरदर्शी और नादान । दूसरी ओर था क्लाइव—कठिनाइयों की भट्टी में तपा हुआ, संसार की गति-विधि से सावधान, आठों गाँठ कुम्मेत, धूर्त और साहसी । नवाब की सेना में थे पचास हजार पैदल, अठारह हजार घुड़-सवार और तिरपन बड़ी-बड़ी तोपें । प्लासी के मैदान में पहले उसी ने मोर्चा जमाया था । वह थी केवल हथियार बन्द भीड़ । अपने-अपने सरदारों के साथ नत्थी ; न केन्द्र में भक्ति, न युद्ध में शिक्षित, सेनापति सब विश्वासघाती । क्लाइव के पास थे नौ सौ पचास यूरोपियन और दो सौ दोगले तथा इक्कीस सौ हिन्दुस्तानी सिपाही । आठ बड़ी और दो छोटी तोपें । पर सब नियन्त्रित और सुशिक्षित । दोनों दलों में कुछ बारूदी नोक-झोंक हुई । केवल आधा घण्टा । और सिराज भाग निकला । जब वह भाग रहा था—क्लाइव सो रहा था । वाह !!

इस घटना ने इंगलैण्ड को दो सौ बरस की साम्राज्य विभूति और भारत को राजनीतिक दासता प्रदान कर दी । इस महायुद्ध में अंग्रेज़ों के केवल सात यूरोपियन और सोलह हिन्दुस्तानी सिपाही मरे ।
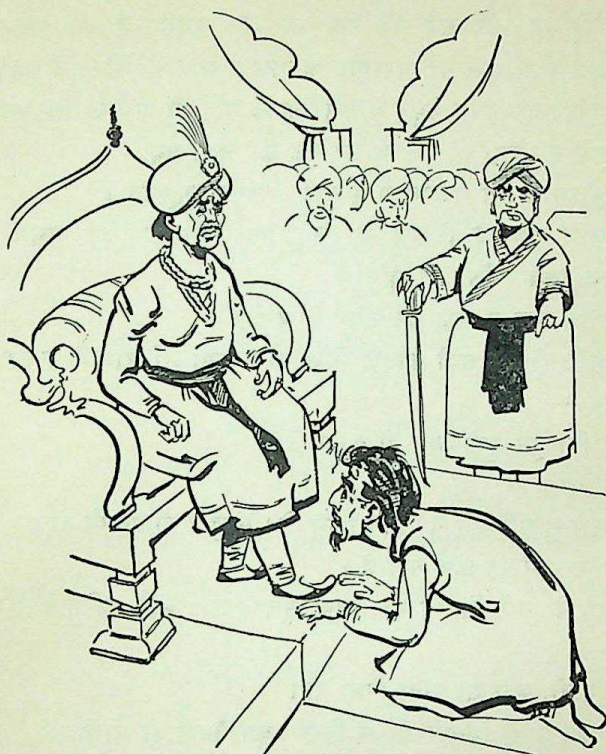
सिराज भाग कर मुर्शिदाबाद पहुँचा। वहाँ से किश्ती की राह राज-महल भागा। पर वह राह में ही पकड़ लिया गया। मुर्शिदाबाद छोड़ने के आठ दिन बाद जंजीरों से बाँध कर वह मुर्शिदाबाद फिर लाया गया। मीर जाफर तख्त पर बैठा था। उसी तख्त पर. जिस पर आठ दिन पहले सिराज बैठता था। उसके सिर पर सिराज ही की रत्न-जड़ित पगड़ी थी।

वह जाफर के सामने आ कर घुटनों के बल गिर गया। आँखें उस की भय से फैली हुई थीं। उसने रो कर कहा—'मेरी जान बचा लो।"

इस पर जाफर का बेटा मीरन तलवार नंगी कर के आगे बढ़ा। उसने कहा—"इस मलऊन को अभी कत्ल करो।"

"लेकिन और सब की राय क्या है। बेहतर है अभी इसे कैद में रक्खा जाय, और मामले पर गौर कर लिया जाय।" मीरन ने कहा—

"आप इस वक्त महल में तशरीफ ले जाएँ, मैं कैदी के लिए मुनासिब इन्तज़ाम कर दूंगा।" मीर जाफर उठ कर चला गया।

मीरन ने तेज आवाज में पुकारा—"लाल मुहम्मद ?"

लाल मुहम्मद सिराज के टुकड़ों पर पला हुआ एक गुलाम था। वह तेज तलवार लिए आ पहुँचा।

"इसे यहाँ से उठा कर उधर ले चलो।"

कैदी को एक गंदी कोठरी में ले जाया गया। सिराज ने कातर स्वर से पूछा—

"क्या तुम मुझे कत्ल ही करोगे ?"

"वेशक।"

"तो खुदा केलिए मेरे हाथ खोल दो। मैं खुदा की बन्दगी तो कर लूं।"

"यह हम पर फर्ज नहीं है।"

डर के मारे सिराज का हलक सूख गया। बड़ी कठिनाई से उसने कहा—

"पानी, जरा सा पानी पिला दो।"

"अब पानी कितनी देर के लिए। बस तैयार हो जाओ।"

सिराज जमीन पर माथा रगड़ने लगा। फिर उस ने सिर उठा कर लपटती हुई जबान से कहा—"वह लोग – वह लोग—बंगाल के एक कोने में मुझे एक तिल भर जमीन न देंगे? गुजारे को एक छोटी सी रकम भी न देंगे। इस पर भी वे राजी नहीं हैं ?"

"नहीं" और इस के साथ ही तलवार गर्दन पर पड़ी। सिराज गिर गया, खून के जोश में उस के मुँह से निकला—"मैं—म—म—रा, हु—हुसेन के खू—खून का बद—ला चु—चुका।" वह जमीन पर लेट गया। और उस का दम निकल गया। लाल मुहम्मद ने उसकी लाश के टुकड़े-टुकड़े कर दिए।

: ५८ :

क्लाइव का गधा क्लाइव के तबेले में

मीरजाफ़र वह गधा था जिस पर क्लाइव सवार था। वह अलीवर्दी खाँ का बहनोई और सिराजुद्दौला का प्रधान सेनापति था। उसे विश्वास था कि मुर्शिदाबाद के खज़ाने में साठ करोड़ रुपया नक़द है। पर जब खज़ाना खोला गया तो केवल बीस करोड़ ही निकला। अंग्रेज अफसरों को जितनी रक़म देने का वादा किया था, उसमें अंग्रेज़ एक छदाम भी कम करना न चाहते थे। उसे प्रत्येक अंग्रेज़ सिपाही को पैंतालिस हज़ार रुपए, क्लाइव को पैंतालिस लाख, कौंसिल के प्रत्येक सदस्य को साढ़े सात लाख देने पड़े। साथ ही कलकत्ता और उसके दक्षिण की भूमि पर अंग्रेज़ों का अधिकार हो गया। कलकत्ते की क्षतिपूर्ति के लिए सतत्तर लाख रुपए कम्पनी की सरकार को दिए गए। क्लाइव को मनसबदार बना कर साढ़े चार लाख वार्षिक आय की एक जागीर भी बख्श दी गई। इन सब भेंटों के अतिरिक्त उसने यह भी प्रतिज्ञा की कि अंग्रेज़ कोठी के साहब परदेशी गुमाश्ते प्रजा पर व्यापार सम्बन्धी किसी प्रकार का अत्याचार करेंगे तो वह हस्तक्षेप न करेगा और अंग्रेज़ों की कोठी के किसी व्यक्ति के साथ यदि कोई झगड़ा करेगा तो वह अंग्रेज़ों की मदद करेगा।

इन सब भेंटों, रिश्वतों और नज़रानों में नवाब का सारा खज़ाना खाली हो गया। पर अंग्रेज अब बात-बात पर उसकी गर्दन दबोचते थे। मीरज़ाफर तख्त पर छटपटाने लगा। अब वह पूरी तरह चूसा जा चुका था और खज़ाने में फौज को तनख्वाह देने को भी रुपया न था। फौज बागी हो रही थी। क्लाइव अपनी रक़म को पचाने इंगलैंड चला गया और बंगाल की शतरंज पर किसी दूसरे मुहरे को चलाने की चाल सोचने लगा। दूसरा मोहरा बना मीर कासिम, ज़ाफर का दामाद। ज़ाफर ने चिनसूरा के डच लोगों से सहयोग करना चाहा पर इससे प्रथम ही वह मसनद से उतार दिया गया। ज़ाफर को सिर्फ तीन साल ही गद्दी पर

बैठना नसीब हुआ और उसे गद्दी से उतार कर मीर कासिम को बंगाल का नवाब बना दिया गया। बादशाह शाह आलम से उसे बंगाल की सूबेदारी का फर्मान भी दिला दिया गया। इस सिले में अंग्रेज़ी कौन्सिल को तीस लाख और गवर्नर वन्सीटार्ट को साढ़े सात लाख रुपए नज़राना देना पड़ा। कम्पनी को मिदनापुर और चिटगाँव के समृद्ध इलाके मिले। मीर ज़ाफर कलकत्ते में नज़रबन्द कर लिया गया। क्लाइव का गधा क्लाइव के तबेले में जा पहुँचा।

मीर क़ासिम ने भी तुरन्त समझ लिया, जिसे वह सिंहासन समझे हुए था—वह अंग्रेज़ों की खुली जेल थी। नवाब वह था, पर बंगाल के मालिक अंग्रेज़ थे। वे मनमानी करते थे—नवाब के साथ भी और प्रजा के साथ भी। उसने सब पर से चुँगी उठा कर अंग्रेज़ों का एकाधिकार नष्ट कर दिया। और अंग्रेज़ों के प्रभाव से बचने के लिए मुंगेर अपनी राजधानी उठा ले गया और फौज़ को नए ढंग पर संगठित कर अंग्रेज़ों से लोहा लेने की तैयारी करने लगा। पर अंग्रेज़ों ने उसे अवसर न दिया। युद्ध छिड गया। मुँगेर में कुछ अंग्रेज़ उसके दर्बारियों से षडयंत्र कर रहे थे। उसने उन अंग्रेजों को कत्ल करा दिया। राजा राजवल्लभ और उसके पुत्रों को गले में वालू का बोरा बंधवा कर गंगा में फिकवा दिया। राजा रामनारायण, उमेदसिंह, बुनियादसिंह, फतेसिंह और कई सेठों को मौत के घाट उतार दिया और भाग कर अवध के नवाब के शरणापन्न हुआ।

अब फिर शतरंज की नाई चाल चली गई, मीर ज़ाफर फिर गद्दी पर आया। पर वह जल्द मर गया और उसका ना लायक बेटा नजमुद्दौला नवाव बना। उस समय क्लाइव बंगाल का गवर्नर जनरल और कमांडर-इन-चीफ बन कर फिर आ गया था। पानीपत की तीसरी लड़ाई हो चुकी थी और मराठों की वधिया बैठ चुकी थी। दिल्ली में अंधेरगर्दी मची हुई थी। बादशाह शाह आलम इलाहाबाद में नवाब वजीर अवध के शरणापन्न था। मीर क़ासिम अवध के नवाब शुजाउद्दौला,

बादशाह शाहआलम को मिला कर बक्सर में फिर एक बार अंग्रेजों से लोहा लिया। पर भाग्य ने साथ न दिया, वह पराजित होकर भाग निकला और अज्ञात अवस्था में मर गया। क्लाइव ने अब बादशाह की गर्दन दबोची और उसकी लाचारी से लाभ उठा कर कम्पनी के नाम बंगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी प्राप्त करली। जिस दिन बादशाह ने इस दुर्भाग्यपूर्ण फर्मान पर हस्ताक्षर किए—वह नौ अगस्त सन् १७६५ का दिन था। यही वह दिन है, जिस दिन भारत में अंग्रेज सल्तनत का आरम्भ हुआ।

: ५९ :

बड़े नवाब के पण्डित

मुर्शिदाबाद में उन दिनों एक निष्ठावान् वृद्ध पण्डित रहते थे। उनका नाम बापूदेव शास्त्री था। परन्तु सारे मुर्शिदाबाद में वे बड़े नवाब के पण्डित के नाम से प्रसिद्ध थे। बापूदेव शास्त्री के पूर्वज पंजाब से महाराज मानसिंह के साथ बंगाल में आ बसे थे। उनका नाम वासुदेव शर्मा था। उनके एक पुत्र थे कृष्णदेव, उन्होंने ढाके के निकटवर्ती विक्रमपुर ग्राम के एक कुलीन ब्राह्मण की कन्या से विवाह किया था। विवाह कर के यहीं बस गए थे। जब नवाब मूर्शिद कुली खाँ के ज़माने में बंगाल की राजधानी ढाका से उठ कर मुर्शिदाबाद में आई तो उनके साथ वह परिवार भी मुर्शिदाबाद आ गया। उस समय इस वंश के जो उत्तराधिकारी मुर्शिदाबाद आए थे उनका नाम जयदेव शास्त्री था। जयदेव शास्त्री को नवाब बहुत मानते थे। उन्हीं के कहने से उन्होंने महाराज राजवल्लभ को अपना दीवान नियुक्त किया था। ढाका और मुर्शिदाबाद में जयदेव शास्त्री के पास माफी की बहुत ज़मीन थी। उनकी आय दस हज़ार रुपए माहवार थी। बापूदेव शास्त्री इन्हीं के पुत्र थे। वे बड़े भारी विद्वान् शास्त्रों क दिग्गज ज्ञाता और सहृदय पुरुष थे। वे ज्योतिष के भी उद्भट विद्वान् थे। लोग उन्हें त्रिकालदर्शी कहते थे। वे ज्योतिष के भी जैसे विद्वान् थे

वैसे ही सहृदय और उदार भी थे। स्वभाव उन का बड़ा कोमल था। वे धर्म भीरू भी बहुत थे। उनका बहुत सा धन परोपकार में ही लगता था। वे आसामी से कभी लगान नहीं मांगते थे। पर कोई उनका लगान रोकता नहीं था। उनके आसामी के अलावा शिष्य गण भी बहुत थे। वे सब नित्य कोई न कोई उपहार उनके लिए लाते ही रहते थे।

एक दिन बापूदेव सन्ध्याकाल में गंगातट पर सन्ध्या-वन्दन कर रहे थे। एक मुसलमान सैनिक उनके सामने जा खड़ा हुआ। सन्ध्या-वन्दन से निवृत्त हो कर उन्होंने उस सैनिक से कहा—"क्या चाहते हो ?"

सैनिक ने कहा—"क्या आप महाराज मानसिंह के गुरु-घराने के बापूदेव महाराज हैं ?"

"हाँ, मैं बापूदेव हूँ। हमारे वृद्ध प्रपितामह महाराज मानसिंह के गुरु थे।"

"क्या मैं आप से कुछ निवेदन करूँ ?"

"तुम क्या अलीवर्दी खाँ हो ?"

"हाँ, क्या आप मुझे पहचानते हैं ?"

"जानता हूँ। तुम यह जानना चाहते हो कि तुम कब बंगाल के सूबेदार होगे ?"

"आप ज़रूर औलिया हैं। आप गैब की बातें जानते हैं।"

"खैर तो जवाब सुनना चाहते हो ?"

"इनायत हो।"

"सम्मुख युद्ध करो, दो बरस में तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।"

"यदि दो बरस के भीतर मैं सूबेदार बन गया तो आप को हज़ार बीघे भूमि जागीर में दूँगा।"

"यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो मैं अभी हज़ार बीघा भूमि तुम्हें दान कर सकता हूँ। महाराज मानसिंह की दी हुई ढाका में मेरी दस-बारह हज़ार बीघा माफी की धरती है। ज़मीन-जागीर की बात छोड़ो,

एक बात गाँठ बाँध लो। बंगाल की सूबेदारी मिलना कठिन नहीं है, उसे रखना कठिन है।"

अलीवर्दी ने दोनों हाथ उठा कर सलाम किया। और कहा—"आप औलिया हैं। मेरी बेवकूफी थी कि मैंने वह बात कही। अब वचन देता हूँ कि मुझे सूबेदारी मिली तो आप ही की सलाह से राज्य करूँगा। आप औलिया हैं। आप आशीर्वाद दीजिए।"

इस बातचीत के एक वर्ष बाद अलीवर्दी खाँ बंगाल का सूबेदार हो गया। वह जब तक ज़िन्दा रहा प्रति दिन एकान्त में एक बार बापूदेव से सब मामलों में सलाह लेता रहा। मरने के समय उसने अपने उत्तराधिकारी सिराज से कहा—"याद रखो अंग्रेज़ों को किले और सेना में न बढ़ने देना। और हमेशा बापूदेव शास्त्री जी से, जब तक वे जिन्दा रहें सलाह ले कर शासन करना। मैंने उन्हें बहुत बार धन, रत्न और भूमि देना चाहा, पर उन्होंने कभी मेरा दान नहीं लिया। और सदा अच्छी सलाह दी।

अलीवर्दी खाँ मर गए। और बापूदेव शास्त्री बड़े नवाब के पण्डित के नाम प्रसिद्ध हुए।

सिराज तो एक वर्ष ही मसनद पर बैठ पाया। अपनी उतावली प्रकृति, दुश्चरित्रता, अयोग्यता का उसे क्रूरतम दण्ड मिल गया। परन्तु उसके राज्य में अंग्रेज डरते ही रहे। अब जब मीर ज़ाफ़र मसनद पर बैठा तो अंग्रेज़ों के जोरोजुल्म से प्रजा त्राहिमम्-त्राहिमाम् करने लगी। इस अत्याचार से घबरा कर लोग घरबार छोड़ कर भाग खड़े हुए। बापूदेव की जिमींदारी भी उजाड़ हो गई। बापूदेव बहुत खिन्न हुए। परन्तु शीघ्र ही मीर जाफ़र भी मसनद से उतार दिया गया। मीर क़ासिम गद्दी पर बैठा। वह समझदार आदमी था। शास्त्री जी से सम्पर्क रखता था। उन्हीं की सलाह से उसने सब लोगों पर से चुंगी उठा दी थी, जिससे अंग्रेजों का एकाधिकार नष्ट हो गया था। फिर वह उन्हीं की सलाह से मुंगेर अपनी राजधानी उठा ले गया। और सेना को नए ढंग पर

सुसज्जित करने लगा। पर अंग्रेजों ने उसे पनपने नहीं दिया। मसनद पर फिर क्लाइव का गधा आ गया और मीर क़ासिम का दुखद अन्त हुआ। परंतु इसी समय बापूदेव शास्त्री पर दैव का वज्रपात हुआ। उनकी एकमात्र संतति एक कन्या थी। उसका उन्होंने ९ वर्ष की उम्र में ही विवाह कर दिया था। उन दिनों बंगाल में 'अष्ट वर्षा भवेद् गौरी' का बोलबाला था। दुर्भाग्य से वह कन्या अभी चौदह वर्ष की भी न हो पाई थी कि विधवा हो गई। इस दारुणशोक के आघात को न सह कर उनकी साध्वी सुलक्षणा पत्नी भी कुछ ही दिनों में चल बसी। घर में रह गए शोकसन्तप्त पिता और वैधव्य दग्धा पुत्री। पण्डित जी यद्यपि बड़े ज्ञानी और धैर्यवान थे परन्तु इस तिहरे विषाद ने उन्हें विचलित कर दिया। अब उनका वह पैत्रिक घर भी उन्हें काट खाने लगा। और वह अपनी विधवा पुत्री को ले कर कलकत्ते चले आए और कालीघाट में रहने लगे।

: ६० :

हा अन्न ! हा अन्न !!

१७७० में वर्षा नहीं हुई। भूमि सूख गई, तालाब सूख गए, नदियाँ काकपेया हो गईं। और गंगा की सारी घाटी में दुर्भिक्ष की काली छाया व्याप गई। नाजुक वदन और सात पर्दे में रहने वाली महिलाएँ, जिन्होंने कभी घर की दहलीज के बाहर क़दम नहीं रक्खा था—सड़कों पर आकर राह चलतों के आगे—धरती पर माथा टेक कर पेट के लिए एक मुट्ठी चावल माँग रहीं थीं। अंग्रेज़ों की कोठियों और बंगलों के सामने उनके बागीचों के बीच से हुगली के प्रवाह में प्रतिदिन हज़ारों दुर्भिक्ष पीडितों की लाशें बह कर समुद्र में जा रहीं थीं। मरते हुओं और मरे हुओं से कलकत्ते के बाज़ार-रास्ते पटे पड़े थे। लोग अपने सम्बन्धियों की लाशें मरघट तक या गंगा तक भी ले जाने में असमर्थ थे, लाशें जहाँ की तहाँ पड़ी सड़ रहीं थीं और गींध-सियार दिन दहाड़े उन्हें नोचते खाते थे। कहीं-कहीं जीवित पुरुष मृत पुरुषों का माँस खा रहे थे।

धनी निधन सब की एक ही दशा थी। धनियों के घरों में रुपए और मुहरें थीं, परन्तु अन्न नहीं। कलकत्ते में अंग्रेज़ों ने बहुत-सा चावल एकत्र कर रखा है, यह सुन कर अन्न की आशा में पुर्निया, दीनाजपुर, बाँकुड़ा, वर्द्धमान आदि नगरों से ठठ के ठठ लोग कलकत्ता की ओर चले आ रहे थे। कुलीन गृहस्थों की कुल बालाएँ आँचल में अशर्फियाँ और स्वर्णाभरण बाँधे बच्चों को संभालती गिरती-पडती कलकत्ते की ओर जा रहीं थीं। एक मुट्ठी अन्न मोल लेने की प्रतारणा में। दरिद्रों का तो पार न था। इनमें बहुत राह में ही भूखी-प्यासी दम तोड़ देतीं थीं। बहुतों के छोटे-छोटे सुकुमार बच्चे माता के सूखे स्तन चूसते ही ठण्डे पड़ गए। वे घरों से चलीं थीं भरी गोद लेकर, पर कलकत्ता पहुँचीं सूनी गोद लिए, केवल एक मुट्ठी अन्न के लिए, जो अंग्रेज़ों की कोठियों में भरा था, जो उन्हीं का था, उन्हीं ने पैदा किया था। परन्तु कलकत्ते में जो अन्न रखा था वह उनके भाग्य में न था। उनके जीने-मरने से अंग्रेजों का क्या हानि लाभ था। उनकी नजर में उनकी सेना थी। वे मर गए तो कौन यहाँ उनकी रक्षा कर सकता था। जो देश को शताब्दियों से अन्न देते रहे थे—वे ही आज अन्न के बिना तड़प-तड़प कर मर रहे थे। गंगा के इस पार कलकत्ते में सान्ध्य वेला में बैंड की उत्तेजक ध्वनि पर विविध पक्वान खा कर शराब पी और नाच रहे थे। और गंगा के उम पार सहस्रों नर कंकाल प्राणों का भार लिए हा अन्न! हा अन्न! पुकार रहे थे। पुकारते-पुकारते निष्प्राण होकर गिर रहे थे, कुछ पतित पावनी गंगा की गोद में, कुछ उसके अंचल पर। उन्हें मरे-अधमरे सब को सरकारी डोम टाँगे पकड़-पकड़ घसीट कर गंगा में फेंक रहे थे। कलकत्ते की गलियों में एक जून भात के लिए स्त्रियाँ गोद के बच्चे को बेच रही थीं।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ बंगाल की लगाम आते ही लार्ड क्लाइव ने नमक पर एकाधिकार प्राप्त कर लिया। कम्पनी बंगाल का समूचा नमक बारह आना मन के भाव से खरीदती और उसे देशी व्यापारियों के हाथ पाँच रुपए मन के हिसाब से बेचती थी। बाद में

डाइरेक्टरों के दबाव से नमक का भाव दो रुपए मन कर दिया गया। इस समय लार्ड क्लाइव बीमार हो कर और इस्तीफ़ा दे कर विलायत चले गए थे। वेरोलस्ट ने इस कमी की पूर्ति धान और चावलों के व्यापार से की। इस समय कार्टियर कलकत्ते के गवर्नर थे।

बंगाल के सबसे अधिक अत्याचारी नवाब शाइस्ता खाँ के ज़माने में भी बंगाल में रुपए का आठ मन चावल बिकता था। अलीवर्दी खाँ ने इस बात पर कड़ी नज़र रखी थी कि विदेशी व्यापारी चावल या धान का व्यापार न करें। उसकी अमलदारी में अंग्रेज़, फ्राँसीसी, आरमीनियन, पुर्तगीज किसी को भी चावल खरीदने की आज्ञा नहीं थी।

सन् १७६६ में अंग्रेजों ने धान का व्यापार आरम्भ किया। ६८ में धान बंगाल में बहुत कम हुआ। प्रजा में लगान देने की भी शक्ति न रही। पर लगान सख्ती से वसूल किया गया। ६९ में फिर पानी नहीं बरसा। किसानों के पास बीज तक न था। इसलिए बहुत कम धान उपजा। वह सब कम्पनी के गवर्नर ने खरीद कर अपने अधिकार में कर लिया। सारे बंगाल में हाहाकार मच गया। बंगाल में इस समय कोई प्रजावत्सल राजा न था। बंगाल का नायब सूबेदार मुहम्मद रजा खाँ, इस समय राजमहल की सेज़ों पर सुख से सो रहा था। उसका काम कड़े हाथों लगान वसूल करके कम्पनी के खजाने में भेजना था। प्रजा के सुख-दुःख से उसे क्या काम ?

ओह, कैसा हृदय विदारक दृश्य है, राह के किनारे एक स्त्री पड़ी है, उसकी छाती से चिपटा हुआ बालक उसके स्तन को चूस रहा है। स्त्री मूर्छित है। और स्तनों से दूध के स्थान पर खून निकल कर बूंद-बूंद बालक के मुँह में जा रहा है। और यह क्या भीषण दृश्य है, एक माता झाड़ी की ओट में पड़ी अपने मृत शिशु को खा रही है। हे ईश्वर, हे भगवान् !

*　　　　*　　　　*

वैरेलस्ट और कार्टियर व्यस्तभाव से कलकत्ते के कौन्सिल हाऊस में परामर्श कर रहे थे।

वैरेलस्ट ने कहा—"इस समय हमीं लोगों पर भारी दायित्त्व आ पड़ा है। इस दुर्भिक्ष का सामना कैसे किया जाय, समझ में नहीं आता। लगान कैसे वसूल होगा ? खेतों में तो कुछ पैदावार हुई ही नहीं। लगान वसूल न हुआ और मुक़र्रिर रकम समय पर हम न भेज सके तो बोर्ड आफ डाइरेक्ट हमें मंसूख कर देगा। हम कहीं के न रह जाएँगे।"

"तो मुनासिब यह है कि इस बार पाँच फी सदी लगान माफ कर दिया जाए। अगले साल दस फी सदी बढ़ा कर हम कसर निकाल लेंगे। इसके अलावा बाजार में और किसानों के घर में जो भी धान हो सब खरीद लिया जाय।"

"बारिश पिछले साल भी नहीं हुई थी। पैदावार बहुत कम हुई थी। फिर भी हम ने कौड़ी-कौड़ी मालगुजारी वसूल कर लीं थी। जोरोजुलम से परेशान किसानों ने बीज का धान तक बेच कर मालगुजारी अदा की थी। इधर बीज की कमी और वर्षा के अभाव से इस साल फसल बोई ही नहीं गई।"

"बाजार में चावल तो अभी है।"

"नायब सूबेदार मुहम्मद रजा ने सब चावल खरीद कर कोठियों में भर लिया है। वे जानते हैं कि ये गंटू भर जाएँगे पर मांस खा कर धर्म भ्रष्ट न होंगे। अब वे मुँह माँगे दामों बेच रहे हैं।"

"उनके पास पैसा कहाँ है ? वे तो अब फटाफट मर रहे हैं। उन्होंने जो फसलें बोई थीं उन्हें और लोग काट ले गए। वे भूखे मर रहे हैं। कम्पनी के गुमाश्तों ने उनका तमाम अनाज खरीद कर अपने गोदामों में भर लिया है। उनका बीज तक का अनाज छीन लिया गया है। कम्पनी के गोदामों में इस समय तीन लाख मन चावल भरा हुआ है।

तो हम को भी तो अपना मरना-जीना देखना है। हम और हमारी फौज तो भूखी नहीं मर सकती। मुल्क के अनाज पर तो कम्पनी का अधिकार होना ही चाहिए। और लगान कड़ाई से वसूल होना चाहिए।"

"और लाखों लोग जो भूखों मर रहे हैं ?"

"उनके लिए पचास हज़ार मन चावल रजा खाँ ने कलकत्ते भेजा था न।"

"लेकिन कम्पनी के गुमाश्ते यह चावल ऊँचे दामों में मद्रास ले जा कर बेच रहे हैं।"

"कोर्ट ग्राफ डाइरेक्टर्स के पास शिकायतें पहुँची हैं। उन्होंने हम से जवाब तलब किया है।"

"इसका जवाब लिख दिया जायगा कि हमारी सेना को उतने समय में जितने ग्रन्न की ग्रावश्यकता है, उतना ही हम ने खरीद कर ग्रपने गोदामों में भरा है। हम ग़रीबों के कष्ट निवारण की भी चेष्टा कर रहे हैं।"

"परन्तु सारी ग्रावादी का एक तिहाई भाग भूख ग्रौर बीमारी से मर गए हैं। ग्रौर जितनी भूमि पर खेती होती थी वह सब की सब बंजर हो गई है।"

"सो तो होगा ही। लोग खाने न खाने की वस्तु खाएँगे तो बीमारी तो फैले ही गी।"

"लेकिन तीस लाख ग्रादमी मर गए हैं साहब ?"

"हिन्दुस्तानी ग्रौरतें बचपन ही से बच्चे पैदा करने लगती हैं। बहुत जल्द वे फिर उतने ही हो जाएँगे। इसके ग्रतिरिक्त किया भी क्या जाय। क्या हम भी उनके साथ ही मर जायँ।"

"कम्पनी के कर्मचारी भी तो स्वार्थी ग्रौर घूसखोर हैं। उनमें न ग्रात्मसम्मान है न कर्त्तव्य की भावना। वे तो धन बटोर रहे हैं।"

"ग्रब इसमें हमारा क्या बस है, उन्हें जिन ग्रनगिनत हिन्दुस्तानी एजेन्टों ग्रौर दलालों से काम लेना पड़ता है, वे सब पक्के लालची, कमीने ग्रौर बेहया हैं। वे ही प्रजा पर घोर ग्रत्याचार भी करते हैं। ग्रौर यूरोपियन ग्रफ़सरों को भी बिगाड़ते हैं।"

"इसमें उनका क्या दोष है। ऊपर से उन पर हमारा डंडा भी तो पड़ता है कि जैसे बने रुपया वसूल करो।"

"तो डंडा तो हम पर भी बोर्ड ग्राफ डाइरेक्टर्स का है। वहाँ रुपया न भेजा जायगा तो हमारा पतंग न कट जायगा।"

"ऐसा तो हरगिज न होना चाहिए। मि० वैरेलस्ट, वरना हम कहीं के न रहेंगे। हमारे हाथ पल्ले तो कुछ लगा ही नहीं।"

"लगेगा भी कहाँ से। अब नवाबी तो खत्म ही हो गई। रही रियाया, सो भूखी नंगी और तबाह है।"

"खैर तो अब कोर्ट ग्राफ डाइरेक्टर के खरीते का क्या जवाब लिख दिया जाय।"

"यही, कि यद्यपि अकाल और महामारी ने मुल्क को तबाह कर दिया है, मगर ग्रानरेबुल डाइरेक्टर्स को परेशान होने की कोई जरूरत नहीं है। अनावृष्टि के कारण धान की फ़सल पूरी न होने पर भी कम्पनी की मालगुजारी वसूल होने में कोई विघ्न न होगा।"

"लेकिन कैसे हो जायगी ?"

"यह हमारे सोचने और करने की बात है। ग्राप यह जवाब लिख दीजिए और फिर इसे सफल करने में जुट जाइए।"

: ६१ :

नवोब

क्लाइव और वारेन हेस्टिंग्स दोनों ही इस समय अपनी-अपनी कमाई लंडन में पचा रहे थे। इन लोगों की शाहखर्ची और ठाठबाट देख कर लंडन के नर-नारी आश्चर्यचकित हो रहे थे। वे लोग इन्हें 'नवोब' कह कर पुकारते थे, जो भारतीय नवाब का ईंग्लिश उच्चारण था। वे इस क़दर फ़ज़ूलखर्ची कर रहे थे कि लण्डन में चीजें मँहगी बिकने लगी थीं। उनके नौकरों की वर्दी ड्यूक की वर्दी को मात कर रही थी। उनकी शानदार गाड़ी के सामने लंडन के मेयर की गाड़ी नगण्य थी। इस प्रकार की चेष्टाओं से वे अपनी बिरादरी से दूसरी बिरादरी में घुसने की चेष्टा कर रहे थे। वे शरीफों की श्रेणी के पुरुष न थे। लुच्चों की जमात वाले

थे—जो एडवाँचरर कहाते थे। पर धन के मद में अकड़ कर अब वे लार्डों से स्पृहा कर रहे थे। निस्संदेह उनके पास बेतोल सम्पदा थी। इस सम्पदा का मुकाबिला उस समय के लंडन के लार्ड नहीं कर सकते थे। इसलिए जहाँ उनके जाति वाले उनसे ईर्षा और द्वेष करते थे, वहाँ ये बड़े लोग उन्हें घृणा और हिक़ारत से देखते थे,इसी तरह—जैसे यहाँ भारत में कभी किसी भंगी चमार को भले आदमियों जैसे कपड़े या सोना पहनते देख कुलीन हिन्दू बौखला उठते थे। यही दशा उस समय इन 'नवोव' लोगों की इंगलैंड में थी। परन्तु इनके प्रशंसक भी थे, जो इनकी बदौलत मालामाल हो रहे थे। जिनके स्वार्थ ईस्टइंडिया कम्पनी के साथ बँधे थे, क्योंकि इन 'नवोव' ने केवल अपनी ही गांठ न भरी थी अपितु इन्होंने इन्हीं तीन वर्षों में कोई आठ करोड़ रुपए मूल्य का सोना बंगाल से इंगलैंड भेजा था। जिससे बोर्ड आफ डाइरेक्टरों की आँखों में सरसों फूल उठी थी। फिर भी क्लाइव उन लार्डों में सब से अधिक योग्य, सबसे अधिक धनी, सबसे अधिक प्रसिद्ध और सबसे ऊँची पदवी धारण कर चुका था। वह बड़ी शान से वर्कलेस्क्वायर के अपने महल में रहता था। उसका एक महल आयशायर में था और दूसरा क्लेयर मोण्ट में। उसने लंडन के कपड़े तैयार करने वाली एक प्रसिद्ध फर्म को अपने नाप की दो सौ कमीजें तैयार करने का आर्डर दिया था। पार्लमेंट में वह बड़ी-बड़ी टक्करें ले रहा था। परन्तु लोग उस पर खुली व्यंग वर्षा करते थे। जो तीर की भाँति उसके हृदय को छेदती थी।

उसका चरित्र भी बहुत हीन था। भारत में उसकी धूर्तता और हृदयहीनता प्रकट हो चुकी थी। प्रसिद्ध था बंगाल में उसने अनेक सम्भ्रान्त कुल की महिलाओं का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा की थी। यहाँ लंडन में आकर उसने खुला खेल आरम्भ कर दिया। उसने एक प्रतिष्ठित विवाहिता लेडी पर हाथ साफ किया। उसने उस उच्च कुलीन महिला के टाइटिल के स्थान पर अपना प्रेम पत्र रख दिया। महिला ने उसकी अच्छी भर्त्सना की। इससे इंगलैंड में सब छोटे-बड़े उससे घृणा

करते और चरित्र की दृष्टि से कोढ़ी समझने लगे। जैसे लोग कोढ़ी की छूत से बचते हैं—वैसे ही लंडन के शरीफ उससे दूर रहने लगे। वह अनंत धन संपत्ति से भरा-पुरा होने पर भी लंडन में मित्र रहित एकाकी रह गया।

और अंत में उस पर गाज पड़ी। पार्लमेंट के समक्ष उस पर बड़े-बड़े संगीन आरोप लगा कर मुकदमा चलाया गया। उसकी रिश्वतों और गुप्त भेंटों का भंडाफोड़ किया गया। उसके करोड़पति बनने की पोल खोल दी गई। उसका प्रतिस्पर्द्धी कर्नल वोर्गोनी था। विरोधियों ने उसके अनाचारों-अपराधों को खोल कर सर्व साधारण के समक्ष रख दिया। समर्थकों ने उसकी देश सेवा का लम्बा-चौड़ा बखान किया। लम्बा विवाद चला। गर्मागर्म बहस हुई। अन्त में पार्लमेंट ने निर्णय दिया—उसने अपराध किए हैं परन्तु देश की बहुत बड़ी प्रशंसनीय सेवा भी की है। उसे छोड़ दिया गया। पार्लमेंट के इस निर्णय से यह पद्धति कायम हो गई कि भारत पर शासन करने वाले अंग्रेजों के अपराध का निर्णय पाप-पुण्य के मानदण्ड से न होकर इंगलैंड की स्वार्थ-सिद्धि के मानदण्ड से होगा।

पार्लमेंट से वह बरी हो गया। परन्तु इंगलैंड भर उससे घृणा करने लगा। वह सुस्त और कभी-कभी विक्षिप्त रहने लगा। जब वह अपना नया विशाल प्रासाद बनवा रहा था तो लोग देख कर कहते थे—वह अपने चारों ओर मण्डराते हुए शैतान के दूतों से बचने के लिए यह महल बनवा रहा है।

दुराचार ने उसे जर्जर कर दिया। और अनेक गन्दी बीमारियाँ, जो उन दिनों इंगलैंड में आम थीं, उसने अपने शरीर में बटोर लीं। अब वह अफीम खाने लगा था और उदास खोया-खोया फिरा करता था। उसने दिल बहलाने के लिए मध्य-यूरोप की यात्रा की, पर व्यर्थ। उसका मनस्ताप बढ़ता ही गया और एक दिन चाकू से उसने आत्मघात कर लिया।

: ६२ .

ब्रिटिश साम्राज्य के महल का शिल्पी

दुर्भिक्ष के कारण सारा देश किसानों से खाली हो गया। कुछ मर गए, कुछ भाग गए। सारी जमीन परती पड़ी रह गई। मालगुजारी भी वसूल नहीं हुई। कम्पनी के कारोबार में भारी अड़चन आ गई। अत्याचार, अकाल और अव्यवस्था की ये खबरें इंगलैंड पहुँचीं। पार्लमैंट ने कम्पनी के डाइरेक्टरों से जवाब तलब किया। डाइरेक्टरों ने इस विपत्ति का सामना करने के लिए वारेन हेस्टिंग्स को बंगाल का गवर्नर बना कर भेजा।

वे पंद्रह बरस बंगाल में रह चुके थे। वहाँ उनके बहुत से मित्र मददगार थे। मुन्शी नवकृष्ण, कांतपोद्दार, गंगा गोविन्द सिंह, छिदाम विश्वास और अन्य लोग भी। वे एक ठिगने क़द के दुबले-पतले, विचारशील व्यक्ति थे। क्लाइव की भाँति बंगाल में बदनाम न थे। वे अपने इन हिन्दुस्तानी मित्रों के साथ मिल कर काम कर चुके थे। छिदाम विश्वास को पहले-पहल इन्होंने ही क़ासिम बाजार की कोठी में प्यादा नियत किया था। कांतपोद्दार से उनकी गहरी दोस्ती थी। विपत्ति के दिनों वे उसके शरणापन्न रह चुके थे। ये सब वारेन हेस्टिंग्स के गवर्नर बन कर आने से बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़ी खुशियाँ मनाईं, उन्हें बड़ी-बड़ी आशाएँ बंधीं। क्लाइव सिपाही था, पर वारेन राजनीति कुशल था। उसका ठण्डा दिमाग उसका सब से बडा सहायक था। परन्तु रुपए का लालची वह भी था। वह पहले भी काफी रुपया लूट चुका था। वह जन्मत: गरीब घर का लड़का था। बचपन में अपने पड़ोस के डेल्सफोर्ड कैसल को ललचाई आँखों से देखता और यह सोचा करता था कि एक दिन इसे खरीद कर छोड़ूंगा। पर वह यद्यपि काफी रकम भारत से बटोर ले गया था, पर वह इतनी न थी कि डेल्सफोर्ड केसल को खरीद ले। इस बार वह बंगाल का गवर्नर बन कर आ रहा था। उसका हृदय

उच्चाकाँक्षाओं से भरपूर था। इस बार लौटने पर वह जरूर डेल्सफोर्ड कैसल को खरीद सकेगा, इसका उसे पूरा विश्वास था।

बंगाल के गवर्नर की कुर्सी पर बैठ कर हेस्टिंग्स के गुण और अवगुण दोनों ही का विकास हुआ। बाद में तो वह भारत का गवर्नर जनरल बन गया। वह तेरह वर्ष कुर्सी पर रहा। इन तेरह वर्षों में उसने क्लाइव के द्वारा डाली गई बुनियाद पर ब्रिटिश साम्राज्य का महल खड़ा कर दिया।

जिस समय उसने कुर्सी सम्हाली, वहाँ दुअमली चल रही थी। नवाब नाम के लिए बंगाल का शासक था। शासन की सारी बागडोर कम्पनी के ही हाथों में थी। कम्पनी की ओर से मुहम्मद रज़ा खाँ फौजदार मुर्कारर था। सैनिक और विदेशी मामलों को छोड़ शेष सब महकमे रजा खाँ की देख-रेख में चलते थे। उसे एक लाख रुपए वार्षिक वेतन मिलता था। परन्तु नवाब के सब खर्च उसी के माफिक होते थे और वही लगान आदि की वसूली करता था, इसलिए उसकी ऊपर की आमदनी भी बेशुमार थी। असल में बंगाल का कर्ता-धर्ता वही था।

वारेन हेस्टिंग्स ने इस दुअमली को खत्म करने की ठान ली। उसने नवाब और रजा खाँ दोनों को खत्म करके शासन सूत्र अपने हाथ लेने की ठान ली। उसने सोचने-विचारने में समय नष्ट नहीं किया। एक दिन आधी रात के समय अचानक बिना सूचना दिए अंग्रेजी फौज ने उसका महल घेर लिया और उसे गिरफ्तार कर लिया गया। यही सलूक उसके सहकारी राजा सितावराय के साथ किया गया। दोनों पर कम्पनी के धन के दुरुपयोग का मुक़दमा कलकत्ते में चला।

कुछ दिन मुकदमे का नाटक चला। फिर दोनों को अचानक ही रिहा कर दिया गया। रजा खां के विरुद्ध नन्दकुमार से गवाही दिलाई गई। इस बदले में नन्दकुमार को पदच्युत रजा खाँ के स्थान पर नियुक्त करने का वचन दिया गया था। परंतु वारेन हेस्टिंग्स ने वचन पूरा नहीं किया। नन्दकुमार के आँसू पोंछने को उसके लड़के गुरदास को नवाब

के निजी खजाने का खजाञ्ची बना दिया गया। नन्दकुमार से वारेन हेस्टिंग्स की पुरानी दुश्मनी थी। अब इस नई धोखा-धड़ी से यह वारेन का पूरा शत्रु बन गया। उसने रजाखाँ से दुश्मनी भी मोल ली और उसके हाथ भी कुछ न लगा।

: ६३ :

राजा नन्दकुमार

एक दिन प्रातःकाल जब वे संध्या वंदन करके घर लौटे तो एक पुरुष को घर के द्वार पर बैठे देखा। बापूदेव ने पूछा—"कौन है?" तो वह व्यक्ति दौड़ कर उनके चरणों में लिपट गया।

"अरे, नन्दकुमार स्वस्ति पुत्र, बहुत दिन बाद आए। इस वृद्ध ब्राह्मण को एक बारगी ही भूल गए बेटा।"

"गुरुवर, आपने जो आदेश दिया था वही मैंने किया। मन, वचन से काम में लगा रहा और अब कृतकृत्य हो आप के चरणों में आशीर्वाद के लिए आया हूँ। इस समय वर्द्धमान, हुगली और नदिया का मैं ही फौजदार हूँ। परंतु मुझे बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है। गुरुदेव इसीलिए चरणों में आया हूँ कि कुछ राह आप दिखाएँ। परंतु माता जी कहाँ हैं? पहले मैं उनकी चरण वन्दना कर आऊँ। और मेरी भगिनी प्रमदादेवी? उनका तो विवाह हो चुका न?"

बापूदेव का मुँह भरे बादलों के समान हो गया। कुछ देर उसके मुँह से बात न निकली, फिर धीरे से कहा—"पुत्र, तुम्हारी माता तो अब नहीं रही। बैकुण्ठ सिधार गई।"

"अरे?" नंदकुमार के हृदय में जैसे किसी ने हथौड़े से चोट की। फिर उन्होंने कहा, "और मेरी पूज्य भगिनी, प्रमदादेवी? वे क्या ससुराल में हैं।"

बापूदेव को आँसू रोकना दूभर हो गया। उन्होंने थूक निगल कर कहा—"यहीं है पुत्र, पर वह विधवा है।"

नन्दकुमार उत्तेजना से अधीर होकर तड़प गए। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उनके प्राण ही निकल रहे हैं। वे गुमसुम बैठ रहे।

मुर्शिदाबाद से थोड़े ही अन्तर पर भद्रपुर ग्राम था, वहाँ पद्मराय नाम के एक सम्पन्न गृहस्थ रहते थे। अलीवर्दी खां के वे दीवान थे। बापूदेव को वे गुरुवत् मानते थे। नन्दकुमार उनका इकलौता पुत्र था। बचपन में बापूदेव से उसने शिक्षा पाई थी। बापूदेव ने शास्त्र, सदाचार और नीति की उसे उत्तम शिक्षा दी थी। आठ वर्ष उनके चरणों में बैठ कर ज्ञानार्जन करके नंदकुमार अलीवर्दी खाँ नवाब की सरकार में अपने पिता की मृत्यु के बाद पण्डित जी के कहने से बहाल हो गए थे। उनके सुपुर्द मालगुजारी उगाहने का काम था। पीछे उनके काम से प्रसन्न होकर नवाब ने उन्हें हुगली का फौजदार बना दिया था। इतने दिनों में उन्होंने तीन-चार लाख रुपया पैदा किया था, और अब जब वे गुरु से मिलने आए थे तो गुरु-पत्नी और गुरु-पुत्री के लिए कुछ वस्त्र और आभूषण भेंट करने लाए थे। परंतु यहाँ आकर जब उन्होंने सुना कि गुरु-पत्नी का देहान्त हो गया और गुरु-पुत्री विधवा हो गई, तो उन्होंने उस भेंट की चर्चा तक नहीं की। वे बहुत देर तक मर्माहत से गुमसुम बैठे के बैठे रह गए।

बापूदेव शास्त्री ही ने मुँह खोला। उन्होंने कहा—"पुत्र, तुमने कहा था कि तुम्हें अपने काम में कठिनाई है, सो वह क्या बात है।"

नंदकुमार ने कहा—"आप को तो ज्ञात ही है कि नवाब मीर ज़ाफर ने ये तीनों जिले अंग्रेजों का ऋण चुकाने के उद्देश्य से अंग्रेजों को दे दिए थे। वह जमाना लार्ड क्लाइव का था। वारेन हेस्टिंग्स से उसकी पटती न थी। उन दिनों इन इलाकों की मालगुजारी वसूल करने का अफसर वारेन हेस्टिंग्स था। पर क्लाइव ने उसे हटा कर मुझे नियुक्त कर दिया। अब हेस्टिंग्स साहब बंगाल के राजाधिराज होकर आए हैं और अपना पुराना बैर मुझसे चुका रहे हैं। बात-बात में खुड़पेंच निकालते हैं। इस समय बहुत लोग अंग्रेजी कोठियों में गुमाश्ता पद पाने को बड़ी-बड़ी घूस

देते और दौड़धूप करते हैं। ये सब नीच जाति के गोप, मछुए और गावटी हैं। जिनके हाथ का छुआ पानी भी कोई नहीं पीता था। अब ये गंगा गोविन्द सिंह, देवीसिंह, नवकृष्ण मुँशी, छिदाम विश्वास वारेन के मूंछ के बाल बने हुए हैं। सब से बढ़ कर कांतपोद्दार, जिनके सात खून भी माफ हैं। ये सब लोग मेरा सर्वनाश करने पर तुले हुए हैं। क्योंकि ये अंग्रेजों के हितैषी और देश के दुश्मन हैं। अंग्रेजों के जुल्म को ये ही नराधम सक्रिय करते हैं। केवल मैं ही अत्याचारों की रोक-थाम करता हूँ। पर अकेला चना क्या भाड़ फोड़ सकता है।"

बापूदेव ने कहा—"दुर्बलों के प्रति सबल अत्याचार करते ही हैं। यह तो पुरानी परंपरा है।"

"पर ये अंग्रेज तो पूरे डकैत हैं। ये मालगुजारी की वसूली नहीं करते हैं, डकैती करते हैं।"

"अंग्रेजों का इसमें क्या दोष है। इस अनाचार का दायित्व तो उस अधम मीर जाफर पर है, जो अफीम की पीनक में पड़ा रहता था।

"वह तो दीनो दुनिया से गया। पर अब क्या किया जाय।"

"तुम्हें अपने पद की चिन्ता है या देश के अत्याचार पीड़ितों की।"

"मुझे दोनों की चिन्ता है।"

"तो एक की चिन्ता छोड़ दो। दो घोडों पर सवार होना ठीक नहीं।"

"क्या मैं नौकरी छोड़ दूं ?"

"तुम नौकरी रखना चाहते हो तो गंगागोविंद की तरह काम करो।"

"वह अधम तो पर घोर अत्याचार कर रहा है। उसके अत्याचार से देश उजाड़ हो गया। उसन तालुक़ेदारों की पर्दानशीन स्त्रियों तक को अपनी माल-कचहरी में नंगी कर के रखा। घोर दुर्भिक्ष पड़ने पर भी कर वसूली में कोई कमी नहीं की गई। बड़े-बड़े जमींदारों को बेल की काँटेदार डालियों से मार-मार कर अधमरा कर दिया। बहुत लोग वहीं मर गए। बहुत जेलों में सड़ रहे हैं।"

"तो वही तुम करो।"

"गुरुदेव, आप मुझे ऐसी आज्ञा देते हैं ?"

'क्या तुम ने देखा नहीं है कि सैकड़ों जमींदार नजराने के रुपए अपने-अपने हाथों में ले कर सुबह से शाम तक उसके द्वार पर खड़े रहते हैं। जो नहीं आ सकते उनके गुमाश्ते और आममुख्तार अपने-अपने स्वामियों की ओर से पत्र और नजराना लिए उसके सम्मुख सिर झुका कर हाजिर होते हैं। किसी राजा रईस-अहलकार को उसके सामने बैठने की हिम्मत नहीं होती। लोग उसे देखते ही दोनों हाथ उठा कर कहते हैं—महाराज की जय हो, लोगों को तुम ने क्या यह लोकोक्ति कहते नहीं सुना ? पुत्र अबाध्य है, दर्बार असाध्य है, केवल गंगागोविन्दसिंह का सहारा है।"

"सब सुना है गुरुदेव, सब देखा है।"

"और तुम ने यह भी सुना है, कि गंगागोविंदसिंह की माता के श्राद्ध में बीस लाख मनुष्यों के योग्य खाद्य एकत्र किए गए थे। जिसका एक पैसा भी उसे न देना पड़ा था। तीन कोस के घेरे में लोगों के ठहरने के लिए छप्पर के मकान तैयार किए गए थे। देश के सब राजा, तालुक़ेदार वहाँ आए थे। गंगागोविंदसिंह का निमन्त्रण फौजदारी अदालत से बढ़ कर समझा गया था।"

"जानता हूँ गुरुदेव, उस कायस्थ क यहाँ मुझ हतभाग्य ब्राह्मण को भी जाना पड़ा था। न जाने से उसके नाराज़ होने का भय था। ईश्वर के असन्तुष्ट होने से रक्षा हो सकती है, पर गंगागोविंदसिंह के नाराज़ होने पर नहीं।"

"जिस तरह वह करता है उसी तरह देवीसिंह, छिदाम वागदी, कान्त पोद्दार और दूसरे भी करते हैं। और धन, सम्मान, वैभव अधिकार पाते हैं। तुम भी यही करो।"

"मैं भी यही करूँ ?"

"नहीं करोगे तो वह वैभव, अधिकार और धन तुम्हें नहीं मिलेगा।"

"न मिले। मैं अनाचार नहीं करूँगा।"

"तो पुत्र, तुम नौकरी को लात मारो। ऐश्वर्य की आशा त्याग दो। और आत्मत्याग की राह चल दो। दुविधा में रहोगे तो विनाश अवश्यं-भावी है।"

बातें करते-करते दोपहर हो गया था। उन्होंने कहा—"पुत्र अब तुम स्नान-भोजन कर विश्राम करो। और बात फिर होगी।"

इतना कह कर बापूदेव उठ खड़े हुए। नन्दकुमार भी उन्हें प्रणाम कर चल दिए।

: ६४ :

बड़ा दाव

इसी समय पार्लमैंट ने भारत के सम्बन्ध में ऐवूलेशन एक्ट पास किया। उसके आधार पर वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बन गया। और चार सदस्यों की एक कौन्सिल उसकी सहायता के लिए नियत की गई। न्याय व्यवस्था के लिए कलकत्ते में एक सुप्रीम कोर्ट की स्थापना हुई। जिसका चीफजस्टिस सर एलीजा इम्फे नियत हुआ। उसके तीन सहायकों में एक फ़िलिप फ्रान्सिस था, जो एक उल्लेखनीय व्यक्ति था।

उन दिनों बोर्ड आव डाइरेक्टर्स तो रुपए की हाय-हाय कर ही रहे थे, भारत में आया प्रत्येक अंग्रेज़ भी धन बटोरने में लगा था। वारेन ने भी इस सुअवसर से लाभ उठाया। उसने दोनों हाथों से धन बटोरना आरम्भ कर दिया। जब उसकी सलाहकार कौन्सिल के सदस्य भारत पहुँचे तो उन्होंने देखा कि गवर्नर जनरल अनुचित रीति पर धनार्जन करने के लिए बहुत बदनाम हो चुका है। सदस्यों में सर फ्रान्सिस बड़े न्यायनिष्ठ और स्पष्ट वक्ता थे। उन्होंने तुरन्त वारेन की कुचेष्टाओं में बाधा डालनी शुरू कर दी। वारेन भी उचित अनुचित का विचार छोड़ उससे भिड़ गया। दोनों कट्टर शत्रु बन गए। दोनों के संघर्ष का शिकार बना नन्दकुमार। वह फ्रान्सिस का सहायक बन गया। बापूदेव शास्त्री की सीख उसने भुला दी, और षड्यन्त्रों के कुचक्र में फंस गया।

महाराज नन्दकुमार ने एक अभियोग पत्र सर फिलिप फ्रान्सिस की मार्फत कौन्सिल में भेजा। उस में लिखा था—

"हेस्टिंग्स जैसे शक्तिशाली पुरुष की शिकायत करके अपनी रक्षा के लिए मैं परमात्मा पर ही भरोसा करता हूँ। आत्ममर्यादा को मैं प्राणों से भी बढ़ कर मानता हूँ। और यदि अब भी असली भेद न खोलूं और मौन रहूँ तो मुझे और भी विपत्तियाँ झेलनी पड़ेंगी। लाचार हो कर मैं यह रहस्य भेद करता हूँ।

"यह कि हेस्टिंग्स ने ३,५४,१०५ रुपए का ग़बन किया है। मुहम्मद रजा से भी भारी रिश्वत लेकर उसे रिहा किया है। जगतचन्द, मोहन-प्रसाद, कमालुद्दीन आदि उनकी इस ग़बन गोष्ठी में सम्मिलित हैं। वे मेरा भी सर्वनाश का षड़यन्त्र रच रहे हैं। क्योंकि मैंने उनका साथ नहीं दिया।"

पत्र में और भी विस्तार से बातें लिखीं थीं। जब पत्र कौन्सिल में सुनाया गया तो हेस्टिंग्स का चेहरा फ़क हो गया। वे क्रुद्ध हो कर बक-झक करते कौन्सिल को बर्खास्त करके उठ गए।

दो दिन बाद फिर कौन्सिल बैठी तो महाराज नन्दकुमार का एक और पत्र खोला गया। उस में उन्होंने प्रार्थना की थी कि यदि कौन्सिल अनुमति दे तो मैं स्वयं कौन्सिल में उपस्थित हो कर सब बातों का प्रमाण पेश करूँ। और घूस के रुपयों की रसीद दाखिल करूँ। पत्र सुन कर कर्नल मानसून ने प्रस्ताव किया कि नन्दकुमार को कौन्सिल में उपस्थित हो कर सबूत पेश करने की आज्ञा देनी चाहिए। यह सुन कर गवर्नर ने खड़े हो कर कहा, यदि नन्दकुमार हमारा अभियोक्ता बन कर कौन्सिल में आयगा तो हम इस अपमान को बर्दाश्त नहीं कर सकेंगे। हमारी अधीनस्थ कौन्सिल को हमारे कार्यों की आलोचना करने का कोई अधि-कार नहीं है। यदि कौन्सिल ऐसा करेगी तो हम वहाँ नहीं बैठेंगे। हम कौन्सिल की बैठक भी स्थगित कर देंगे।

इस पर कर्नल ने कहा—तब यह मामला सुप्रीमकोर्ट में जाना चाहिए।

वाद विवाद बहुत हुआ—अन्त में तय यही हुआ कि नन्दकुमार को कौन्सिल में हाजिर हो कर सबूत पेश करने दिया जाय। परन्तु गोरे गवर्नर पर काला आदमी दोषारोपण करे, यह अनहोनी बात थी।

हेस्टिंग्स उठ कर चल दिए। तीनों सदस्यों ने एकमत हो जनरल क्लीवारङ्ग को सभापति बनाया—महाराजा नन्दकुमार के पेश किए गए प्रमाणों के आधार पर अभियोग प्रमाणित हो गया। कौन्सिल ने वारेन को अपराधी घोषित किया और कहा—वह तमाम ग़बन का रुपया कम्पनी के खजाने में जमा कर दे। पर हेस्टिंग्स ने प्रस्ताव ठुकरा दिया। तब कौन्सिल ने कम्पनी की ओर से सुप्रीमकोर्ट में दावा दायर करने के लिए सब कागज़ात कम्पनी के सालीसीटर जनरल के पास भेज दिए।

हेस्टिंग्स ने उसी रात सुप्रीमकोर्ट के चीफ जस्टिस सर इम्फे की कोठी पर गुप्त मन्त्रणा की। सर इम्फे उसके बालसखा और सहपाठी थे। उसके अगले ही दिन मोहनप्रसाद ने सुप्रीमकोर्ट में हलफिया बयान दाखिल कर के नन्दकुमार के खिलाफ जालसाजी का मुक़दमा खड़ा कर दिया। महाराज नन्दकुमार गिरफ्तार कर लिए गए। उसके विरोधी जहाँ यह आशा करते थे कि वारेन हेस्टिंग्स को कम्पनी की ओर से दण्ड दिया जायगा, यह देख कर अचम्भे में रह गए कि उनका मुख्य गवाह नन्दकुमार गिरफ्तार हो गया है।

: ६५ :

पहला न्याय

न्यायमूर्ति चीफ जस्टिस पीली गाउन पहनकर प्रधान न्यायाधीश के आसन पर आ विराजे। उनके सामने अभियुक्त की हैसियत से महाराज नन्दकुमार खड़े हुए। उनके गुमाश्ता चैतन्यनाथ और दामाद राय राधा-चरण बहादुर तथा बैरिस्टर फ़रार साहब उनके पीछे खड़े हुए। कान्त पोद्दार और दूसरे गवाह हेस्टिंग्स के सहचर दर्शकों की सीट पर आ बैठे। नन्दकुमार पर बीस अभियोग लगाए गए थे। बारह जूरी भी अपने आसन

पर थे। जो सब हेस्टिंग्स के गुट के आदमी थे। कोर्ट के प्रधान दुभाषिये विलियम्स चैम्बर किसी तरीक़े से गैरहाजिर कर दिए गए थे। और गवर्नर के कृपापात्र ईलियट को उनका काम सौंपा गया था। महाराज के बैरिस्टर ने आपत्ति की तो इम्फे साहब ने उन्हें घुड़क दिया। क्लर्क आबद क्राउन ने अभियोग-पत्र पढ़ा।

मुक़दमा एक जाली दस्तावेज का था। पाठकों को याद होगा कि जब महाराज नन्दकुमार अपने गुरु बापूदेव शास्त्री से मिलने गए थे, तो वे कुछ आभूषण उनकी पुत्री प्रमदादेवी के लिए भेंट स्वरूप ले गए थे। परन्तु जब उन्होंने सुना कि प्रमदादेवी विधवा हो गई है, तो उन आभूषणों का उन्होंने जिक्र उन से नहीं किया। अब हकीक़त यह थी, कि उन्होंने वे आभूषण मुर्शिदाबाद के एक साहूकार बुलाकीदास के यहाँ रख दिए थे। बुलाकीदास ने उनके एवज़ में ४८०२१) रुपयों का एक दस्तावेज़ लिख दिया था। कुछ काल बाद बुलाकीदास मर गए। जब कलकत्ते में अकाल पड़ा तो प्रमदादेवी ने पीड़ितों की सहायता करनी चाही, और अपना विचार राजा नन्दकुमार पर प्रकट किया। नन्दकुमार ने तब उन आभूषणों की बात प्रमदादेवी से कही। और उनकी स्वीकृति पाकर वे रुपए बुलाकीदास की गद्दी से वह दस्तावेज़ दिखा कर ले लिए। उन रुपयों का अन्न खरीद कर प्रमदादेवी ने भूखों को बाँट दिया। अब उसी दस्तावेज़ को जाली कह कर यह मुक़दमा खड़ा किया गया था।

जब फरियादी के गवाहों की ज़बानबन्दी आरम्भ हुई तो पहली गवाही मोहनलाल की हुई।

यह वही आदमी था, जिस की पहली दरख्वास्त का मसौदा स्वयं कोर्ट के जजों ने बनाया था। पर यह बात फैसला हो चुकने पर प्रमाणित हुई। दूसरी साक्षी कमालुद्दीन खाँ की हुई। उसने कहा—"महाराज ने मेरे नाम की मुहर मुझ से माँगी थी, आज १४ वर्ष हुए मुझे वह वापस नहीं मिली। जज के दस्तावेज दिखाने पर उसने अपनी मुहर की छाप को भी पहचान लिया। उसने यह भी कहा कि इस बात की खबर ख्वाजा

पैट्रिक सदरुद्दीन और मेरे नौकर हुसैन अली को भी है।"

दस्तावेज़ पर मुहर में अब्दुल कमालुद्दीन की छाप थी। जिरह में जब उस से पूछा गया कि तुम्हारा नाम तो कमालुद्दीन खाँ है, यह मुहर तुम्हारी कैसी ? तब गवाह ने कहा—"धर्मावतार! मैं कभी झूठ नहीं बोलूंगा। मैं दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता हूँ मेरा नाम पहले अब्दुल-कमालुद्दीन ही था। पर तब से अब मेरी हैसियत बढ़ गई है, इस लिए मैं ने अपने नाम के आगे का टुकड़ा छोड़ कर नाम के पीछे लगा लिया है।"

जिरह में जब पूछा गया कि तुम्हें कैसे मालूम हुआ कि तुम्हारा नाम गवाही में दर्ज है ? तब उसने कहा—"महाराज ने मुझ से खुद ज़िक्र किया था कि हम ने तुम्हारे नाम की मुहर गवाहों में लगा दी है; जरूरत पड़े तो इसके सबूत में तुम्हें गवाही देनी पड़ेगी। पर मैंने झूठी गवाही से साफ इन्कार कर दिया था। अल्ला-अल्ला ! भला मैं झूठी गवाही दे सकता था ?"

हुसेन अली, ख्वाजा पैट्रिक और सदरुद्दीन ने भी उस की बात की पुष्टि की। दस्तावेज पर अब्दुल कमालुद्दीन, शिलावर्तसिंह और माधवराव के भी दस्तखत थे। कमालुद्दीन की गवाही तो हो चुकी, बाकी दोनों मर चुके थे। शिलावर्तसिंह के दस्तखत पहचानने को राजा नवकृष्ण आए थे। ये कायस्थ थे। इन्होंने शपथपूर्वक कहा कि यह शिलावर्तसिंह के दस्तखत नहीं हैं।

इतनी साक्षी होने पर भी मामला जोरदार नहीं हुआ। वादी मोहन-प्रसाद ९ बार और उस का गुमाश्ता कृष्ण-जीवन दास २४ बार गवाहों के कटहरे में खड़े किए गए। बार-बार जिरह किए जाने पर कृष्णजीवन ने झुँझला कर कहा—"पद्ममोहनदास के हाथ का लिखा एक इकरार-नामा बुलाकीदास ने स्वयं लिखा था ; उसमें बुलाकीदास ने महाराज के १७६५ में ४८०२१ रुपये के एक तमस्सुक की बाबत साफ-साफ लिखा था।"

कृष्णजीवन के इस इज़हार से कोर्ट के जजों और हेस्टिंग्स के चेहरों का रंग फक हो गया। पर इम्पे साहब ने गम्भीरता से कहा—"कृष्णजीवन ने अब तक जो गवाही दी थी, वह करारेपन से दी थी, पर इस इकरारनामे की बात कहती बार उस का कण्ठ अवरुद्ध हुआ है। इसलिए अन्तिम बात झूठ जान पड़ती है। निस्सन्देह पद्ममोहन ने महाराज नन्दकुमार की साजिश से एक इकरारनामा तैयार कर लिया था।"

उधर कान्त पोद्दार, मुन्शी नवकृष्ण, गंगा गोविन्दसिंह और स्वयं हेस्टिंग्स साहब नए-नए गवाह तैयार कर रहे थे और किसी तरह काम बनता न देख कर, उन्होंने आज़िम अली को गवाहों के कटहरे में ला कर खड़ा किया।

आज़िम अली नमक की कोठी के एजेण्ट एक अंग्रेज का खानसामा था। क्लाइव की प्रतिष्ठित सभा के सभ्य, आवश्यकता होने पर इसे बहुधा सरकारी गवाह बनाया करते थे, क्योंकि उस समय सरकारी वकील नहीं होता था। जब किसी पर नमक की चोरी का अपराध लगाया जाता था तो आजिम अली गवाह बनता था। पर अब वह सभा लोप हो गई थी। आजिम अली ने अब एक औरत से निकाह पढ़ा कर लाल बाजार में जूते की दूकान खोल ली थी।

तीसरी जून से सबूत के गवाहों की जबानबन्दी आरम्भ हुई थी और ग्यारहवीं जून को सबूत की गवाही समाप्त हो गई थी। फिर भी बारहवीं जून को आजिम अली गवाह पेश किया गया। यह कार्यवाही बेज़ाब्ता थी, पर इस मुकदमे में ज़ाब्ता ही क्या था?

गवाहों के कटहरे में आजिम अली को खड़ा होते देख महाराज के गुमाश्ते और उनके दामाद के देवता कूच कर गए। वह एक सिद्धहस्त गवाह था। वे समझ गए, बस यह चश्मदीद गवाह बन कर आया है। चैतन्य बाबू ने इस समय धूर्त्तता से काम लिया। उन्होंने हाथ के इशारे से आजिम को सौ, फिर दो सौ, फिर तीन सौ रुपये देने का इशारा किया, पर आजिम न माना। वह हलफ़ उठा कर कहने लगा—

"मैं महाराज नन्दकुमार का मकान जानता हूँ। उनके गुमाश्ता चैतन्यनाथ ने मेरी दूकान से जूता लिया था। मैं सन् १७६९ के जुलाई मास में चैतन्य बाबू से जूतों के दामों का तक़ाजा करने महाराज नन्दकुमार के मकान पर गया। उसके दस दिन पहले बुलाकीदास की मृत्यु हो गई थी। वहाँ मैं ने चैतन्य बाबू को काम में फँसे हुए पाया। पूछने पर उन्होंने कहा—"इस समय महाराज एक जाली दस्तावेज बना रहे हैं, उसी में मैं इस समय फँसा हूँ। इसके बाद देखा, महाराज बैठक में नाक पर चश्मा चढ़ा कर एक बक्स में से २५-३० मुहरें निकाल कर उन का नाम जोर-जोर से पढ़ रहे हैं। एक मुहर को उन्होंने कमालुद्दीन की कह कर चैतन्यनाथ को दिखाया भी था।"

आजिम का यह इज़हार सुनकर कोर्ट के जजों की आनन्द से बत्तीसी खुल गई। वे उत्सुकता से कहने लगे—'गो ऑन।'

आज़िम अली ने कहा—"हुजूर इसके बाद तमस्सुक की शक्ल के कागज पर वह मुहर छाप दी गई।"

"कहे जाओ, कहे जाओ।"

"इसके बाद चैतन्य बाबू से महाराज ने कहा कि यहाँ मुहर लगाई है, उस के पास ही अब्दुल कमालुद्दीन का नाम भी लिख दो।"

"कहे जाओ।"

"चैतन्य बाबू ने कमालुद्दीन का नाम लिख दिया।"

"क्या तुम लिख-पढ़ सकते हो ?"

"हुजूर अब तो आँखों से दिखाई ही कम देता है, पर आगे फ़ारसी पढ़-लिख सकता था।"

सर इम्पे ने कहा—"फिर ?"

"हुज़ूर, इसके बाद उसी कागज़ पर महाराज ने शिलावत सिंह और माधव के नाम भी गवाहों में लिख दिए।"

इस इजहार से घबरा कर चैतन्य बाबू ने एक हज़ार रुपए का इशारा किया। तब आज़िम ने भी इशारे ही से कहा—घबराओ मत, सब पर
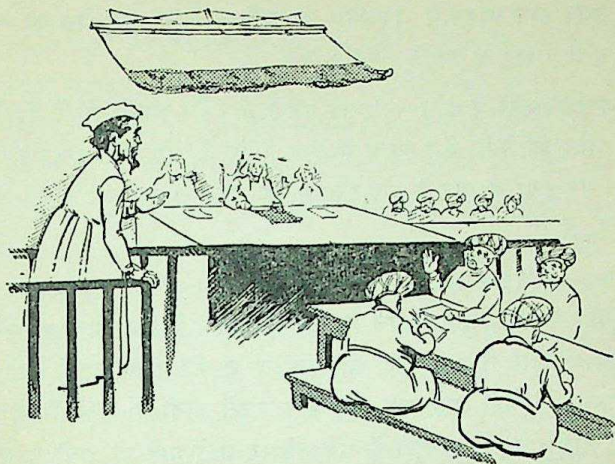
पानी फेरे देता हूँ। उधर जज और फ़रियादी के वकील अधीर होकर—"गो ऑन, गो ऑन," कहने लगे।

आज़िमअली ने कहा—"सब काम खतम होने पर महाराज उसे पढ़ने लगे।"

जजों ने अत्यानन्दित होकर कहा—"अच्छा-अच्छा फिर क्या हुआ ?"

आज़िमअली ने कहा—"बस पढ़कर महाराज ने उसे अपने बक्स में रख लिया। तभी हमने सुना कि बुलाकीदास ने महाराज को तमस्सुक लिख दिया है।"

"फिर ! फिर !!"

"हुजूर, बस इसके बाद ही घर के भीतर मुर्गी बोली और मेरी नींद टूट गई। मेरी छोटी बीवी ने कहा—मियाँ ? आज क्या बिस्तर से नहीं उठोगे ? देखो कितनी धूप चढ़ गई है।"

यह सुनते ही द्विभाषिए ईलयट साहब ने आज़िमअली के मुँह की ओर देखा। मुँह फटा का फटा रह गया। उनके मुँह से निकला—"अयँ ??"

उधर इम्पे साहब ने दुभाषिए से अन्तिम बात समझाने को कहा और उधर गवाह से कहा—"गो ऑन,"

आज़िमअली ने कहा—"हुज़ूर इसके बाद मैंने अपनी छोटी बीबी से कहा, मीर की बेटी, मैंने ख्वाब में देखा है कि मैं महाराज नन्दकुमार के मकान पर गया हूँ और वे बुलाकीदास के नाम से एक जाली दस्तावेज़ बना रहे हैं।"

जब ईलियट साहब ने गवाह की बातों को इम्पे को समझाया तब तो सुप्रीम कोर्ट के सुयोग्य जज विमूढ़ हो आज़िम के मुँह को देखने लगे। पर अब आज़िम ने 'गो-ऑन' की प्रतीक्षा न कर कहना जारी रखा—"धर्मावतार! मेरी बात सुन कर मेरी छोटी बीबी ने कहा, मियाँ तुम हमेशा राजा, उमरा. साहबों के मकानों पर आते-जाते हो, इसी से सपने भी तुम्हें ऐसे ही दीखते हैं।"

जज शून्य हृदय से बयान सुन रहे थे। अन्त में जब चेम्बर्स ने दुभाषिए से कहा—"गवाह से दरियाफ्त करो कि इसने हमारे सामने अभी जो कुछ कहा है वह सब क्या ख्वाब की बातें हैं?"

प्रश्न करने पर आज़िमअली ने कहा—"हुज़ूर, ख्वाब में जो मैंने देखा वही सच-सच बयान कर दिया है। तीन-चार दिन की बात है, इस ख्वाब की बात मैंने मोहनप्रसाद बाबू से कही थी। उन्होंने चट कहा कि तुम्हें गवाही देनी पड़ेगी। मैंने कहा—जो देखा है, सो कह दूंगा, मेरा उसमें क्या हर्ज है। धर्मावतार! मैं हैसियतदार आदमी हूँ। मेरी छोटी औरत मीर साहब की लड़की है। उसके पिदर अब्दुल लतीफ़ एक ज़िले के मालिक हैं। और मौलवी अब्दुल रहमान रिश्ते में मेरे साले होते हैं।"

आज़िम की इस प्रशस्त विरुदावली को सुनकर चैतन्य बाबू से न रहा गया। वे पीछे से बोल उठे—'चचा! आज तो तुम बड़े आली खानदान बन गए। लाल बाजार की रहमानी की लड़की के साथ निकाह पढ़वा कर कहते हो कि मौलवी लतीफ़हुसेन मेरे ससुर हैं।"

आज़िमअली ने गुस्सा होकर कहा—"दुहाई है धर्मावतार की, दिन-दहाड़े, सरे-इजलास एक शरीफ की इज्ज़त पर हमला हुआ है। मैं इस पर तौहीन का मुक़दमा चलाउँगा। इसका इतना मक़दूर, कि मेरी पाक-दामन सास साहबा को यह यह लाल बाज़ार की रहमानी कहे। धर्मावतार! मेरी सास अब पर्दानशीन हैं। वे आगे अनकरीब आठ साल तक लाल बाज़ार में कुछ-कुछ बेपरदे थीं। पर छह महीने हुए मौलवी साहब ने उनके साथ निकाह पढ़वा कर उन्हें अब पर्दानशीन बना लिया है। एक ऐसे इज्ज़तदार घराने की पर्दानशीन औरत की शान में ऐसी वाहियात जबान निकालना सरासर जुर्म में दाखिल है। अदालत मेरी फ़रियाद सुने।"

गवाह के रंग-ढंग देख कर सारी अदालत सन्नाटे में आ गई। अन्त में इम्पे साहब ने महाराज के बैरिस्टर फ़रार साहब से पूछा—"क्या आपको इस गवाह की साक्षी प्रमाण-रूप से ग्रहण करने में कुछ उज्र है?"

बैरिस्टर ने कहा—"जब गवाह स्वप्न की बात कह रहा है तो मैं नहीं समझ सकता कि उसकी साक्षी कैसे प्रमाणभूत मानी जा सकती है।"

न्यायमूर्ति इम्पे ने कहा—"मि० फ़रार! इस गर्म मुल्क में पूरी-पूरी नींद शायद ही किसी को आती हो। प्रायः लोग अर्द्ध-तन्द्रावस्था में रहते हैं। ऐसी दशा में यदि कोई मनुष्य आँख, कान आदि इंद्रियों द्वारा कोई विषय ग्रहण करे तो उसके कथन को लॉर्ड थॉरलो साक्षीरूप से ग्रहण किए जाने में कोई आपत्ति उपस्थित न करेंगे।"

बैरिस्टर ने कहा—"मुझे लॉर्ड थॉरलो के मतामत से कुछ मतलब नहीं। यदि आप इसकी गवाही प्रमाण मानना ही चाहते हैं तो मेरा भी उज्र दर्ज कर लिया जाय।"

न्यायमूर्ति इम्पे साहब ने मातहत तीनों जजों से सलाह करके आज़िमअली की गवाही प्रमाण-स्वरूप ग्रहण कर ली और असामी के बैरिस्टर को सफ़ाई के गवाह पेश करने की आज्ञा दी। बैरिस्टर फ़रार ने कहा कि असामी पर जुर्म प्रमाणित ही नहीं हुआ, तब सफ़ाई कैसी? असामी निर्दोष है। उसे रिहाई मिलनी चाहिए।

जज ने कहा—"अपराध सिद्ध हुआ है, आप सफाई पेश न करेंगे तो हमें जूरियों को समझाने के लिए संग्रहीत प्रमाणों की आलोचना करनी पड़ेगी।"

: ६६ :

ब्रह्महत्या हुइल !

महाराज की ओर से सफ़ाई की गवाहियाँ पेश हुईं। बड़े-बड़े लोगों ने गवाहियाँ दीं। गवाही समाप्त हो चुकने पर जजों ने जूरियों को मुक़दमा समझाया और उस पर एक लम्बी वक्तृता समाप्त होने पर जूरी लोग दूसरे कमरे में उठ गए। आधे घंटे के बाद उन्होंने लौट कर कहा—"महाराज नन्दकुमार अपराधी हैं।"

यह सुनते ही महामति इम्पे साहब ने महाराज को फाँसी का हुक्म दे दिया।

हुक्म सुना कर महाराज फिर जेल में भेज दिए गए। इस बार खेमे के बजाय एक दुतल्ला मकान उन्हें दिया गया। हज़ारों लोग–शत्रु-मित्र–उनसे मिलने आते थे। नवाब मुबारकुद्दौला ने कौन्सिल की सेवा में एक पत्र भेजा। उसमें उसने प्रार्थना की थी कि इंगलैंड के महाराज की आज्ञा आने तक महाराज की फाँसी रोकी जाय।

स्वयं महाराज ने भी जनरल क्लीवरिंग और सर फ्रांसिस के पास एक पत्र इस आशय का भेजा था—

"सर्व शक्तिमान् ईश्वर के बाद आप पर मुझे आशा है। मैं ईश्वर के नाम पर नम्रतापूर्वक आप से अनुरोध करता हूँ कि इंगलैंड के बादशाह की आज्ञा आ लेने तक आप मेरी मृत्यु-आज्ञा को मुल्तवी करा दें। हिन्दुओं के मतानुसार मैं न्याय के दिन इस संकट से उबारने के लिए आप को आशीष दूँगा।"

सुप्रीम कोर्ट से फ़ैसला होने पर भी कौंसिल को इतनी शक्ति थी कि वह इंगलैंड से आज्ञा आने तक फाँसी रोक दे। परन्तु कौन्सिल के

सभ्यों ने इस मामले में पड़ना पसंद नहीं किया। नवाब मुबारकुद्दौला के अलावा महाराज के भाई शम्भूनाथ राव आदि कई व्यक्तियों ने भी आवेदनपत्र भेजे, परन्तु उनका कुछ फल न हुआ।

महाराज को पाँचवीं अगस्त को फाँसी दी गई। किन्तु जनरल क्लीवरिंग ने १४ अगस्त को महाराज का वह पत्र कौन्सिल में खोला। उस दिन महाराज का दशम संस्कार भी हो चुका था। १६ अगस्त को एक मन्तव्य बना कर उस पत्र की प्राप्ति कौन्सिल के काग़ज़-पत्रों में से निकाल दी गई।

क्लीवरिंग को जो पत्र उर्दू में महाराज ने लिखा था, उसके विषय में हेस्टिंग्स ने कहा कि इसमें जजों के आचरण की आलोचना की गई है, अतः यह पत्र जजों के पास भेज देना चाहिए। परन्तु फ्रांसिस साहब ने कहा—"ऐसा करने से पत्र का महत्त्व बढ़ जायगा। इसमें लिखी हुई बातें झूठी और जजों का अपमान करने वाली हैं। मेरी राय में यह पत्र शेरिफ साहब को दे दिया जाय, ताकि वे इसे किसी आम जगह मे सब लोगों के सामने किसी जल्लाद के हाथ से जलवा दें। दूसरे दिन सोमवार को वह पत्र चौराहे पर जल्लाद के हाथ से जलवा दिया गया।

दण्डाज्ञा सुनाने के बाईसवें दिन महाराज को फांसी लगाई गई। यह समय उन्होंने ईश्वराराधन में व्यतीत किया। फांसी के दिन बड़े सवेरे जब महाराज पूजा में बैठे थे, एकाएक कोठरी का द्वार खुला और सामने कलकत्ते के शेरीफ़ मेकरेब साहब दीख पड़े। उन्होंने दुभाषिए से कहा—"महाराज से निवेदन करो कि आज हम आप से अंतिम भेंट करने आए हैं। हम ऐसी चेष्टा करेंगे कि फांसी के समय महाराज को अधिक कष्ट न हो। मुझे इस घटना में शरीक होने का दुख है। महाराज विश्वास रखें कि अंतिम समय तक मैं उनके साथ रहूँगा और उनकी अभिलाषाओं को पूरी करने की चेष्टा करूँगा।"

महाराज ने उन्हें धन्यवाद देते हुए कहा—"मैं आशा करता हूँ कि

मेरे कुटुम्बियों पर भी आप की ऐसी ही कृपा बनी रहेगी। प्रारब्ध अटल है। आप मेरा सलाम कौन्सिल के सभ्यों को कहना।"

बात करते वक्त महाराज न साँस भरते थे, न उदास मालूम होते थे; और न उनका कण्ठ अवरुद्ध दिखलाई देता था। उनका चेहरा गम्भीर था, उस पर विषाद का कुछ चिह्न न था। महाराज की दृढ़ता देख कर मेकरेब साहब अधिक देर तक न ठहर सके। बाहर आने पर जेलर ने कहा—"जब से महाराज के मित्र उनसे मिल कर गए हैं, तब से वे बराबर अपने हिसाब-किताब की जाँच-पड़ताल कर रहे हैं और नोट लिख रहे हैं।"

फाँसी का समय ७ बजे प्रातःकाल था। मेकरेब साहब ठीक समय से आध घण्टा पूर्व जेल गए। वहाँ फाँसी का सब सामान ठीक था। अंग्रेजों की अमलदारी में ब्राह्मण को फाँसी लगने का यह प्रथम ही अवसर था। हज़ारों मनुष्य देखने आए थे। उन सब की आँखों में आँसू झलक रहे थे। खबर पा कर महाराज उतर कर नीचे आए। इस समय भी उनका मुख प्रसन्न था। शेरीफ़ साहब के बैठने पर वे भी एक कुर्सी पर बैठ गए। इतने में किसी ने घड़ी जेब से निकाल कर देखी। यह देख महाराज तत्काल उठ खड़े हुए और बोले—"मैं तैयार हूँ।" पीछे घूम कर देखा तो तीन ब्राह्मण खड़े थे। ये उनका मृतक शरीर लेने के लिए आए हुए थे। महाराज ने उन्हें छाती से लगाया। महाराज प्रसन्न थे, पर ब्राह्मण फूट-फूट कर रो रहे थे।

मेकरेब ने घड़ी निकाल कर कहा—"समय तो हो गया, किन्तु जब तक आप न कहेंगे तब तक वह दुखदाई क्रिया आरम्भ न की जाएगी। एक घण्टे तक सब चुप बैठे रहे। बीच-बीच में महाराज कुछ बातचीत करते रहे और माला फेरते रहे। इसके बाद महाराज उठे, शेरीफ़ को देखा, और दोनों चल दिए। फाटक पर पालकी तैयार थी। महाराज पालकी पर सवार हो कर जेल की तरफ़ चले।

शेरीफ़ और डिप्टी शेरीफ़ पालकी के पीछे-पीछे चल रहे थे। भीड़

बहुत थी, पर दङ्गा-फ़साद का कुछ लक्षण न था। टिकटी के पास पहुँच कर महाराज ने कुछ ब्राह्मणों के न आने के विषय में पूछा। महाराज उन के विषय में पूछ ही रहे थे कि वे भी आ गए। उनसे एकान्त में बात करने के ख़्याल से मेकरेब साहब ने अन्य अफ़सरों को हटाना चाहा; परन्तु महाराज ने उन्हें रोक कर कहा—"मैं सिर्फ़ बच्चों और घर की स्त्रियों के सम्बन्ध में उनसे कुछ कहना चाहता हूँ।" इसके बाद उन्होंने कहा—"जो ब्राह्मण मेरी मृत-देह ले जाएँगे, उन्हें शेरीफ़ साहब अपनी निगरानी में रख लें। उनके सिवा अन्य कोई मेरे शरीर का स्पर्श न करे।"

शेरीफ़ ने पूछा—क्या आप अपने मित्रों से मिलना चाहते हैं?

महाराज ने कहा—मित्र तो बहुत हैं; पर उनसे मिलने का न यह स्थान है और न समय।

शेरीफ़ ने फिर पूछा—फाँसी पर चढ़ कर महाराज फाँसी का तख़्ता हटाने का इशारा किस प्रकार करेंगे?

महाराज ने कहा—हाथ हिलाते ही तख़्ता सरका दिया जाय।

मेकरेब ने कहा—किन्तु नियमानुसार आपके हाथ तो बाँध दिए जाएँगे, आप पैर हिलाकर सूचना दे दें।

महाराज ने स्वीकार कर लिया।

शेरीफ़ ने महाराज की पालकी को फाँसी के तख़्ते तक लाने की आज्ञा दी, पर महाराज पालकी छोड़कर पैदल ही चल दिए। तख़्ते के पास पहुँच कर आप ने दोनों हाथ पीछे कर दिए। अब उनके मुख पर कपड़ा लपेटने का समय आया। उन्होंने अंग्रेज़ के हाथ से कपड़ा लपेटने में आपत्ति की। शेरीफ़ ने एक ब्राह्मण—सिपाही को रूमाल लपेटने का हुक्म दिया। महाराज ने उसे भी रोका। महाराज का एक नौकर उनके पैरों में लिपट कर ले रहा था, उसी को महाराज ने आज्ञा दी। इसके बाद आप चबूतरे पर चढ़ कर अकड़ कर खड़े हो गए।

मेकरेब खिन्न हो अपनी पालकी में घुस गया, किन्तु वह बैठने भी न पाया था—कि महाराज ने पूर्व-सूचना के अनुसार पैर का इशारा दे

दिया और तख्ता खींच लिया गया। बात ही बात में महाराज के प्राण-पखेरू उड़ गए। नियत समय तक शव रस्सी पर लटकता रहा, फिर ब्राह्मणों के हवाले कर दिया गया।

ज्योंही महाराज के गले में फन्दा डाल कर तख्ता खीचा गया, त्योंही लोग चीख मार-मार कर भागने लगे। वे भागते जाते थे और कहते जाते थे—"ब्रह्महत्या हुईल ? कालिकाता अपवित्र हुईल ! देश पापे परिपूर्ण हुईल ! फिरिंगेर धर्माधर्म ज्ञान नाईं !!!"

ब्राह्मणों ने उस दिन निर्जल व्रत रक्खा। बहुत से ब्राह्मण कलकत्ते को छोड़ कर अन्यत्र रहने को चले गए। नगर में हाहाकार मच गया। उसकी गलियाँ लोगों के करुण-क्रन्दन से प्रतिध्वनित हो उठीं।"

: ६७ :

पटाक्षेप

हेस्टिंग्स ने और भी बड़े-बड़े कारनामे किए। रजाखाँ की गिरफ्तारी के बाद नवाबी के रहे-सहे अवशेष भी खत्म हो गए। मुर्शिदाबाद का खजाना कलकत्ते के फोर्ट विलियम में आ गया। अब तो कम्पनी का खजाना लबरेज़ था। और हेस्टिंग्स उसे भरे जा रहा था। उस ने बादशाह की तीस लाख रु० वार्षिक पैन्शन भी बन्द कर दी। कोडा और इलाहाबाद के जिले पाँच लाख में नवाब अवध को बेच दिए। इसके बाद रुहेलखण्ड की लड़ाई में नवाब अवध को सहायता देने के बदले साठ लाख रुपए, और सेना का खर्च नवाब से वसूल किया। इस युद्ध ने रुहेलखण्ड की घाटियों में आग लगा दी। एक लाख से अधिक व्यक्ति घर-बार छोड़ कर जंगलों में भाग गए। उन्हें अपनी बीवी-बच्चों सहित भुखमरी, ज्वर और काँटों से भरे जंगलों का सामना करना पड़ा। अपने बैरी सर फ्रान्सिस को उसने द्वन्द्व युद्ध में परास्त किया।

अंग्रेजों के लिए यह विकट परिस्थिति थी। उन दिनों इंगलैण्ड, अमेरिका और यूरोप में बुरी तरह उलझा हुआ था। अमेरिका ने अंग्रेजों

के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा किया था, और इस सुयोग से लाभ उठा कर इंगलैण्ड के पुराने शत्रु फ्रांस ने भी सिर उठाया था। भारत में भी कम्पनी की सरकार ने महाराष्ट्र, मैसूर आदि राज्यों के संघर्ष सिर पर उठा लिए थे। इस बीच हेस्टिंग्स बहुत धन इंगलैण्ड भेज चुका था। अब उसने और धन बटोरने को पूना और मैसूर की सरकारों से लड़ाई छेड़ दी थी। उसे अधिक से अधिक रुपयों की जरूरत थी। उसने बनारस के राजा चेतसिंह पर हाथ डाला। वह साढ़े बाईस लाख रुपया हर साल कम्पनी को देता रहा था। अब उससे और पाँच लाख की रकम माँगी जा रही थी। वह मिल गई तो हर साल माँगी जाने लगी। उस ने दो लाख रिश्वत भी दी—पर उस का छुटकारा न हुआ। और अब उस से ४० लाख वार्षिक रकम मांगी जा रहीं थी। अन्त में उस का राज्य खुर्द-बुद हो गया—और बनारस शहर ही उजड़ गया। राजा चेतसिंह को गृह-हीन की भाँति ग्वालियर में जीवन के शेष दिन काटने पड़े।

अब वह नवाब अवध की ओर झुका। और नवाब की सलाह,से उसके अवध की विधवा बेगमों को धर दबोचा। बेगम चालीस लाख पहले ही दे चुकी थी, ४५ लाख अब और दिए और वादा ले लिया कि अब और तंग न की जाएँगी। पर छह बरस बाद ही फिर अंग्रेजी फौजों ने बेगम का महल घेर लिया। उस ने जबर्दस्ती महल के द्वार खुलवा लिए, बेगमों को कमरों में बन्द कर दिया गया। खजाने की चाभियाँ माँगी गईं। चाभियाँ न दी गईं तो नौकरों पर अत्याचार आरम्भ किए गए। अन्त में बेगमों ने हार मानी और पन्द्रह लाख के जवाहरात दे कर जान छुड़ाई।

ये मोटे-मोटे आंकड़े थे। छोटों का अन्त न था। अन्त में पटाक्षेप का समय आया। द्वन्द्व युद्ध में हारे हुए सर फ्रान्सिस ने लंडन में हेस्टिंग्स के अत्याचारों का धूम-धाम से भण्डाफोड़ कर दिया था। भारत में उसके दोस्त सर इम्पे से उस की खटक गई थी—अन्त में वारेन हेस्टिंग्स को वापस बुला लिया गया। सर इम्फे को भी बर्खास्त कर दिया गया।

इंगलैण्ड में हेस्टिंग्स के सिर पर वज्र गिराने की सब तैयारी हो चुकी

थी। उसके दोस्तों ने उस का स्वागत किया। पर लंडन पहुँचे अभी उसे एक सप्ताह भी न हुआ था कि इंगलैण्ड के प्रसिद्ध राजनीतिक अग्रणी और अपने समय के सर्वोत्कृष्ट वक्ता एडमण्डवर्क ने पार्लमैंट में उस के विरुद्ध प्रस्ताव उपस्थित किया। इस मुकदमे से सारा इंगलैण्ड हिल गया। मुकदमा आठ बरस चला। वर्क ने गज कर कहा—"इस मुकदमे का सम्बन्ध केवल भारत के हितों के फैसले ही से नहीं हैं। अंग्रेज जाति के यश और मान से भी है। उसके सब काले कारनामे राई-रत्ती खोल कर रखे गए। पर अन्त में उसे छोड़ दिया गया। मुकदमे में वारेन की सब कमाई खर्च हो गई। और वह लगभग कंगाल हो गया।

सर इम्फे पर भी अन्याय करने, झूठी गवाहियाँ बनाने और झूठे हलफनामे तसदीक करने के मुकदमे चले, पर उसे यह कह कर छोड़ दिया गया—कि जुल्मों का प्रकट हो जाना ही काफी है।

: ६८ :

बिना राजा का राज्य

सप्त वर्षीय युद्ध की समाप्ति पर युद्ध के खर्चे की पूर्ति करने के विचार से अंग्रेजी पार्लमैंट ने अमेरिकन व अंग्रेज़ विस्थापितों पर कर लगाया। पर उन्होंने यह कह कर कर देने से इन्कार कर दिया कि जब तक पार्लमैंट में हमारा प्रतिनिधित्व नहीं है—हम कर नहीं देंगे। ब्रिटिश सरकार का कहना था कि हमारी जीत से उन्हें लाभ पहुँचा है और अभी भी उनकी सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सेना की उन्हें आवश्यकता है। झगड़ा बढ़ता ही गया और छोटी-मोटी मुठभेड़ें भी होने लगीं। अभी तक इन विस्थापितों के पास न तो शिक्षित सेना ही थी, न कोई योग्य नेता ही था। प्रत्येक बस्ती स्वतंत्र रियासत बनी हुई थी। परन्तु इस विद्रोह में वे सब संगठित हो उठे, उन्होंने वर्जीनिया के तरुण कृषक वाशिंगटन को अपना नेता चुना। अब उन्होंने एक स्वर से अपनी मातृभूमि से विद्रोह

करने की ठान ली और अपने को अमेरिकन कहना आरम्भ कर दिया। इंगलैंड के बादशाह ने बाक़ायदा सेना भेज कर इस विद्रोह को दबाना चाहा, पर वाशिंगटन ने बड़ी योग्यता से, साहस और वीरता से उसका मुक़ाबिला किया। वाशिंगटन के चातुर्य, अध्यवसाय और व्यवस्था से ये विस्थापित अब नए रूप में अमेरिकन सैन्य के रूप में संगठित हो गए। उन्हें स्पेनिश और फ्रांसीसी विस्थापितों ने सहायता दी। अंत में इंगलैंड के बादशाह को हार माननी पड़ी, और इन अमेरिकन रियासतों पर से अपना सत्ता अधिकार हटा कर उन्हें स्वतंत्र कर दिया। केवल कनाड़ा वालों ने इस युद्ध में भाग नहीं लिया था—वह ब्रिटिश साम्राज्य का अंग बना रहा। विजेता विस्थापितों ने घोषणा कर दी कि वे अब ब्रिटिश प्रजा नहीं हैं और उन्होंने युनाइटेड स्टेटस् के नाम से संगठित होकर एक स्वतंत्र प्रजातंत्र स्थापित कर लिया।

अठारहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में अमेरिकन विस्थापितों ने यह घोषणा की, कि अब वे ब्रिटिश प्रजा नहीं हैं—परन्तु अब उनका राजा कौन बने? लड़ाई में प्रत्येक रियासत ने अपने-अपने खर्चे का भार उठाया था। और अब वे सब मिल कर एक संगठित राष्ट्र के रूप में संगठित हो रहे थे, परन्तु कोई भी रियासत अपनी स्वतंत्रता केन्द्रीय सरकार को सौंपना नहीं चाहती थी। उन्हें एक मत होने में ग्यारह वर्ष लगे। और तब उन्होंने सब रियासतों के चुने हुए प्रतिनिधियों की शासन सभा बना कर संघ-शासन की व्यवस्था की। वाशिंगटन को प्रथम राष्ट्रपति बनाया गया, और यह तय किया गया कि सब रियासतें एक संघ में संगठित हों। अब यह बिना राजा का राज्य था। जो दुनिया के लिए नई बात थी। राष्ट्रपति चार साल के लिए चुना गया था, इसका अर्थ यह था—कि किसी एक पुरुष की सत्ता नहीं बढ़ सकती थी, और न कोई स्वेच्छाचारी ही हो सकता था। प्रजा ही अपना राज्य करने लगी थी।

एक्रासेज़ पिनफ़ेम

यूरोप में सब से प्रथम क्रान्ति फ्रांस में ही हुई। इसकी जड़ में वे विचारक थे, जो उस काल में फ्रांस में उत्पन्न हो रहे थे। इस समय तक यूरोप के दिमाग पुराने अन्ध विश्वासों की जकड़ से बहुत कुछ छुटकारा पा चुके थे। लोग खुले दिमागों से विचार करने लगे थे। प्रमाणवाद वहाँ खत्म हो रहा था। तर्क उसका स्थान ले रहा था। जो महान विचारक इस समय फ्रांस में हुए, उन में वाल्तेयर, रूसो, मांत्स्क्यू आदि प्रमुख विद्वान थे। ये सब नए विचार, नए आदर्श लोगों को दे रहे थे। शताब्दियों से पीड़ित आहत जनता इन के नवीन हितकर संदेशों से राहत पा रही थी। रूसा ने तो क्रान्ति के रेखाचित्र ही बना डाले थे। वह जनता की इच्छा पर जोर दे रहा था। अठारहवीं शताब्दी के फ्रांस के लिए ये शब्द भयानक क्रान्ति मूलक थे—कि जनता की इच्छा कानून है। राजा की इच्छा कानून नहीं। विदरो भी ऐसे ही क्रान्तिकारी विचारों का दृढ़ पुरुष था। विदरो ने ज्ञान के सरलीकरण के सिद्धान्त बनाए थे। क्लेसने लुई पन्द्रहवें का चिकित्सक था। यह विद्वानों की मण्डली से घिरा रहता था। अर्थ-शास्त्र पर उसने अधिकार पूर्ण चर्चा की थी। आगे चल कर उसके विचारों ने व्यापार की बहुत उन्नति की। इनके अतिरिक्त और भी विचारक थे, जो छोटे-छोटे ट्रेक्ट छपवा कर प्रचार किया करते थे। पर ये सब स्वेच्छा-चार चाहे धर्म का हो, चाहे राज्य का, उसके विरोधी थे। उस काल फ्रांस में तेरह न्यायालय थे, जिन्हें 'पार्लमा' कहते थे। ये न्यायालय केवल मुकदमे ही नहीं करते थे, नए-नए कानूनों को अपने यहाँ रजिष्टर में दर्ज भी करते थे। यद्यपि क़ानून बनाने का अधिकार राजा का ही था—पर इन्हें विरोधी आवेदन पत्र राजा को देने का अधिकार था। धीरे-धीरे पार्लमा की शक्ति बढ़ती गई। और लोग खुले-आम राजा के प्रचलित क़ानूनों के औचित्य पर बहस करने लगे।

सन् १६४८ में वैस्टफेलिया की सुलह ने यूरोप के तीस वर्षीय युद्ध

को समाप्त कर दिया। इसके बाद चार्ल्स का सिर काट कर इंगलैंड का गृह युद्ध भी समाप्त हो गया। यूरोप अब पस्त हो रहा था। पर अमेरिका और दूसरे उपनिवेशों के व्यापार से धन मिलने लगा था। इस से देशों की तनातनी कम हो रही थी। चार्ल्स का सिर काट कर और फिर जेम्स द्वितीय को इंगलैंड से बाहर कर के पार्लमेंट सशक्त संस्था बन चुकी थी। अब से चालीस साल पहले तलवार ही काम करती थी, वह काम अब जनता की विचार क्रांति कर रहा थी, परन्तु बादशाह का महत्त्व केवल इंगलैंड ही में कम हुआ था। यूरोप के दूसरे देशों में अब भी निरंकुश राजाओं का बोलबाला था। कहना चाहिए—सारे यूरोप में फ्रांस के लुई चौदहवें को आदर्श मान कर उसकी नकल की जाती थी। असल बात तो यह थी कि यूरोप में सत्रहवीं सदी लुई चौदहवें की ही सदी थी। यूरोप के राजा पूरी शान-शौकत से बेफिक्र हो मौज-मज़ा करते थे। आगे आने वाले दिनों की उन्हें परवाह न थी। इन राजाओं के सम्बन्ध में हालैण्ड के विद्वान् इरेस्मस ने लिखा था—"दुनिया की तमाम चिड़ियों में केवल एक उक़ाव ही ऐसा है जिस की समता किसी बादशाह से की जा सकती है। जो न तो सुन्दर है, न सुरीला, न खाने लायक। बल्के मांस भक्षी, भुक्खड़, और घृणित, सब से बुरा जिस में दूसरो को नुकसान पहुँचाने की भारी सामर्थ्य है। और दूसरों को सताते की जिस में सब से बढ़ कर हिर्स हैं।" परन्तु फ्रांस के प्रधान मन्त्री रिचलू और मेजेरिन ने फ्रांस को आगे बढ़ाया था। अब धर्म अपना महत्त्व खोने लगा था।

आखिर १७१५ में चोदहवाँ लुई मर गया। और उसके बाद उसका पोता पन्द्रहवां लुई गद्दी पर आया। जो ५६ वर्ष गद्दी पर रहा। इस प्रकार चौदहवें और पन्द्रहवें लुई, फ्रांस के दो सिलसिलेवार बादशाहों ने १३१ वर्ष राज किया। पन्द्रहवां लुई अपने निर्लज्ज जीवन और खटपटी स्वभाव के लिए प्रसिद्ध है। राज्य की सारी दौलत बादशाह के ऐशो-आराम में खर्च होती थी, दरबारी लोग अपने-अपने आदमियों को फायदा कराते थे। जिस पर बादशाह खुश हो जाता था उसे जागीर और ओहदे

देता था था निरंकुशता, अनाचार और अयोग्यता का बोलबाला था। पैरिस में एक बार राजा ने एक सभा में कहा था—

"मैं ही राजा हूँ, और राज्य भी में ही हूँ। सिर्फ मुझी को क़ानून बनाने का हक है, मेरी प्रजा मुझ से पृथक् कुछ नहीं है।"

परन्तु वह सही सलामत मर गया, जनता के इन्साफ़ और बदले से बच कर। बदला मिला उसके उत्तराधिकारी सोलहवें लुई को।

सन् १७७६ में अमेरिका में स्वाधीनता का संग्राम लड़ा गया। और अमेरिका ने अंग्रेजों की अधीनता का जुआ उतार, बिना राजा का राज्य क़ायम कर लिया। अमेरिका के इस स्वतन्त्रता संग्राम के युद्ध में भाग लेने फ्रांस के हजारों तरुण गए थे। वे वहाँ से फ्रांस में एक नया आदर्श लेकर लौटे। इस समय वाल्तेयर की ऊँची आवाज फ़ांस में गूँज रही थी—एक्रासेज़ पिनफेम इस घृणित चींज (झूठे विश्वास) को नष्ट कर दो।

: ७० :

जैन्की-डूडिल-डू

पंद्रहवें लुई के मरने के साथ ही फ्रांस में नए युग का आरम्भ हुआ। उसने एक बार कहा था—"मेरी मृत्यु के बाद प्रलय होगी।" उसकी वह भविष्यवाणी पूर्णतया सत्य प्रमाणित हुई। इसी लुई ने न जाने कितनी सुन्दर कोमलांगियों के साथ विलास किया था। प्रजा भूखों मर रही थी। और वह अपनी काम लिप्सा में उनकी कमाई के करोड़ों रुपए पानी की भाँति बहा रहा था। उसका गुर्गा कास्ते-दे-बेरी सतीत्त्व का ही कारोबार करता था। ज्योंही बादशाह किसी स्त्रीं से ऊब जाता, वह फौरन दूसरी अर्ध विकसित किसी युवती को पेश करता था। इस प्रकार वह, 'सर्वप्रिय' लुई दुर्गन्धित गुनाहों का पुंज था।

वह १७७४ में मरा। उसके साथ ही फ्रांस के सिंहासन ने भी दम तोड़ दिया। वह मृत्यु शैया पर पड़ा हुआ क्रांति की हुंकार सुन रहा था। वह हुंकार इस शताब्दी के यूरोप के लिए नया संदेश ला रही थी। उसमें

गम्भीर रहस्य भरा था। वोस्टन का बंदरगाह चाय से काला हो गया था, पेनलेस्विया में काँग्रेस की बैठक हो रही थी, वेन्कर हिल पर चलती हुई गोलियों की बाढ़ में, सितारे वाले झण्डे के नीचे 'जैन्की-डूडिल-डू' की धुन पर लड़ने वाले प्रजातंत्र की घोषणा कर रहे थे।

प्रलय के गर्जन-तर्जन के साथ सोलहवें लुई ने सिंहासन पर डगमगाते चरण रक्खे। आने वाली प्रलय का उसे पता न था। वह नवयुवक था। उसका कोई वैरी न था। उसकी रानी मेरिया आंत्वेनेत आस्ट्रिया की राजकुमारी थी। वह पति से प्रेम करती थी। पर फ्रांस उससे घृणा करता था। वह अनुभव कर रही थी कि वह विदेश में रह रही है। राजा-रानी अपने विलास पर करोड़ों रुपए खर्च कर रहे थे। वे अपने पूर्वजों के पगचिह्नों पर चल रहे थे, उन्हें इस बात की परवाह नहीं थी कि उनके इस ठाठ-बाट का भार असंख्य ग़रीबों पर पड़ रहा है, जिन के लिए जीना भी दूभर हो गया है। उनकी वासन पूर्ति और आमोद-प्रमोद का भार जिन ग़रीबों पर पड़ रहा था, वे उसे धैर्य पूर्वक सह रहे थे, पर उनकी प्रत्येक साँस के साथ ज़हरीली आह निकल रही थी।

लुई सुधार करना चाहता था, पर अमीर-चर्च और रानी इसमें बाधक थे। एक मंत्री आता था और उसे रास्ता नापना पड़ता था। लुई ने राजकीय घोषणाएँ कीं पर प्रजा ने उन्हें ठुकरा दिया। अब सुधार की नहीं, क्रांति की हवा फ्रांस में बह रही थी। देखते ही देखते प्रजा ने 'नेशनल एसेम्बली' के नाम से अपने आप को घोषित किया, और सब अधिकार अपने हाथों में ले लिए। पैरिस वालों ने आक्रमण कर के वेस्टिल पर क़ब्ज़ा कर लिया। अमीर डर कर विदेशों में भाग गए। पैरिस में अरा-जकता अट्टहास करने लगी।

अमीरों के मकान जला डाले गए। उनकी सम्पत्ति लूट ली गई। जागीर प्रथा का खात्मा करने की घोषणा कर दी गई। अमीरों के सारे अधिकार छीन लिए गए। और बिखरे हुए फ्रांस ने संगठित हो कर अपने अधिकारों की घोषणा कर दी। आगे उसी के आधार पर अठारहवीं

शताब्दी में यूरोप में क्रांति हुई। और एक दिन भूखे-नंगे नर-नारियों की भीड़ ने वार्सेल्ज को घेर लिया। लोग राजमहल में जा घुसे, वे बादशाह को पैरिस ले आए। एसेम्बली की बैठकें पैरिस में होने लगीं।

अब फ्रांस में नवीन राजपद्धति चल रही थी। एक के बाद दूसरे सुधार तेज़ी से हो रहे थे। चर्च के नियम भी बदल रहे थे। परन्तु अभी रक्त की एक बूंद भी नहीं गिरी थी।

अब पादरी और अमीर, जो देश से बाहर भाग गए थे, दूसरे देशों के राजाओं को फ्रांस पर चढ़ाई करने को उभार रहे थे। इधर जनता इन भगोड़े अमीरों को दण्ड देने के लिए बादशाह को मजबूर कर रही थी। लुई को राह न सूझ रही थी। और वह एक दिन अवसर पा कर प्रजा के हाथों से भाग खड़ा हुआ। पर पहचान लिया गया और पकड़ा गया। वह गिरफ्तार कर के पैरिस ले आया गया।

अब फ्रांस से वोर्नियो, सेन्तजस्त, रोब्सपियर, दांते, मेरा मेडमरोज़ां आदि क्रांतिकारियों ने फ्रांस में प्रजातंत्र की घोषणा कर दी। लुई भगोड़े अमीरों और देश-विदेश के राजाओं से फ्रांस पर चढ़ाई कर के उसे फिर से गद्दी पर बैठाने के षड्यंत्र रच रहा था। क्रांतिकारियों ने उस पर षड्यंत्र का, देशद्रोह का मुकदमा चला दिया। दोष प्रमाणित हुआ। और अब यह विचार होने लगा कि राजा को क्या दण्ड दिया जाय।

एसेम्बली ने "लुई अपराधी है या नहीं ?" इस पर मत लिए।

बहुमत हुआ—"अपराधी है।"

फिर मत लिए—"इसे क्या दण्ड दिया जाय ?"

बहुमत हुआ—"प्राण-दण्ड।"

फिर मत लिए गए—"कब ?"

बहुमत हुआ—"तुरन्त।"

काम खत्म

अब वह अभागा सोलहवां लुई, साठ बादशाहों की गद्दी का उत्तराधिकारी, साठ बादशाहों के हज़ार वर्षों के स्वच्छन्द शासन का अन्तिम प्राणी आज वधस्थली की ओर जा रहा था। ओह, राजसिंहासन और वधस्थल आज परस्पर आलिंगन कर रहे थे।

साढे आठ बज गए थे। पास के कमरे का दरवाज़ा खुला। महारानी मेरिया अपने लड़के का हाथ पकड़े भीतर आई। मदाम-रोलाँ और मदाम एलिज़ाबेथ पीछे आ रहीं थी। ये सब बादशाह स गले मिले। गहरा सन्नाटा था, लोगों के साँस लेने की आवाज़ भी आ रही थी। रानी राजा को दूसरे कमरे में ले जाना चाहती थी। उसे मालूम न था कि वहां पादरी राजवर्थ बैठा है।

राजा ने कहा—"नहीं, चलो, भोजन के कमरे में चलो। वहीं मैं तुमसे मिल सकता हूँ।"

वे वहाँ गए। और काँच के किवाड़ बन्द कर लिए। बादशाह बैठ गया। रानी उसके बांए और एलिज़ाबेथ दाहिने बैठी। मादाम रोलाँ सामने और छोटा राजकुमार बादशाह के घुटनों के पास खड़ा था। वे सब बादशाह की ओर झुक रहे थे, कभी आलिंगन करते थे। बादशाह जब बोलता तो शाहजादी आहें और उसासें भरती। दो घण्टे तक यह व्याथापूर्ण मुलाक़ात होती रही, और अंत में वे विदा हुए। रानी ने रोते हुए कहा—"प्रण करो कि तुम कल हमसे अवश्य मिलोगे ?"

राजा ने कहा—हाँ अवश्य, एक ही बार और एक ही बार। जाओ प्रिये, मेरे और अपने लिए प्रार्थना करो।

* * *

आधी रात तक बादशाह पादरी के साथ रहा—फिर गहरी नींद सोता रहा

क्लेरी ने उसे भोर में जगाया। उठते ही उसने कहा—क्लेरी, मैं नहीं चाहता कि जल्लाद मुझे छुए, तुम अपने हाथ से मेरे बाल काट दो। पर संदेह का वातावरण था, छुरी उस तक नहीं लाई जा सकती थी। उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं हुई। पर क्लेरी ने उसके बाल जमा दिए।

राजा ने एक अंगूठी निकाली। और उसे बारंबार पहनने लगा। यह उसके विवाह की अंगूठी थी। इस समय कुछ मधुर स्मृतियाँ उसके मस्तिष्क में घूम रहीं थीं। वह इस अंगूठी को रानी को लौटाने वाला था। आह, यह उसका मूक संदेश था। उसने रानी से फिर मिलने का प्रण किया था—पर यह सम्भव नहीं था। फिर भी उसने पादरी से अपनी स्त्री-बच्चों से भेंट करने की इच्छा प्रकट की।

पादरी ने कहा—"यह अन्तिम मिलाप बहुत दुखदाई है और इसके बाद अलग होना और भी करुण।"

"अच्छी बात है धर्मपिता, मैं अपनी पत्नी और बच्चों को यह दुःख न दूंगा। अंतिम भोजन के समय भी उसे छुट्टी नहीं दी गई।

नौ बजे संतरी और सिपाही आए। कमरे का द्वार खुला। बादशाह पादरी के साथ गिरजे में गया। जब वह बाहर आया तो उसने पूछा।

"क्या समय हो गया ?"

"हाँ," संतरी ने कहा।"

"पर अभी ठहरो, मैं काम लगा हूँ" उसने वापस जाकर घुटने टिकाए और पादरी का आशीर्वाद लिया। फिर उसने सेन्तारे की ओर घूम कर कहा—"क्या तुममें से कोई कम्यून का सदस्य है ?"

एक आदमी आगे बढ़ा। बादशाह ने उसे मुहरबन्द एक लिफाफा दिया और कहा—"इसे प्रेसीडेन्ट को देना।"

पर उसने निर्दयता पूर्वक जवाब दिया—"मैं आपको वधस्थल पर ले जाने के लिए आया हूँ। मैं कोई कागज़ नहीं ले जा सकता।"

तब उसने वे कागज़ दूसरे व्यक्ति को दे दिये। और कहा—"चलो।"

* * *

पैरिस में कब्रिस्तान का सन्नाटा था। सशस्त्र नागरिक नियुक्त स्थानों पर मुस्तैद थे। किसी को घूमने की आज्ञा न थी। सड़कें सुनसान थीं। सैनिक पत्थर की मूर्ति की भाँति खड़े थे। ऐसा प्रतीत होता था किसी जादूगर की करामात से पैरिस पत्थर का हो गया हो।

केवल एक गाड़ी अपनी खड़खड़ाहट से सन्नाटा तोड़ती जा रही थी। उसमें बैठा हुआ लुई प्रार्थना कर रहा था। वह दूसरी दुनिया की तैयारी कर रहा था, पर उसके विचार इसी दुनिया में चक्कर काट रहे थे। वधस्थल आ गया। तब उस का नाम 'पेलेस-डी क्वीजे था। अब उसे 'पेलेस-डी-रेव्योल्यूसाँ' कहते हैं। इसी महल के पास एक ऊँचे चबूतरे पर लुई १४ वें की मूर्ति रखी थी। मूर्ति हटाकर वहाँ इस समय जिलेटिन-सिर काटने का यन्त्र रख दिया गया था। दर्शकों की अपार भीड़ थी। टाउन हाल में कान्वकेशन की बैठक हो रही थी। वहाँ प्रत्येक तीसरे मिनिट सूचना पहुँच रही थी।

गाड़ी आकर खड़ी हो गई। लुई बैठा प्रार्थना करता रहा। तब वह बाहर निकला। उसके मस्तिष्क में दुःख और क्रोध का द्वन्द्व मचा हुआ था, और मृत्यु की कराल छाया उस पर पड़ चुकी थी, उसने पहरेदारों से कहा—पादरी एजवर्थ का ख्याल रखना। ढोल बजने लगे। बादशाह ने चिल्ला कर कहा—खामोश। सन्नाटा हो गया। वह ज़र्द रंग का कोट, भूरा ब्रिचेज और सफेद मोजे पहने था। जल्लाद उसे बाँधने को आगे बढ़े। उसने उन्हें रोक दिया। कोट उतारा। उसकी जाकेट दीखने लगी। फिर उसने पादरी के सामने घुटने टेक दिए। पादरी ने आशीर्वाद दिया। वह उठा और सीढ़ी चढ़ने लगा। जल्लादों ने उसे पकड़ा।

"तुम चाहते क्या हो ? उसने कहा।"

"आपको बाँधना" जल्लादों ने कहा।

"नहीं, मैं कभी ऐसा न होने दूंगा।"

इसी समय पादरी ने आगे बढ़ कर कहा—"महानुभाव, अपना

अन्तिम त्याग कीजिए। इस से आप में, परमेश्वर में और समानता होगी।"

राजा ने हाथ फैला दिए। जल्लादों ने उन्हें रूमाल से बाँध दिया। और गर्दन के बाल काट दिए।

बादशाह अब जिलेटिन की ओर बढ़ा। उसने अपने पूर्वजों के महल पर दृष्टि डाली। फिर कहा—"भाइयो, मैं निर्दोष मरता हूँ और अपने दण्ड देने वालों को क्षमा करता हूँ। फ्रांस का कल्याण हो।"

एकाएक एक घुड़सवार ढोल बजाने वाले की ओर दौड़ा, और बोला—"बजाओ जोर से।"

ढोल बज उठे। और लुई की आवाज उस में डूब गई।

लुई ने मशीन पर सिर टेक दिया और कहा—"जल्लाद अपना काम पूरा करे।"

राजवर्थ पादरी ने कहा—"साधु लुई के लड़के स्वर्ग को जा।"

घातक कुल्हाड़ा गिरा। ढोल-दमामे गड़गड़ा उठे, और राजा का सिर कट कर एक ओर लुढ़क गया।

जल्लाद ने सिर उठा कर भीड़ को दिखाया। भीड़ हर्षोन्मत्त हो। टोपियाँ उछालने और प्रजातन्त्र की जयजयकार करने लगी।

कान्वोकेशन के सदस्य हाथ मलते हुए उठ खड़े हुए। वे बोले—"काम खतम।"

* * *

रानी ने ढोल की आवाज सुनी। उसने कहा—"तो वे चले गए? हम से मिले भी नहीं।" उस की आँखों से आँसुओं की अविरल धारा बह चली। लुई के बच्चे और बहनें भी रोने लगीं। परन्तु उन सब पर भी मृत्यु की भीषण छाया पड़ चुकी थी। एक को छोड़ कर, जो 'डचेज-ड-एनोलेम' बन कर अपना दुखी-संतप्त जीवन बिताने वाली थी—वे सब मृत्यु की भेंट होने वाले थे।

गरजती दीवारें

वड़ी सख्त सरदी थी। पैरिस गहरे कुहरे में डूबा हुआ था। मार्च का महीना था। उन दिनों पैरिस में सन्नाटा छाया हुआ था। यद्यपि अब दस बज चुके थे—पर सड़कों पर इक्के-दुक्के ही आदमी नज़र पड़ते थे। गली-कूचे सुनसान थे। लोगों के मुँह पर हवाइयाँ उड़ रही थीं। लुई की हत्या के बाद यूरोप भर फ्रांस का दुश्मन हो गया था। और यूरोप की शक्तियों ने उसे चारों ओर से घेर रक्खा था। इंगलैण्ड ने तो उसके कई इलाके दबोच लिए थे। स्पेन की सेनाएँ बढ़ी चली आ रही थीं। हालैण्ड और प्रशिया ने उत्तरी फ्रांस में मोर्चे बनाए हुए थे। राईन नदी से अस्कोट तक ढाई लाख तलवारें फ्रांस के नवजात प्रजातन्त्र के विरुद्ध खिंची हुई थीं। फ्रान्सीसी सेनाएँ घोर संकट में थीं। वे सब तरफ हार ही हार रही थीं। प्रत्येक दिशा से हार की खबरें पैरिस में आ रही थीं। सिपाही फटे हाल लौट रहे थे।

जिन्सों के भाव बहुत चढ़ गए थे। फिर भी वे मिलती न थीं। बाजार बन्द रहते थे। न खाना मिलता था, न कपड़े, न जूते। नागरिकों ने अपने जूते प्रजातन्त्री सैनिकों को दे दिए थे। और वे स्वयं नंगे पैर फिर रहे थे। देश भक्तों ने वे सब चीजें खानी छोड़ दी थीं, जिन की सेना को जरूरत थी। बहुत से तो उपवास कर रहे थे। चमड़ा, रसोई के बर्तन, कढ़ाइयाँ, बाल्टियाँ और दूसरी चीजें लोग घरों से ला-ला कर सेना को पहुंचा रहे थे। पैरिस की गलियों में सैंकड़ों लुहारों की भट्ठियों पर हथौड़े चल रहे थे। सारे नागरिक स्त्री-पुरुष हथियार बनाने में जुटे हुए थे। वे तंगी में थे, लेकिन इस की उन्हें क्या परवाह थी। वे फटे हाल थे, पर उन की मातृभूमि आज़ादी का मुकुट पहने थी।

कन्वोकेशन का अधिवेशन हो रहा था। फ्रांस की क्रान्ति का महान्

नेता दान्ते गरज रहा था। दान्ते नहीं, कन्वोकेशन की दीवारें गरज रही थीं—

"नागरिको, यूरोप के बादशाहों ने हमें चुनौती दी है, और हम ने उन के आगे एक बादशाह का सिर फेंक दिया है। हम पीछे लौटने के मार्ग बन्द कर चुके हैं। हम पीछे नहीं लौटेंगे। लुई ने बादशाहत के पापों का बदला सिर दे कर चुका दिया है। अब तुम्हारी बारी है। तुम इन निकम्मे बादशाहों को बता दो, कि आज़ादी के सूरज की गर्मी पा कर देशभक्त किस तरह लड़ सकते हैं। तुम, सिर्फ अपनी नई मिली हुई आजादी के लिए ही नहीं लड़ रहे, तुम बादशाहों और सरदारों के जुल्मों से कराहते हुए यूरोप के सब राष्ट्रों की आजादी के लिए लड़ रहे हो। हम सब देशों की जनता के दोस्त हैं। और ऊंची आवाज से कहते हैं कि वे अपने शासकों के खिलाफ बगावत करें। हम उन सब देशों की जनता के दोस्त हैं और सब बादशाही सरकारों के दुश्मन हैं।"

हमारी फौजें हार कर लौट रही हैं, क्योंकि उन्हें पूरी तौर पर फौजी तालीम नहीं दी जा सकी। फिर हमारी फौजें बेसरो-सामान हैं। पर एक बात है कि यूरोप की शिक्षित फौजें तनख्वाह पाने वाली हैं। और हमारी फौजें क्रांतिकारी रंगरूटों की हैं। हम एक आदर्श के लिए लड़ रहे हैं। और फ़तह हासिल करने के लिए भारी से भारी जोखिम उठाने पर आमादा हैं। दुश्मनों की ताक़त उनके हथियारों में है। पर हमारी ताक़त हमारे हौसले में है। नागरिको, हमें दुश्मनों को खत्म करने के लिए दिलेरी अधिक से अधिक दिलेरी, सब से ज्यादा दिलेरी की ज़रूरत है।

इंगलैंड हमारा ताक़तवर दुश्मन है। उसने फ्रांस के सारे बंदरगाहों को रोक लिया है। फ्रांस से भागे हुए लोग करोड़ों की तादाद में जाली फ्रेंच प्रजातंत्र के नोट धड़ाधड़ फ्रांस में भेज रहे हैं। जिस से हमारी माली हालत बिगड़ जाय। नागरिको, हमारे नए प्रजातंत्र के लिए विदेशों के साथ यह लडाई बड़ी खतरनाक़ है। इस वक्त हमें अपना पूरा ध्यान अपनी समस्याओं पर लगाने की ज़रूरत है परन्तु हमें अपनी पूरी ताक़त

इस लड़ाई में खर्च करनी पड़ रही है। क्रांति का जोश लड़ाई का जोश बन गया है। हमें सावधान रहना चाहिए कि कहीं फ्रांस में तानाशाही न क़ायम हो जाय। और हम पर मुसीबतों की बिजलियाँ टूट पड़ें। मुझे कुछ-कुछ शक हो रहा है। लोगों की नीच प्रवृत्तियाँ जाग रही हैं। और कन्वोकेशन में अधिकारों की कशमकश चल रही है। परन्तु नागरिको, खबरदार रहो क्रांति के संचालक और रक्षक आप हैं। केवल आप !!" इतना कह कर दांत्ते कुछ देर चुप रहा। वह कुछ सोच रहा था। कन्वोकेशन की दीवारें थर्रा रही थ।।

प्रत्येक मनुष्य उत्तेजना से भरा हुआ था। दांत्ते गरजा—"मुझे तीस हज़ार योद्धाओं की जरूरत है। तीस हज़ार। आगे आओ वीरो, मुझे देखने दो, फ्रांस ने कितने बहादुर पैदा किए हैं। जो स्वतंत्रता के नाम पर जूझ मरने को तैयार हैं। फ्रांस का बाल बाँका भीं नहीं हो सकता। हम शत्रुओं को देख लेंगे। परन्तु मुझे आज ही तीस हज़ार नाम चाहिएँ। सुनिए, आज ही।"

तालियों की गड़गड़ाहट और हर्ष-ध्वनि से सभाभवन थर्रा उठा। इसी समय भीड़ में से किसी ने चिल्ला कर कहा—

"किन्तु प्रजातंत्र के विरोधियों को सेना के कूच से प्रथम ही दण्ड देना चाहिए। हमारी नज़र पुराने गिर्जे पर है, जहाँ विधवा कापेट और और उसके बच्चे क़ैद हैं। उन्हें निपटा दो। उन्हें खत्म कर दो।"

इस बार फिर जोर की हर्ष ध्वनि उठी। और वे ही शब्द दुहराए गए मेयर ने खड़े हो कर कहा—"नागरिको, इसके लिए नौ जजों का ट्रिब्यूनल नियुक्त हो चुका है। जिसे प्रत्येक ऐसे संदिग्ध आदमी को—जो प्रजातंत्र का विरोधी या उनका सहायक होगा, गिरफ्तार करने और दण्ड देने का अधिकार दे दिया गया है।"

"तो हम अपनी जान देने को तैयार हैं।" भीड़ में सहस्रों आवाजें उठीं।

भीड़ में से फिर एक तेज़ आवाज़ उठी—"बहुत से निर्वासित फ्रांस में घुस आए हैं। वे राजबंदियों को छुडाने की फिक्र में हैं।"

मेयर ने ही जवाब दिया—"कम्यून ने घोषणा कर दी है, कि ऐसे लोगों को जो कोई अपने घर टिकाएगा, या उन्हें सहायता देगा, या उनसे सम्बन्ध रखेगा, उसे प्राण-दण्ड दिया जायगा।"

: ७३ :

पुराना गिरजा

राजनीतिक क्रांति के साथ फ्रांस में धर्म क्रांति भी हुई थी। प्रजातन्त्र के नेताओं ने सब उपासना गृहों को नष्ट कर दिया था। गिरजों में अब सिपाहियों की गारदें रहतीं थीं, या शाही कैदी उन में रखे जाते थे।

सोलहवें लुई को कत्ल करने के बाद उसकी रानी मेरी एन्टोनाइन एक पुराने गिरजे में कैद थी। उसके साथ ही उसकी बहन, पुत्री और उसका बालक पुत्र भी था। राजकुमारी तेरह बरस की और राजकुमार नौ बरस का था। रानी को वे अपमान से 'विधवा कापेट' कहते थे।

ठीक उसी समय, जब कन्वोकेशन का गर्मागर्म अधिवेशन हो रहा था, राष्ट्रीय सेना का एक अफसर और जेलों का अफसर रानी के कमरों की तलाशी लेने के लिए आया था।

अफसर ने पुकारा—टिजन, ओ, टिजन।

एक अधेड़ आदमी आगे आया। उसका सिर गंजा था और सूरत भद्दी थी।

"खुदा की मार तुम पर! तुम तो बड़े ही सुस्त आदमी दीख पड़ते हो," अफसर ने कहा।

"महाशय! मैं न विश्वासघाती हूँ न साम्राज्यवादी। फिर आप मुझे गालियां कैसे देते हैं। ऐसा ही है तो मेरा इस्तीफ़ा है।"

'ऐसी बातें करोगे तो रिपोर्ट कर दूंगा। तुम्हें प्राणदण्ड मिलेगा, समझे।"

पहरेदार डर गया। उसने कहा—"खूब, पेरिस में सिर इतने सस्ते हो गए हैं कि हरेक आदमी सुबह उठ कर टटोल कर देखता है कि उस के धड़ पर सिर है या नहीं।"

"इतमीनान रखो, आज है तो कल न रहेगा।" अफसर ने होंठ सिकोड़ कर कहा।

सिपाही ने गिड़गिड़ा कर कहा—"महाशय, मैं बाल बच्चेदार आदमी हूँ।"

"तो मर्दे खुदा, अपनी औरत को बुला। हमें विधवा कापेट की तलाशी लेनी है।"

पहरेदार दौड़ा गया और अपनी औरत को बुला लाया। दुबली पतली भोली सी औरत। अफसर देख कर हंसा। क्या खूब, बहुत बढ़िया जोड़ी है। भेड़िया और लोमड़ी। पहरेदार और उसकी औरत भक्कू बने खड़े रह गए। अफसर के मजाक का जबाब देते उन्हें नहीं बना।

अफसर अपने साथियों और उस औरत के साथ भीतर गया। रानी खिड़की के पास खड़ी थी। उसकी बहन पास बैठी थी, वह कोई पुस्तक पढ़ रही थी, रानी सुन रही थी। बच्चा बिछौने पर पड़ा था। लड़की पास खड़ी थी। सैन्टर ने जा कर उनके हाथ से किताब छीन ली।

सैन्टर के साथी बिछौने उलट-पलट कर देखने लगे। बीच-बीच में वे कैदियों को भी ताकते जाते थे।

रानी का रंग सफेद पड़ गया था। पर इससे उसका सौन्दर्य और भी निखर गया था। सिपाहियों की धींगामुश्ती से डर कर लड़की आकर माँ से लिपट गई। माँ ने झुक कर उमका माथा चूम लिया।

सिपाही ने लड़की को घसीट कर रानी से दूर कर दिया।

रानी ने सैन्टर से कहा—महाशय, क्या कान्वोकेशन का यह भी हुक्म है कि माँ बेटियां प्यार न करें।

"नहीं, लेकिन विधवा कापेट, क्या तुम बता सकती हो—कि तुम्हारे वे दोस्त कौन हैं, जो तुम्हें छुड़ा कर भगा ले जाने के षड़यन्त्र रच रहे हैं।'
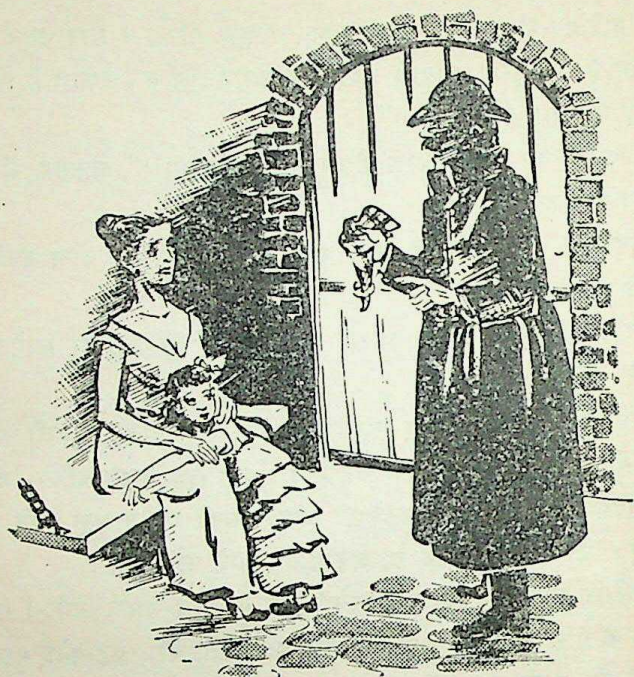
रानी ने जवाब नहीं दिया। एलिजावेथ ने कहा—

"मोशिए, हम तो यहाँ कैद हैं, हमें क्या मालूम।"

"अच्छा !"

सैन्टर ने पहरेदार की औरत की ओर देख कर कहा—

"इन की तलाशी ले लो।"

वह कुछ देर को बाहर चला गया। तलाशी में और तो कुछ नहीं मिला—एक सफेद रूमाल था, जिस के छोरों पर गाठें बँधीं थीं। वह रूमाल उसने सैन्टर को दे दिया।

सैन्टर ने रूमाल उलट-पुलट कर देखा। उसने कहा—

"इसका क्या मतलब ? रूमाल में गांठें कैसी हैं। टिजन खालो तो यह गांठ ?"

"महाशय, गांठ में तो कुछ भी नहीं है।"

"सिर्फ खाला गांठ है। तो भी यह मतलब से खाली नहीं। विधवा कापेट, भलाई इसी में है कि गांठों का भेद बता दो।"

"महाशय, लड़के ने खेल किया होगा।"

"ठीक है, तो अब यह लड़का यहाँ नहीं रह सकता। सिपाहियो, उसे साथ ले लो।"

"आह, उसे बुखार है, बच्चे पर दया करो।"

"लेकिन सांप का बच्चा खतरनाक ही निकलता है," उसने सिपाहियों को संकेत किया। उन्होंने बच्चे को उठा कर सामने धकेल दिया। बच्चा माँ की ओर हाथ उठा कर रोने लगा, रानी दौड़ कर यह कहती हुई आगे बढ़ी, कि दया करो, रोगी बच्चा मर जायगा।

"तो उन सब बदमाश खटरागियों के नाम बता दो।"

"जाओ बेटे, प्रार्थना करना न भूलना। अपनी मां के लिए प्रार्थना करना, जो जल्द तुमारे पिता के पास चली जायगी।"

उसने आँसू पोंछ लिए और मुँह फेर लिया। सिपाही रोते हुए बालक को घसीटते हुए ले गए।

: ७४ :

छोटा कापेट

एक भुतना-सा घिनौना आदमी शपाशप एक बालक को बेतों से पीट रहा था। बालक चीख़-चीख़ कर रो रहा था। चोट खाकर बालक धरती पर औंधे मुँह गिर गया। उस आदमी ने कहा—"साले साँप के बच्चे।"

इसी समय एक सारजेंट उधर से जा रहा था, उसने यह अत्याचार देख कर कहा—"इसे क्यों मार रहे हो भले आदमी?"

"मार रहा हूँ कसूर पर, तुम अपना काम देखो।"

"लेकिन तू है कौन?"

"यही बात मैं तुमसे पूछता हूँ ।"

"मुझसे पूछने वाला तू कौन होता है पाजी । यह सरकारी वरदी नहीं देखता । उड़ादूं तोरा सिर भुट्टे सा ।" उसने तलवार निकाली । वह आदमी डर गया । उसने कहा ।

"मैं साइमन मोची हूँ ।"

"और यह लड़का कौन है ।"

"विधवा कापेट का छोकरा है ।"

"अच्छा । तो तूने इसे मार-मार कर अधमरा किस लिए कर दिया है । बदमाश !

"सारजेंट महाशय, तुम्हें क्या कान्वोकेशन ने प्रजातंत्रवादी नागरिक को गाली देने का अधिकार दे दिया है ?"

"अरे तो तू इस बेचारे असहाय बच्चे को मार क्यों रहा है ?"

"क्यों न मारूँ भला । दो सप्ताह से खिला-पिला रहा हूँ । यह वास्कट भी इसे मैंने ही दी है । मगर सिखाते-सिखाते हार गया, जूते में टांका लगाना सीखता ही नहीं ।"

"छी, छी, किसने तुझे इसे जूता सीना सिखाने को कहा है ?"

"उस पर मेरा अधिकार है । मैं जो चाहूँगा वही करूँगा ।"

"क्या तुम भूल गए कि यह फ्रांस के बादशाह का बेटा है ?"

"ओह तुम तो कोई राजभक्त प्रतीत होते हो । मैं अभी कम्यून में जाकर रिपोर्ट करता हूँ ।"

"चल बदमाश । मैं भी वहीं चल रहा हूँ । वहीं तुझे ठीक करूँगा ।"

"चलिए, कम्यून ने प्रजातंत्र के विरोधी को सारजेंट बना दिया है । मैं तुम्हें गिरफ्तार कराऊँगा ।"

इसी समय एक और अफसर वहाँ आ गया । हंगामा देख कर वह खड़ा हो गया । उसने सारजेंट से पूछा,

"मामला क्या है ?

"मुझसे पूछिए महाशय, यह देशद्रोही सारजेंट मुझे इस लौंडे को पीटने से रोकता है।"

"पर तुम इसे पींटते क्यों हो ?"

"यह जूते में ठीक टाँके नहीं लगाता, तीन महीने से खा रहा है। बदमाश, लगाएगा टांके ?" उसने बच्चे से पूछा।

"नहीं," बालक ने रोते-रोते कहा।

"तो ले।" मोची ने फिर बेत उठाया। अब उस अफसर ने बेत उससे छीन कर कहा—

"यह छोकरा है कौन ?"

"विधवा कापेट का लड़का।"

अफसने सार्जेन्ट की ओर देखा। सारजेंट ने कहा—"देखिए तो मोशिए, चाहे जो हो, बच्चे पर अत्याचार ?"

"बहुत खराब बात है।"

"क्या, क्या ? आप भी राजभक्त हैं महाशय ?"

"अबे मोची के बच्चे, बेचारे बच्चे को पीट कर तू राष्ट्र का अपमान कर रहा है।"

"यहाँ, फ्रांस में देखता हूँ देश-द्रोहियों की बाढ़ आ गई है।

अफसर ने तलवार खींच कर कहा—"कर दूं तेरा सिर भुट्टे सा अलग।"

"तोबा, तोबा, आप तो एक देशभक्त को मार डालना चाहते हैं।"

"तो खबरदार, जो तूने अब इसे मारा। देखो कापेट, अब जो यह तुम्हें मारे तो मुझे पुकारना। मैं उस नाके पर निकट ही हुँ।"

"धन्यवाद महाशय, पर मेरा नाम कापेट नहीं है—"मेरा नाम लुई चार्ल्स-ड-बर्बन है।"

"अच्छा, अच्छा। यही सही। सारजेंट, जाओ इस बात की तुम रिपोर्ट कर आओ।"

इतना कह कर अफसर चलता बना। सार्जेन्ट भी साइमन को क्रोध-पूर्ण नज़र से देखता हुआ चल दिया।

: ७५ :

विधवा कापेट

दूसरी अगस्त को प्रातःकाल तीन बजे एक बन्द गाड़ी पैरिस की सुनसान सड़क पर टेम्पल से हवालात की ओर जा रही थी। उस में फ्रांस की महारानी मेरी ओंत्वानेत को दो अफसर हवालात ले जा रहे थे। जो रानी कभी अपने भुवनमोहन सौन्दर्य से दर्शक की आँखों में चकाचौंध लगाती थी—बड़े-बड़े श्रेष्ठ पुरुष जिस के सम्मुख झुकते थे, आज वह सारे फ्रांस में विधवा कापेट के नाम से प्रसिद्ध थी। और अब उस पर देशद्रोह का मुकदमा चलने वाला था। वह ले जा कर उसी के एक राजमहल के तहखाने में बन्द कर दी गई। दो सिपाही उस पर पहरे के लिए नियुक्त हुए।

रानी पर खुली अदालत में मुकदमा चला। अपनी ही प्रजा के समक्ष खड़ी हो कर उस ने घृणित आक्षेप और व्यंग सहे। और उसे प्राणदण्ड की आज्ञा हुई।

रात को उसने अपने प्रियजनों को प्रेम सन्देश भेजा। प्रार्थना की और सोई।

सुबह उस ने सफेद गाउन पहना। कन्धों पर सफेद रूमाल डाला, सफेद ही टोपी सिर पर रखी। उस पर पति के शोक चिह्न स्वरूप काली पट्टी लगी थी। वह चली। बन्द गाड़ी में उसे वध-स्थान पर ले जाने की प्रार्थना ठुकरा दी गई। वह साधारण वध्य अपराधियों के साथ खुली गाड़ी में ले जाई गई। राह-बाट, घर, छत-बरामदे नर-नारियों से खचा-खच भरे थे। सब के बीच साधारण वस्त्र पहने हाथ बांधे हुए रानी वध-स्थान की ओर जा रही थी। आँखें उस की सूझी हुई थीं। पर अब उन में आँसू नहीं थे। दर्शक उसका उपहास कर रहे थे, झिड़कियाँ दे रहे

थे, अपशब्दों की बौछार कर रहे थे। वह बारम्बार अपना होठ चबा रही थी। उसके हृदय में अब मृत्यु का भय नहीं, अपमान की आग धधक रही थी। वध के क्षणों की यह देरी उसे असह्य हो रही थी।

अपने साथ वाले पादरी की ओर उस ने ध्यान नहीं दिया। मकानों पर प्रजातंत्री झण्डे फहरा रहे थे। उन पर उसने दृष्टि डाली, आ गया वही बध-स्थल, पेलेस-ड-रेवोल्यूशन। ट्यूलेरिस के बाग के फाटक पर कुछ क्षण गाड़ी रुकी। रानी ने अपने पुराने महल पर नजर डाली। कितने वैभव वहाँ अभी भी भरे पड़े थे। पर अब उससे क्या? वह देर तक एक टक उन खिड़कियों की ओर देखती रही। जहाँ उसने वैभव के दिन व्यतीत किए थे। उस की आंखों से आंसू छलक पड़े। पर अब इन बातों को सोचने का समय कहाँ था? पादरी और जल्लाद ने पकड़ कर उसे गाड़ी से उतारा। उसका पैर जल्लाद के पांव पर पड़ गया, वह चिल्लाया। रानी ने कहा—"क्षमा करना, अनजाने ही पैर पड़ गया।"

मृत्यु मंच पर पहुँच कर उस ने फिर प्रार्थना की। एक बार उस ने टेम्पल की ओर देख कर कहा—"मेरे बच्चो, विदा।"

वह काँप रही थी। पर जल्लाद उस से भी अधिक काँप रहा था। उसने बड़ी कठिनाई से कुल्हाड़ा उठाया। और रानी का सिर कट कर एक ओर लुढ़क गया। भीड़ में जोर का नाद हुआ, 'प्रजातन्त्र चिरजीवी हो।'

: ७६ :

रक्त-स्नान

अब फ्रांस ने रक्त-स्नान करना आरम्भ किया। फ्रांस के विरुद्ध अब सारा यूरोप खड़ा था। पर फ्रांस में क्रान्ति की ज्वालामुखी धधक उठी थी। दाँते, रोब्सपियर, मोरे जो क्रान्ति के अग्रदूत थे—रक्त पात चाहते थे। अब दोषी-निर्दोषी की विवेचना न थी। दया-माया का प्रश्न न था। देश पागल हो गया था। सेनाएँ भरती की जा रही थीं। पुत्र

प्रजातन्त्री था तो पिता राजतन्त्री। दोनों दोनों के सिरों पर बाजी लगा रहे थे। विरोध का इलाज था गिलोटन। गला काटने का यन्त्र। वह अन्धाधुन्ध चल रहा था। फ्रांस की सड़कों पर मृत्युदण्ड के अपराधियों से भरी गाड़ियाँ वधस्थल की ओर निरन्तर जा रहीं थीं। राजघराने पर मृत्यु और विपत्ति के जो बादल घिरे सो लुई को नष्ट करके ही शांत न हुए। महारानी मेरिया के बाद अन्य राजवर्गी भी मौत के घाट उतार दिए गए।

अब गिरोदिस्त दल की बारी थी। ये स्वतंत्रता के सच्चे भक्त थे—पर खूनखराबी के विरोधी थे। ये बाईस नेता थे, जिन्हें न्याय का उपहास करने के बाद मृत्यु दण्ड दे दिया गया। वेल्जे ने रात ही को आत्मघात कर लिया। वर्नियो के पास विष था, पर उसने कायरता पूर्वक मरना ठीक न समझा। वह रात उसने शराब पीने और गाना गाने में व्यतीत की। सुबह २१ जीवित व्यक्ति और वेल्जे की लाश गाड़ियों में लाद कर वधस्थल पर लाई गई। उनके सिर खुले थे। हाथ बँधे थे, बाहों में कोट पड़ा था। वे खुश थे और वधस्थल पर पहुँच कर राष्ट्रीय गीत गा रहे थे। सेम्सन का कुल्हाड़ा वेग से नीचे उतरता था, और एक ध्वनि सदा के लिए अनंत में लीन हो जाती थी। सबके साथ मादाम-रोला का भी वध हुआ। मरते समय उन्होंने कहा—स्वतंत्रते, कौन सा पाप है जो तेरे नाम पर नहीं किया गया। बूढ़ा वेली जब कुल्हाड़े के नीचे आया—तो वह काँप रहा था। एक साथी ने पूछा—वेली, तुम काँप रहे हो ? उसने हँस कर कहा—हाँ, सर्दी लग रही है। सबके अंत में मरे हुए वेल्डो का सिर भी काट लिया गया। इस प्रकार क्रांति के जन्मदाता ही क्रांति की भेंट हुए।

अब तो फ्रांस पर खून का रंग चढ़ा था। मारे जाने वालो की संख्या दिन पर दिन बढ़ती जा रही थी। प्रतिदिन सैंकड़ों के सिर काटे जाते थे। उनमें बहुत से तो क्रांतिकारी ही होते थे। अब रक्तपात के कुछ समर्थक भी रक्तपात के विरोधी होने लगे। दांते और देस मोलियों इनमें प्रमुख थे। ये शान्ति के पक्ष में थे। इनका कट्टर विरोधी था रोब्सपियरी। दांते को कुछ-कुछ पता लग गया था, उसके मित्रों ने उसे भाग जाने की

सलाह दी, परन्तु उसने कहा—क्या मैं अपनी मातृभूमि को भी संग ले जा सकता हूँ। मैं औरों को मारने की अपेक्षा स्वयं मारा जाना पसंद करता हूँ। जब वह जेल में ले जाया गया तो कैदियों की भीड़ क्रांति की महान् आत्मा पर टूट पड़ी। उनसे दाँते से कहा, मित्रो, मुझे आशा थी कि मैं तुम्हें कैदखाने से छुड़ाऊँगा। परन्तु आज खुद मैं ही यहाँ आ गया।

अदालत में उसने कहा—"मेरा नाम दांते है। क्रांतिकारियों में सब मेरा नाम जानते हैं। मेरा निवासस्थान तो शीघ्र ही संसार से ग़ायब हो जायगा। आज से बारह महीने पहले मैं स्वयं किसी क्रांति की अदालत की स्थापना करने का प्रयत्न करता था। आज मैं उसके लिए ईश्वर तथा मानव जाति से क्षमा चाहता हूँ। वे सब पापी हैं। आज रोब्सपियर मुझे मृत्यु-दण्ड देने वाला है। वैसे ही व्रिसो भी देता। मैं फ्रांस को भयानक दशा में छोड़ता हूँ। पर मैं समझता हूँ रोब्सपियर मेरे पीछे वधस्थल पर चला आयगा। मैं उसे वहाँ खींच लूंगा। मेरा अस्तित्व संसार से मिट जायगा। परन्तु इतिहास में मेरा नाम क़ायम रहेगा। इसके बाद वह अपने पक्ष में बोलने लगा। सभापति बारम्बार उसकी बात काटते थे। पर महान् दांते की बुलंद आवाज़ अदालत में गूंज रही थी। जज भयभीत हो कर काँप रहे थे। अंत में उसने कहा—"मेरी मृत्यु के तीन मास भी न बीतने पाएंगे कि मेरे शत्रुओं की बारी आएगी। रोब्सपियर शीघ्र ही गिलेटिन के कुल्हाड़े के नीचे खिंच आएगा। मैं उसे खींच लूंगा। मैं इसलिए मर रहा हूँ कि मैं मनुष्यों को क्षमा करना चाहता हूँ। यही मेरा अपराध है।

दांते और उसके साथी जब वधस्थल पर पहुंचे तो कैमिले अपनी नववधू के लिए क्षुब्ध होने लगा। दांते ने कहा—"मेरे प्यारे, उसकी चिंता न करो। मैं भी अपनी प्रियतमा को कभी न देख सकूंगा। वध से पहले दांते ने अपने साथियों से गले मिलना चाहा। पर वधिक ने स्वीकार न किया, तब दांते ने कहा—"जाने दे यार, हमारे सिर तो कट कर थैले में एक ही जगह मिलेंगे। उन्हें तो तुम नहीं रोक सकोगे। चलो

अब अंतिम नींद सोएं।" और उसने कुल्हाड़े के नीचे सिर रख दिया, उसके बाद उसके मित्रों ने।

दांते की यह भविष्यवाणी सत्य हुई कि रोब्सपियर मेरे पीछे कुल्हाड़े के नीचे खिंचा चला आएगा। प्रति दिन नई-नई बातें हो रही थीं। रोब्सपियर का बोलबाला था। जो कोई उसका विरोध करता, उसी का सिर काट लिया जाता था। इससे उसके शत्रु बढ़ रहे थे। और अब उसकी लेखनी भी सुस्त पड़ रही थी। वह प्रायः गुमसुम पैरिस की गलियों में चक्कर लगाया करता था। उसे ऐसा अनुभव हो रहा था—कि जैसे मृत्यु उसके पास खिसकती चली आ रही है। रक्तपात से वह अब ऊबने लगा था। अब एसेम्बली में उस पर टीका-टिप्पणी होने लगी थी। एक दिन उसने चुपचाप अपनी टीका-टिप्पणी सुनी, और उठकर जेकोबिन क्लब में पहुँचा। वहाँ उसने मित्रों को सम्बोधित कर एक मार्मिक भाषण दिया। अंत में उसने कहा—"अब उसका अंत निकट है। शक्तिशाली विरोधियों से मैं बच नहीं सकता। मैं बिना शोक के उनके अधीन हो जाऊँगा।"

एसेम्बली में जब वह बोलने खड़ा हुआ तो उसे नहीं बोलने दिया गया। उल्टे उसके विरुद्ध भाषण होने लगे। उसने बारम्बार भाषण देने की चेष्टा की, पर उसे बोलने नहीं दिया गया, तब उसने कहा—"ओ हत्यारों के सभापति, मैं भाषण देना चाहता हूँ।"

एक सदस्य ने कहा—"दान्ते के खून से तेरा गला रुंधा हुआ है। उसे तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया। उसके मित्र भी जो जहाँ थी गिरफ्तार हो गए। और वे सेंटजेम्स में कैद कर लिए गए। जेकोबिनक्लब वाले विद्रोह करना चाहते थे—पर उसने रोक दिया। एसेम्बली ने भी सेना तैनात कर दी थी। विद्रोह को दबाकर सैनिक वहाँ आ पहुँचे जहाँ रोब्सपियर और उसके साथी थे। लेवास के पास दो पिस्तौलें थीं, उसने एक रोब्सपियर को देकर कहा—कि वह आत्मघात करले। पर उसने कहा, कि नहीं, हमें शत्रु के हाथों ही मरना चाहिए। वे सब चुपचाप एक टेबुल के आस-पास बैठ गए। उनकी आँखें दरवाजे पर लगीं थीं। जब उन्हें

विश्वास हो गया कि सैनिक आ पहुँचे, तो लेवास ने आत्महत्या कर ली और रोब्सपियर का एक भाई खिड़की कूद पड़ा, पर उसकी केवल एक टाँग ही टूटी। सिपाही आ पहुँचे थे, वे चिल्ला रहे थे—अत्याचारी का अंत कर दो। एक ने पूछा—"अत्याचारी कौन है ?" मेडा नामक सैनिक ने रोब्सपियर के सिर की ओर संकेत किया। उसने पिस्तौल दाग दी। रोब्सपियर का सिर टेबुल पर टिक गया। उसका दाहिना जबड़ा चूर-चूर हो गया और दाँत भी टूट गए। कूथन ने उठाने का यत्न किया। पर वह गिर गया। सैन्ट जस अपने स्थान पर बैठा रहा। इस समय प्रातः काल हो रहा था। सिपाही के रक्त भरे जबड़े को रूमाल से बाँधकर साथियों सहित ले गए।

रोब्सपियर को एक कमरे में ले जाया गया। वह चारपाई पर बेहोश पड़ा था। क्रांति के इस महान् नेता को देखने आदमी टूटे पड़ते थे। अंत अदालत में उन सबको ले जाया गया। सब से कुछ प्रश्न पूछे गए। रोब्स-पियर न बोल सकता था, न सुन सकता था। अदालत तो दिखावा था। सबको प्राणदण्ड दिया गया। प्रातःकाल उन्हें वधस्थल पर ले जाया जा रहा था। उनके हाथ पाँव बँधे हुए थे। सड़क में गढ़े थे, गाड़ी में झटके लग रहे थे, और घायल पुरुष वेदना से कराह उठते थे। यात्रा बहुत लम्बी थी और राह में ठसाठस भीड़ भरी थी। भीड़ में स्त्रियाँ अधिक थीं। वे हर्ष से चिल्ला रहीं थीं। रोब्सपियर के मुँह पर पट्टी बँधी थी। स्वाधीनता की मूर्ति के पास पहुँचने पर जल्लाद उस घायल पुरुष को वधस्थल पर ले गए। जल्लाद ने निर्दयता पूर्वक पट्टी खींच ली। जबड़ा उखड़ कर लटक गया। वेदना की भयानक चीत्कार से पेलेस-ड-रिव्योल्यूशन कांप उठा। परन्तु शीघ्र ही भयानक शान्ति छा गई। रोब्सपियर का कटा हुआ सिर भूमि पर लुढ़कने लगा। दर्शकों की साँस बन्द हो गई। जिसने राजा-रानी का वध करके ज़मींदारी प्रथा और स्वेच्छाचारिता से फ्रांस को मुक्त किया था, उसका ऐसा दारुण अन्त हुआ।

: ७७ :

ब्रिटिश साम्राज्य का शिलान्यास

इस समय ब्रिटेन का प्रधान मन्त्री विलियम पिट था। यह एक दृढ़-चित्त मेधावी पुरुष था। इसी पुरुष को ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का श्रेय प्राप्त है। जब उसने देखा कि अंग्रेज़ों और फ्रेंचों में युद्ध अनिवार्य ही है, तो उसने यह संकल्प कर लिया—कि जीतना अंग्रेज़ों हीं को चाहिए। उसने ब्रिटेन की जनसैन्य को सुदृढ़ किया, और भारत तथा अमेरिका में उसे मोर्चे पर भेजा। जो सेना उसने भारत की ओर भेजी—उसका नेता सत्ताईस वर्ष का एक आवारा अफसर था, जिसका नाम क्लाइव था। अमेरिका की ओर भेजी गई सेना का नेतृत्व जेम्स वुल्फ को सौंपा गया, जो इकत्तीस वर्ष का तरुण था। इस कूटनीतिक मंत्री ने इसी समय यूरोप में भी फ्रेंचों से युद्ध छेड़ दिया। यह तिमुखी लड़ाई लड़ी जा रही थी। जिससे फ्रान्स समुद्र पार देशों में सेना न भेज सके। उसने यूरोप के उन सब देशों से गठजोड़ा बांध लिया, जो फ्रांस के शत्रु थे। इनमें प्रशिया का फ्रेडरिक महान् भी था, जो इस युग का माना हुआ योद्धा था। वह अपनी शक्ति से यूरोप में प्रशिया की धाक जमाना चाहता था, जिसमें उसका वाधक फ्राँस ही था। पिट ने सुनहरी मुहरों से उसे खरीद कर अपने साथ ले लिया। फ्रेडरिक को इस समय धन की बहुत आवश्यकता थी। वह फ्रांस से भिड़ गया। आरम्भ में उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, क्योंकि रूस, स्वीडन और आस्ट्रिया फ्रांस की पीठ पर थे। परन्तु फ्रेडरिक के सौभाग्य से इसी समय रूस की रानी का देहान्त हो गया, और उसका उत्तराधिकारी फ्रेडरिक से मिल गया, उसने अपनी सेनाएँ वापस बुला लीं, परिणाम यह हुआ कि फ्रेडरिक ने फ्रांस और आस्ट्रिया दोनों देशों पर विजय प्राप्त कर ली। यह युद्ध सात वर्ष तक चला। उधर अंग्रेज़ों के समुद्री वेड़े ने समुद्र से फ्रेंचों को निकाल बाहर किया। इसके साथ ही क्लाइव ने भारत में और वुल्फ ने कनाडा में फ्रेंचों के दांत खट्टे कर

दिए। जिसका यह परिणाम हुआ कि यूरोप का सबसे शक्तिशाली राज्य प्रशिया हो गया। और एशिया में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हो गई।

: ७८ :

ब्रिटेन की शिल्प क्रांति

सन् १७६० में जार्ज तृतीय इंगलैंड के सिंहासन पर बैठा। उस समय उसकी आयु २२ वर्ष की थी। उसने ६० वर्ष राज्य किया। वह हठी, झक्की और खब्ती सा आदमी था। अपने जीवन के अंतिम दिनों में वह पागल हो गया था। इस राजा के राज्य काल में इंगलैंड में बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। जिनमें सबसे मुख्य शिल्प क्रांति थी।

यद्यपि इंगलैंड की जल-सेना अजेय थी, और उसी ने उसकी रक्षा भी की थी। परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में जिस बात ने सहायता दी, वह ब्रिटेन की शिल्प क्रांति थी। हकीक़त यह है कि अंग्रेज एक साहसिक जाति थी। तूफानी समुद्र में छोटी-छोटी किश्तियों द्वारा प्राणों का खतरा उठा कर नए-नए द्वीपों का पता लगाना उसके लिए एक मनोरंजक विनोद था। पीढ़ियों से वह इस खतरे से खेलती रही थी। अपनी अजेय जल सेना के बल पर उसने प्रबल पराक्रमी नैपोलियन को इसके बाद जब जय किया तो समुद्र पर उसका ही एकाधिपत्य स्थापित हो गया। फ्रांस को परास्त करके अंग्रेज़ों के हौसले बढ़ गए थे और अब उनके साम्राज्य का अबाध विस्तार हो रहा था। साथ ही पूर्वी देशों के उन्मुक्त वाणिज्य से भी सम्पदा का अटूट झरना उनके घरों में आने लगा था। उन्होंने उत्तरीध्रुव और दक्षिणीध्रुवों पर भी अभियान किया और विश्व के सर्वोच्च पर्वत शिखर पर भी आरोहण किया। बस्तियाँ बसाने में वे बड़े सिद्धहस्त थे। उन्हें इस बात की भी परवाह न थी कि उन्हें अपना देश छोड़ दूर देश में बसना पड़ेगा। वे चतुर बनिए भी थे। इस से, जहाँ-जहाँ ब्रिटिश साम्राज्य स्थापित हुआ, वहाँ-वहाँ वे पहले वाणिज्य के लिए ही गए। वहाँ उन्होंने अपने वाणिज्य केन्द्र स्थापित किए, फिर वहीं

बस गए। इसके बाद ब्रिटिश राजसत्ता ने तो केवल उनसे अधिकार ही ग्रहण किया। भारत, कैनेडा, दक्षिण अफ्रीका, सर्वत्र ही ऐसा हुआ। प्रथम श्रेणी के नाविक होने के कारण और तेज चलने वाले जहाज़ों के बनाने में प्रवीण होने के कारण उन्होंने अपने वाणिज्य व्यापार में और दुनिया भर में फैली हुई दूर-दूर देशों और द्वीपों में विस्थापित बस्तियों में आवागमन का ठीक-ठीक सम्बन्ध जारी रक्खा। दूसरे अर्थों में समुद्र उस पार बसने वाले उनके सम्बन्धियों को उनसे पृथक् करने वाला नहीं, उन्हें एक दूसरे से सम्बन्धित करने वाला था। इनकी जल-सेना की ऐसी धाक बँध गई थी कि किसी प्रतिस्पर्धी देश को उनके सम्मुख आने की या बाधा पहुँचाने की हिम्मत ही नहीं होती थी। इनकी स्थल सेना भी संगठित थी। वे विपत्तियों से घबड़ाते न थे। साहस त्यागते न थे। और सफलता के सारे साधनों को चाहे वे उचित हो या अनुचित, काम में लाने मे झिझकते न थे।

इस समय तक भी यूरोप में यंत्र-युग का आरम्भ नहीं हुआ था। लोग अपने-अपने घरों में बैठ कर हाथ से सब चीज़ें बनाते थे। कताई, बुनाई, छपाई तथा अन्य उपयोगी वस्तुओं के निर्माण सब हाथ से ही किया जाता था। कहीं-कहीं जहाँ छोटे-छोटे उद्योग गृहउद्योग का रूप धारण कर गए थे, वहाँ भी काम हाथ ही से होता था। प्रत्येक गाँव में शिल्पियों का एक दल होता था। स्त्रियाँ घरों में चर्खे पर सूत कातती थीं। और जुलाहे घर पर करघे से कपड़ा बुनते थे। कुछ परिवार जुलाहे लुहार कुम्हार, बढ़ई, चमार आदि थे। कोई-कोई क़स्बा या नगर किसी एक शिल्प या काम के लिए प्रसिद्ध होता जाता था।

ठीक यही हालत उन दिनों भारत में थी। भारत में ढाके की मलमल, बनारस का सिल्क और मिर्ज़ापुर के क़ालीन प्रसिद्ध थे। दक्षिणी फ्रांस रेशम के कारोबार के लिए प्रसिद्ध था। और उत्तरी इंगलैंड में सूती कपड़ा अच्छा बनता था। चीन के रेशमी वस्त्र और चीनी के बर्तन प्रसिद्ध थे। स्पेन के चाकू और तलवारें प्रसिद्ध थीं। इन प्रसिद्ध स्थानों

की वस्तुएँ जब बेचने के लिए व्यापारी लाते थे, तो लोग अच्छे दाम दे दे कर उन्हें शौक़ से ख़रीदते थे। इससे उत्साहित हो कर निर्माता अधिकाधिक माल तैयार करने का चेष्टा करते थे। इसी चेष्टा का यह परिणाम हुआ कि उन्होंने अपने औज़ारों में परिवर्तन किए, और ऐसी विधियाँ सोचनी आरम्भ कीं जिनसे जल्द और अधिक माल तैयार हो सके।

अंग्रेज़ों ने जब अमेरिका के उत्तरीय अंचल में अपनी बस्तियाँ बसानी आरम्भ कीं तो—उन्होंने यह जाना कि यहाँ की गर्म जलवायु कपास की खेती के लिए उपयुक्त है। इसी समय उन्होंने यह भी समझ लिया कि इंगलैंड का पश्चिमोत्तर प्रांत, जिसे वे लंकाशायर कहते हैं—और जहाँ की जलवायु नम थी, सूती माल की कताई और बुनाई के धंधे के लिए उपयुक्त है। महीन सूती कपड़े की उन दिनों इंगलैंड में बड़ी माँग थी। यह अच्छे मुनाफे का धंधा था। परन्तु यह माल सीधा अदन से उन दिनों खरीदा जाता था। अब लंकाशायर में कताई-बुनाई का धंधा शुरू हो गया, और उसकी माँग इतनी बढ़ी कि हाथ के करघों और चरखों से उसकी पूर्ति होना असंभव हो गया। अमीर लोगों ने इधर ध्यान दिया। इन्होंने कारीगरों को नौकर रख कर बड़े-बड़े मकानों में हैण्डलूम की लाइनें लगा दीं और उनका नाम फैक्टरी रखा। इस प्रकार जहाँ कारीगर अपने-अपने घरों में माल तैयार करके खुदरा ग्राहकों के हाथ बेचते थे, वे अब इन मालिकों से तनखाह पाकर उनके लिए माल तैयार करने लगे। छोटी-छोटी फैक्टरियों का चलन बढ़ा और ये कारीगर अपने-अपने गाँवों को छोड़ कर फैक्टरियों के आस-पास ही आ बसे। गाँव उजड़ गए, बस्तियाँ बसने लगीं और सैकड़ों लोग एकत्र हो कर एक आदमी की अधीनता में काम करने लगे।

यहीं से शिल्पोद्योग में क्रांति का सूत्रपात हुआ। अब उन्होंने इस बात पर ध्यान दिया कि जिससे अधिक तेजी और परिश्रम से अधिक माल तैयार हो। प्रथम एक ऐसा करघा तैयार हुआ जिसमें एक ही आदमी हत्था घुमा कर कई तकुए चला सकता था। फिर पनचक्की की

भाँति जल प्रवाह से घूमने वाले पहियों की मदद से चलने वाले यन्त्र बनाए गए। अभी तक भाप और बिजली का आविष्कार नहीं हुआ था। परन्तु शीघ्र ही ऐसी एक मशीन बन गई जो बिना ही आदमी के स्वयं ही चल सकती थी। इस आविष्कार से थोड़े ही समय में थोड़े से आदमियों द्वारा बहुत-सा कपड़ा तैयार होने लगा। किन्तु इस आविष्कार की प्रतिक्रिया यह हुई कि लाभ पैसा लगाने वाले मालिकों को हुआ और कारीगरों की दरें गिर गईं। वे बेकार होने लगे।

सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में एक पंपिंग इंजन बना जो हवा के दबाव से खानों में से पानी खींचने में उपयोगी साबित हुआ, परन्तु इस समय तक भी किसी ने यह नहीं सोचा था—कि पानी भाप बनने पर सोलह सौ गुना ज्यादा जगह घेरता है। अठारहवीं शताब्दी के अंतिम चरण में जैम्स वॉट ने भाप का इंजन बनाया, जो उन्नीसवीं शताब्दी के आरम्भ होते ही एक नौका में लगाया गया। इसके तत्काल बाद ही अमेरिका ने अपना प्रथम स्टीमबोट लेकर अतलांतिक को पार किया।

: ७९ :

जनोत्थान

पुरानी दुनिया में दो बातें हद दर्जे की बेवकूफी की और बेहूदा थीं। प्रथम थी बलात् धर्म विजय। शताब्दियों तक ईसाइयों और मुस्लिम धर्मान्धों ने यह कुकर्म अत्यन्त जंगली और निर्दय रीति से किया। जिसके फलस्वरूप भारत, यूरोप तथा अन्य देशों के लाखों निरपराध नर-नारियों को भारी-भारी कष्ट झेलने और प्राण गँवाने पड़े।

दूसरी दास प्रथा थी। जो इससे भी अधिक भयानक नीचता पूर्ण, और निर्दय प्रथा थी। प्राचीन काल में भारत, मिस्र, यूनान दूसरे तत्कालीन सभ्य देशों में यह प्रथा प्रचलित थी परन्तु इस युग में तो इस प्रथा को अमेरिका के प्रवासी यूरोपियनों ने अपने यहाँ प्रचलित किया। इस कुकर्म की जड़ में जल्दी से और बिना परिश्रम किए अमीर होने की इच्छा काम

कर रही थी। यन्त्रोत्थान के क्रांतिकर आविष्कार ने, जो एकाएक ऐसे रूप में प्रकट हुआ कि जिसने उन लोगों को, जो कारीगर तो न थे, परंतु धन लगा कर कारीगरों को जुटा सकते थे, और मजदूरी देकर उनके परिश्रम से लाभ उठा सकते थे. खूब धनवान होने की लिप्सा ने उन्हें यह कुकर्म करने को प्रेरित किया। चीनी, मसाले, काफी, तम्बाखू आदि नित्य के व्यवहार की वस्तुओं की मांग बहुत बढ़ गई थी, और इनका उत्पादन बड़ा लाभकारी था। दक्षिण अमेरिका तथा उत्तर अमेरिका का दक्षिण स्थल इसके लिए उपयुक्त स्थान था। मज़दूरी की सब से सस्ती रीति इन गुलामों से मज़दूरी कराना था। जिसका सरल तरीका यह निकाला गया—कि अफ्रीका के पश्चिमी किनारे पर बसने वाले नीग्रो लोगों पर आक्रमण करके उन्हें पकड़ लिया जाय और उन्हें जहाज़ों में भर कर अतलांतिक के उस पार ले जाकर भेड़-बकरियों की भांति बेच दिया जाय। समुद्र तटवर्ती यूरोपियन व्यापारियों ने, जिनमें स्पेनिश, ब्रिटिश और पुर्चुग़ीज विस्थापित प्रमुख थे, इस गंदे व्यापार में खूब बढ़-बढ़ कर हाथ मारे। यह घृणित नर-व्यापार यद्यपि सत्रहवीं शताब्दी के आरम्भ ही में आरम्भ हुआ था, फिर भी अठारहवीं शताब्दी के मध्य काल में इन हब्शी गुलामों की संख्या सात लाख हो गई थी। जो क्रीत दास थे और अपने गोरे मालिकों के लिए उनके खेतों में काम करते थे।

जब फ्रांस में उत्क्रांति हुई, तब कानून बना कर इंगलैंड में गुलामी के व्यापार को निषिद्ध कर दिया गया, और ब्रिटिश उपनिवेशों में गुलामों को मुक्त कर दिया गया।

परन्तु अमेरिकनों के लिए अब ऐसे क़ानून को स्वीकृत करना कठिन था। सूती कपड़े की मिलों के कारण अमेरिकन रूई की माँग बहुत बढ़ गई थी। सारे दक्षिणी अमेरिका में कपास उगाने के बड़े-बड़े फार्म थे, जहाँ लाखों गुलाम काम करते थे। अब अफ्रीका से गुलामों का आना क़ानूनन बन्द कर दिया गया था, फिर भी लुके-छिपे यह व्यापार अभी चल ही रहा था तथा जिस समय भारत में सन सत्तावन का विद्रोह फूटा, उस समय

अमेरिका की भूमि में चालीस लाख गुलाम थे। दक्षिण अमेरिकन समझते थे कि यदि उन्हें स्वतन्त्र कर दिया गया—तो उनका सारा कारोबार ही चौपट हो जायगा। इस प्रकार गुलामों के प्रश्न को लेकर दक्षिणी-उत्तरी अमेरिकनों के बीच संघर्ष उठ खड़ा हुआ। उत्तरी अमेरिका में लोहा और कोयला अधिक था। जिसके कारण उस भाग में बड़े-बड़े कल कारखाने स्थापित होते जा रहे थे, और वाणिज्य तथा उत्पादन के केन्द्र बड़े-बड़े नगर बसते जा रहे थे। वहाँ के लोग नई-नई बातों के विकास के लिए धुन बांध कर लग गए थे।

दक्षिणी अमेरिका में बड़ी-बड़ी रियासतें धनी अमेरिकनों की थीं। उनके सारे कारोबार गुलामों के ही सहारे चल रह थे। वे अपना रहन-सहन बदलने को तैयार न थे। वे चाहते थे कि उन्हें गुलामों के साथ जैसा वे चाहें व्यवहार करने की छूट मिलनी चाहिए। अंत में उन्होंने उत्तरी अमेरिका से सम्बन्ध विच्छेद कर लिया और अपनी स्वतन्त्र-सत्ता स्थापित कर ली। परन्तु अमेरिकन अपने देश के दो भाग करना नहीं चाहते थे। इससे इन गुलामों के प्रश्न को लेकर इस समय उत्तरी और दक्षिणी अमेरिका में घोर संग्राम छिड़ गया।

: ८० :

तृतीय नेत्र

इसी समय यूरोप में शिव का तृतीय नेत्र खुला। यह ज्ञानचक्षु था। जिसने विज्ञान को जन्म दिया। प्रकृति किन नियमों पर आधारित है, यह मूल प्रश्न ही विज्ञान का उत्पादक था। संसार में बहुत से बड़े-बड़े अमानवीय कार्य नित्य-अनवरत होते रहते हैं। दिन निकलता है, रात होती है। सर्दी, गर्मी, बरसात आती है। धूप निकलती है, वर्षा होती है। मनुष्य और जीव-जन्तु पैदा होते हैं। जीते हैं, मरते हैं, बढ़ते हैं। ये सब ऐसी बातें थीं—जिनका भेद समझदार आदमी जानना चाहते थे। हर बार उन के मन में प्रश्न उठता था कि यह सब क्यों होता है। और अब इसका उत्तर

विज्ञान ने देना आरम्भ कर दिया था। विज्ञान ने प्रकृति के सभी रहस्यों को खोल कर मनुष्य के सामने रख दिया। और यंत्रोदय विज्ञान में सम्मिलित हो गया।

सत्रहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में ही सब से प्रथम दो बातें यूरोप ने जानीं। एक गुरुत्वाकर्षण और दूसरा शरीर में रक्तसंचार का भेद। भारतीय चिकित्साशास्त्र में रक्ताभिसरण की व्याख्या शताब्दियों प्रथम से ज्ञात थी। गुरुत्व के सम्बन्ध में भी भारतीय दर्शन अपना मत रखते थे। सौ वर्षों तक इन्हीं बातों के आस-पास खोज होती रही। अंत में उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम पाद में डारविन ने विकासवाद का सिद्धांत स्थापित किया। उसने पत्थर, फूल, पौदे, कीड़े-मकोड़े और जीव-जन्तुओं को एकत्र करने और उनके रहन-सहन और प्रकृति को जानने में अपना जीवन लगा दिया। उसने यह सिद्धांत स्थिर किया—कि मनुष्य का विकास प्रकृति की सहायता से हुआ।

इसी समय तीन नए चिकित्सा-रहस्य जाने गए। चेचक का टीका, रोग कीटाणु और क्लोरोफार्म। चिकित्सा में इन तीनों बातों ने नई प्रणालियों का सूत्रपात किया। और १९वीं शताब्दी के मध्यकाल में एक कीटाणुनाशक दवा, कारबोलिक एसिड का भी आविष्कार हो गया।

चेचक के टीके को ले कर जो आगे गवेषणा चली, और यह जानने की उत्कण्ठा बढ़ी—कि आखिर चेचक के छाले का रस शरीर में पहुंचाने से चेचक क्यों रुक जाती है। तो रोग कीटाणु का पता लगा। पर इस काम में पचास बरस लग गए। अनेक रोगों के उत्पादक कारण रोग-कीटाणु जान लिए गए। उन्हें रक्त में कैसे पहुँचाया जाय और उनकी वृद्धि और प्रभाव को कैसे रोका जाय, इसका पता लगाया गया। शरीर में उनके प्रविष्ट होने के मार्ग जाने गए। इस गवेषणा ने स्वास्थ्य-विज्ञान को जन्म दिया और रोग कीटाणुओं को नष्ट करने के लिए निरोधक प्रक्रिया प्रचलित की गई।

क्लोरोफार्म के आविष्कार ने चीर-फाड़ के कष्ट से बहुत बचाव

किया। परन्तु एक बड़ी बाधा अभी थी, इससे चीर-फाड़ के समय कष्ट से तो लोग बच जाते थे, पर दस-बीस दिन बाद ज़हरबाद हो कर रोगी मर जाता था। इसके कारणों का पता लगाया गया कि आपरेशन के बाद जलवायु के द्वारा रक्त में रोग-कीटाणु पहुँच कर रक्त को दूषित कर देते हैं। ऐसी अवस्था में कारबोलिक ऐसिड एक ऐसा आविष्कार था जिसने मनुष्यों के प्राणों को बचाने में बहुत भारी सहायता दी।

विज्ञान के इस विकास ने दो बातें उपस्थित कीं। प्रथम तो यह—कि यूरोप की सभ्यता संसार के सब देशों में प्रमुख हो गई। और वहाँ विज्ञान के लिए आगे ऐसे द्वार खुल गए—कि मनुष्य में अमानवीय सामर्थ्य आ गई।

: ८१ :

अग्रदूत

ज्ञान की प्यास—जिसने न्यूटन, डारविन, काहन और लिस्टर के द्वारा महान् आविष्कार कराए—कुछ अन्य साहसिक मनुष्यों के हृदयों में भी उत्पन्न होती गई, और उनमें से कुछ ने अब तक अज्ञात पृथ्वी की खोज करने का साहस किया। जेम्ज कुक ने दुर्गम दक्षिण ध्रुव प्रदेश में अंग्रेजों का यूनियन जैक जा फहराया। और प्रशांत सागर के आस-पास के अनेक अज्ञात द्वीपों का पता लगाया। डेविड लेविंगसटन ने अफ्रीका के दुर्गम वन्य प्रदेशों को रोंद डाला। उसने संसार के सब से बड़े विक्टोरिया जलप्रपात का पता लगाया। कुछ साहसिक लोग आस्ट्रेलिया के मध्यवर्ती भयानक रेगिस्तान में जा फंसे।

इन साहसिक अग्रदूतों के इन अभियानों के फलस्वरूप ब्रिटिश साम्राज्य का एकाएक विस्तार होने लगा। कुछ प्रदेश विजय किए गए। जैसे कनाडा, भारत की फ्रेंच बस्तियां, दक्षिणी अमेरिका और सीलोन—जो डचों के क़ब्ज़े में था। यद्यपि वे अमेरिका के स्वतंत्रता युद्ध में वहाँ का स्वामित्व खो चुके थे, पर वे निरन्तर नई बस्तियां बसाते जाते थे। नए

विजित प्रदेश, जैसे कनाडा, दक्षिण अफ्रीका और नवीन खोज में पाए देश जैसे आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड तेज़ी से बस रहे थे। यहाँ धड़ाधड़ अध्यवसायी अंग्रेज परिवार आ-आ कर स्थायी रूप से बस रहे थे। देखते ही देखते इन बस्तियों की चहल-पहल बढ़ चली। इसी समय अन्य देश भी ब्रिटिश छत्रछाया में आ गए, जिनमें भारत प्रमुख था। यूरोप के दूसरे राष्ट्रों ने भी समुद्र पार अपने अधिकार बढ़ाने आरम्भ कर दिए। और यूरोपीय राष्ट्र साम्राज्यों का रूप धारण कर गए।

यह एक तथ्य है कि राष्ट्रों की अभिवृद्धि साम्राज्य का रूप धारण कर लेती है। उदग्र राष्ट्र अपनी सीमा में रह कर संतुष्ट नहीं होते। वे कमज़ोर राष्ट्रों पर अधिकार जमाते हैं। इसका कारण यह है कि सत्तावान् राष्ट्र दुर्बल राष्ट्रों को जय कर के उन पर अधिकार करने में एक प्रकार के गर्व का अनुभव करते हैं। परन्तु यह भावना समूचे राष्ट्रों में उदय नहीं होती। नेतागण ही यह महत्वाकांक्षा रखते हैं, और वे इसके लिए अपने राष्ट्र पर युद्ध के खतरे और खर्चे का भार लाद देते हैं। धन की वृद्धि और अपनी उन्नति की आशा में वे इस खतरे को उठाते हैं।

: ८२ :

बाजार

जब मशीनों और विज्ञान के आविष्कार ने यूरोप में जन-क्रांति उपस्थित कर दी, और यूरोप वालों की उत्पादन-शक्ति बढ़ गई, और वे जल्दी और सस्ती चीज़ें तैयार करने लगे—जैसा कि लंकाशायर और अमेरिका में हुआ—तो वे चीज़ें सस्ते दामों में भारत में आकर बिकने लगीं। उन दिनों हाथ की बनी चीज़ें भारत में मंहगी बिकतीं थीं। अब तक यूरोपियन लोग सोना देकर भारत का माल यूरोप में ले जाते थे। अब वे भारत में अपने देश का माल बेच कर मालामाल होने लगे। ब्रिटेन का बना कपड़ा शीघ्र ही सारे संसार में बिकने लगा। दूसरे यूरोपियन राष्ट्रों ने भी उनकी प्रतिद्वन्दिता की। इस प्रकार ये प्रदेश उद्योग क्षेत्र का रूप धारण करने

लग गए, और एक दूसरे से बाजी मार ले जाने के लिए उद्योग करने लगे।

जिन देशों में माल की बिक्री होती थी—उन्हें बाज़ार कहा जाता था। इन बाज़ारों को अपने हाथ में रखने के लिए इन उद्योग केन्द्रस्थ राष्ट्रों में परस्पर संघर्ष होने लगा, परन्तु यह संघर्ष केवल बाज़ार ही के लिए न था; तैयारी माल के लिए कच्चा माल प्राप्त करने के लिए भी था। रेशम, कपास और ऊन के बिना कपड़े कैसे बन सकते थे। जो देश उद्योग केन्द्र बन चुके थे, वहाँ कच्चा माल तैयार नहीं होता था। इस लिए ये उद्योग क्षेत्र वाले राष्ट्र कच्चा माल हथियाने के लिए भी परस्पर संघर्ष करने लगे। उन्नीसवीं शताब्दी बीतते-बीतते लगभग सारा ही अफ्रीका महाद्वीप यूरोप की भिन्न-भिन्न जातियों ने अधिकृत कर लिया था। दक्षिण अफ्रीका में अंग्रेज़ी साम्राज्य के विस्तार को सफलता मिली थी।

जब यूरोपियन राष्ट्रों ने सुदूर पूर्व में और समुद्र पार देश में व्यापार सम्बन्ध स्थापित किए, तो यह स्वाभाविक था कि वे यातायात की सुविधाओं पर पूरा ध्यान दें। साथ ही जहाँ-जहाँ भी उनका माल व मनुष्य जांय—उनकी सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध हो। इसलिए उन्होंने अनेक समुद्रतट अधिकृत करके वहाँ बन्दरगाहों की स्थापना की। जहाँ उनकी जान-माल की सुरक्षा की व्यवस्था तो थी ही, वहाँ वे दीर्घकाल तक अपने जहाज़ भी रोक सकते थे। उन्हें भोजन, कोयला और पानी मिल सकता था।

अंग्रेज़ खास तौर पर समुद्री व्यापार जहाज़ द्वारा ही करते थे। इस लिए उन्हीं को देश-देशान्तरों में अच्छे बन्दरगाहों की सबसे अधिक आवश्यकता थी। अपनी सामर्थ्य के बल पर दुनिया भर के समुद्र तटों पर उन्होंने अपने बन्दरगाह स्थापित किए और व्यापार की बस्तियाँ बसाईं। स्वेज की नहर यद्यपि एक फ्रांसीसी इंजीनियर ने बनाई थी, पर वह ब्रिटेन के लिए सबसे अधिक उपयोगी थी। इस समय तक भारत में उनका साम्राज्य स्थापित हो गया था और भारत उनका सबसे बड़ा बाज़ार और कच्चे माल का उत्पादक था। इंगलैंड से भारत आने जाने का सबसे सीधा मार्ग स्वेज नहर होकर ही था। इसलिए ब्रिटेन ने स्वेज कम्पनी

के सबसे अधिक हिस्से खरीद लिए थे।

स्थल की बात भी जल की भाँति ही थी। व्यापार की वृद्धि और सुरक्षा तथा सुविधा के लिए अच्छी सड़कें—रेल और दूसरे यातायात साधन चाहिए थे। रूस और अमेरिका ऐसे विशाल देश थे कि वे बहुत दिन तक समुद्र पार के देशों से व्यापार सम्बंध स्थापित करने में ध्यान नहीं दे सके। परन्तु उन्होंने अपने देशों में रेलों का जाल बिछा दिया था। जर्मनी ने अब भारत और टर्की की ओर रुख किया था, और बर्लिन से बगदाद तक रेल बिछाई थी। जो, यदि विश्व युद्ध न छिड़ जाता, तो ईरान को पार करती हुई सिंध को छू लेती।

: ८३ :

शानदार खत

मंचू सम्राट् शियन लुंग पूरी शान से दर्बार में स्वर्ण-सिहासन पर बैठा था। तमाम दर्बारी, राजपरिषद् के लोग, विद्वान्, देश-विदेश के एलची और राजदूत अदब से चीन के इस महान् बादशाह के सामने हाथ बांधे सिर नवाए खड़े थे। देशी-विदेशी राजदूतों में हालैंड और रूस के राजदूत भी अदब से एक ओर खड़े हुए थे। शियन लुंग बहुत बूढ़ा आदमी था। वह चीन के तख्त पर पचास बरस से बैठा था। इसने अपने हाथों चीन का शृंगार किया था। इन दिनों मंचूरिया, मंगोलिया, तिब्बत और तुर्किस्तान उस के साम्राज्य के अंतर्गत थे। कोरिया, अनाम स्याम और बर्मा उसकी सत्ता मानने वाली मातहत रियासतें थीं। साहित्य और साम्राज्य वृद्धि में इसकी खास रुचि थी। उसने बड़े यत्न से ग्रंथों की खोज कराई और उनकी सूची बनवाई थी। सूची केवल सूची ही न थी, प्रत्येक ग्रंथ के बा रे में जितनी बातें मालूम हो सकती थीं—उसमें लिखी गई थीं। साथ ही आलोचना भी जोड़ दी गई थी। शाही पुस्तकालय की यह फिहरिस्त चार भागों में थी और एक महत्त्वपूर्ण वस्तु थी। बाद में उसके सम्बन्ध में यह प्रसिद्ध हो गया कि इस जोड़ का ग्रंथ दुनिया में और

दूसरा नहीं है। इसी सम्राट् की दृष्टि के नीचे चीन में उपन्यास, नाटक तथा कहानियों की सृष्टि हो रही थी। चीनी-मिट्टी के उत्तम बर्तन बनाए जा रहे थे, जिन पर यूरोप के फैशनेबुल लोग लहालोट थे। यही हाल रेशमी वस्त्रों और दूसरी कलापूर्ण वस्तुओं का था। जिनकी यूरोप में बेहद माँग थी। और इसी से यूरोप और एशिया के सब देशों के राजाओं के एलची अपने-अपने बादशाहों की ओर से सौगातें और विनय-पत्र ले कर इस बड़े सम्राट् के दर्बार में उपस्थित रहते थे और व्यापारिक सुविधाएँ माँगते रहते थे। हाल ही में शियन लुंग ने तुर्किस्तान को जीत कर और तिब्बत पर क़ब्ज़ा कर के अपना साम्राज्य बढ़ाया था। नैपाल ने भी चीन के इस बड़े सम्राट् की अधीनता कुबूल कर ली थी।

विदेशी व्यापार बढ़ता जा रहा था। और बुद्धिमान सम्राट् ने उस पर बहुत-सी पाबन्दी लगाई हुई थी। जिससे विदेश के इन व्यापारियों को बड़ी असुविधा थी। इस समय तो समूचे यूरोप को पूर्व के व्यापार का चस्का लगा हुआ था, परन्तु इंगलैंड की ईस्ट इण्डिया कम्पनी सब से चढ़ बढ़ कर थी। इस कम्पनी को संगठित हुए अब लगभग दो सौ बरस बीत रहे थे। और इसका जाल समूचे एशिया में फैल गया था। जिसका मध्य बिन्दु भारतवर्ष था, जहाँ इस समय लार्ड कार्नवालिस का अमल तप रहा था। और भारत में अंग्रेज़ी राज्य की भूमिका स्पष्ट हो चुकी थी। प्लासी का निर्णायक युद्ध खत्म हो चुका था, अंग्रेज़ों का प्रबल शत्रु हैदर अली मर चुका था, और अब अंग्रेजों ने उसके सिंहविक्रम पुत्र टीपू सुलतान की गर्दन मराठों और निज़ाम की सहायता से दबोच कर संधि करा ली थीं, जिस से उसे अपना आधा राज्य अंग्रेज़ों को देना पड़ा था। तथा तीन करोड़ रुपए युद्धक्षति की पूर्ति में और देने थे। जिसकी जमानत के तौर पर इस वीर शिरोमणि को अपने प्राणाधिक पुत्रों को बन्धक रखना पड़ा था।

उनके हौंसले बढ़े हुए थे।

इस समय इंगलैंड पर बूढ़ा और खब्ती राजा तृतीय जार्ज राज्य कर

रहा था, जो पार्लमेंट के हाथों की कठपुतली था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपनी व्यापारिक सुविधाओं की माँग करने के लिए चीन के इस महान् सम्राट् की सेवा में एक राजदूत मण्डल अपने बादशाह का खत और भेंट ले कर भिजवाए थे। सम्राट् का शरीर बहुत दुबला-पतला था। उसकी डाढ़ी में गिनती के कुछ सफ़ेद बाल थे। यही दशा उसकी मूछों की भी थी। पर ये बाल यत्न से संवारे हुए थे। सम्राट् का रंग बहुत गोरा था। उसकी आँखें छोटी किंतु सतेज थीं। वह बहुमूल्य रेशम का पीला अबा पहने था। और उसके हाथों में सुनहरी राज-दण्ड था। उसके मुकुट के बहुमूल्य रत्न नक्षत्र की भांति चमक रहे थे, और उज्ज्वल मोतियों की कण्ठमाल नाभि तक लटक रही थी। उसकी वाणी सतेज थी तथा दृष्टि पैनी। दर्बार में न तो कोई आँख उठा कर उसकी ओर देख सकता था, न सीधा खड़ा हो सकता था। सब वज़ीर, अमीर, उमरा, दर्बारी घुटनों के बल झुके नत मस्तक खड़े थे।

इस समय इंगलैंड के राजदूत मण्डल की अभ्यर्थना समर्थ सम्राट् कर रहा था। मण्डल के नेता लार्ड मेकार्टनी थे। ये बड़े डीलडौल के और बेफिकरे रईस थे। बेहद शराब पीने और जुए में रात-रात भर जागने से इनका मुँह और गाल फूल गए थे। पेट भी इनका बढ़ा हुआ था। इस-लिए घुटनों पर झुक कर खड़े रहने में उन्हें बड़ा कष्ट हो रहा था। उनके दूसरे साथी यद्यपि कीमती पोशाक पहने थे, पर थे सब आवारागर्द ही। लार्ड मेकार्टनी ने छै कीमती घोड़े, एक सुनहरी बग्घी, कुछ रत्नजटित तलवारें और खंजर और एक हज़ार सोने की गिन्नियाँ बादशाह की नज़र कीं। कुछ थान मखमल और बानात के भी थे।

सम्राट् ने एक नज़र इस भेंट की ओर देखा और लार्ड मेकार्टनी की ओर देख कर पूछा—"ए मलऊन, तू किस खेत का अनाज खाता है कि तेरा पेट इस क़दर फूला हुआ है, कि हमारे हुज़ूर में अदब से खड़ा भी नहीं रह सकता। और क्या कारण है कि तेरा मुंह इस क़दर फूला हुआ है, क्या तूने इस नज़राने में से अशर्फियाँ चुरा कर मुंह में भर ली हैं, जो तेरे
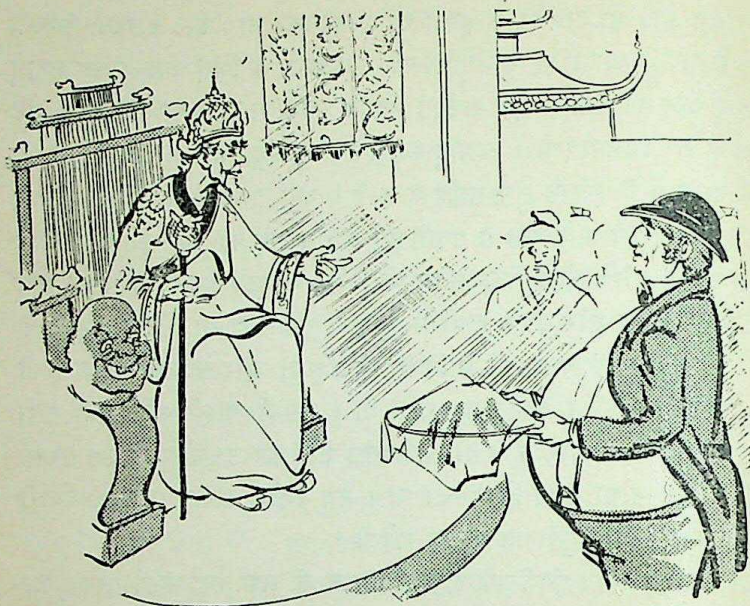
बादशाह ने हमारी सेवा में भेजी हैं।"

बादशाह का अभिप्राय लार्ड मेकार्टनी को समझा दिया गया। उसका लाल मुंह और लाल हो गया। सारे दर्बारी बादशाह का यह मज़ाक सुन कर अपनी डाढ़ी सहलाने और सिर हिलाने लगे, पर मुंह से एक शब्द भी निकालने की किसी की हिम्मत नहीं पड़ी।

लार्ड मेकार्टनी ने ज़मीन चूमी और कहा--"ऐ दीनो-दुनिया के मालिक शहनशाह, मैं तेरी कृपा और तेरी नियामतों से ही फला-फूला हूँ। और आशा करता हूँ कि हमारे बादशाह की दर्खास्त पर शहनशाह विचार करेंगे, और अंग्रेज़ों के सामने से वे सब बाधाएँ हटा लेंगे जो शाही इनायत को उन तक पहुँचने से रोकती है।"

"क्या मेरे राज्य में तेरे बादशाह के आदमियों के साथ कोई बेइन्साफी हुई है?"

"नहीं शहनशाह, हमारे बादशाह को ऐसी कोई शिकायत नहीं है। लेकिन वह चाहता है कि कुछ पाबंदियाँ हटा दी जायं। और अंग्रेज़ों को अधिक सुविधा दी जाय।"

"ओ मलऊन, तू कसे औरों से अधिक चाहता है। जो और के लिए है वही तेरे बादशाह के लिए है।"

"शहनशाह, हमारे बादशाह के खत का तो मुलाहिजा फर्माएँ,।"

सम्राट् के हुक्म से खत का तर्जुमा उसे भरे दर्बार में सुना दिया गया। बादशाह ने सुना, अपनी डाढ़ी पर हाथ फेरा और दर्बार में उपस्थित सबसे बड़े आलिम को निकट बुला कर इंगलैंड के बादशाह जार्ज तृतीय के नाम खत लिखाया—खत को भरे दर्बार में सुनाने का हुक्म दिया, वजीर ने उच्च स्वर से खत पढ़ा—

"ए बादशाह, तू बहुत से समुद्रों की सीमा से परे रहता है। फिर भी हमारी सरकार से कुछ फायदा उठाने की नम्र इच्छा से तूने एक राजदूत भेजा है, जो बा-इज्ज़त तेरी अर्जी लेकर आया है। अपनी भक्ति का सबूत देने के लिए तूने अपने देश की बनी कुछ चीज़ें भेंट में भेजी हैं। मैंने तेरा प्रार्थना पत्र पढ़ा है। उसके शब्दों से मेरे प्रति तेरी आदर पूर्ण नम्रता प्रकट होती है। जो प्रशंसा के योग्य है।

सारी दुनिया पर हुकूमत करते हुए मेरी निगाह में एक ही बात है, कि आदर्श शासन किया जाय और राज्य के प्रति अपने कर्त्तव्यों का पालन हो। मुझे तेरे देश की बनी चीज़ों की ज़रूरत नहीं है। ए बादशाह, तुझे मुनासिब है कि तू मेरी भावनाओं का आदर करे। और भविष्य में इस से भी अधिक श्रद्धा और भक्ति दिखाए। ताकि सदा हमारे राज्यसिंहासन की छत्रछाया में रह कर अपने देश के लिए आगे को सुख-शांति प्राप्त करे। डर से काँपते हुए आज्ञा पालन कर, और लापरवाही मत कर।"

पत्रपढ़ कर सुनाने के बाद सम्राट् ने राजदूत मण्डल को पुरस्कृत करके और वह खरीता शाही ठाठ से देकर दर्बार बर्खास्त किया।
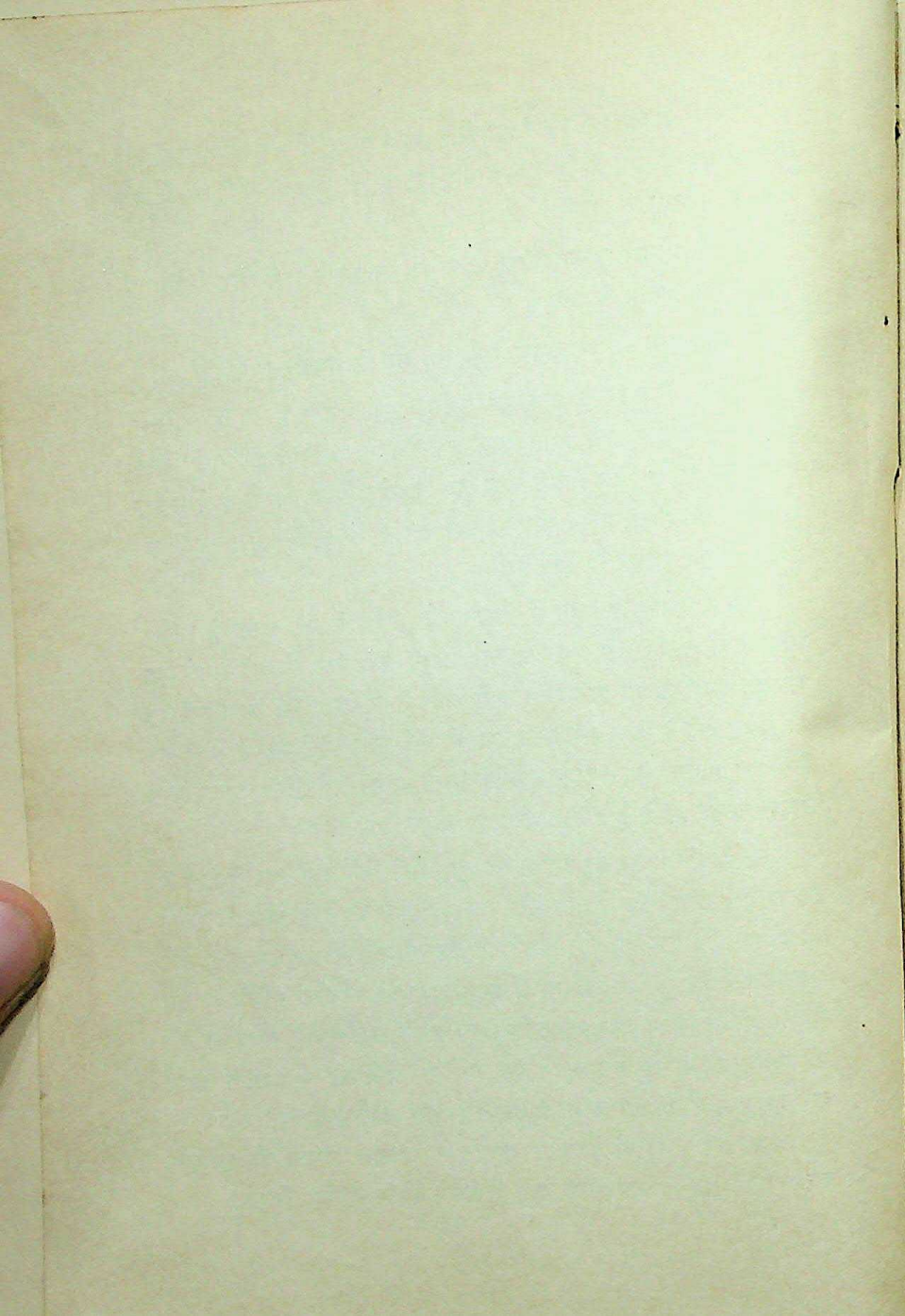
सोना और खून

छठा खण्ड
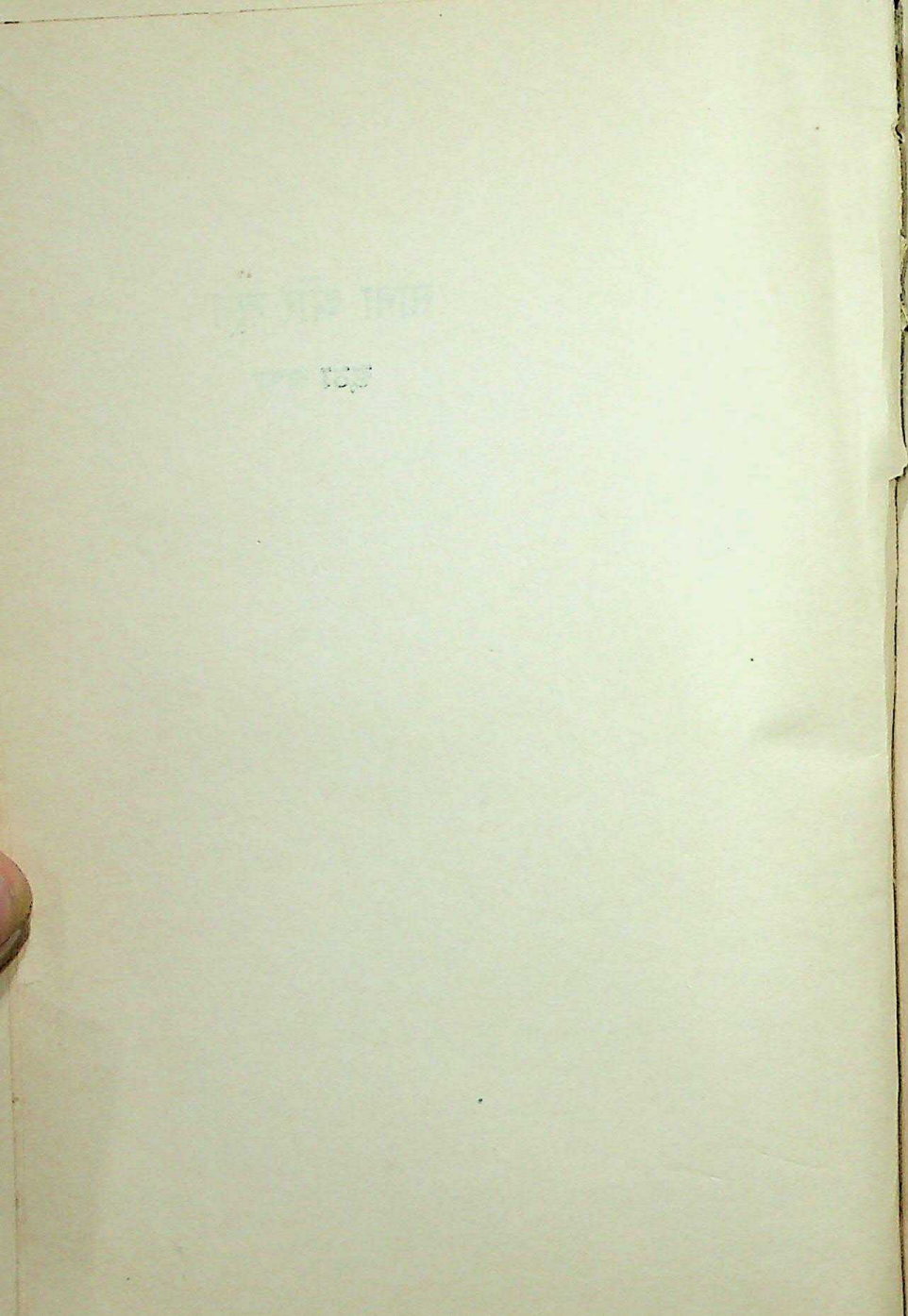
: १ :

भालू का भय

यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि जिस पर संसार के राजनीतिज्ञों ने बहुत कम ध्यान दिया होगा कि भारत को अंग्रेज़ों ने दूर ही से अपने अधिकार में रखा। और वहाँ की सरकार से ब्रिटेन की सरकार कभी भी इतने निकट न रही कि वह उस के साथ संयुक्त हो जाए। वास्तव में ब्रिटेन का भारतीय साम्राज्य, शासन-पद्धति और अर्थ-व्यवस्था दोनों ही की दृष्टि से एक स्वतन्त्र साम्राज्य था। उस समय यदि मुग़ल साम्राज्य अपनी दृढ़ता पर क़ायम रहता तो इंगलैण्ड का वैदेशिक इतिहास कुछ दूसरे ही प्रकार का होता। फ्रांस से जो अंग्रेज़ों की लड़ाई हुई, खास कर वह लड़ाई, जिसकी मुख्य घटना नेपोलियन की मिश्र पर चढ़ाई से सम्बन्ध रखती है, तो उस का परिणाम भी कुछ और ही हुआ होता। क्रीमिया का युद्ध सम्भवतः होता ही नहीं, तथा रूस और तुर्किस्तान की लड़ाइयों से अंग्रेज़ों की जो दिलचस्पी रही, वह भी न होती।

सन् १८१३ में जब कम्पनी का नया चार्टर बदला गया, उस समय वारेन हेस्टिंग्स गवाही देने के लिए कामन सभा के सामने उपस्थित किया गया था। इस समय वह अपनी आयु के सत्तासीवें वर्ष में था। यह वह समय था जब इजारे में कमी आई थी और इंगलैण्ड की पश्चिमी सभ्यता और ईसायत को भारत में प्रवेश करने के अवसर मिले। १८३३ में इजारा

जाता ही रहा और कम्पनी एक ऐसा संगठन मात्र रह गई कि जिस के द्वारा इंगलैण्ड से भारत का शासन होता था। १८५३ में चुनाव-पद्धति जारी की गई। और अन्त में १८५७ के विक्षोभ ने इस व्यवस्था का भी अन्त कर दिया। यह एक बड़ी महत्वपूर्ण बात है कि जब तक व्यापार उन लोगों के हाथ में रहा, जिन का उद्देश्य व्यापार करना था, तब तक व्यापार बहुत कम रहा और जब कम्पनी के हाथ से व्यवस्था निकली तो व्यापार बहुत विशाल हो गया।

इस समय तक भारत में चार बड़े अंग्रेज़ शासक हुए। एक लार्ड क्लाइव, जिस ने पूर्वी तट पर कलकत्ते से मद्रास तक अंग्रेज़ों की जड़ जमा दी। दूसरे लार्ड वेल्ज़ली और लार्ड हेस्टिंग्स, जिन्हों ने मराठों की शक्ति का अन्त कर दिया और अंग्रेज़ों को देश के प्रायद्वीप के पश्चिमी द्वार का स्वामी बना दिया। चौथे लार्ड डलहौज़ी, जिन्हों ने इन स्थानों को दृढ़ किया और उत्तर-पश्चिम प्रदेश में अंग्रेज़ी राज्य की सीमा सिन्ध नदी तक पहुंचा दी।

लगभग कुल सोलहवीं शताब्दी के काल में नया पता लगाया हुआ समुद्री मार्ग दो भागों में बंटा हुआ था। आधा एशियाई भाग पुर्तगीज़ों के हाथ में था और शेष डचों के हाथ में। सत्रहवीं शताब्दी भर अंग्रेज़ भारत में डच एकाधिक्य पद पर हाथ-पैर मारते रहे और सत्रहवीं शताब्दी के अंत होते-होते इंगलैंड और फ्रांस ने संसार में वह औपनिवेशिक स्थान प्राप्त कर लिया जो सोलहवीं शताब्दी में स्पेन और फ्रांस का था। अठारहवीं शताब्दी इन दोनों राष्ट्रों के युद्धों से भरी हुई है। अठारहवीं शताब्दी के मध्य भाग में डूप्ले को यह आभास मिल गया कि ये युद्ध राजनैतिक हैं, व्यापारिक नहीं। और इसका इनाम भारतीय साम्राज्य से कम नहीं। इस समय तक भी भारत का बाहरी संसार से सम्बन्ध केवल अफ़गानिस्तान की राह से था। पर अब समुद्र द्वारा भी उसका सम्बन्ध स्थापित हो गया था। यद्यपि अभी अफ़गानिस्तान की राह से आक्रमणों के भय कम नहीं हुए थे, सन् १७४८ में जो वास्तव में

ब्रिटिश साम्राज्य स्थापना की तिथि मानी जाती है, उससे केवल नौ ही वर्ष पहले नादिरशाह का आक्रमण हुआ था और अहमदशाह अब्दाली का तेरह वर्ष बाद।

परन्तु अंग्रेज़ों को इसकी परवाह नहीं थी। वे जिस शत्रु से इस समय तक भिड़े रहे थे, वह फ्रांस था। इसके अतिरिक्त वे अपने को न भारत के स्वामी ही समझते थे, न उन्होंने देश के बाहरी सम्बन्धों पर विचार किया था। परन्तु अठारहवीं शताब्दी का अंत होते-होते उनकी दृष्टि बदली। मद्रास और दक्षिण की ओर अब वे अत्यन्त चिंता से देख रहे थे। उन्हें डर यह था कि कहीं ऐसा न हो कि फ्रांस किसी नए देश से मित्रता कर ले, जो उसे उस समय हथियारों और बेड़ों से सहायता दे, जब उनकी आवश्यकता हो। यही बात फ्रांस की उस लड़ाई के समय भी हुई थी, जो अमेरिकन युद्ध के समय हुई थी और उससे अंग्रेज बहुत भारी विपत्ति में फंस गए थे। उस समय हैदरअली मद्रास के फाटक तक जा धमका था और सब से शक्तिशाली फ्रैंच-नाविक 'वेरा-डी-सफरन' ने समुद्र से उसका साथ दिया था। किन्तु उसके १५ वर्ष बाद जब बोनापार्ट मिश्र तक बढ़ आया, उस समय फ्रैंचों ने अपनी नीति को बदल दिया था। नेपोलियन को आशा थी कि टीपू भी उसके लिए ऐसा लाभदायक होगा जैसा सोलहवें लुई के लिए उसका बाप प्रमाणित हुआ था। परन्तु जब बोनापार्ट मिश्र को अधिकृत कर के सीरिया की ओर बढ़ा तब अंग्रेज़ों को भय हुआ कि वह भारत पर उत्तर से भी आक्रमण कर सकता है। तभी उनका ध्यान पहले पहल नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली की ओर गया और उन्होंने खैबर दर्रा, काबुल और ईरान की ओर चिंता की दृष्टि से देखा।

सन् १८०० में अंग्रेज़ों ने सर जान मालकम को ईरान भेजा कि वह पता लगाए की रूस और फ्रांस का गुप्त प्रभाव तो वहाँ काम नहीं कर रहा? मालकम ने ईरान के शाह से जो बातचीत की उसमें नेपोलियन और फ्रांस का ही अधिक भय प्रकट किया गया था। सर जान मालकम टीपू से

युद्ध कर चुका था। सब जानते थे कि टापू नेपोलियन का वैसा ही मित्र और साथी था जैसा कि उसका बाप सफरन का। फ्रेंच उसे सीटोयन टीपू कहते थे। ध्यान देने की बात यह है कि इस काल से ५० वर्ष पूर्व सबसे पहले फ्रेंचों ने ही हैदराबाद के निज़ाम की सरकार से संबंध जोड़े थे। वे अंग्रेज़ों की अपेक्षा अच्छी तरह जानते थे कि भारत को किस प्रकार जीता जा सकता है। उन्होंने ही यह पद्धति निकाली थी कि भारतीय सिपाहियों को यूरोपीय सिपाहियों की अध्यक्षता में रखा जाय और उन्हें यूरोपियन ढंग से युद्ध करना सिखाया जाय। १८ वीं शताब्दी के आरम्भ में हैदराबाद में १४ हज़ार जवानों की सेना फ्रेंच अफसरों के मातहत थी। जिनका सेनापति रेमण्ड था। निज़ाम ने फ्रेंच अफसरों की निगरानी में हथियार बनाने के कारखाने खोले थे, जहाँ बन्दूकें बनाई जातीं थीं और तोपें ढाली जाती थीं। रेमण्ड के सुशिक्षित सैनिक फ्रांस के क्रांतिकारी झण्डे उड़ाते और स्वतन्त्रता के बिल्ले टोपी पर लगाए हुए युद्ध क्षेत्र को जाते थे। इस प्रकार दक्षिण में निज़ाम और टीपू ये बड़ी शक्तियाँ फ्रांस के प्रभाव में थीं। यदि इस इस समय रेमण्ड की सेनाएँ अंग्रेज़ों को हरा देतीं तो संभव था कि उसके परिणाम दूसरे ही होते। परन्तु माकलम ने हैदराबाद पहुँच कर वहाँ से फ्रेंच प्रभाव को नष्ट कर दिया।

इस प्रकार फ्राँस, जो भारत के बाहर ब्रिटेन का अकेला शत्रु था, और भारत में केवल दक्षिण में ही उसके आक्रमण का भय था, अब उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी। अब उसने भारत के बाहर अन्य एशियाई देशों से सम्बन्ध जोड़ लिए थे। ये राज्य थे, अफगानिस्तान, फारस और रूस। नेपोलियन की मृत्यु से फ्रांस का प्रभाव नष्ट हो गया। प्रगट में २० वर्ष तक इसके बाद, अंग्रेज़ों को भारत में कोई विशेष युद्ध नहीं लड़ना पड़ा। खासकर विलियम बैंटिक का काल लगभग युद्ध रहित रहा। अब, अंग्रेज़ों के इस संसार व्यापी साम्राज्य के पश्चिम और पूर्व में दो बड़े शत्रु थे—एक अमेरिका, दूसरा रूस। सन् १८१५ की संधि तक यूरोप के लोग अमेरिका में अधिक नहीं आते-जाते थे, परन्तु अमेरिका में

प्रजातन्त्री शासन हो जाने से उसका प्रभाव बहुत बढ़ गया और अमेरिका महाद्वीप में उसकी स्थिति सर्वश्रेष्ठ हो गई। ठीक इसी समय पूर्व में रूस ने अपना विस्तार आरम्भ किया। अंत में उसने ईरान पर अपना प्रभाव जमा लिया। इसलिए अब अंगेज़ों की दृष्टि में पश्चिम में अमेरिका और पूर्व में रूस का भारत में सबसे बड़ा खतरा उठ खड़ा हुआ था। इसीलिए अंग्रेज़ों ने उत्तर पश्चिम को जीत कर और अफगानिस्तान और ईरान पर अपना अधिकार जमाकर तथा पंजाब में अधिकार करके अपनी सीमाओं को सुदृढ़ और अच्छी कर लिया।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि भारत में अंग्रेज़ी साम्राज्य स्थापित होने से पहले १७६१ में मरहठों को, १७३८ में मुग़लों को और १३९८ में मुग़लों से पहले के मुसलेमानों को एक समान ही ऐसी शक्ति की विनाशक चोट खानी पड़ी थी, जिसने अफगानिस्तान के रास्ते भारत पर आक्रमण किया था। इसके अतिरिक्त इसी रास्ते से मुहम्मद ग़ोरी और बाबर ने आकर अपने राज्य भारत में स्थापित किए थे। ये ऐतिहासिक तथ्य अंग्रेज़ों को भयभीत कराने के लिए काफी थे। ख़ासकर उस हालत में जबकि वे देख रहे थे कि रूस समरकन्द तक बढ़ आया है।

परन्तु इस समय भी ब्रिटेन की परिस्थिति बड़ी विचित्र थी। यह निश्चय था कि ब्रिटिश भारत को अपनी रक्षा स्वयं ही करनी होगी। वह अंग्रेज़ी सेना ले सकता था परंतु उसका खर्चा भारत ही को देना होगा। इसलिए अंग्रेज़ इस समय देश के बाहरी और भीतरी भयों को दूर करने में जीजान से लगे थे। यद्यपि उनके पास संचित करने योग्य शक्ति न थी और संकट उन पर आ सकते थे।

इस समय तक इंगलैंड का क़ानून एक प्रकार से जंगली था। लगभग दो सौ अपराधों पर वहाँ प्राणदण्ड दिया जाता था। ये अपराध बहुधा साधारण होते—जैसे जेब कतरना, किसी निषिद्ध स्थान में मछली मारना, वृक्ष काटना, धमकी की चिट्ठी लिखना, झूठे हस्ताक्षर करना, खरगोश मारना आदि। इन अपराधों पर ही लोगों को फाँसी पर लटका दिया जाता

था। आम तौर पर अपराधी को सार्वजनिक स्थान पर किसी पेड़ से लटका कर फाँसी दे दी जाती थी। इसी से राजा नन्दकुमार को जालसाज़ी के मामले में फाँस कर फाँसी दे दी गई थी। इसके बाद भी अंग्रेज़ कलकत्ते में चाहे जिस अपराधी को सार्वजनिक स्थान में पेड़ों पर लटका कर फाँसी दे देते थे। फाँसी देने की रीति बहुत सरल और निखर्ची होती थी। बहुधा अपराधी को घोड़े पर बैठा कर किसी पेड़ के नीचे खड़ा किया जाता। पेड़ से एक रस्सी बाँध कर अपराधी के गले में फंदा डाल दिया जाता और घोड़े को भगा दिया जाता था। बस खट से फाँसी लग जाती थी। अपराधी की लाश कई-कई दिन तक वहाँ लटकती रहती थी। उस दिनों बीस-बीस पच्चीस-पच्चीस अपराधियों को एक साथ ही लटका दिया जाता था।

इसी प्रकार इंगलैंड में जेलों की दशा बड़ी भयानक थी। इंगलैंड की भाँति भारत में भी कैदियों को अंग्रेज़ों की जेल में पशुओं की भाँति ठूंस दिया जाता था। जहाँ बहुधा वे कष्ट और यातना से मर जाते थे, या पागल हो जाते थे। बहुत बाद तक भारतीयं जेल वैसे ही बने रहे। जहाँ बहुत से बन्दी पागल हो जाते या अपमृत्यु के शिकार होते थे।

१८३० में विलियम चतुर्थ इंगलैंड कीं गद्दी पर बैठा। इस समय तक भरतपुर का पतन हो चुका था। पेशवा का तख्त उलट चुका था और नेपोलियन कि मृत्यु हो चुकी थी। इसीलिए यह काल इंगलैंड की समृद्धि का काल था। भारत में उसका साम्राज्य संगठित हो गया था और यूरोप में उसके चिर शत्रु फ्रांस के विग्रह खत्म हो गए थे। दुनिया की खोज खत्म हो गई थी। विज्ञान के नेत्र खुल गए थे।

विलियम मिलनसार, सरल और सर्वप्रिय राजा था। वह लण्डन के बाज़ारों में स्वेच्छापूर्वक फिरता था। उसके शासन काल में इंगलैंड ने नई करवट बदली। पार्लमैंट के संगठन का संशोधन हुआ। गुलामों के व्यापार पर रोक-थाम की गई। ब्रिटिश राज्य में दासों को स्वतंत्र कर दिया गया और उनके स्वामियों को क्षतिपूर्ति में दो करोड़ रुपए दे दिए

गए। फैक्टरी एक्ट में संशोधन हुए और शिल्पोद्योग उन्नत हुआ। शिक्षा का प्रसार हुआ। नगरों के प्रबन्ध के लिए कमेटियाँ बनीं। इन सब सुधारों का प्रभाव भारत में भी अंग्रेज़ी नीति पर पड़ा। कम्पनी के कर्मचारियों की पुरानी अंधेरगर्दी कुछ कम हुई।

यह मार्के की बात है कि सन् १८३७ में बहादुरशाह बादशाह और रानी विक्टोरिया ने एक ही समय में राज्यारोहण किया। कैसा विचित्र संयोग था यह—एक पतनोत्मुख मुग़ल साम्राज्य का प्रतिनिधि था और दूसरा उदीयमान ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि। इसके दो वर्ष बाद ही रणजीतसिंह की मृत्यु हुई।

रानी विक्टोरिया की आयु इस समय बीस वर्ष ही की थी। उसके सिंहासन आरोहण पर हेनोवर प्रदेश इंगलैंड से पृथक् हो गया। क्योंकि उस देश में कोई भी स्त्री शासक नहीं हो सकती थी। विक्टोरिया दृढ़-चरित्र की रानी थी। उसके मंत्री मेलवर्न और राबर्ट जील योग्य पुरुष थे। इस समय शिल्प-क्रांति के कारण मज़दूरों में बेकारी और अशान्ति फैली हुई थी तथा ग़रीबों की दशा बहुत खराब थी। परन्तु सबसे महत्व पूर्ण बात यह थी कि इस समय इंगलैंड की नज़र रूस की समृद्धि पर पड़ रही थी, जिसने उसे शीघ्र ही क्रीमिया की युद्धभूमि में ला खड़ा किया।

: २ :

कलकत्ते का विकास

ज्यों-ज्यों भारत में अंग्रेजों का दबदबा बढ़ता गया। कलकत्ता गुलज़ार होता गया। परन्तु यहाँ उस समय तक भी बंगालियों की अपेक्षा विदेशियों की ही बस्ती अधिक थी। बंगाली नीच श्रेणी के ही अधिक रहते थे। जो या तो मछेरों का काम करते थे, या नाविक होते। या कम्पनी सरकार के चरकटे, बरकन्दाज, सिपाही, बैरा, खानसामा होते थे। या फिर चोर-डाकू होते थे। उस समय कलकत्ते की कुल आबादी दस हज़ार से अधिक न थी। जब नन्दकुमार को फांसी हुई तो ब्रह्महत्या हुई, कलकत्ता अपवित्र

हुआ कह कर बहुत से उच्च कुलीन ब्राह्मणों ने कलकत्ता त्याग दिया था। उन्होंने गंगा पार हावड़ा, शिवपुर आदि स्थानों में जा कर जल पिया था, फिर वे कलकत्ते लौटे ही नहीं। इस के बाद उच्च कुल के ब्राह्मणों ने इन विदेशियों का पूरा बहिष्कार किया। अंग्रेज़ी पढ़ना और अंग्रेज़ों की नौकरी करना दोनों ही अधर्म की बात समझी जाती थी। बन्धोपाध्याय, मुख्योपाध्याय तब तक अंग्रेज़ी पढ़ कर बनर्जी, मुकर्जी नहीं बने थे। अंग्रेज़ों का काम अब बिना हिन्दुस्तानी लोगों की सहायता के नहीं चलता था।

प्लासी के युद्ध के बाद सारी परिस्थिति ही बदल गई थी। अब अंग्रेज़ों को केवल हिन्दुस्तानी सिपाही ही नहीं, कारकुन, कारिन्दे, गुमाश्ते और ऐसे राजपुरुषों की भी आवश्यकता थी, जो अंग्रेज़ों को व्यवस्था स्थापित करने और कर उगाहने में पूरी मदद दें। बंगाल में जब तक हिन्दु राज्य रहा, उस में ब्राह्मणों का बोलबाला रहा। पालवंशी राजा तथा राजा लक्ष्मण सेन स्वयं ब्राह्मण थे। मुसलमान शाशकों ने भी ब्राह्मणों को ज़मीदारियां दीं थीं, उनकी आवभगत भी करते थे, पर अंग्रेज़ों के ढंग दूसरे ही थे। वे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता नहीं स्वीकार करते थे। भारतीय मात्र को वे हीन समझते थे। वास्तव में सभी यूरोपियन, जो भद्र जाति के विपरीत साहसिक जाति क थे, सभी भद्र भारतीयों को तुच्छ दृष्टि से देखते थे। वे स्वयं साहसिक थे। प्रत्येक कार्य में जोखिम उठाने की उन की परम्परा थी, वे उन भारतीय भद्र पुरुषों की प्रतिष्ठा कैसे कर सकते थे, जो शांत, शिष्ट धर्म भीरू और प्राचीन संस्कृति के अनुगत थे।

परन्तु बंगाल में उन्हें एक जाति मिली थी, जिसे साहसिक एक अंश तक कहा जा सकता है। वह जाति कायस्थों की थी। कायस्थ अत्यन्त प्राचीन काल से राजवर्गी पुरुष रहे हैं। वे कलम की कमाई खाते रहे हैं। कायस्थों की जातीयता का इतिहास हम नहीं लिख रहे, कायस्थों की साहसिकता की बात कह रहे हैं।

सातवीं शताब्दी में जब दहिर के पतन के बाद सिंध पर अरबों ने

अधिकार किया, तब सिंध पर ब्राह्मणों का ही शासन था। दहिर राजा स्वयं भी ब्राह्मण था। उसके सब उच्च राजकर्मचारी भी ब्राह्मण थे। अरबों ने उन ब्राह्मणों को अपने-अपने पदों पर रह कर अरबों की अधीनता में राजकाज चलाने को कहा, तो ब्राह्मणों ने इसे अधर्म कह कर अस्वीकार कर दिया। उस समय केवल कायस्थ राजकर्मचारी ही अपनी नौकरियों पर क़ायम रहे। ब्राह्मणों ने म्लेच्छों से सहयोग नहीं किया। यद्यपि उन में से बहुतों को इसी अपराध में क़त्ल तक कर दिया गया।

इसके बाद जब अलाउद्दीन खिलजी ने यह विचार किया कि हिन्दू फारसी पढ़ कर राजकाज में सहयोग दें, तब भी ब्राह्मणों ने फारसी पढ़ने से इन्कार कर दिया, कायस्थों ने उस समय भी साहसिकता का परिचय दिया, और फारसी पढ़ कर मुसलमानों का सहयोग दिया। इस के बाद निरन्तर कायस्थों में फारसी भाषा का प्रचलन बढ़ता गया, यहाँ तक कि उनका रहन-सहन भी लगभग मुसलमानों जैसा हो गया। और वे सम्पूर्ण मुग़ल काल में क़लम के धनी राजपुरुष बने रहे।

इस के बाद जब अंग्रेज़ों ने बंगाल में अपना अमल जमाया तो ब्राह्मण तो अपनी कट्टरता के कारण पीछे हट गए पर कायस्थ साहसपूर्वक आगे बढ़े। उन्होंने अंग्रेज़ों से डट कर सहयोग किया। वे अंग्रेज़ों के बड़े सच्चे राजभक्त राजपुरुष बने।

जब कलकत्ता बस ही रहा था, शिताबराय नामक एक बंगाली कायस्थ गाँव से पेट की तलाश में कलकत्ता आया। अंग्रेज़ों को उसने शीघ्र ही अपनी सेवा और भक्ति से तथा योग्यता से संतुष्ट कर लिया। अंग्रेज़ों ने उसे पटने का दीवान बना दिया। शिताबराय ने कलकत्ते में अपनी बाड़ी बनाई और बाग़ लगाया। यह बाड़ी कुम्हार टोला में थी। जो काल चक्र में फंस कर अब ग़ायब हो चुकी है। इसी प्रकार गंगा-गोविन्दसिंह, कान्तपोद्दार, मुन्शी नवकृष्ण, देवीसिंह आदि को बड़े-बड़े खिताब देकर बंगाल के सूबों का दीवान बना दिया गया था। गंगागोविन्द

तो वारेन हेस्टिंग्स के दाहिने हाथ ही थे। उन्होंने उन्हें पहले खालसा डिपार्टमेन्ट के आम मुख्तार राजा राजवल्लभ के अधीन डिप्टी दीवान का पद दिया था। धीरे-धीरे यह पुरुष राजस्व विभाग का सर्वोच्च अधिकारी बन गया। इनका इतना रुआब-दबदबा था कि इन की कचहरी में बड़े-बड़े ज़मींदार, तालुकेदार और ज़मींदारों के गुमाश्ते और आम मुख्तार हाथ में नज़राना लिए सामने खड़े रहते थे। एडमण्ड वर्क ने इसके सम्बन्ध में कहा था—गंगागोविन्द के नाम को सुनते ही भारतवासियों का चेहरा पीला पड़ जाता था। वह अति नृशंस, दुस्साहसी और घोर कुचक्री था। शायद ही भारत की भीषण गुलामी ने इसके जैसा दूसरा दुरात्मा पैदा किया हो।

गंगागोविन्द ने कितना धन चूसा था, इसका एक उदाहरण यही है कि उसकी माता के श्राद्ध के समारोह में बीस लाख मनुष्य एकत्र हुए थे। और तीन कोस के घेरे में लोगों के ठहरने के लिए छप्पर तैयार किए गए थे। बंगाल के सभी राजा, ज़मींदार, तालुकेदारों ने उसका निमन्त्रण फौजदारी समन से बढ़ कर समझा था।

ऐसा ही दबदबा पुर्णिया के दीवान देवीसिंह का था। उस के नृशंस अत्याचारों से पुर्णिया का इलाका ही उजड़ चुका था।

सन् १७७७ के दुर्भिक्ष में अकाल और महामारी के कारण जब बंगाल के आधे नर-नारी मर-खप गए और खेत सूख गए तो मालगुज़ारी भी वसूल नहीं हुई। परन्तु मालगुज़ारी तो वसूल होनी ही चाहिए, इस लिए गवर्नर जनरल बहादुर ने हुक्म दिया कि ज़मींदारी की जमाबन्दी की जाए। इस प्रथा के द्वारा ज़मींदारों की पैत्रिक ज़मींदारियों की बोली बोल कर इजारा देना आरम्भ कर दिया। ऊंची बोली वाले को ज़मींदारी मिलने लगी। ये इजारादार ज़मींदारी पर क़ाबिज़ हो कर किसानों को पीसने लगे। पुराने ज़मींदार भिखारी बन गए। पुराने ज़मींदार अपनी अपनी रयैत के सुख-दुःख जानते थे। उन को सहायता पहुंचाते थे। पर अब जिन बनिए, महाजनों, तेलियों और दूसरी छोटी जात वालों ने धन

के लालच से ज़मींदारियां इजारे में लीं। वह अस्थायी, एक-एक या दो-दो बरस के लिए थीं। इस लिए भी, और कुछ इस लिए भी कि इजारे की मियाद खत्म होने से प्रथम ही जितना रुपया वसूल हो सके वसूल कर लिया जाए, वे रयत पर जोरो-जुल्म करने लगे। यहाँ तक कि इजारे-दारों के अत्याचार से जो रैयत भाग जाती, उन के हिस्से का रुपया दूसरी रैयत से वसूल किया जाता। शीघ्र ही इन इजारेदारों के अत्याचार से सारे देश में हाहाकार मच गया। अकाल और महामारी की मार से भी अधिक निर्दय मार यह इजारादारी की थी। बहुत से इजारादारों ने इतनी ऊँची बोली पर इजारा खरीदा था कि उतना रुपया वे रैयत से वसूल ही नहीं कर सकते थे। इस से वे मालगुज़ारी देने में असमर्थ हो गए। इस पर सरकारी कर्मचारियों ने ताबड़-तोड़ उन के पट्टे रद्द करने और दूसरे इजारेदारों को देने आरम्भ कर दिए।

इस समय छोटे से ले कर बड़े तक सभी रिश्वत लेते थे। बहुत-से जिले के कलक्टर या तहसीलदार पुराने इजारेदारों की ज़मींदारी कल्पित नामों से स्वयं ही खरीद लेते थे। और सारी मालगुज़ारी स्वयं हड़प कर जाते थे। इस से बहुत सी मालगुजारी बाकी पड़ जाती थी, जिसे सख्ती से वसूल करने की कड़ी आज्ञाएं ऊपर से जारी होती थीं।

ऐसे ही अन्धेरगर्दी का वह ज़माना था। यद्यपि इस से प्रजा पिस रही थी। पर कुछ लोग खूब सम्पन्न होते जाते थे। वे इजारे पर इजारा ले कर और प्रजा पर मनमाना जुल्म करके रुपया बटोरते और अंग्रेज़ों की छत्रछाया में कलकत्ते में आ बसते थे। उनके बड़े-बड़े महल बनते जाते थे और कलकत्त की आबादी बढ़ती जाती थी। मुर्शिदाबाद, हुगली, क़ासिमबाज़ार की बस्तियाँ भी अब उजड़ने लगी थीं। वहाँ के धनी लोग भी कलकत्ते में आ-आ कर बस रहे थे। जब मुर्शिदाबाद की नवाबी टूट गई और वहाँ का खज़ाना कलकत्ते आ गया तथा वहाँ भारत भर का शासक गवर्नर-जनरल रहने लगा, तो फिर तो वह भारत की राजधानी ही बन गई। अब केवल बड़े-बड़े धनी ही नहीं, कारिन्दे, कार-

कुन, क्लर्क, गुमाश्ते और छोटे-बड़े राज-कर्मचारी भी सपरिवार कलकत्ते में आ कर बसते जाते थे।

फिर भी एक बात बड़ी भयंकर थी। इस समय कलकत्ता संसार का सब से बढ़ कर अनैतिक नगर था। प्रथम तो वहाँ—अंग्रेज़, डच, अराकनी, पोर्चुगीज़ आदि देशों के डाकू, गिरहकट, उठाईगीर, चोरों के बेशुमार गुप्त अड्डे बन गए थे। जिन के अवैध-व्यापार में दूर-दूर तक जल-थल में फैले हुए थे। दूसरे इस समय तक अंग्रेज़ यूरोपियन जाति की स्त्रियों का नितान्त अभाव था। यूरोप से बहुत कम स्त्रियाँ भारत में आती थीं। इस लिए वे सब विदेशी व्यभिचार में भयंकर रूप में फँसे थे। और एक ओर वे अपहरण, बलात्कार के अपराध कलकत्ते में चरम-सीमा को पहुँच रहे थे—दूसरी ओर सिफलिस और गनोरिया के संक्रामक रोग आम हो रहे थे, जो पीछे भारत भर में फैल गए। यूरोपियन स्त्रियों की कमी की यह कैफियत थी कि यदि एक स्त्री विधवा हो जाती थी, तो उस के दस-बीस गाहक उसके पीछे मण्डराने लगते थे। यहाँ तक कि पचास वर्ष की आयु की स्त्रियाँ भी बड़े चाव और आग्रह से ब्याह ली जाती थीं। फिर भी व्यभिचार के अड्डे तो इतने थे कि इस छोटे से शहर को देखते उन की संख्या को भयंकर कहा जा सकता था। कलकत्ते का यह व्यभिचार केन्द्र भविष्य के लिए भी स्थायी हो गया। आज भी कलकत्ता इस बात के लिए भारत भर के नगरों में प्रथम स्थान रखता है।

: ३ :

कुलीन घराना

प्लासी की लड़ाई से पहले जैसा गुलज़ार और आबाद शहर क़ासिम-बाज़ार था, लगभग वैसा ही सैदाबाद था। क़ासिमबाज़ार में अंग्रेज़ों की कोठी थी और सैदाबाद में फ्रेंचों, डचों और आरमीनियों की कोठियाँ थीं। यद्यपि क़ासिमबाज़ार में भी फ्रांसीसी, डच और आर-मीनियन लोगों की कोठियाँ थीं, परन्तु यहाँ अंग्रेज़ों का ही बोलबाला

था और अंग्रेज़ कोठी वाले इस बात की सख्त ताक़ीद रखते थे कि कोई तन्तुकार जुलाहा अंग्रेज़ों के अतिरिक्त फ्रांसीसियों या डचों के हाथ कपड़ा न बेचे। यदि वह ऐसा करता था तो अंग्रेज़ कोठी के गुमाश्ते और साहब लोग उसका घरबार लूट लेते और उसे जेल में डाल देते थे। उनकी स्त्रियों का भी अपमान करते थे। फ्रांसीसी और डच उन्हें कपड़े का अच्छा दाम देते थे, पर अंग्रेज़ों के भय से कोई उन्हें माल बेचता ही न था। फिर भी झूठी-सच्ची बातों की कोई जाँच नहीं होती थी और जिस पर यह शक होता था कि उसने उन लोगों से व्यापार किया है, उस पर गज़ब ढहा दिया जाता था। उनकी स्त्रियाँ भ्रष्ट कर डाली जाती थीं। इस पर जाति वाले उन्हें जातिच्युत कर देते थे। उन दिनों क़ासिम-बाज़ार में जुलाहों की बड़ी भारी बस्ती थी। पर जिस दिन मीर क़ासिम हार कर भागा उसी दिन सात सौ जुलाहे अपना गाँव छोड़ भागे और सैकड़ों ने अपने अंगूठे काट डाले।

सैदाबाद में अंग्रेज़ों के अत्याचार कम होते थे। उन दिनों सैदाबाद में दो भाई जगाई और छदाम रहते थे। दोनों जाति के गोप शूद्र थे। वे बहुत ग़रीब आदमी थे। थोड़ी-सी ज़मीन उनकी थी। उसी में धान बो कर या मेहनत-मज़दूरी कर के वे अपनी गुज़र करते थे। इनकी उम्र पच्चीस या तीस बरस की हो चुकी थी फिर भी इनका ब्याह नहीं हुआ था। बचपन ही में इनके पिता की मृत्यु हो गई थी। और उनका पिता कौन था, इसकी याद भी उन्हें नहीं थी। ये लोग खेतों में तरकारी बोते और उसे सिर पर रख कर फरंगियों की कम्पनी में बेचा करते थे। छदाम छोटा भाई ही यह फेरी का धंधा करता था। बड़ा भाई खेतीबारी में लगा रहता था। फेरी लगाते-लगाते उसका परिचय बहुत से साहब लोगों से हो गया। वह तरकारी और नींबू बेचने क़ासिमबाज़ार भी जाता था। कभी-कभी वारेन को दो-चार नींबू उपहार दे देता था। इससे प्रसन्न हो कर वारेन हेस्टिंग्स ने उसे रेशम की कोठी में दलाली करने का परवाना दे दिया और वह दलाली करने लगा। आदमी बुद्धिमान था।

उसका बुद्धि कौशल देख वारेन साहब की जमानत पर उसे कोठी में प्यादा नियत कर दिया गया। उन दिनों कोठी के प्यादों को बहुत आमदनी होती थी। फिर छदाम तो वारेन का प्रिय व्यक्ति था। प्यादा बन कर केवल उसे आर्थिक लाभ ही नहीं हुआ, इज्ज़त भी बढ़ गई। प्यादा होने के बाद उसने छह ही महीने के भीतर अपने भाई जगाई का तथा अपना ब्याह भी कर लिया। अब छदाम को अंग्रेज़ों की कोठी में दलाली करते ८-९ बरस हो चुके थे। उसने काफ़ी रुपया जमा कर लिया था। इसी समय विलियम वोल्टस क़ासिमबाज़ार की फैक्टरी के प्रधान नियत हो कर आए। उन दिनों कम्पनी के आदमी अपना निजू कारोबार कर के भी रुपया कमाते थे। उन्होंने छदाम की दक्षता देख उसे अपना निजू व्यापार का दीवान बना लिया।

छदाम में व्यापारिक सूझबूझ तो थी ही, एक और भी गुण था। जिसे अंग्रेज़ बहुत पसंद करते थे। वह जब कोई काम करने पर तुल जाता था तब उचित अनुचित न्याय का विचार नहीं करता था। न जुल्म, अत्याचार, झूठ और बेईमानी करने में उसे संकोच होता था। इन गुणों के कारण छदाम शीघ्र ही बड़े साहब के नाक का बाल हो गया। और केवल चौदह महीने में ही उसने डेढ़ लाख रुपया पैदा कर लिया। वोल्टस साहब को भी उसकी सहायता से इन दिनों में ९ लाख का मुनाफ़ा हुआ। परन्तु छदाम के अत्याचारों से घबरा कर सैकड़ों जुलाहे घर-बार छोड़ कर भाग खड़े हुए। सैकड़ों ने अपने हाथों के अंगूठे काट लिए।

छदाम ने अब बहुत-सी ज़मींदारी मोल ले ली तथा पुख्ता हवेली भी बना ली। अब वह फीनस या पालकी में आफिस जाता आता था। उसे कोई छदाम बाबू, कोई विश्वास महाशय और कोई बड़े बाबू के नाम से पुकारते थे। अब उनका नाम छदामचन्द्र विश्वास और जगन्नाथ विश्वास हो गया था। गाँव के लोग अब उन्हें शूद्र नहीं मानते थे। और पूछने पर वे अपने को कायस्थ कहते थे। बंगाल में कायस्थों की दो

श्रेणियाँ हैं। एक बंगज कायस्थ, दूसरे दक्षिण बाढ़ी कायस्थ। चौबीस परगना में जो यशोहर राज्य था वहाँ के राजा प्रतापादित्य के वंशज बंगज कहाते थे। ये कुलीन थे और प्राय: बाखरगंज आदि पूर्वी प्रदेशों में रहते थे। दक्षिण बाढ़ी कायस्थ अधिकतर हुगली, वर्द्धमान, कृष्णनगर आदि नगरों में रहते थे। छदाम विश्वास ने अपने को दक्षिणबाढ़ी कायस्थों में शुमार कर लिया। अब वे बड़े आदमी अवश्य हो गए थे परन्तु रिश्ते अभी कुलीन कायस्थों में नहीं हुए थे। छदाम विश्वास के केवल एक इकलौती बेटी थी। उसकी उम्र जब दस बरस की हुई तो उन्होंने घटक को बुला कर कहा—"रुपया चाहे जितना खर्च हो, पर लड़की की शादी, घोष, वसु, मित्र और गुह इन चारों में ही किसी घराने में करेंगे। कायस्थों के ये सर्वोच्च कुलीन घराने थे। घटक ने बहुत जोड़-तोड़ लगाए। पर कोई कुलीन कायस्थ लाख रुपया ले कर भी छदाम बाबू की लड़की लेने को राजी नहीं हुआ। बंगाल में घटक ही कुलीनों के वर तलाश करते हैं। इस घटक ने हीं छदामचन्द्र की यह कुल परम्परा तैयार कर ली थी कि छदाम के प्रपितामह अनूपनारायण विश्वास इस प्रदेश के एक प्रतिष्ठित आदमी थे। वे बड़े सदाचारी एवं कुलीन थे। बड़े-बड़े कुलीन कायस्थों में उनके रिश्ते होते थे। नवाब के दर्बार में उनका बड़ा मान था। उनकी मृत्यु के समय उनके पुत्र छदाम के पितामह नाबालिग़ थे। इसलिए उनकी रियासत जब्त हो गई। और धीरे-धीरे ये लोग बहुत ग़रीब हो गए। पर छदाम बाबू तो अब देश के राजा हैं। उन्होंने अतोल धन कमाया है। बंगला फारसी के उस्ताद हैं। उनका घराना बहुत पुराना और प्रतिष्ठित है। परन्तु इतनी विरद बखानने पर भी कोई कुलीन उनकी लड़की लेने को राजी नहीं हुआ। छदाम और जगन्नाथ ने आज तक अपने प्रपिता का नाम नहीं सुना था। अपनी यह विरुदावली सुन कर वे कहने लगे,—"हाँ हाँ, अनूपनारायण विश्वास ही हमारे पड़दादे थे, पर उनके दादा और पिता कौन थे, यह वे अभी तक भी न जान पाए थे। इन्हीं दिनों चाँचड़ा गाँव के तालुकेदार कृष्णमोहनदत्त

बड़े परेशान थे। वे ऐयाश आदमी थे। शराब और ऐयाशी में कर्ज़े से डूब गए थे। तालुके की बहुत-सी मालगुज़ारी उनके जिम्मे बाक़ी पड़ी थी। और सरकारी प्यादे उनका वारंट लिए फिरते थे। इससे वे अपने सुयोग्य पुत्र के साथ इधर-उधर सिर छिपाए फिर रहे थे। पुत्र भी उनका पूरा आवारागर्द, गंजेड़ी और निरक्षर था। उनको घटक से मुलाक़ात हुई और केवल दस हज़ार नक़द ले कर वह छदाम की लड़की से अपने पुत्र का विवाह करने को राज़ी हो गए। छदाम को दत्तों का कुलीन घराना सस्ते ही में मिल गया। कृष्णमोहन ने कहा—"मेरे यहाँ सम्बन्ध करने से देश-भर के कुलीन बारात में उनके घर आएँगे। और उनका छुआ भात खाएँगे।"

उन दिनों कुलीनता का बड़ा प्रताप था। न वर का चरित्र देखा जाता था न शिक्षा। बस, कुल देखा जाता था।

बड़े समारोह से छदाम विश्वास की बेटी का ब्याह दत्तों के कुलीन खानदान में हो गया। छदाम ने कोई पचास हजार रुपया खर्च किया। पर लोगों ने कहा—दस लाख खर्च हुआ है, पन्द्रह लाख हुआ है। इसके बाद उन्होंने दामाद को घर जमाई बना कर रखा। दामाद अपढ़ था, इसलिए उन्होंने रामदास शिरोमणि और हरिदास तर्करत्न की पाठशाला में दामाद को भरती करना चाहा—पर उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कहा, ब्राह्मण के अतिरिक्त शास्त्र पढ़ने का किसी को अधिकार नहीं है। तुम्हारे दामाद को पढ़ाने से हमें पतित होना पड़ेगा। छदाम खुद भी पढ़ना-लिखना नहीं जानते थे। पर लोग उन्हें बंगला फारसी का मुन्शी कहते थे। पढ़ने की कीमत वे जानते थे। उन्होंने दो सौ रुपए महीना देने का वादा करके तर्करत्न महाशय को गुप्त रीति पर पढ़ाने के लिए राजी कर लिया। छदाम के दुश्मन बहुत थे। बहुतों को वे तबाह कर चुके थे। एक दिन किसी ने उनका घर लौटते समय खून कर दिया। इस घटना के थोड़े दिन बाद ही छदाम की कन्या का भी देहान्त हो गया। पर दामाद ने घर नहीं छोड़ा। कुछ दिन बाद छदाम की विधवा और दामाद

के सम्बन्ध में बहुत से अपवाद उठ खड़े हुए। तब एक दिन सास दामाद दोनों, जो माल-मता जेवर हाथ लगा, वैष्णव बन प्रेमानन्द बाबा के अखाड़े में रहने लगे। वहाँ से अवसर पाकर सब माल-मता कब्जे में कर दामाद महाशय कहीं चम्पत हो गए और बेचारी छदाम की विधवा को वैष्णवियों के साथ भिक्षावृत्ति पर शेष जीवन व्यतीत करना पड़ा।

ज़मीन जायदाद सब जगन्नाथ विश्वास के हाथ लगी। उनके बुढ़ापे में एक संतान हुई। बालक का नाम रक्खा गया यादवेन्द्र। बालक बुद्धिमान और होनहार था। उसने अंग्रेज़ों को अपनी सेवा और योग्यता से प्रसन्न कर लिया और महाराजा का खिताब पाया। इस समय महाराज यादवेन्द्र नाथ विश्वास कलकत्ते के सब कुलीन बंगालियों के शिरोमणि और सबसे बड़े धनिक प्रसिद्ध थे।

: ४ :

महाराज यादवेन्द्र विश्वास का विवाह समारोह

इस समय महाराज यादवेन्द्र विश्वास ने अपने नए महल में धूमधाम का जलूस किया। अंग्रेज़ों ने उन्हें महाराजा बहादुर का खिताब दिया था और पुण्यरूपा रानी भवानी के पौत्र राजा रामकृष्ण की सब ज़मींदारी खरीद कर वे इस समय बंगाल के सबसे बड़े तालुकेदार बन गए थे। महल उन्होंने अंग्रेज़ी ढंग का बनाया था। उसमें अंग्रेज़ी ढंग की फुलवारी और क्यारियाँ लगवाई गई थीं। इस समय नौकरों की एक फौज भी उनके महल में भरी हुई थी। महाराजा बहादुर की उम्र पैंतीस ही तक पहुँची थी। अभी उन्होंने विवाह नहीं किया था। इतने दिन बाद अब इस वर्ष उन्होंने अपना विवाह किया था। वर्द्धमान के प्रसिद्ध मित्र परिवार की लड़की से। मित्र परिवार कभी बड़ा सम्पन्न था। उसका बड़ा मान और दबदबा था। जमीन जायदाद भी काफी थी। प्रथम श्रेणी के कुलीन थे। आरम्भ में इस परिवार के गोविन्द मित्र कम्पनी बहादुर के गवर्नर जनरल कानवालिस के दाहिने हाथ थे। उन्होंने कार्नवालिस के

प्रस्तावित चिरस्थायी बन्दोवस्त पद्धति को बंगाल में प्रसारित किया था। इसी से बड़े लाट के वे कृपा भाजन हुए। उनके ठाठ-बाट राजाओं के समान थे। रानी भवानी की उन्होंने एक बार कठिन समय पर सहायता की थी। जिसके पुरस्कारस्वरूप उन्होंने उन्हें पाँच गाँव पुरस्कार दिए थे। परन्तु अब उनके उत्तराधिकारी अपनी पद मर्यादा कायम न रख सके। धीरे-धीरे ज़मींदारी बिक गई और अब मित्र परिवार का केवल नाम का महत्व ही रह गया। परन्तु यह महत्व भी असाधारण था। महाराजा बहादुर ने ज़िद की थी कि मित्र परिवार की कन्या से ही विवाह करें। धन सम्पत्ति तो उनके पास थी। अब महाराजा बहादुर का ख़िताब पाकर उनकी व्यवहारिक मान-मर्यादा भी बहुत बढ़ गई थी। बड़े-बड़े अंग्रेज़ अफसर उनके यहाँ आ चुके थे। छदाम विश्वास ने कुलीनों से सम्बन्ध किया था, पर इतने पर भी उनकी सामाजिक मर्यादा हीन थी। जानने वाले जानते थे ही थे कि वे जात के गोपशूद्र हैं। रुपया कमाने ही से वे बड़े आदमी हो गए। या तो मनुष्य चरित्र, गुण से लोक पूजित होता है। पर हमारे देश भारत में बहुत दिन से धनवान व्यक्ति ही बड़े कहाने लगते हैं। हकीकत में साहसिक अंग्रेज़ साहसिक भारतीयों को चुनकर रायबहादुर और राजाबहादुर बना देते थे। साहसिक जन की पहचान तो यही थी कि—बिना भले-बुरे का विचार किए कार्य सिद्धि पर दृष्टि रखे। अंग्रेज़ यही स्वयं करते थे। गवर्नर जनरल से लेकर छोटे से छोटा अंग्रेज भी कार्यसिद्धि को महत्व देता रहा। परंतु भारतीय परंपरा में साहसिक जन नहीं है, भद्रजन हैं। अतः इन नीच जाति उत्पन्न जनों की संतान जब धन सम्पन्न हो गई तो उन्होंने अपने भद्रजनोचित नाम रख कर भद्रजनों की श्रेणी में प्रवेश किया।

महाराज यादवेन्द्र विश्वास ने भी यही किया। धन-सम्पदा, उपाधि आदि से वे बड़े आदमी वन गए थे, पर जानने वाले तो जानते थे कि वे जाति के गोप शूद्र हैं। इसलिए उन्होंने मित्रों के खानदान की लड़की से ब्याह कर भद्र श्रेणी में आगे और एक क़दम बढ़ाया। इस ब्याह में उन्हें

बहुत खर्च करना पड़ा। बारात ठाठबाट की गई और दोनों ओर का व्यय राजा बहादुर के मत्थे पड़ा। पर इससे महाराज बहादुर खुश ही थे। उन्होंने बड़ी धूम-धाम से अपने घर पर जल्सा किया। जल्से में गवर्नर से ले कर सभी छोटे-बड़े अंग्रेज़ आए। बहुत से बंगाली भद्रजन रईस भी आए। केवल रानी भवानी के पौत्र राजा रामकृष्ण ने उनके घर आने में संकोच किया। परन्तु अन्त में आना उन्हें भी पड़ा।

इस समारोह में एक और व्यक्ति बिना बुलाए ही आ गया था। अंग्रेजी बाजा बज रहा था। रोशन चौकी की धूम थी। बाहर भारतीय और अंग्रेज़ मेहमानों का तांता लग रहा था। महाराजा स्वयं व्यस्त भाव से उनके स्वागत सत्कार में व्यस्त थे। जनाने में बड़ी-बड़ी रानियाँ और भद्र परिवार की महिलाएँ तथा अंग्रेज़ लेडियाँ नई रानी को बड़ी-बड़ी सौगातें देने आईं थीं। महारानी साहेबा जड़ाऊ गहने पहिन कर गम्भीर भाव से गद्दी पर मसनद के सहारे बैठीं सबसे भेंट मुजरे ले रही थीं। इतनी सम्भ्रांत महिलाएँ वहाँ जुड़ी थी, पर किसी का साहस न था कि महारानी के बराबर गद्दी पर बैठे। सभी सामने क़ालीन पर बैठ कर जुहार-मुजरा कर रही थीं। इस समय एक स्त्री सादा धोती पहने रानी के सम्मुख आ खड़ी हुई। आगन्तुका स्त्री की आयु बहुत कम थी। कोई बीस वर्ष होगी। उसका यौवन और रूप बिखरा पड़ रहा था। यद्यपि उसके शरीर पर एक ही सफेद धोती थी तथा उसके अंग पर एक भी गहना न था। गहने के नाम एक लाल धागा उसकी कलाई में बँधा था। फिर भी वह स्त्री निःशंक आकर रानी के सामने खड़ी हो गई। उसकी दृष्टि में दैन्य न था। सभी स्त्रियाँ आश्चर्य-चकित होकर उसकी ओर देखने लगीं। आश्चर्य की बात यह थी कि किसने इस भिखारिणी को महल में घुस आने दिया। एक प्रगल्भा महिला ने पूछा—"तुम कौन हो और किस अभिप्राय से महारानी जी की सेवा में आई हो ?"

"अनुग्रह करने के अभिप्राय से", उसने आगे बढ़ कर रानी से कहा—"तुम कदाचित् मुझे नहीं पहचानती हो। तुम्हारे दादा गोविन्द मित्र

मेरे श्वसुर के शिष्य और यजमान थे। मैं सप्तग्राम के भट्टाचार्य महाशय की पुत्रवधू हूँ।"

उस स्त्री के ये वाक्य सुनकर रानी आँखें फाड़-फाड़ कर आगन्तुक स्त्री की ओर देखने लगी। फिर हठात गद्दी को छोड़ कर उठ खड़ी हुई। उसने कहा—"आप सप्तग्राम के भट्टाचार्य महाशय की पुत्रवधू हैं?" उस ने गले में आँचल डाल कर उस स्त्री की चरण-धूलि मस्तक पर चढ़ाई और अपनी गद्दी पर मसनद के सहारे बैठा कर कहा—"मेरे अहोभाग्य, किन्तु?"

आगे की बात उसके मुँह से नहीं निकली। और रानी उस की विपन्नावस्था देख लज्जा से सिर नीचा किए उसके सम्मुख बैठी रह गई। सभी स्त्रियाँ आश्चर्य और कौतूहल से उस एक वस्त्र धारिणी स्त्री को देखने आ जुटीं।

रानी ने कहा—"मैं आप को जानती हूँ। आप के श्वसुर ने पचास हज़ार रुपया ऋण देकर मेरे दादा को बन्दीगृह से छुड़ाया था तथा सारी मालगुज़ारी अदा कर दी थी। परन्तु दुर्भाग्य कि अगले वर्ष कम्पनी बहादुर ने फिर मालगुज़ारी वसूल की। और उसे अदा न कर सकने से हमारी सब ज़मींदारी कुर्क हो गई। हम विपन्नावस्था में पड़ गए। आप के श्वसुर का रुपया भी नहीं दे सके। इसी दुःख में मेरे दादा की मृत्यु हो गई।"

"परन्तु मेरे श्वसुर ने वे रुपए तुम्हारे दादा को कर्ज़ तो दिए न थे। तुम्हारे दादा मेरे श्वसुर के शिष्य थे—उन की संकट अवस्था जान सहायता की थी। इसी प्रकार और शिष्यों को भी उन्हों ने रुपये दिए थे। किसी को बीस हज़ार, किसी को पन्द्रह हज़ार, किसी को पच्चीस हज़ार। इस से बहुतों की ज़मींदारियाँ बच रहीं। परन्तु मेरे श्वसुर अपनी मालगुज़ारी न दे सके—इस से उन्हें उन की जमींदारी से बेदखल कर दिया गया और उन्हें तथा मेरे पति को कैद कर लिया। इसके बाद हमारी ब्रह्मोत्तर ज़मीन भी कम्पनी सरकार ने छीन ली। और हम

निरीह निराश्रय रह गए। हमारे यजमान भी सब संकटग्रस्त हो गए थे। और देश में दुष्काल पड़ा था। मेरे श्वसुर की मृत्यु जेलखाने ही में हो गई। पीछे मेरे पति बड़ी कठिनाई से छूटे। परन्तु वे तेजस्वी पुरुष हैं, इस अवस्था में कहीं आते-जाते नहीं हैं। चण्डी मण्डप में उन्होंने पाठशाला खोली है। वहीं वे देश-देशांतर से आए शिष्यों को न्याय पढ़ाते हैं।"

"और भट्टाचार्य महाशय का निर्वाह अब कैसे होता है?"

"इसमें कोई दिक़्क़त नहीं है। विद्यार्थी भिक्षा ले आते हैं। मैं भात रांध देती हूँ। भट्टाचार्य महाशय और विद्यार्थियों के आहार के बाद जो शेष बचा रहता है मैं खा लेती हूँ। हमारा काम मज़े में चल रहा है।"

उस स्त्री ने मृदुमुस्कान करते हुए रानी की ओर देखा, जो इस समय हीरे, मोती और रत्नों से लदी थी।

रानी के नेत्रों से आँसुओं की धार बह निकली। उसने कहा—"कैसे आश्चर्य की बात है, दीनाजपुर, मालवा और रंगपुर के जिलों के सभी सम्भ्रान्त ज़मींदार और श्रीमन्त लोग जिन की चरणधूलि सिर पर चढ़ा कर अपने को धन्य मानते थे, जो नवद्वीप भर में न्याय के सूर्य माने जाते थे, जिनकी ब्रह्मोत्तर ज़मीन की वार्षिक आय पचास-साठ हज़ार रुपयों से कम न थी; विवाह और श्राद्ध समारोहों में जिन्हें बुलाने के लिए बारह हाथी, आठ-दस घोड़े, एक-दो पालकी और बीस-पच्चीस नौकर गुमाश्ते जाते थे; जिन की चरण-धूलि पड़ने से सब गृहस्थों के घर पवित्र हो जाते थे, उनकी जेलखाने में मृत्यु हुई। अपना सर्वस्व दूसरों को दे कर स्वयं विपद्ग्रस्त बने। और यह उनकी पुत्रवधू इस वेश में आई हैं। मेरे ऊपर अनुग्रह करने के अभिप्राय से। कैसे मैं इस अनुग्रह से उऋण हो सकती हूँ भला?"

रानी की आँखों से ज़ार-ज़ार आँसू बह चले। आगन्तुक स्त्री ने आंचल से एक काठ की डिबिया निकाल कर उसमें का सिंदूर रानी की माँग में डालते हुए कहा—"अनुग्रह से उऋण होने की आवश्यकता नहीं है बहन, तुम हमारी यजमान हो। भट्टाचार्य महाशय कहीं आते-जाते नहीं

हैं। न्यायशास्त्र के पठन-पाठन से उन्हें अवकाश नहीं मिलता है। इसी से जब मैंने सुना कि तुम सौभाग्यवती हुई हो तो सिंदूर दान देने चली आई।

"लो अब मैं चली। विद्यार्थी सब आ गए होंगे। भात बना कर देना होगा मुझे।"

वह ब्राह्मणी उठ कर चल दी। रानी और दूसरी स्त्रियाँ हक्का-बक्का खड़ी देखती रह गईं। उनके मुँह से बोल भी न फूटा।

॥ ५ ॥

ब्राह्मण के द्वार पर

महाराजा ने भी सुना। सुन कर बहुत बिगड़े। बहुत अशोभनीय काम हो गया। इतनी सम्भ्रान्त कुल की महिलाओं के बीच दरिद्र ब्राह्मणी आकर गद्दी पर बैठ गई। रानी ने अपनी मर्यादा का भी विचार नहीं किया। छोटे घर की लड़की। न उसे दान-धन दिया, कि जिस से अपना बड़प्पन प्रकट होता।

महाराजा ने अंतःपुर में आकर रानी से कहा—

"यह तो अच्छा नहीं हुआ!"

"क्या अच्छा नहीं हुआ?"

"दरिद्र ब्राह्मणी को तुम ने उठ कर मसनद दी। दान-दक्षिणा देना ही यथेष्ट था।"

"उनके श्वसुर ने पचास हज़ार रुपया मेरे दादा को दिया था।"

"हो सकता है, अब तो वे दरिद्र ब्राह्मण हैं। हम राजा हैं।"

"सो इससे क्या वे छोटे हो जाएँगे, हम बड़े हो जाएंगे?"

"बड़े तो हम हैं ही। लाट साहब क्या किसी के घर जाते हैं?"

"भट्टाचार्य महाशय भी किसी के घर नहीं जाते।"

"तो इस-से क्या? खैर, अब तुम उसके घर कुछ दान-दक्षिणा पहुँचा दो। यह हमारी मर्यादा का भी तो प्रश्न है।'

"ऐसा दान भट्टाचार्य नहीं लेंगे।"

"क्यों नहीं लेंगे ? क्या हम कोई साधारण हैसियत के आदमी हैं ? हम राजा हैं, हमारी भी हैसियत है।"

"तो फिर आप जाइए, खुद। पण्डितानी भी तो खुद आई थीं।"

"क्या मैं खुद जाऊँ ?"

"आप को मर्यादा का ख्याल है तो जाना ही चाहिए। वह हमारे कुलगुरू का घराना है।"

"अच्छा, हमीं जाएँगे।"

राजा बहादुर हाथी पर सवार हो कर भट्टाचार्य के गाँव सप्तग्राम गए। साथ में बहुत से प्यादे सिपाही सवार। छोटा-सा ब्राह्मणों का गाँव। देखा, चण्डी मण्डप में बैठे भट्टाचार्य बटुकों को न्यायदर्शन पढ़ा रहे हैं। चण्डी मण्डप क्या है। तीन चार लकड़ी के लट्ठों पर उठा हुआ छप्पर है। उसी छप्पर के नीचे एक चटाई पर भट्टाचार्य महाशय बैठे हैं। सम्मुख आठ दस बटुक हैं। भट्टाचार्य महाशय का शरीर नंगा है। कमर में एक धोती है। कन्धे पर जनेऊ। माथे पर चोटी। अवस्था कोई तीस बरस।

हाथी पर कोई आया है, यह देख भट्टाचार्य महाशय उठ कर खड़े हो गए। महाराज ने हाथी से उतर कर भट्टाचार्य को प्रणाम किया, अपना परिचय दिया। और कहा—"मुझ पर अनुग्रह कर के पण्डितानी माता मेरे घर गई थीं। बड़ी दया की। अब मैं सेवा में आया हूँ। कोई अभाव हो तो कहिए, मैं उसकी पूर्ति करूँ।"

भट्टाचार्य हो-हो कर के हँस पड़े। महाराज को चटाई पर बैठने का संकेत किया। कहा—"नाम सुना था। आज दर्शन भी हो गए। आप के बैठने योग्य आसन नहीं है, तथापि बैठिए।" महाराज संकोच सहित बैठ गए। बातचीत आरम्भ हुई। औपचारिक शिष्टाचार के बाद, महाराज ने कहा—

"आप के पिता नदिया में विद्या के सूर्य थे, आप उनके सुयोग्य उत्तराधिकारी हैं।"

भट्टाचार्य महोदय ने कहा—"जब ग़जनवी, गौरी, तुलगक और तैमूर

ने एक के बाद एक धावे करके उत्तर भारत के हिन्दुधर्म, संस्कृति और साहित्य की प्रगति को छिन्न-भिन्न कर दिया, और उत्तर भारत, जो सहस्राब्दि से आर्य हिन्दू साहित्य और संस्कृति का केन्द्र बना रहा था वह इन आततताइयों के घोड़ों की टापों से रोंदा जा कर सर्वथा उजड़ गया। जिस के फलस्वरूप हिन्दू विद्या साहित्य, धर्म और संस्कृति को सुदूर पूर्व की ओर भाग कर बंगाल की शरण लेनी पड़ी। तब हमारे प्रपितामह महान नैयायिक जगन्नाथ पण्डित ने बनारस और मिथिला की विद्या भूमि को उल्लंघन कर के नवद्वीप में न्यायशास्त्र की विद्यापीठ स्थापित की। क्योंकि उस समय बनारस, पाटलिपुत्र आदि विद्या केन्द्र इन आततताइयों के चरणों की ठोकर से काँप रहे थे। केवल बंगाल ही इन उपद्रवों से बचा हुआ था। इसी से नदिया में हमारे पूर्वज पितामह जगन्नाथ पण्डित ने जगद्विख्यात न्यायपीठ की स्थापना की थी।"

"यह तो बहुत पुरानी बात है, भट्टाचार्य महाशय।"

"नहीं तो क्या? चौदहवीं शताब्दी में यह ज्ञान केन्द्र स्थापित हुआ था। और इसी समय कल्लंण भट्ट ने अपनी मानव धर्मशास्त्र की टीका रची थी। इसके बाद पन्द्रहवीं शताब्दी में चैतन्य प्रभु ने देश में वैष्णव-पन्थ चला कर देश की धर्म ग्लानि दूर की!"

"इस से पूर्व क्या बंगाल में ज्ञान का अभाव था?"

"अभाव ही कहना चाहिए, केवल बारहवीं शताब्दी ही में पण्डित-राज जगन्नाथ ने ही गीतगोविन्द रच कर विश्रुत ख्याति उपलब्ध की थी। मानव धर्मशास्त्र के प्रख्यात टीकाकार मेधातीर्थ पांच सौ वर्ष पूर्व मिथिला में हुए थे। और जीमूतवाहन ने चौदहवीं शताब्दी में ही दाएं भाग की रचना की थी। इस से पूर्व ग्यारहवीं शताब्दी में याज्ञवल्क्य स्मृति पर मिताक्षरा नामक टीका लिखने वाले महापण्डित ज्ञानेश्वर भी मिथिला निवासी ही थे।"

"तो आप के कथन का क्या यह अभिप्राय है कि बारहवीं शताब्दी में जहाँ केवल पण्डित जयदेव ही एक विख्यात कवि वंग देश में दीख पड़ते

हैं, वहाँ मुस्लिम काल में बड़े-बड़े विद्वान वंग देश में उत्पन्न हुए। और इस प्रकार उत्तर भारत से हिन्दू संस्कृति का केन्द्र उखड़ कर वंग देश में स्थापित हुआ ?"

"ऐसा ही तो हुआ। विद्यापति ने जो मिथिला में अनुपम काव्य रचना की उसका अनुकरण बंगवासी कवि चण्डीदास ने किया। बाद में जब मुग़लों ने बंगाल अधिकृत किया तो उन्होंने हिंदू विद्याकेन्द्रों को प्रश्न दिया। हिन्दू विद्वानों को भी आश्रय दिया। इस समय यद्यपि ब्राह्मणों के हाथ से राजनीति शिक्षा और न्याय-शासन छिन चुके थे, पर देश की धार्मिक अवस्था अभी उन्हीं के हाथ में थी। तेरहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के बीच मिथिला न्याय और स्मृति का केन्द्र रहा। रघुनन्दन ने १३वीं शताब्दी में बंगाल में नियमों में सुधार किए। कृत्तिवास मालाधर ने महाभारत भागवत और रामायण का अनुवाद किया। पदावलियां इसी काल में लिखी गईं जिनमें चण्डीदास और विद्यापति ने रसोत्कर्ष प्रकट किया। बंगाल की राजधानी गोड़ जिसके खण्डहर इस समय बीस मील में फैले हुए हैं तब समूचे भारत की संस्कृति का मूलकेन्द्र था।

महाराजा यादवेन्द्र बहादुर इस समय अपने राजापद गौरव को भूल गए।

वे मुग्ध भाव से बंगाल की गुणगाथा सुन रहे थे। उनके मुँह से निकला—

"ओह, वे दिन बंगाल के कितने गौरव के थे।"

"परंतु अब वे दिन नहीं रहे, अंग्रेज़ नया युग लेकर आए हैं। पुरानी ज़मींदारियाँ, सम्पत्तियाँ और सम्पन्न परिवारों को नष्ट करके अब वे नए सम्पन्न पुरुषों का, परिवारों का सर्जन कर रहे हैं। देखो, इन अंग्रेज़ों को जिनका लोभ और साहस श्लाघनीय है। लोभ और अर्थ संग्रह ही उनका यहाँ आने का उद्देश्य है। दूसरी ओर ये का पुरुष बंगाली हैं जो निर्वीयंता हैं ही—परस्पर सहानुभूति रहित भी हैं। इन दोनों जातियों के मेल से

अब देश की जो व्यवस्था हो रही है उसे तुम ने देखा तो होगा महाराज यादवेन्द्र ।"

महाराज ने लज्जित होकर कहा—"जी हाँ, देख रहा हूँ ।"

"व्यक्तिगत लाभ-हानि की बात मैं नहीं कहता। परन्तु सिद्धान्त की बात कहता हूँ । जैसी बलवान और साहसिक यह जाति है अंग्रेज़ों की, वैसी ही साहसिक और बलवान कोई दूसरी जाति यहाँ होती तो उन दोनों में बन्धु भाव स्थापित हो जाता । दोनों परस्पर गुण ग्रहण करते । परंतु निष्प्राण, नीचाशय, स्वार्थी बंगाली जाति के प्रति तो अंग्रेजों के मन में स्वभावतः घृणा और तुच्छता के भाव ही उत्पन्न हो सकते हैं ।"

महाराज यादवेन्द्र विश्वास पर इस स्पष्ट बात का क्या प्रभाव पड़ा यह जानने को एक बार भट्टाचार्य महाशय ने उनके मुख की ओर देखा, फिर कहा—"बंगालियों को नीच और स्वार्थी समझ कर ही तो उन्होंने नंगा-गोविंद देवीसिंह, कांत बाबू जैते नृशंस पुरुषों को उच्च पद दिए । ये लोग अंग्रेज़ों के जैसे साहसिक तो थे नहीं, अतः अंग्रेज़ों का आश्रय पा उन्होंने अपने ही देश भाइयों पर घोर अत्याचार किया ।

'मेरी ही बात ले लो। हमें—मुझे और मेरे देवोपम पिता को अंग्रेज़ों का नहीं, इन बंगाली अधमों ही का तो शिकार होना पड़ा ।'अत्याचार सह कर बारम्बार मैं सोचता था, क्यों नहीं बंगाली लोगों में जातीय अभिमान उदय हुआ । क्यों बंगाली इतने हेच हैं ।" कुछ देर के लिए भट्टाचार्य चुप हुए । फिर बोले—"स्वभावतः जो परम्परा से हम लोगों के बापदादों की दासता करते आए, वही अब अंग्रेज़ों की कोठियों के गुमाश्ते और फिर राजा हो गए। वे अब सम्भ्रांत-भद्रपुरुष बन भले ही जाँय पर उनके रक्त में सम्भ्रांत प्रभाव कहाँ है ।"

महाराज यादवेन्द्र का मुँह स्याह हो गया। पर तेजस्वी ब्राह्मण कहता ही गया—"मैं फिर अपनी ही बात कहूँगा । जब देश में हमारे ही नृशंस अत्याचार करके देश को लूट रहे थे, तब मेरे पिता ने लुटने में निराह जनों का साथ दिया। उन्होंने दूसरों की ज़मींदारी बचाने को

अपनी ज़मींदारी जब्त करा ली । दूसरों की मालगुजारी अदा की, अपनी न कर सके, अंततः जेल में कष्ट भोग कर प्राण दिए । सो किस लिए ? हमें किसी एक का साथ देना था, या लूटने वालों का या लुटने वालों का । हम ब्राह्मण हैं । खानदान हमारा परम्परा का यजमान है । हमारे यजमानों से हमें श्रद्धापूर्वक भूमि दी । हमारी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी स्वभावतः वही हमारे यजमान थे । अतः हमारे पिता ने खुशी से वह सब सम्पत्ति उन्हीं पर विसर्जन कर दी ।

"मेरे पिता के द्वार पर हाथी, घोड़े, पालकी, सिपाही. कचहरी, गुमाश्ते आसामी सभी कुछ था । उनकी आय पचास-साठ हज़ार रु० वार्षिक थी । अब मेरे द्वार पर तो कोई नौकर-चाकर नहीं है । यह छपरा है, चटाई है । धन-सम्पत्ति सब जिनका दिया हुआ था पिताजी ने वह उन्हीं को उनके आड़े समय में दे दिया । केवल ज्ञान हमारा अपना था, न्याय, मीमांसा, स्मृति हमारी है । यह सम्पत्ति वे मुझे-अपने पुत्र को दे गए, सो मैं उन्हीं की भाँति वह ज्ञान छात्रों को देता हूँ । अंतर केवल इतना ही है कि तब मेरे पिता छात्रों का अन्न वस्त्र से भरण-पोषण करते थे, अब छात्र भिक्षा ले आते हैं । मेरी ब्राह्मणी भात रांध देती है । बालक खाते हैं, हम भी खाते हैं । सो हम कोई घाटे में नहीं हैं । बहुत खुश हैं ।"

महाराज की आँखों से झर कर आँसू झरने लगे । भट्टाचार्य के चरणों में गिर कर उन्होंने उनके दोनों पैर पकड़ कर उन पर अपना सिर रख दिया । उन्होंने कहा—"आप धन्य हैं । बंगाल को आप पर गर्व है । आप को कौन लूट सकता है । आपकी कौन क्षति कर सकता है । हाय, आपके सामने मेरे जैसे अधम कितने तुच्छ हैं ।"

बहुत देर तक भट्टाचार्य महाशय चुप बैठे रहे । फिर कहने लगे—

"परन्तु महाराज, अब देर तक हमारा यह ज्ञानदान चलेगा नहीं । अब अंग्रेज तुम्हारी नई पीढ़ी को अपना ज्ञान दान देंगे । हम ब्राह्मणों की अब समाप्ति है । हमारे ज्ञान की भी अब समाप्ति है ।"

"यह कैसे भट्टाचार्य महाशय ?"

"अब तो भाई, अंग्रेज़ अंग्रेज़ी पढ़े लिखों की एक पृथक् जाति बना देंगे, जिन्हें अपने देशवासियों से या तो बिल्कुल ही सहानुभूति न होगी, या बहुत कम होगी। नई पीढ़ी में सब पुराने नष्ट हो चुकेंगे। नए घरानों का कोई प्राचीन गौरव, परम्परा का इतिहास न होगा। वे अपने अतीत को घृणा और तिरस्कार से देखेंगे। अपने नए जीवन के आदर्शों को अंग्रेज़ों को बताई रीति पर देखेंगे।"

"क्या आप का ऐसा विचार है ?"

"मेरा नहीं, अंग्रेज़ों का है। मुसलमान यह नहीं भूल सकते कि इन फिरंगियों ने उनके राज्य हड़प किये हैं। और हिन्दू भी यह याद रखते हैं कि ये फिरंगी म्लेच्छ और अपवित्र हैं। जिन के साथ मेल-जोल रखना पाप और लज्जाजनक है। ये भाव हिन्दू और मुसलमान अवसर पाते ही अपनी पीढ़ी में भरेंगे कि जिन से उनके मन अंग्रेज़ों के विरुद्ध भड़क उठें। पर अंग्रेज़ ऐसा क्यों होने देंगे। बंदूक़ की लड़ाई तो अब खत्म हो गई। उन्होंने बंदूक़ से देश पर अधिकार कर लिया, अब क़लम क लड़ाई शुरू होगी, इसके द्वारा वे अपने अधिकारों को कायम रखेंगे। वे अपनी भाषा और साहित्य अब तुम्हारे बच्चों को पढ़ाएँगे, उनकी भाषा और साहित्य पढ़ कर तुम्हारे बच्चे उन्हें विदेशी समझना बंद कर देंगे। वे अंग्रेज वीरों की वीरता के गीत गाएँगे, उन्हीं की सी उनकी रुचि हो जाएगी। और वे अंग्रेज़ों को भारत से निकालने के उपाय सोचना बंद कर देंगे।"

"किन्तु फिर हम बंगालियों का क्या होगा ?"

"महाराज, अंग्रेजों की बदौलत तुम महाराज बने गए, क्या बुरा हुआ ? और तुम्हारे बच्चे यदि अंग्रेजों की बदौलत अंग्रेज़ बन जाएँगे तो क्या बुरा होगा ?"

"परन्तु भट्टाचार्य महोदय, हमारे पूर्वज भी तो बड़े कट्टरपंथी थे, जाति-बन्धन और अन्य कुरीतियाँ तो उनमें भी थीं।"

"परन्तु उनमें उस अतिप्राचीन जाति और संस्कृति को ढोए चले

जाने की सामर्थ्य भी तो थी। अब उनकी वह सामर्थ्य खत्म हो जायगी।"

"तो क्या अंग्रेज़ी पढ़ कर हम हिन्दू या हिन्दुस्तानी न रहेंगे ?"

"जब तक हिन्दुस्तानियों को अपनी पहली स्वाधीनता के विषय में सोचने का अवसर मिलता रहेगा, तब वे अंग्रेज़ों को विदेशी समझेंगे। उन्हें निकाल बाहर करने की बात भी सोचेंगे। पर जब उनके मन में पाश्चात्य विचार पैदा कर दिए जाएँगे, और उनके पूर्वजों के स्वेच्छा शासन को जंगली प्रमाणित कर दिया जाएगा, तब वे अंग्रेज़ी शिक्षा और अंग्रेज़ों की रक्षा पर सर्वथा निर्भर हो जाएँगे। इसी से अंग्रेज़ अब यह चाहते हैं कि भारतीयों को अंग्रेज़ी साहित्य और अंग्रेज़ी विज्ञान की शिक्षा दी जाय। और उनमें अंग्रेज़ी सभ्यता और अंग्रेज़ी एशोआराम की रुचि पैदा की जाय।"

इसके बाद भट्टाचार्य महाशय मौन हो गए। महाराजा यादवेन्द्र बहादुर ने फिर उनके चरणों में मस्तक टेका। और कहा—"मेरा भाग्य कि आप से इतनी चर्चा हुई, इतना ज्ञान मिला, परन्तु मैं आप की सेवा में इसलिए आया था कि यदि आप का कोई अभाव हो तो आज्ञा दें, मैं सेवक की भांति उसकी पूर्ति करूँ।"

भट्टाचार्य ने कुछ व्यग्र भाव से कहा—"न, न, अभाव कुछ नहीं। न्याय की टीका में था, वह कल हम ने पूरा कर लिया, अब कोई अभाव नहीं है।"

"न्याय की टीका की बात मैं नहीं कहता भट्टाचार्य महाशय, मैं घर-गिरस्थी की बात कहता हूँ।"

"इस सम्बन्ध में भला मैं क्या जानूँ महाराज, आप ब्राह्मणी से पूछ सकते हैं।"

महाराज यादवेन्द्र भट्टाचार्य को प्रणाम कर भीतर गए और बद्धांजलि हो ब्राह्मणी से पूछा—"माता, मैं महाराज यादवेन्द्र विश्वास, आप को प्रणाम कर यह पूछता हूँ कि किसी वस्तु का अभाव हो तो आप मुझ दास को आज्ञा करें, मैं उसकी पूर्ति करूँ।"

ब्राह्मणी ने हँस कर कहा—"नाहक़ कष्ट किया आप ने। कल तक हमें एक लोटे का अभाव था, आज वह मिल गया है, अब हमें किसी वस्तु का अभाव नहीं है। हाँ, महारानी जी प्रसन्न तो हैं?"

"आप के अनुग्रह से माता।"

"तो हम सदैव उनकी शुभकामना करेंगे। वह हमारी यजमान है।"

"सो मैं जानता हूँ माता।"

महाराज ब्राह्मणी के चरणों में सिर रख कर लौट चले। बाहर आ कर उन्हें, उस तपोनिष्ठ ब्राह्मण के द्वार से हाथी पर बैठ कर जाने में लज्जा का बोध हुआ। उन्होंने आज्ञा दी—"हाथी और दूसरे सब लवा-जमात ले जाओ। हम अकेले ही पैदल आएँगे।"

और उन्होंने धूल भरे मार्ग पर कलकत्ते की ओर प्रयाण किया।

: ६ :

सती

वर्षा ऋतु थी। भादों का महीना। गंगा के पश्चिमी तट पर तनिक हट कर गौरीपुर गाँव था। गंगा तट से गाँव तक वृक्षों की एक लम्बी कतार दूर तक चली गई थी। गंगा पूरे वेग में बह रही थी। घाट पुराना था। टूटा-फूटा जा—पर अभी दो-चार पक्की सीढ़ियाँ उसमें बनी थीं। उनमें कुछ पानी में डूब गई थीं। घाट पर इस समय बड़ी भीड़-भाड़ थी। बहुत स्त्री-पुरुष घाट पर जमा थे। घाट से गाँव तक आदमियों का तांता लगा था।

गौरीपुर के ज़मीदार राधामोहन मजूमदार के पुत्र की अचानक ही हैजे से मृत्यु हो गई थी और अब उसकी नव विवाहिता बालपत्नी सती हो रही थी। सारा वातावरण शोक और हाहाकार से भरा हुआ था। घाट पर चिता हुई थी और उस पर मृत तरुण का शव रखा हुआ था। बहुत से ब्राह्मण आवश्यक उपचार कर रहे थे। चिता के निकट घाट की पत्थर की सीढ़ी पर पैर लटकाये वह बिलकुल अबोध बालिका

लगभग बेसुध-सी बैठी थी। उसका नखशिख श्रृंगार किया गया था। नवीन रंगीन चुनरी पहनाई गई थी। मांग में सिंदूर दिया गया था। हाथों में सुहाग का चूड़ा था। उसकी आयु अभी केवल तेरह वर्ष की होगी। उसके मुख पर अभी भी बालभाव था। विवाह हुए अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ था और वह अभी पितृगृह में ही थी, जो यहाँ से दो-तीन कोस पर था। आज भोर ही में उसके वैधव्य का समाचार मिला था और उसे वहाँ से पति के साथ सहगमन करने को बुलाया गया था। उसी की प्रतीक्षा में कई घण्टों तक चिता नहीं प्रज्वलित की गई थी। बालिका को होश नहीं था। उसे भाँग और धतूरा अधिक मात्रा में पिलाया हुआ था। वह सीधी नहीं बैठ सकती थी। दो प्रौढ़ा ब्राह्मणियाँ उसे दोनों ओर से मजबूती से जकड़े बैठी थीं।

इसी समय चिता की सब तैयारी सम्पूर्ण हो गई। किसी ने उच्च स्वर से कहा सती को गंगा स्नान करा कर चिता पर लाओ। ब्राह्मणियों ने उसे उठा कर एक डुबकी दी। एक बार उसने आँखें खोली पर फिर उसकी आंखें बंद हो गईं। एक प्रकार से घसीटते हुए उसे चिता तक ले आया गया। चिता पर उसे मृत पति के चरण गोद में लेकर बैठा दिया गया। गोद में बहुत-सा कपूर घृत में डुबो कर रख दिया गया। जगह-जगह घृत और राल चिता पर छिड़का दी गई। एकाएक सब बाजे, डफ, ढोल, दमामे जोर से बज उठे। चिता में आग लग गई। चिता ज्वलनशील-पदार्थों के संयोग से एक बारगी ही जल उठी। बाजों के शब्द से या आग की असह्य ज्वाला से या मृत्यु के प्रत्यक्ष दर्शन से वह बालिका एकाएक चैतन्य हो गई। वह एक ज़ोर की चीत्कार कर लुढ़कती हुई चिता से कूद पड़ी।

यह देख पाँच-सात ब्राह्मण अपने जनेऊ सम्हालते आगे बढ़े। अधर्म, पाप, कलियुग, घोर कलियुग आदि शब्द उनके मुँह से निकले। उनके हाथ में गीले बाँसों की बनी एक एक टठरी थी। जो कदाचित ऐसे ही समय के लिए बनी हुई थी। उसी ठठरी से उन्होंने बालिका को दबोच लिया।

वह ठठरी के नीचे से छटपटाने और आर्तनाद करने लगी। पर इसी समय उन ब्राह्मणों ने उसे हाथों-हाथ उठा कर चिता में झोंक दिया। चिता की आग अब चैतन्य हो चुकी थी। बालिका का नशा जाने कहाँ ग़ायब हो चुका था। वह मृत्यु को प्रत्यक्ष देख रही थी। उसकी दोनों आँखें फटी हुई थीं और वह दोनों हाथ ऊपर उठा कर फिर चिता से भागना चाह रही थी कि इतने हो में उन ब्राह्मणों ने वही बासों की ठठरी उसके ऊपर डाल कर उसे दबोच दिया। एकाएक बालिका के बालों और वस्त्रों में आग लग गई। बाजे फिर ज़ोर से बज उठे। बालिका की चीत्कार बाजों के तुमुल नाद में खो गई।

इसी समय बंदूक का शब्द हुआ। एक-दो-तीन-चार। लगातार बंदूकों के छूटने और गोलियों से आहत हुए स्त्री, पुरुषों की चीत्कार से उपस्थित भीड़ में हलचल मच गई। जिसका जिधर मुँह उठा भाग निकला। निरंतर बंदूकों की बाढ़ दागते हुए तीन-चार फिरंगी चिता तक धंसे चले आए। एक ने साहस करके चिता पर चढ़ कर बालिका को उठा कर गेंद की तरह बाहर फेंक दिया। दूसरे फिरंगी ने उसे हाथों-हाथ ले लिया। वह साहसी फिरंगी भी चिता से कूद पड़ा। इस समय तक सब लोग वहाँ से भाग चुके थे। फिरंगियों ने फिर उन पर गोलियों की बाढ़ दागी और मूर्छित बालिका को ले कर गंगा की ओर रुख किया। गंगा तट पर एक नाव बंधी थी। उस पर तीन-चार मांझी खड़े थे। उन्होंने सहारा देकर आरोहियों की नौका पर बिठाया। नौका गंगा के बीच धार में तेजी से चल दी। गंगा के बीच में एक कोशा खड़ी थी। कोशा में कोई बीस सशस्त्र गोरे थे। बीच में एक छोटा-सा छप्पर का घर था। बालिका को लेकर फिरंगी घर में चले गए। एक ने हुक्म दिया कोशा खोल दो और बहाव में जाने दो। सिपाहियों को हुक्म दिया—कोई नाव, डोंगी पीछा करे तो गोली चला दो। कोशा तेज़ी से चल दी।

: ७ :

पुनर्जन्म

जो साहसिक फिरंगी बालिका को चिता से उठा लाया था उसका नाम मेकडानल्ड था। कलकत्ते की ग्यारह नम्बर गोरी रेजीमेंट में वह लेफ्टीनेंट था। कोशा में उसकी रेजीमेंट की एक टुकड़ी जी। कोशा सरकारी थी और वह गंगा में गश्त के लिए निकली थी। उन दिनों गंगा में जो जल डकैतियाँ होती थीं उन्हीं की देख-भाल तथा व्यापारी नावों की सुरक्षा आदि के लिए यह कोशा गंगा सागर तक गश्त लगाया करती थी। लेफ्टीनेंट मेकडानल्ड इसका अफसर था। ज्योंही कोशा गौरीपुर घाट के निकट पहुँचा—लेफ्टीनेंट ने सुना कि वहाँ एक स्त्री को सती किया जा रहा है। वह तुरंत आठ-दस सैनिकों को संग ले किनारे पर उतर आया, और ठीक समय पर उसने बालिका की रक्षा उस भयंकर मौत से करली। कोशा पर फौजी डाक्टर भी था। उसने बालिका का समुचित उपचार किया। अभी उसके शरीर को कोई गम्भीर क्षति नहीं पहुंची थी। सिर्फ बाल झुलस गए थे और कपड़ों में आग लग गई थी तथा वह इस समय गहरी मूर्छा में थी। डाक्टर ने उपचार क बाद गर्म पानी में मिलाकर थोड़ी ब्रांडी उसके मुँह डाली, और कहा—अब इसे आराम करने दिया जाय।

कोशा पर कोई स्त्री न थी। इससे लेफ्टीनेंट मेकडानल्ड बहुत व्यग्र भाव से कोठरी से बाहर आए और एक बंगाली खलासी से कहा—किनारे पर कोई गाँव आने पर कोशा रोक दो, और एक हिंदू दाई जैसे बने ले आओ।

गाँव आया। फिरंगियों की नाव पर कोई औरत आने को राजी नहीं होती थी। बड़ी कठिनाई से एक बुढ़िया राजी हुई। वह कोशा पर आकर बालिका की सुश्रूषा डाक्टर के कहे अनुसार करने लगी। लेफ्टीनेंट मेकडानल्ड बाहर आ संतुष्ट भाव से पाइप पीने लगे।

रात भर कोशा चलती रही। सूर्योदय होने से कुछ पूर्व ही बालिका की मूर्छा भंग हुई। उसने दाई को देख कर पूछा—"मैं कहा हूं।"

"तुम फिरंगियों की नाव पर हो।"

"तुम कौन हो?"

"मैं तुम्हारी दासी हूँ" अब तुम सो जाओ, मैं साहब को खबर करती हूं।

वह चला गई। सूचना पाकर लेफ्टीनेंट और डाक्टर भीतर आए। बालिका होश आने पर भी हतज्ञान थी। सामने दो गोरों को आते देख चीख मार कर फिर बेहोश हो गई।

डाक्टर ने आवश्यक हिदायतें दाई को दीं और बाहर चले गए।

दिन भर और फिर रात भर कोशा चलती चली गई। दाई मूर्छित अवस्था में ही ब्रांडी मिला दूध उसके मुंह में डालती रही।

प्रातःकाल होने पर उसे होश आया। सूचना पाकर डाक्टर और लेफ्टीनेंट भीतर आए।

डाक्टर ने देख कर कहा—अब कोई भय नहीं है। आप बातें कीजिए। इतना कहकर डाक्टर बाहर चले गए। लेफ्टीनेंट टूटी-फूटी हिंदुस्तानी में बातें करने लगे। उन्होंने कहा—

"फेअर लेडी, अब डर का बाट नेई। टुम अच्छा होगा तो अम तुमकूं टुम बोलेगा भेजने सकेगा।"

"साहब आप कौन हैं?"

"अम लेफ्टीनेंट मेकडानल्ड। कम्पनी सरकार का आदमी।"

"मैं यहां कैसे आई।"

"टुम कुच याड करता हाय?"

"इतना याद आता है—कोई बुरा सुपना देखा था। वे मुझे जला रहे थे। बड़ी भारी आग थी। उस आग में सारी दुनिया जल रही थी। किसने मुझे उस आग से बचाया।"

"पनमेसुर गाड ने फेयर लेडी" श्रम भौत ठीक पौचा। अमारा मिह-नत कारगर हुश्रा। टुमारा जान बच गया ?"

बेचारी बालिका इतना भी नहीं समझ सकी कि साहब को धन्यवाद देना चाहिए। उसने भीतमुद्रा से कहा—

"लेकिन वे लोग कौन थे ?"

"शयतान हाय। बट श्रबी टुम सो जाव, कमज़ोर है। बाट फिर होगा।"

"वे मुझे फिर तो नहीं जलाएँगे ?"

"नो, नो, हियर दे केन नॉट कम। टुम इत्मीनान से रहो।

युवती चुप हो गई। उसने श्राँखें बंद कर ली। उसकी श्राँखों से श्राँसू ढरक चले।

साहब तेजी से बाहर चले गए।

कोशा चलती गई। बालिका फिर होश में श्राई। थोड़ा दूध श्रौर मछली का शोरवा उसे दिया गया। तब साहब ने उससे फिर बात की। भाषा की दिक्कत से बात बड़ी कठिनाई से हुई। बातचीत का सारांश यह था कि मेरा कोई नहीं है। श्रब मुझे वहाँ मत भेजिए। साहब ने स्वीकार किया—वहाँ तुम्हें नहीं भेजा जायगा।

श्रब साहब चिंता में पड़े—कहाँ इस स्त्री को भेजा जाय। सैनिक सन्निवेश में वह उसे श्रपने साथ नहीं रख सकते थे। परंतु शीघ्र ही उन्होंने कर्त्तव्य निर्णय कर लिया।

कलकत्ता श्रा गया। श्रभी डेढ़ पहर दिन शेष था।

: ८ :

जाति-बहिष्कार

गौरीपुर में कुलीन ब्राह्मणों की पंचायत जुड़ी। श्रास-पास के दस-बीस गाँव के कुलीन ब्राह्मण श्राए। सब के नेता थे हरिदास तर्क पंचानन। पंचानन महाशय दस-बीस विद्यार्थियों का झुण्ड साथ लाए थे। वे श्रपनी

शिष्य मण्डली सहित फर्श पर बीच में डटे बैठे गंभीरता पूर्वक नारियल पी रहे थे। शिष्यवर्ग एक के बाद दूसरी चिलम चढ़ाते जा रहे थे। दूसरे थे—रामदास शिरोमणि। आयु इनकी कम थी, पर कुलीनों के शिरोमणि थे। तीसरे थे चण्डीचरण विद्यारत्न, उनका भी बड़ा दबदबा था। इधर-उधर के ब्राह्मण बहुत जमा थे। सब अपनी-अपनी हाँक रहे थे। मामला बहुत गंभीर था। राधा मोहन मजुमदार गौरीपुर के ज़मीदार तो थे ही—जाति में भी बीस बिस्वे के कुलीन थे। उनकी सती होती हुई पुत्रवधू को म्लेच्छ उठा ले गए थे। महा अनर्थ—घोर अन्याय हो गया था। धर्म का वेड़ा ही गर्क हो गया था। अब प्रश्न यह था कि राधामोहन मजुमदार को बिरादरी से खारिज किया जाय या नहीं। राधा-मोहन नीचा सिर किए शोकाभिभूत हुए चुपचाप बैठे थे।

तर्क पंचानन ने कहा—"क्यों रामदास, अब क्या किया जाय। तुम क्या कहते हो?"

रामदास ने कहा—"आप बड़े हैं, सब शास्त्रों के ज्ञाता हैं, जाति में पूज्य हैं। आप के सामने मैं क्या कह सकता हूँ, आप ही कहिए।"

"मैं अब इसमें क्या कहूंगा। राधामोहन की पुत्र-वधू का अपहरण हुआ है। वे जाति में तो नहीं रह सकते।"

"कैसे रह सकते हैं। जिनकी पुत्र-वधू म्लेच्छ के हाथ पहुँच गई वे हम कुलीन ब्राह्मणों की जाति में कैसे रह सकते हैं?"

"तो बस, उनका हुक्का-पानी बन्द। नाई-धोबी भी बंद। तुम क्या कहते हो चण्डी चरण?"

"आपने शास्त्रीय मर्यादा की ही बात कही है।"

अब राधा मोहन ने कहा—"किंतु तर्क पंचानन महोदय, आप यह तो बताइए कि इसमें मेरा क्या दोष है?"

"दोष बहुत है। आपकी पुत्रवधू भ्रष्ट हो गई। इससे उसका पितृ कुल भी भ्रष्ट हो गया और श्वसुर कुल भी।"

"तर्करक्त महाशय, कुछ तो मेरी दशा पर तरस खाइए। मेरे कष्ट को देखिए।"

"तो भाई, तुम्हारे कष्ट के लिए समाज को तो पतित नहीं किया जा सकता। कहो—कल को वह फिरंगी तुम्हारी बेटी को मेम बना कर गाँव में आ गया, तो हम उसे जमाई थोड़े ही मान लेंगे? हाँ, तुम्हारी बात जुदा है। जैसा चाहे करो।"

"तो यही बात ठीक रही—तर्करत्न महाशय, परंतु बहू के पिता के लिए क्या होगा?"

"अरे भाई, ससुर कुल की भाँति पितृकुल भी तो पतित हो गया। यही व्यवस्था उसके लिए भी है।"

राधा मोहन मजुमदार के पाँच सौ रुपए तर्कपंचानन महाशय पर पावना था। उसकी अदालती डिग्री भी हो गई थी। अब उसी बात को याद कर राधा मोहन ने थोड़ा क्रोध करके कहा—"अच्छी बात है तर्क-पंचानन जी, आप हुक्का, पानी, नाई, धोबी बंद कर सकते हैं। अदालती प्यादों को तो नहीं रोक सकते। कुर्की डिग्री तो नहीं रुक सकती।"

तर्क पंचानन डर गए। उनके हाथ का नारियल वहीं रुक गया। हाथ कांपने लगे। डिग्री की बात बहुतों को मालूम थी। जिन्हें मालूम थी वे तर्क पंचानन को चिढ़ाने के लिए बोले—"नहीं, डिग्री कुर्की को पंचायत कैसे रोक सकती है।"

"अच्छी बात है। तो मैं अब जाता हूँ।" क्रोध करके राधामोहन उठ खड़े हुए। अब तकपंचानन का संकेत पाकर चण्डी चरण बोले—"ठहरो राधामोहन, एक बात है।"

"कौन-सी बात अब रह गई।"

"तुम वृन्दावन जाकर शुद्धि कर आओ।"

'और जो मैं न जाऊँ तो?"

"तो भाई सपरिवार वैरागी बन जाओ। तीसरी राह नहीं हैं।"

"क्यों नहीं है। मैं इस जाति ब्रादरी पर लात मारता हूँ। ग्राज से मैं ब्राह्मण हूँ ही नहीं, मैं ब्राह्मो समाज में दीक्षित होऊँगा।"

"तब तो तुम स्वयं ही पतित हो रहे हो।"

"पतित तुम हो जो कूप मण्डूक बने हो। तुम रूढ़िवादी, स्वार्थी हो। पराया दोष देखना तुम्हारा काम है। ग्रपनी ग्रांख का शहतीर तुम्हें नहीं दीखता, पर दूसरे की ग्रांख का तिनका भारी मालूम होता है। मेरी पुत्रवधू दूध पीती बच्ची थी। मैं उसे सती करना नहीं चाहता था। मेरा एक ही पुत्र था—वह मर गया, तो मैंने बहू को ही पुत्र के समान प्यार करना चाहा था। मेरे घर में स्त्री नहीं है। कोई दूसरा भी मेरा ग्रात्मीय नहीं है। पर तुम क्रूर हिंसक भेड़ियो ने मुझे वह भयानक काम करने को विवश किया। पर ईश्वर ने उसकी रक्षा कर ली। मैं तो खुश हूँ। ईश्वर करे वह जीवित हो ग्रौर मैं उसे ग्रपनी पुत्री की भाति पालन करूँ तथा ग्रपनी सारी सम्पत्ति उसी के नाम करूँ।"

"ग्रौर यदि वह खिस्तान हो गई हो ?"

"तो भी क्या हर्ज है। खिस्तान तुम्हारे जैसे नीच, क्षुद्राशय, क्रूर ग्रौर ग्रधर्मी नहीं है। वह खिस्तान भी हो गई होगी तो भी मैं ग्रपनी सब सम्पत्ति उसी को दूंगा। यही मेरा ध्रुव निश्चय है। मैं ग्रब इस गांव में–जहां तुम जैसे नर पिशाचों के ग्रपवित्र चरण पड़ते हों, रहूंगा भी नहीं। मैं कलकत्ते जा बसूंगा। जिससे फिर कभी मुझे तुम्हारा मुंह न देखना पड़े। तर्कपंचानन महाशय, तुम्हारे ऊपर जो मेरी पांच सौ रुपए की डिग्री है वह मैं छोड़ता हूँ। तुम्हारे ऊपर का ऋण माफ करता हूँ। ग्रौर रामदास महाशय गत वर्ष जो कलंक का काम तुम्हारी विधवा बेटी ने किया था ग्रौर जिसे तुमने जहर देकर मरवा डाला था, तुम्हारी वह कलंक गाथा भी मैं किसी से नहीं कहूँगा। जिस पर मेरा लेना पावना बकाया है, वह सब मैं छोड़ता हूँ। किन्तु मैं ग्रब न तुम्हारे साथ गाँव में रहूँगा, न तुम्हारी इस घृणित बिरादरी में।

इतना कह कर राधामोहन तेजी से वहां से उठ गए। धर्मप्राण ब्राह्मण शिरोमणि जनों का मुँह ठीकरे के समान स्याह हो गया।

: ६ :

पण्य द्रव्य या गछान प्रथा

सन् १८३३ के चार्टर के पास होने के बाद बहुत से अंग्रेज व्यापारियों ने कलकत्ता—और बंगाल बिहार में अपनी-अपनी कोठियाँ स्थापित कर ली थीं। जहाँ वे अपना स्वतन्त्र कारोबार करते थे। कहने ही को ये कोठियाँ व्यक्तिगत थीं। उन्हें कम्पनी सरकार की ओर से अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं। प्रथम तो यह—कि चीन और यूरोप में बेचने के लिए वे जो माल भारत में खरीदते थे—उसका मूल्य वे नकद नहीं देते थे। वे अपनी-अपनी कोठियों में अपने लिए पण्य द्रव्य खरीद कर जमा रखते थे। इन्हीं पण्य द्रव्यों पर ड्योढ़ा दूना मुनाफा रख कर मूल्य स्वरूप विक्रेताओं को देते थे। बंगाली इसे 'गछान प्रथा' कहते थे। इस प्रथा से बंगाल के सब देशी व्यवसायी दाने-दाने को मुहताज हो गए। इस प्रथा का तरीका यह था कि एक कोठी के अंग्रेज़ अध्यक्ष ने हजार रुपए का कपड़ा खरीदा। परन्तु उसके मूल्य का रुपया उस व्यापारी को न दे कर उसी रुपए से हजार मन तमाखू या चीनी खरीद ली। बाद में उसी एक हजार मन तमाखू या चीनी पर दो हजार मन का मूल्य लगाकर वह तमाखू या चीनी उस जुलाहे को दे दिया। इसके बदले में जुलाहे को एक हजार का कपड़ा तथा एक हजार रुपया नकद देने पड़े। कपड़ा देने और तमाखू लेने के बाद यदि जुलाहे को नकद रुपया देने में एक-दो महीने का भी बिलम्ब हुआ तो उस का घर-बार कुर्क कर लिया जाता था। इतना ही नहीं, उन की स्त्रियों तक का अपहरण कर लिया जाता था। अंग्रज कहा करते थे—कि इस गछान प्रथा द्वारा वे हिन्दुस्तानियों को विविध व्यापार विनिमय की शिक्षा देते हैं।

ये अंग्रेज़ यह पण्य द्रव्य खरीद कर भी उस का मूल्य एकदम नहीं

देते थे। यदि देशी बनिये उन पदार्थों को अंग्रेज़ों के हाथ उधार बेचने को राजी नहीं होते—या दूसरों के बेचते तो भी अंग्रेज़ उनके घर-बार लूट लेते और उन की स्त्रियों की बेइज्जती करते थे।

इस प्रकार बहुत से बनियों का सर्वनाश हो गया, और वे अपना घर-बार, कारोबार बन्द कर इधर-उधर भाग-भूग गए, और अनगिनत पुराने व्यवसायी सदा के लिए नष्ट हो गए।

: १० :

ग्रे साहब की कोठी

दीनाजगंज में ग्रे साहब की कोठी थी। कोठी में साहब खुद कारोबार नहीं करते थे, वे अपनी अन्य कोठियों की देख-भाल करते थे। यहाँ की देखभाल व कारोबार मोहनलाल गुमाश्ता करता था। मोहनलाल को स्याह-सफेद करने का पूरा अधिकार था।

रामचरन विश्वास को कोठी में बैठे दो-तीन घण्टा हो गया था। पर अभी मोहनलाल को उससे बात करने का सुभीता नहीं हुआ था। रामचरन को यह साहस नहीं होता था—कि वह गुमाश्त से तकाज़ा करे। वह खास दीनाजगंज का रहने वाला कोरी था। एक महीना हो गया तब मोहनलाल ने उस से एक हज़ार रुपये का कपड़ा खरीदा था। पर अभी तक उसे दाम नहीं दिया गया था। दाम केलिए रामचरन को रोज़ दौड़ना और कोठी में घण्टों बैठे रहना पड़ता था। रामचरन को दमे का दौरा उठता था—वह दुबला-पतला बूढ़ा आदमी था। उसके काम का भी हर्ज होता था। पर उन सब बातों की ओर मोहनलाल का ध्यान न था। परन्तु इस समय ग्रे साहब भी कोठी में उपस्थित थे। अन्त में उस का धीरज का बाँध टूट गया। उसने साहब से कहा—"धर्मावतार, मेरा हिसाब साफ हो जाता तो अच्छा था। मेरा बहुत हर्ज हो रहा है।"

साहब ने कहा—"इस आदमी का क्या हिसाब है?"

"हुजूर एक हज़ार का कपड़ा आया था। अभी पन्द्रह ही दिन हुआ है।"

क्या उन थानों का सौदा हो गया ?"

"जी हाँ, उसके मूल्य के एवज में हम ने डेढ़ हज़ार का तमाखू खरीद लिया है।"

"तो पांच सौ रुपयों का तमाखू इस को डेडो। और हज़ार रुपए का तमाखू मुनाफे में डाल दो।"

रामचरन ने कहा—"धर्मावतार, मुझे नकद रुपया मिल जाता तो ठीक था। मैं तमाखू कहाँ बेचूंगा।"

"वैल, टमाकू भोट मुनाफा का माल हाय। साब लोग टमाकू पसन्द करता। अबी—तुम डो हजार का कपरा हमारी कोठी में और डो।"

"हुजूर, मैं दो हज़ार का कपड़ा उधार कहाँ से दे सकता हूँ।"

"उढार नई, अम टुम कू नमक डेगा। नमक। नमक सब बंगाली लोग भोट खाता हाय।"

"हुज़ूर, मुझे नकद रुपया मिलना चाहिए।"

"माल बेच कर नकद रुपया बनाओ मैन। अम बी ऐसा ही—बिजनेस करता।"

इतनी बात कह कर साहब शिकार को चले गए। मोहनलाल ने कहा—"पांच सौ का तमाखू लेते हो ?"

"फिर पाँच सौ का क्यों ? माल तो एक हज़ार का है।"

"बाकी पाँच सौ फिर मिलेगा।"

"कब ?"

"क्या साहब बहादुर की कोठी का दिवाला निकल रहा है, जो ऐसा सवाल करते हो ?"

"खैर, लेकिन तमाखू के दाम तो बाज़ार भाव से दूने से भी अधिक हैं ?"

"तो हम क्या करें। हमें मंहगा माल मिला है।"

"माई बाप, हम कैसे इतना नुकसान उठाएंगे।"

"तब घूमो कुछ दिन और।"

मोहनलाल दूसरे काम में लग गया। रामचरन ने सूखे मुंह से कहा—"खैर, दे दीजिए तमाखू पांच सौ का।"

"तब यह दस्तावेज लिख दो, दो हज़ार का माल देना होगा, बोलो कब दोगे ?"

'दो हज़ार का माल उधार मैं नहीं दे सकता।"

"तो हवा खाओ, तमाखू पांच सौ का नहीं मिल सकता।"

"ऐसा जुल्म मत कीजिए माइ बाप।"

"अरे भाई, साहब का हुक्म तुम ने सुना नहीं ?"

"सब सुना,। पर हम कहाँ से दें।"

"यह सोचने का काम तुम्हारा है। देखो इतने दस्तावेज हैं। सभी ने दस्तखत किए हैं। तुम्हीं इन्कार करते हो।"

"खैर, लाइए लिख देता हूँ। पर इन थानों का पांच सो बकाया मिल जाना चाहिए।"

"वह भी मिल जायगा। पर दो हज़ार का माल जमा हो जाने के बाद। लो दस्तखत करो और तमाखू तोल लो।"

: ११ :
दादनी

पाठक कान्त पोद्दार को न भूले होंगे। जिस समय नवाब सिराजुद्दौला के भय से वारेन हेस्टिंग्स मुर्शिदावाद छोड़ कर भागे थे, तो कान्त बाबू ने उन्हें शरण दी थी। उस समय उन्होंने अपने ऊपर आने वाली विपत्ति की परवाह न करके उन्हें अपने क़ासिम बाज़ार वाले घर में छिपाया, तथा धन से सहायता भी की थी। वह वास्तव में अंग्रेज़ों पर बड़ा ही टेढ़ा समय था। नवाब के सिपाही अंग्रेज़ों को खोजते फिरते थे, और जहाँ कहीं सुराग़ पाते थे, पकड़ कर मार डालते थे। शरणदाता हिन्दुस्तानी को भी यही

सज़ा मिलती थी। यह सब जोखिम कान्तपोद्दार ने उठाई थी। और अवसर पाते ही उन्हें अंग्रेज़ी छावनी में पहुँचा दिया था। उन दिनों वारेन हेस्टिंग्स एक नवयुवक थे और कम्पनी के दफ्तर में साधारण क्लर्क थे। कान्त बाबू भी उन्हीं की उम्र के थे। उन के पिता की एक मोदी की छोटी सी दुकान उन दिनों अंग्रेज़ी कोठी के पास ही थी। वारेन साहब वहीं से सौदा सुलफ़ उधार लेते थे। और कान्त बाबू के साथ गप्पें उड़ाते थे। कान्त बाबू बड़े खुश मिजाज और फुर्तीले आदमी थे। वारेन की सिफारिश से उन्हें कोठी में एक छोटी सी नौकरी भी मिल गई थी। बाद में वे गुमाश्ता के पद पर बहाल हो गए थे। उसी समय उनकी वारेन हेस्टिंग्स से घनिष्ट मित्रता हो गई थी। इसी से उन्होंने उस गाढ़े समय में वारेन हेस्टिंग्स की रक्षा की थी। हेस्टिंग्स साहब जब वहाँ से चलने लगे थे तो एक निदर्शन पत्र कान्त बाबू को देकर कहा था—कि यदि कभी मेरा अभ्युदय हुआ, तो आप यह निदर्शन पत्र मेरे पास लेकर आना, मैं इस उपकार का आपको यथासाध्य बदला दूंगा। इस के बाद जब अंग्रेज़ नवाब पर विजयी हुए और वारेन साहब हिन्दुस्तान के गवर्नरजनरल बने—तो उन्होंने अपने मित्र और सहायक कान्तपोद्दार को दीवान बना दिया। और जहाँ कहीं अच्छी ज़मींदारी उनकी नज़र में आती वे कान्त बाबू को सौंप देते थे। इस प्रकार देखते-देखते वे बड़ी भारी ज़मींदारी के स्वामी हो गए। परन्तु यह सब काम वे केवल परोपकार की दृष्टि से ही नहीं करते थे। उस में गुप्त रूप से उनका भी हिस्सा रहता था। कान्त बाबू अन्त तक वारेन साहब के पक्के दोस्त और मददग़ार बने रहे। उन के जानोमाल के कट्टर शत्रु महाराजा नन्दकुमार को फाँसी दिलाने में भी उनका बड़ा हाथ था।

बहारबंदर का परगना रानी भवानी की ज़मींदारी में एक सम्पन्न परगना था। रानी भवानी बंगाल की बड़ी साध्वी और प्रजावत्सला ज़मींदार थी। उनकी ज़मींदारी कम्पनी बहादुर ने छीन कर इजारादारों को इजारे पर बाँट दी थी। बहारबंदर का इलाक़ा कम्पनी के कारिन्दे

कांत बाबू ने पाया था और इस समय उनके कनिष्ठ पुत्र इस परगने के सर्वे सर्वा थे।। इन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने देश के शासन का भार हाथ में ले कर व्यापार बंद कर दिया था, एवं अंग्रेज़ों के लिए उसकी खुली छूट दे रखी थी। निरंतर अकाल और महामारी से सारा परगना तबाह हो चुका था और गाँव सब उजड़ गए थे, परन्तु नए ज़मींदार लगान वसूल करने में अत्यन्त कड़ाई करते थे। बिना कड़ाई किए लगान मिलना सम्भव भी न था। वह कड़ाई एक प्रकार का अत्याचार का रूप धारण कर गई थी, परन्तु दुर्भाग्य इतना ही नहीं था कि अत्याचार केवल ज़मींदार ही करता था। अब जो अंग्रेज़ स्वयं अपना उद्योग-धंधा करने लगे थे उन्हें ज़मींदार का पूरा सहयोग होता था। बिना सहयोग उनकी ज़मींदारी क़ायम नहीं रह सकती थी, इस प्रकार उस समय के ज़मींदार अंग्रेज़ मात्र के आज्ञा पालक सेवक थे। उनकी सहायता ले अंग्रेज़ व्यवसायी प्रजा पर निश्शंक निर्दय अत्याचार करते थे।

दीनाज गंज बहारबंदर परगने का सदर मुकाम था। वहाँ नए ज़मींदार ने नई हवेली-कचहरी बनाई थी। कचहरी में नायब दीवान एक गद्दी पर मसनद के सहारे बैठे थे। सामने फर्शी पर मुश्की तमाखू महक रहा था। उनके दाएँ-बाएँ और भी मसनदें लगी थीं। उन पर तहसीलदार, खज़ांची, मुहर्रिर, पेशकार, अमीन शरिश्तेदार बैठे अपना-अपना काम कर रहे थे। दीवान जी के सामने एक बड़े हाल में बीस-पच्चीस आसामी ज़मीन पर उदास मुँह, विवर्ण, विवस्त्र, जिनका शरीर अस्थि-पिंजर मात्र रह गया था, बैठे निराश आँखों से एक-दूसरे को देख रहे थे। भूख, प्यास और यातना से उनमें अब परस्पर बात तक करने की सामर्थ्य नहीं रह गई थी। उन्हीं को घेर कर तीस-चालीस हथियारबंद सिपाही खड़े थे। कुछ और नौकर-चाकर सिपाही भी अपने-अपने काम कर रहें थे।

दीवान साहब की बग़ल में एक अंग्रेज़ कुर्सी पर बैठा था। एक बढ़िया पेचवान उसके सामने भी रखा था, और वह मज़े से बीच-बीच में

उसके कश ले रहा था। इस अंग्रेज़ सौदागर का नाम फ्रेडरिक साहब था। उसकी उम्र कोई चालीस बरस की थी। वह चुस्त पोशाक पहने था और उसके एक हाथ में चमड़े का चाबुक था। उसकी आँखें भूरी और रंग एकदम लाल था। उसकी मूछें भूरी थीं। उसका प्रत्येक भाव-भंगी में बदमाशी और क्रूरता झलक रही थी।

उसने दीवान को सम्बोधन कर के कहा—"आसामी को हाजिर करो डीवान।" दीवान साहब ने एक सिपाही को इशारा किया। सिपाही तीन-चार संतरियों से घिरे हुए एक अधेड़ पुरुष को ले आए। यह एक नाटा और मोटा-सा आदमी था। उसके शरीर पर मार-पीट के निशान थे। वह आते ही हाथ बांध कर साहब के सामने खड़ा हो गया।

उसका शरीर कांप रहा था और वह करुण दृष्टि से कभी दीवान की ओर और कभी साहब की ओर देख रहा था।

दीवान ने कहा—"दादनी लोगे या नहीं, बोलो।"

"मैं क्या दादनी लेने से इन्कार करता हूँ।"

"तो लिख-पढ़ कर रुपए लो और अपने घर जाओ।"

साहब ने खुश हो कर कहा—"गुड ओल्ड बाय, दीवान, इसे साठ रुपए दे कर कागज़ लिखाओ। इसे हम बड़ा आडमी बनाएगा।"

नायब ने कहा—"लो, रंगपुर के सब कोरियों के लिए तुम कितनी दादनी लोगे?"

"महाराज, मैं अपने लिए दादनी लेने को राजी हूँ। जितनी चाहे दे दें, पर रंगपुर में तीन सौ घर कोरियों के हैं, उन सब की हामी मैं कैसे भर सकता हूँ?"

साहब ने क्रुद्ध हो कर अपने गुर्गे की तरफ़ देखा और कहा—"छज्जू खाँ, टुम इस आदमी को डुरुस्त करो।"

छज्जू एक हट्टा-कट्टा मुसलमान गुण्डा था। बड़ी-बड़ी डरावनी मूछें, लाल-लाल आँखें। साफ़ ज़ाहिर था, गांजा सुल्फे का दम मारता था। इसकी उम्र चालीस के लगभग होगी। पर ऐयाशी और गांजे के कारण

लटक गया था। जिस्म नाटा पर आँखें निहायत खूँखार। चेहरे की हड्डियाँ बाहर निकली हुईं। पहले यह आदमी किसी साहब के अस्तबल में घोड़ों की सईसी पर नौकर था। वहाँ से एक क़त्ल के जुर्म में जेल की सजा पा गया। जेल काट कर अब वह इस साहब की नौकरी में था। नौकरी का काम वह किस खूबी से पूरा करता था यह आप देख लीजिए। साहब का इशारा पाते ही छज्जू खाँ आगे बढ़ा। उसने निहायत संजीदगी से साढ़े तीन हाथ जगह नापी। उसके दोनों सिरों पर खड़िया से निशान कर दिए। तब उस आदमी से कहा—'इधर आ बज्ज़ात और इन निशानों पर पैर रख कर खड़ा हो।"

वह आदमी कद में मुश्किल से पाँच फुट था, टाँगें उसकी छोटी और पेट मोटा था। इस प्रकार पैर फैला कर खड़ा होना उसके लिए एकदम असम्भव था। उसने भयभीत नेत्रों से छज्जू खाँ की ओर देख कर कहा—"आप मुझ से चाहने क्या हैं?"

"तो क्यों नहीं दादनी ले कर इक़रारनामा लिख देता?"

"पर सारे गाँव की ओर से मैं कैसे इक़रारनामा लिख सकता हूँ?"

"अच्छा तो जाने दे, पैर फैला।"

छज्जू खाँ ने उसको दोनों लकीरों पर पैर रख कर खड़ा कर दिया। छज्जू खाँ के इशारे पर दो बर्कन्दाज बैठ कर उसके पैर चीरने लगे। अभी दो मिनट भी न हुए थे—कि उस आदमी के सिर से पैर तक पसीना चूने लगा। उसकी टाँगें चिरने लगीं और वह बेहोश हो कर धरती पर गिर गया। साहब ने सिगरेट का कश लगा कर कहा—"क्या मर गया?"

"नहीं साहब, मक्र करता है। देखिए, मैं अभी इसे ठीक करता हूँ।"

वह थोड़े से गोबर के उपले ले आया। उन्हें एक अंगीठी में डाल कर सुलगाया, जब धुआँ उठने लगा तो उसे उसके सिर के पास रख टाट के एक बोरे से ढक दिया।

धुंआ नाक में जाने पर वह आदमी जोर से उछला फिर खांसता-खांसता धरती पर छटपटाने लगा।

छज्जू खां ने हंस कर साहब की ओर देखकर कहा—देखा आपने, इन साले बंगालियों की मक्कबाजी मुझ से नहीं छिप सकती। फिर उसने उस आदमी की ओर देख कर कहा—"इधर आ बे, हमें नाहक तकलीफ न दे। दादनी ले, दस्तावेज लिख, और अपने घर जा।"

उस आदमी का दम फूल रहा था। बोलने की उसमें ताब न थी। उसके पैर कांप रहे थे, और वह खड़ा नहीं हो सकता था। उसके मुँह से एक भी शब्द नहीं निकला और वह टुकर टुकर छज्जू खां की ओर देखने लगा।

छज्जू ने उसके पास आकर कहा—'दादनी लेता है कि नहीं ?"

"गांव भर की नहीं ले सकता माई बाप।"

"तू एकदम बज्जात है। उसने गुस्सा करके एक रस्सा निकाला और उसके दानों हाथ पीठ पर करके बांध दिए। उस व्यक्ति में विरोध की शक्ति न रही थी। उसने चुपचाप हाथ बंध जाने दिए। छज्जू खां ने उस के हाथ बांध रस्सा छत के पास धरन से लटकते हुए रस्से से बांध दिया। और एक बरकंदाज की मदद से जोर से रस्सा खींचने लगा। उस आदमी ने वेदना से छटपटा कर एक चीत्कार की. और उसका शरीर एक बार छत तक उठ कर धड़ाम से धरती पर आ रहा।

छज्जू खां ने कहा—बड़ा ही जिद्दी आदमी है। पर मैं ज़रा एकदम लगा लूं। फिर इसे ठीक करूँगा। वह एक तरफ हट कर गांजे का दम लगाने लगा। दम लगा कर वह फिर उसके पास गया। वह बिना हिले-डुले औंधे मुँह पड़ा था। छज्जू खां ने एक जोर की ठोकर उसके मारी, पर वह तब भी नहीं हिलाडुला। उसने झुक कर उसे देखा, और उसके हाथ खोलते हुए बोला, यह तो मर गया साहब। क्षण भर को सन्नाटा छा गया। इतने आदमी थे, सब के सामने यह निर्दय खून हुआ। पर एक क्षणिक प्रभाव को छोड़ कोई खास असर उस घटना का किसी पर नहीं हुआ। छज्जू खां चारपाई पर बैठ कर गांझे की चिलम सुलगाने लगा।

साहब ने लाश को हटाने का हुक्म देकर कहा—दूसरा आसामी बुलाओ।

जो आसामी बैठे थे, डरते-डरते एक-एक करके आने लगे।

वे गांव-गांव के कोरी थे ' जो पकड़ बुलाए गए थे। इन सब को दादनी एडवांस मेनी के रूप में दी गई थी।

एक ने कहा—मेरा आठ सौ रुपयों का भुगतान था। सो मुझे एक रुपए मन की तमाखू और तीन रुपए मन की चीनी बारह रुपए मन के हिसाब से दी गई है।

"सो टुम उसकू बेच कर डूना रुपया कमाओ मैन। यह अड़ल बड़ल का व्यापार से तुम मालामाल होगा।"

"लेकिन माई बाप, आठ महीने हुए मेरा माल उधार लिया गया था। अब मुझे यह तमाखू और चीनी मनमाने आठ गुने भाव पर दी जाती है। दुहाई, मुझे नक़द रुपया दिया जाय॥

"अच्छा! अच्छा! छज्जू खां, इस बदमाश को नकड़ रुपया दो।"

छज्जू खां को देखते ही उस आदमी की घिग्घी बंध गई। वह रसीद पर अगूठा लगा कर चलता बना।

शेष आसामियों ने भी दादनी लेकर तमस्सुक लिख दिए और अपनी जान बचाई।

: १२ :

श्राद्ध

रंगपुर दीनाजगंज तालुके में बहुत सम्पन्न गाँव था। इसमें तीन सौ घर कोरियों के थे। इनके अतिरिक्त कुछ मल्लाह और कैवर्त भी रहते थे। इस समय तक भी बंगाल के कोरियों की अच्छी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा थी। कोरियों की जाति धनवान तो थी ही, प्रतिष्ठित भी थी। आज तो कौरी लोग अछूत बन गए हैं। परम्परा की दरिद्रता ने उन्हें अछूत बना दिया। परन्तु उस समय वे बंगाल के प्रतिष्ठित जनों में माने

जाते थे। वे सूत और रेशम के कपड़े का व्यवसाय करते थे। गत परिच्छेद में जिस पुरुष के अपघात की बात कही गई है उस का नाम रामचन्द्र प्रधान था। रंगपुर के कोरियों का वह चौधरी और बिरादरी का शिरोमणि था। उस का पुश्तैनी रोज़गार अच्छा था। और उस ने अपनी अच्छी स्थिति बना ली थी। इस के समान वस्त्र बुनने वाले कोरी थोड़े ही थे। मुर्शिदाबाद के सब साहूकार—और नवाब उसी का बना वस्त्र पहनते थे। और विवाह आदि के अवसरों पर हज़ारों रुपया इनाम देते थे।

नवाब की ओर से इनके घराने को पाँच सौ बीघा भूमि जागीर मिली थी। अंग्रेज़ों के कान में जब यह बात पड़ी कि रामचन्द्र प्रधान बहुत अच्छा कपड़ा बुनता है—तो उसे उन्होंने पकड़ बुलाया और उसकी जो दुर्दशा हुई वह प्रकट ही है। परन्तु वह रहता सम्पन्न पुरुष की भाँति था। घर भी उस का खूब बड़ा था। कुटुम्ब उस का बहुत बड़ा था, उस के पालन-पोषण का भार उसी पर था। उसके घर में बहुत से कोरी ठेके पर काम करते थे। वह निरभिमान, धर्मभीरु, ईमानदार और दृढ़चरित्र का आदमी था।

रामचन्द्र प्रधान के लड़के का नाम अविनाश था। यह भी पिता के समान सरल, विनम्र और अपने काम में चतुर था। उस की पत्नी का नाम राधा था। वह पति-परायणा और सरल स्त्री थी। दोनों के बीच तीन बरस का एक बालक था।

पिता को सदरकचहरी गए हुए तीन दिन हो गए थे। इस लिए अविनाश और उस की पत्नी अत्यन्त चिन्तातुर और व्यग्र हो रहे थे। ज्यों-ज्यों उनके लौटने में देर लगती थी उनकी चिन्ता बढ़ती जाती थी। वे दिन ही ऐसे थे—जब किसी की जान-माल की सलामती न थी। खास कर कोरियों पर तो वज्रपात हुआ था। एक प्रकार से वे अंग्रेज़ों के बंधक थे। उनके सब कारोबार नष्ट हो चुके थे। और उन्हें अब भी ज़बरदस्ती अंग्रेज़ व्यापारियों के हाथ माल देना पड़ता था, जो रुपये के

माल का एक आना ही देते थे। वह भीं नकद नहीं। या तो तमाखू या चीनी देते थे। उनके दाम चौगुने लगाते थे। इस प्रकार यह एक प्रकार की लूट और डाकेजनीं थी। जिस की कहीं दाद-फरियाद न थी।

जब तीन दिन तक भी पिता लौट कर नहीं आए—तब पत्नी को समझा-बुझा कर अविनाश स्वयं ही सदरकचहरी चल दिया। वहां जा कर उसने सुना कि उसके पिता की अकस्मात मृत्यु हो गई है। उसे लाश दे दी गई और वह उस की अन्तिम क्रिया कर के रोता-कलपता घर लौटा। उस की पत्नी राधा ने रोते-रोते घर भर दिया।

रामचन्द्र प्रधान कोरियों की बिरादरी में मुखिया था। इस लिए उस का धूम-धाम से श्राद्ध होना अनिवार्य था। अविनाश यद्यपि अभी बालक और अनुभवहीन था, तथापि जात-बिरादरी के लोगों ने उसे सुझाया कि—पिता का श्राद्ध धूम-धाम से बिना किए पिता को स्वर्ग नहीं मिलगा। विवश इस अत्याचारपूर्ण अपमृत्यु के दुःख को छाती में छिपा कर नव-दम्पति श्राद्ध की धूम-धाम में जुट गए। पद-मर्यादा, प्रतिष्ठा सभी बातों का उन दिनों बहुत ध्यान रखा जाता था। तथा जो श्राद्ध नहीं करता था वह जाति बहिष्कृत समझा जाता था।

इस लिए श्राद्ध बंगाल के सांस्कृतिक समारोहों में सर्वोच्च श्रेणी में माना जाता था।

अकाल, महामारी, लूट-खसोट सब चल रहा था। साथ ही सामाजिक व्यवहाराचार भी चल रहा था। असल बात यह थी कि मरते-मरते भी अभी भारत की सामाजिकता मरी न थी—पर रामचन्द्र प्रधान के श्राद्ध में अविनाश ने दस हज़ार रुपया खर्च किया। ब्राह्मणों, वैष्णवों और जाति बन्धुओं को निमंत्रण दिया गया। सब कुटुम्बी भी बुलाए गए। अविनाश के चचा रामचरण उत्साह से सब काम सम्पन्न करने लगे। एक प्रकार से सब काम-धाम के वे ही स्वामी बन गए।

परन्तु ठीक समय पर श्राद्ध में विघ्न पड़ गया। किसी एक कुटुम्बी की भूल से निमंत्रण नहीं पहुँचा। उसने क्रुद्ध हो कर—गाँव-गाँव फिर कर

कहना आरम्भ किया—'रामचन्द्र प्रधान की मलेच्छों के हाथों अपमृत्यु हुई है। उस का विधिवत गया-पिण्ड भी नहीं किया गया, तथा प्रायश्चित्त भी नहीं हुआ, इस लिए मैं ने उस के घर भोजन करना स्वीकार नहीं किया। मैं जाति खोना नहीं चाहता। मैं श्राद्ध में नहीं जाऊँगा।"

अन्धविश्वास की परम्परा भी खूब प्रौढ़ होती है। श्राद्ध का दिन आते-आते यह चर्चा खूब फैल गई। कुछ लोग कहने लगे—नहीं, श्राद्ध में भोजन करने में दोष नहीं है। कुछ कहने लगे—दोष है, अपमृत्यु का पातक बहुत भारी है। जो कोई विश्वास प्रधान के घर भोजन करेगा—वह जातिच्युत समझा जायगा।

श्राद्ध के दिन दान-पुण्य हुआ। वृषोत्सर्ग हुआ। अन्य उपचार हुए। जब ब्राह्मण भोजन का समय हुआ—तो रंगपुर के हाराण चक्रवर्ती स्मृतिरत्न ने कहा—"भोजन करने में मुझे आपत्ति है। मैं ने कुछ बात सुनी है।"

स्मृतिरत्न कुलीन ब्राह्मणों में शिरोमणि थे। आस-पास के गाँवों में उन का बड़ा नाम था। वे पालकी को छोड़ एक पग भी पैदल नहीं जाते थे। पालकी के साथ विद्यार्थियों का एक दल चलता था। वे स्वर्ण को छोड़ कर दूसरा पदार्थ दक्षिणा में लेते नहीं थे। उनकी बात सुन कर दूसरे ब्राह्मणों ने भी भोजन से इन्कार कर दिया।

बेचारा विश्वास बड़ी कठिनाई में पड़ा। वह अभी इसकी और कभी उसकी खुशामद करने लगा। जब बिरादरी के दस-बीस भले आदमियों ने कहा—"भला, बिना ब्राह्मण भोजन हुए—बिरादरी कैसे भोजन करेगी।"

"बिरादरी भोजन नहीं करेगी—तो मेरी जाति कैसे रहेगी ?"

"सच्ची बात है। पिता का श्राद्ध होगा नहीं, पिता की मुक्ति होगी नहीं, ब्राह्मण तुम्हारे यहाँ भोजन करेंगे नहीं। बिरादरी आयगी नहीं तो जाति कहाँ रही भला !"

"तो मुझे निरपराध ही जातिच्युत किया जा रहा है ?"

"निरापराध कैसे ? यह तो धर्म-कर्म सदाचार की बात है। इसका तत्त्व तो स्मृतिरत्न महाशय बता सकते हैं।"

तब अविनाश जाति-बिरादरी के दस-बीस भले आदमियों को लेकर स्मृतिरत्न महाशय के घर गए। वहाँ और भी पण्डित गण उपस्थित थे।

सब अनुनय विनय सुन कर नाक में सुघनी सूँघते हुए हाराण चक्रवर्ती ने कहा—भैया अविनाश, अब तुम बालक नहीं हो, सयाने हुए। धर्म-कर्म और मर्यादा की बात तुम्हें समझना चाहिए। तुम कुलीन के लड़के हो। ब्राह्मण का सम्मान करना तुम जानते हो और हमारे पुरखाओं की पालकी में तुम्हारे पुरखाओं ने कंधा दिया था। ब्राह्मण के चरणोदक से ही तुम्हारा कुल पवित्र हुआ है। पर भई इस प्रकार अधर्माचरण नहीं हो सकता है।"

"क्या मेरे यहाँ आप या जाति भाई भोजन नहीं करेंगे ?"

"कैसे कर सकते हैं।"

"तो सारा समान जो नष्ट हो जायगा ?"

"पर धर्म तो नष्ट होने से बचेगा।"

"तो अब मैं क्या करूं ?"

"यह बात तो तुम्हें पहले ही पूछनी थी।

"पर जो होना था वह हो गया। अब क्या किया जाय। प्रायश्चित उपचार जो भी सम्भव हो आप बताएँ, आप धर्म के अवतार, शास्त्रों के ज्ञाता वृहस्पति साक्षात भूदेव हैं। आप ही का हमें सहारा है। आप ब्राह्मण हैं आपकी पदरज से हमारा कुल तिरता है।"

अनन्त कातर स्वर में दुखित होकर अविनाश ने यह बात कही। बिरादरी के और भी दो-चार व्यक्तियों ने जोर लगाया। अविनाश के चचा ने कहा—"अविनाश एक हजार रुपया जाति-भाइयों को दण्ड देगा।"

"और ब्राह्मणों को ?"

"उन्हें दक्षिणा भोजन के अतिरिक्त एक-एक रुपया प्रति व्यक्ति।"

"यह कैसे भला ? पाँच-पाँच रुपया तो हो, दोष बहुत भारी है। दान-पुण्य से ही न पापमोचन होगा।"

बहुत ननु नच करने पर मामला पटा। तर्करत्न महाशय को सौ रुपए और दुशाला मिला। सब ब्राह्मणों को भोजन के अतिरिक्त पाँच रुपया दक्षिणा मिली। जाति-बिरादरी वालों ने तृप्त हो भोजन किया। मछली–दही–मिष्टान्न–खांडवराग—तरकारी, कई प्रकार का भात और विविध व्यंजन। अनाथ और असहाय तरुण अविनाश के बीस हज़ार रुपए देखते-देखते स्वाहा हो गए, पर जाति रह गई।

: १३ :

फादर जानसन और उसका तरुण शिष्य

कलकत्ते के उत्तरी विभाग में लाल बज़ार एक पुराना स्थान है। नवाबी अमलदारी के समय यहाँ फौज़दारी बालाखाने में हुगली के फौज़-दार आकर कचहरी किया करते थे। आरमीनियन पुर्तगीज तथा उच्च व्यापारी इसी पश्चिमी भाग में बसे हुए थे। लाल बाज़ार के पश्चिम में लाल दीघी है। इसका अंग्रेज़ी नाम 'टास्क स्क्वायर' है। जिन दिनों की बात हम लिख रहे हैं—उन दिनों टास्कस्क्वायर के एक पार्श्व में एक छोटा-सा सफैदी किया हुआ एक मंजिला मकान था। मकान में रेवेरेण्ट पादरी जानसन रहते थे। जानसन बड़े सज्जन और दयालु पुरुष थे। वे लण्डन की क्रिश्चियन नालेज सोसाइटी की ओर से भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करने आए थे और अब उन्हें कलकत्ते में रहते बीस वर्ष हो गए थ। वे एक विद्वान् और शान्त प्रकृति के पुरुष थे। कलकत्ते के सभी छोटे-बड़े अंग्रेज़ अफ़सर और हिन्दुस्तानी लोग भी उनका बहुत आदर करते थे। शुरू-शुरू में बंगाली जन फ़ादर शब्द का शुद्ध उच्चारण नहीं कर सकते थे। इसलिए उन्होंने इस नाम का भारतीयकरण कर के 'पादरी' शब्द बना लिया था, और वे सब भारतीय ईसाई फादर जानसन को पादरी साहब कह कर पुकारते थे। आगे यह पादरी शब्द सभी ईसाई मिशनरियों

के लिए आम हो गया। पादरी जानसन बड़े सच्चरित्र भी थे। कहना चाहिए कि वे अंग्रेज़ों में अपवाद थे। उनकी पत्नी भी बहुत नेक थी। पहले वह एक धनी उच्च व्यापारी की पत्नी थी। उसके मरने पर उन्होंने पादरी साहब से विवाह किया। यद्यपि उनकी आयु विवाह के समय पचास वर्ष की थी और पादरी साहब से कुछ अधिक ही थी, परन्तु दोनों बहुत मज़े में रह रहे थे। मेम साहब के धन से पादरी साहब ने एक छोटा-सा अनाथालय और अस्पताल खोल रक्खा था। अनाथालय का प्रबन्ध खुद उनकी पत्नी करती थी, और अस्पताल पादरी साहब खुद चलाते थे। उन्होंने विलायत ही में थोड़ी डाक्टरी की शिक्षा पाई थी। उसी का वे वहाँ सदुपयोग करते थे। इन दोनों कामों से उनका उद्देश्य खूब पूरा हो रहा था। बहुत स्त्री पुरुषों और अनाथ बालकों को उन्होंन ईसाई बना लिया था।

लेफ्टीनेण्ट मेकडानल्ड ने चिता से उद्धार की गई बालिका को इन्हीं जानसन साहब की संरक्षता में रख दिया। पादरी जानसन बहुत अच्छी बंगला भाषा जानते थे। बालिका के रूप-शील और बुद्धि को देख वे बहुत प्रभावित हुए। बालिका का जलती चिता से उद्धार किया गया है। यह सुन कर वे द्रवित हो गए। उन दिनों बंगाल में सती का बड़ा प्रचार था। तथा वहाँ बचपन ही में हिन्दू ब्याह कर देते थे, इसलिए बहुधा दुध-मुही बच्चियों को निर्दयता पूर्वक जला दिया जाता था। इस से सभी अंग्रेज हिन्दुओं की इस क्रूर प्रथा के प्रबल विरोधी थे। इसी से उन्होंने यत्नपूर्वक इस बालिका को अपने यहाँ आश्रय दिया और उसे अंग्रेज़ी भाषा तथा साहित्य एवं बंगला तथा फ़ारसी की शिक्षा भी लेफ्टीनेंट के अनुरोध से देने लगे।

पादरी साहब के पास कभी-कभी एक हिन्दू युवक आया करता था। अभी इसकी आयु बाईस बरस की ही थी। यह बंगाल के उच्च धनी ब्राह्मण परिवार का युवक था, तथा शिक्षित और मेधावी था। कलकत्ते में केवल यही एक तरुण ऐसा था जो बाल विवाह और सती प्रथा का विरोधी

था। बचपन ही से इस तरुण का झुकाव धर्म विवेचना की ओर था। इस समय तक भी बंगाल की राज भाषा उर्दू ही थी। और सब प्रतिष्ठित बंगाली उर्दू का विद्वान् बनने केलिए फारसी भाषा पढ़ना आवश्यक समझते थे, इनके पिता रामकान्तराय बड़े कट्टर हिन्दू थे। माता भी धर्मप्राण साध्वी थी। परन्तु यह तरुण नई प्रतिभा का था। पिता ने उसे फारसी का आलिम बनाने के लिए पटना भेज दिया था, वहाँ उसने फारसी के साथ अरबी भी पढ़ी और कुरआन का पाठ भी किया। इस्लाम और उसके तसव्वुक का उस पर प्रभाव पड़ा। तथा कुरआन को पढ़ने के बाद उसके मन में एकेश्वर वाद का बीज अंकुरित हुआ। यही उसकी भेंट प्रसिद्ध दार्शनिक सुरेश्वराचार्य से हुई। उनसे इन्हों ने उपनिषद् पढ़ा। और ब्रह्मजिज्ञासा पर मनन किया। देवता और मूर्तिपूजा से ये विमुख हो गए। तथा अंग्रेज़ों के सम्पर्क और अंग्रेज़ी पढ़ने से सुधारवादी भी हो गए। इसी से इनके पिता इनसे रुष्ट रहने लगे। तो भी इन्होंने अपना मत बदला नहीं। उन्होंने तुहफ़ुतुल मुवाहिदीन नामक एक पुस्तक फारसी भाषा में लिखी, और उस की भूमिका अरबी में लिखी—जिस में एकेश्वरवाद की प्रशंसा थी। वे रंगपुर के कलक्टर के दीवान थे, और अब नौकरी छोड़ कर कलकत्ते आ गए थे, तथा हिब्रू और ग्रीक भाषा पढ़ रहे थे, जिससे वे यहूदी और ईसाई बाइबिल का अध्ययन मूल भाषाओं में कर सकें। पादरीजानसन के सौजन्य और सद्विवेक से वे बहुत प्रभावित थे। और बहुधा उनके पास आकर धार्मिक और सामाजिक मामलों में वाद विवाद करते रहते थे। पादरीजानसन को विश्वास था कि एक दिन यह भद्र कुलीन धनी बंगाली ब्राह्मण अवश्य ईसामसीह की शरण आएगा। अतः वे उसकी बहुत आवभगत करते थे। तथा प्रेम से वार्तालाप भी करते थे। तरुण का नाम राममोहन राय था। आगे चल कर यही तरुण राजा राममोहन राय के नाम से ब्रह्मसमाज के मूल संस्थापक के रूप संसार में प्रसिद्ध हुए। हाल ही में वह बौद्ध धर्म का अध्ययन करने को तिब्बत की हज़ारों मील की दुरुह यात्रा पैदल करके चार बरस में लौटे थे। इससे भी

इनका नाम भारतीय तथा अंग्रेज़ दोनों ही में काफी प्रसिद्ध हो गए थे।

राममोहन के आते ही, पादरी ने उनका स्वागत करते हुए कहा—"आज तो मैं बहुत ही हर्षित हूं।"

"यह सुन कर मैं प्रसन्न हुआ। किन्तु क्या इस हर्ष का कोई विशेष कारण है?"

पादरी साहब ने बालिका की हृदयविदारक करुण कहानी कह सुनाई। राममोहन ने बालिका से भेंट की। उसी के मुंह से उसकी दुर्भाग्य कहानी सुनी। सुन कर उनकी आँखों से चौधारा आंसू बहने लगे। फादरजानसन ने कहा—"यदि लेफ्टिनेन्ट मेकडानल्ड जान पर खेल कर उसके प्राण न बचाता तो वह अब तक जल कर राख का ढेर हो गई होती। यह तो तुम जानते ही हो कि आज कल हिन्दू स्त्रियाँ और खास कर विधवाओं की कितनी दुर्दशा है। तुम्हारे जैसे तरुण को इसके विरुद्ध आवाज़ उठानी चाहिए। हमारी आवाज़ वे नहीं सुनते। हमें वे विदेशी और विधर्मी कहते हैं। पर तुम तो उसी धर्म में पैदा हुए हो, तुम्हारी आवाज़ वे अनसुनी नहीं कर सकते।"

"मेरी अनुपस्थिति में मेरे बड़े भाई का देहांत हो गया तथा मेरी भावज सती हो गई। मेरे दिल पर इसका दाग़ है। मैं जानता हूँ कि देश में प्रति वर्ष सैकड़ों-हज़ारों निरीह स्त्रियाँ इस प्रकार जीवित जला दी जाती हैं। मैं चाहता हूँ कि इस विषय में मैं ऐसी आवाज़ बुलन्द करूँ कि बहरे भी उसे सुन लें।"

"हमारे घरों में विधवा स्त्रियों को जो आजीवन कष्ट भोगना पड़ता है। उसे मुझ से अधिक कौन जानता है, वह कष्ट और अपमान इतना असह्य है कि उसकी अपेक्षा इस प्रकार चिता पर जल मरना वे पसन्द करती हैं। जन्म भर दारुण दुःख भोगने की अपेक्षा यह क्षण भर का कष्ट उन्हें अखरता नहीं। पर इस अबोध बालिका की तो बात ही जुदी है। जिस ने पति को देखा तक नहीं, पति घर गई ही नहीं। पति पत्नी सम्बन्ध क्या होते हैं, यह वह जानती ही नहीं।"

"मैंने १८२७ की रिपोर्ट में सरकारी आंकड़े देखे हैं। उस साल बंगाल में ३०९ स्त्रियां जीवित जलाई गई थीं। परन्तु यह अधूरी रिपोर्ट थी। इस से प्रथम १८१५-१८१८ तक तीन वर्षों में कम से कम साढ़े तीन हजार विधवाएँ जीती जलाई गई हैं जिन में बहुत सी इसी बालिका की भाँति अबोध थीं। अकेले कलकत्ते के आस पास के स्थानों में जलाई गई विधवाओं की संख्या डेड़ हज़ार से कम नहीं है।"

"मैं तो इसे एक जातीय क्षय रोग समझता हूँ। यह भारत के माथे पर कलंक का टीका है फादर।"

"निस्संदेह राममोहन, यह भारतीयों की ज्ञानशून्यता और गिरावट का चिन्ह है।"

"मैं तो इसके निवारण के तीन सूत्रों को महत्त्व देता हूँ, यदि सरकार हमारी सहायता करे तो ही सफलता प्राप्त हो सकती है ?"

"तीन सूत्र कौन से हैं ?"

"प्रथम—सती प्रथा का कानूनन विरोध। दूसरे पुनर्विवाह का कानूनन वैधमाना जाना। तीसरे स्त्रियों के उत्तराधिकार का जोरदार समर्थन। बिना इन तीन सूत्रों के भारतीय स्त्रियों की दशा नहीं सुधर सकती।"

"तुम ठीक कहते हो अजीजमन्। इस काम में मैं तुम्हारे साथ हूँ।"

"आप की बड़ी कृपा है फादर, मैं शीघ्र ही सती-प्रथा के विरोध में एक पुस्तक लिखूंगा और मैंने जो बंगला पत्रिका 'कौमुदी' निकालना आरम्भ किया है, उसमें तो मैंने सती-प्रथा पर इसी मास एक लेख लिखा है। आप ने उसे अवश्य देखा होगा।"

"कहाँ, मैंने तो नहीं देखा। लेकिन इस नेक काम के लिए मैं तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ राममोहन।"

"वह पत्रिका मैं आप के पास भेजूंगा।"

"जरूर भेजना। पर मेरी राय है, कि तुम एक विजिलैंस कमेटी बनाओ और बंगाल भर में उसकी शाखाएँ फैला दो। इस कमेटी के सदस्यों

का यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि वे जहाँ भी सती होने का समाचार पाएँ, वहाँ पहुँच कर उसे रोकें और सरकार को भी सूचना दें।"

"आप का प्रस्ताव उत्तम है। मैं अवश्य ही ऐसा ही करूँगा।"

"बहुत बहुत धन्यवाद राममोहन। तुम्हें कदाचित मालूम हो कि इस समय कौंसिल में दो विवाद ऐसे उठ खड़े हुए हैं जिनमें हमारे गवर्नर-जनरल सर विलियम वैंकटिक को बहुत दिलचस्पी है। पर देशवासियों में मतभेद है।"

"कैसा विवाद ?"

"एक तो यही सती-प्रथा का, दूसरे भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा प्रचार का।"

"मैं तो कह ही चुका—मैं सती-प्रथा का कट्टर विरोधी हूँ और उसे समाप्त करने में मुझ से जो कुछ बन पड़ेगा, दक़ीका उठा न रखूँगा।"

"और दूसरे विषय में तुम्हारी क्या राय है ?"

"स्पष्ट है कि इस समय केवल फ़ारसी या संस्कृत शिक्षा पर्याप्त नहीं हैं। मैं चाहता हूँ कि मेरे देशवासी प्राचीन पद्धति की शिक्षा के साथ-साथ अंग्रेज़ी भाषा और नवीन विषयों की भी शिक्षा प्राप्त करें। मैं अंग्रेज़ी की उपादेयता की ओर भी देशवासियों का ध्यान खींचने का प्रयत्न कर रहा हूँ।"

"शाबाश, मेरे नवयुवक दोस्त। तुम तो एक सच्चे ईसाई की तरह बोल रहे हो, फिर क्या कारण है कि तुम ने अभी तक बपतिस्मा नहीं लिया, और अभी तक उस नापाक मजहब के चक्कर में पड़े हो।"

"फादर, मैं पैदा ही वहीं हुआ हूँ। क्या किया जाय। फिर मैं उसे नापाक भी नहीं मानता। कदाचित् आपने उपनिषद् की पवित्र वाणी कभी नहीं पढ़ी। जो ब्रह्म जिज्ञासा का रहस्य मनुष्य के सामने खोलता है।"

"क्या उसमें ऐसी बातें हैं, जो होली बाइबिल में नहीं।"

"हैं फादर।"

"हो नहीं सकता है। प्रभु ईसामसीह की नियामत तो होली बाइबिल ही है।"

"पर उपनिषद् तो प्रभु ईसामसीह से बहुत पुरानी है।"

"पुरानी होने से क्या हुआ। उनमें होगे तो वही झूठे किस्से-कहानियाँ।"

"उनमें किस्से-कहानी नहीं हैं, उनमें ब्रह्म का भेद बताया गया है। जो अक्षर हैं, अगोचर हैं और अविनाशी हैं।"

"माई गाड, मेरे प्यारे, तुम इतने अच्छे नौजवान हो कर कैसे ऐसी वाहियात बातें कर रहे हो।"

राममोहनराय हँस पड़े। उन्होंने कहा—"फादर, मैंने अपने को कुएँ का मेंढ़क नहीं रहने दिया। मैं एक बहते दरिया के समान हूँ। जहाँ से जो ज्ञान मिलता है, ले लेता हूँ। मैंने कुरान पढ़ा, बाइबिल पढ़ा, फिर तिब्बत के खौफनाक पहाडों में जा कर बौद्धधर्म के रहस्य जाने। वेद-वेदांत और उपनिषद् का मनन किया, और भी कर रहा हूँ। आप भी ऐसा ही कीजिए फादर। सब धर्मों का सच्चा ज्ञान प्राप्त कीजिए।"

"शैतान ले जाय सब धर्मों को और उनकी गंदी किताबों को भी। तुम फौरन प्रभु ईसामसीह की शरण आओ, जो हमारी नैया का पार खिवैया है।"

"फादर, मेरे सामने इस से भी महत्त्वपूर्ण काम हैं, यह हमारे देश का अंधकार पूर्ण और निराशा का काल है। सारा देश भ्रांति, रूढ़ि और कुरीतियों के भंवर में फंसा है। मैं उनके मानसिक धरातल को उन्नत करने के लिए अंग्रेज़ी शिक्षा का समर्थन कर रहा हूँ। परन्तु यह नहीं चाहता कि भारतीय उच्छृङ्खल और नास्तिक हो जाय, और उन्हें भारतीय वस्तु तथा संस्कृति से घृणा हो जाय। मैंने ब्रह्म समाज की स्थापना की है, जो आस्तिकवाद का धर्म है। इसका मूल सिद्धांत एकेश्वर-वाद है और आधार उपनिषद् है। इस अंधयुग में मैंने सुधार का यह दीपक जलाया है फादर। रूढ़िवाद और नास्तिकता दोनों ही का उन्मूलन

कर के देशवासियों के मन में अपनी दशा सुधारने की प्रवृत्ति के अंकुर उत्पन्न करना चाहता हूँ।"

: १४ :

शुभदा के उम्मीदवार

पांच वर्ष पूर्व चिता से उठाई गई बालिका फादर जानसन के निकट रही। अब उसकी आयु सत्रह वर्ष की हो चुकी थी। वह असाधारण सुन्दरी और प्रतिभाशालिनी लड़की थी। इस बीच उसने न केवल बहुत अच्छी अंग्रेज़ी सीख ली थी, वह सब प्रकार के अंग्रेज़ी रहन-सहन व्यौहार सीख गई थी। वह अब अपने को पादरी जानसन की बेटी समझती तथा उन्हें फादर न कह कर पापा कहती थी। उसके रूप यौवन और योग्यता को देख बहुत अंग्रेज अफसर उसके प्रणयाभिलाषी हुए थे। परन्तु प्रेम की गाँठ लेफ्टीनेन्ट मेकडानल्ड के साथ उसकी बंध चुकी थी। मेकडानल्ड अब मेजर हो चुके थे। वे बहुधा उससे मिलने के लिए आते रहते थे। पर उन्होंने अभी उससे प्रणय निवेदन नहीं किया था। वे अभी केवल उसके संकेत की प्रतीक्षा कर रहे थे।

बालिका ने जो अब एक आकर्षक युवती बन चुकी थी, अपना रहन-सहन तो बदल दिया था, पर अपना नाम शुभदा नहीं बदला था। न अपना धर्म विश्वास बदला था।

शुभदा के प्रणयाभिलाषी अनेक उच्च अंग्रेज़ अफसर थे। उन दिनों वे बहुधा भारतीय स्त्रियों से विवाह कर लेते थे। परन्तु दो भारतीय ईसाई भी उम्मीदवार थे, जो वास्तव में उसी के साथ पादरी साहब के घर में रहते थे और उनके घर का काम-काज किया करते थे। शुभदा उनकी दृष्टि भाँप गई थी और बहुधा उन्हें बनाया करती थी। इनमें एक था जान रामकृष्ण और दूसरा था टाम काशीनाथ। रामकृष्ण तो जात का डोम था। काशीनाथ मोची था। दोनों ने अब से ६-७ वर्ष पहले फादर जानसन से बपतिस्मा लिया था और वे उन्हीं के पास रहते थे। उन्हें

बड़ी आशा थी कि ईसाई होने पर उनका ब्याह किसी गोरी चिट्टी मेम से हो जायगा, पर छह-सात वर्ष प्रभु ईसामसीह का नाम रटते और पादरी साहब की सेवा करते बीत गए, उनकी अभिलाषा पूरी नहीं हुई।

टाम काशीनाथ मेम साहब के जूते साफ कर रहा था कि जान राम कृष्ण उधर से निकला। टाम काशीनाथ ने कहा—"कहाँ चले दोस्त ?"

"बाजार जा रहा हूँ। बहुत सौदा सुलफ़ खरीदना है।"

"अरे यार, यह सौदा सुलफ खरीदते और जूते साफ करते ही क्या हमारी ज़िन्दगी बीतेगी ?"

"तो फिर क्या करें ? पढ़ना-लिखना भी तो हमें नहीं आता कि पादरी साहब की सिफारिश से कहीं नौकरी करें।"

"अरे नौकरी गई भाड़-चूल्हे में। तुम यह कहो—ब्याह का क्या डौल है। कोई विलायती छोकरी तो नज़र ही नहीं आती। किसी मेम का साहब मरता है और वह खाली होती है तो कोई न कोई साहब झपट्टा मार कर उसे ब्याह ले जाता है। हम देखते ही रह जाते हैं।

"अजी, विलायती न सही, मैं तो किसी बंगाली छोकरी से ही ब्याह करने को राजी हूँ। अब विलायती छोकरी की इन्तज़ारी क्या बुढ़ापे तक की जाय।"

"तो बंगाली छोकरी तो यही है। शुभदा, नाम भी मजेदार है। गोरी चिट्टी भी है और तुमसे उस दिन हँस-हंस कर बात भी कर रही थी। मारो हाथ।"

"लेकिन फादर से कैसे कहूँ। शर्म लगती है।"

"तो मैं कहूँ ?"

"कहो यार, ज़रूर कहो।"

"लेकिन मैं तो अपने लिए कहूँगा। तुम्हारे लिए क्यों कहूँ ?"

"वाह, छुछुन्दर लगावे चमेली का तेल। यह मुँह और ये हौसले ?"

"अरे वाह रे बंदर मुँहे, ईसूमसीह की क़सम, जब तू हँसता है ऐसा लगता है—जैसे गोबर के ढेर पर ओले पड़े हों।"

"ईसूमसीह तुझे गारत करें। तू जात का मोची है। जो न जानता हो उसे भर्रे पर चढ़ा।"

"और तू कहाँ का नवाब है। तू भी तो डोम है।"

"मैं तो प्रभु ईसूमसीह की शरण आकर अंग्रेज़ों की ज़ात में मिल गया हूँ।"

"अंग्रेज़ों की ज़ात में तू कैसे मिल गया ?"

"यह बात तू मोटी अक्ल का आदमी नहीं समझ सकता। फ़ादर ने हमें समझा दिया है कि हम अभी काला क्रिस्तान है। हमारी औलाद यूरोपियन दोगला होगा और उनका सन्तान अंग्रेज़ होगा। बस तीन पीढ़ी में मारा खानदान अंग्रेज़ होगा।"

"पर पहले अंग्रेज़ बीवी से शादी भी तो हो।"

"हाँ, यह एक ज़रा सी वाधा है। खैर, लड़ो मत दोस्त, आज हम दोनों ही फादर से बात करेंगे।"

"जरूर करेंगे।"

"मगर फ़ादर से ही बात करने से काम नहीं चलेगा। उस छोकरी से भी तो वात करनी होगी। उस का मन टटोलना होगा।"

"ज़रूर टटोलना होगा। हम दो हैं, और वह एक। हम दोनों से तो वह ब्याह कर नहीं सकती ?"

"कैसे कर सकती है। लेकिन तुम कह रहे थे न—कि वह मुझे देख कर हँस-हँस कर बातें करती है। बस, साफ बात है, मन उस का मुझी पर लट्टू है।"

"तो इससे क्या ? मुझे भी वह ऐसी नज़रों से देखती है—कि जैसे तीर मार रही हो, बस घायल कर देती है।"

"अब पादरी साहब उसे सब को अपनी बेटी बताते हैं। रहती भी वह मालकिन की ही भाँति है। फटाफट अंग्रेज़ी बोलती है। कपड़े देखो उसके—एक दम विलायती मेम जैसे ? मेम साहब भी उसे बराबरी का दर्जा देती हैं। देखते नहीं—मुझे उसका भी जूता साफ करना पड़ता है।"

"तो इस में क्या हर्ज है। जूता तो ब्याह के बाद भी साफ किया जा सकता है।"

"खैर, इस में मैं कोई हर्ज नहीं देखता। लेकिन देखना यह है कि ब्याह वह हम दोनों में किस से करेगी।"

"मुझ से करेगी, और दोस्त, उस का जूता साफ करने पर तुझी को नौकरी पर बहाल रखूंगा।"

"कहीं मैं जूता खींच कर न दे मारूँ तेरे मुँह पर। साला, बज्जात डोम। हम से तू अपनी जोरू का जूता साफ कराएगा?"

"तो बिगड़ता क्यों है, यह तो तेरे बाप दादे का पेशा है।"

"मेरे बाप दादे तो हिन्दू थे, होगा उन का पेशा। मैं तो ईसाई हूँ। हम ख्रिस्टान साहब लोग है। देखता नहीं मेरी पतलून।"

"पतलून तो मैं भी पहनता हूँ, तो तू मुझे डोम क्यों कहता है। मैं भी ख्रिस्टान लोग हूँ।"

'बेशक हम दोनों साहब लोग हैं। लो, वह छोकरी आ रही है। हो जायँ दो-दो बातें अभी।"

"अभी लो। पहले मैं ही पूछूं।"

"पूछ ले, तुझे वह क्या पसन्द करेगी भला?"

शुभदा ने निकट आकर बिगड़ कर कहा—'तुम्हें मेम साहब ने बाज़ार भेजा था जान, लेकिन तुम अभी यहीं गप्पें उड़ा रहे हो?"

'हम आप की शादी की बात कर रहे थे मिस साब, मैं कह रहा था·········"

शुभदा हँस दी। उस ने कहा—"तुम क्या कह रहे थे टाम?"

"यही कि—कि छुछुन्दर लगावे चमेली का तेल।"

शुभदा ज़ोर से हँस पड़ी। उस ने कहा—"यह चमेली के तेल की खूब रही।"

"वही तो कहता हूँ—मिस साब, भला यह मोची। कहता हूँ छोटे मुँह बड़ी बात।"

"यह भी तो डोम है, डोम. मिस साब, इसका हौसिला तो देखिए।"

"तो लड़ते क्यों हो। अब तो तुम क्रिश्चियन हो। क्रिश्चियन न डोम हैं न मोची। इन्सान हैं, जैसे सब होते हैं। तुम लोग पढ़-लिख कर साहब लोग हो सकत हो।"

"मैं सब कुछ होने को तैयार हूँ, मगर इस गधे को कैसे समझाऊँ।"

"तू क्या पढ़ेगा ? बूढ़ा तोता पुरान पढ़ सकता है।"

"तो तू कहाँ का जवाँमर्द है। मुँह में दाँत न पेट में आँत।"

"इसी से मैं बूढ़ा हो गया। साले बज्ज़ात, ले पटक दूँ तुझे उठा कर।"

"नहीं-नहीं, लड़ो मत भले आदमियो। यह सभ्यता की बात नहीं है, जंगलीपन है। याद रखो—तुम लोग सभ्य साहब लोग हो।"

"तो मिस साब, आप साफ-साफ कह दीजिए। बस, झगड़ा टंटा-खत्म।"

"क्या कह दूँ ?"

"क्या मैं हमेशा आप के जूते साफ नहीं करता ?"

"और क्या मैं हमेशा आप का बिस्तर ठीक-ठीक नहीं लगाता ?"

"तुम दोनों बहुत अच्छे आदमी हो। हम तुम दोनों से खुश हैं, जाओ टाम, जल्दी करो। आज शाम कुछ मेहमान डिनर पर आने वाले हैं। झटपट सौदा ले आओ।"

"लेकिन मिस साब, यह तो घपले की बात हुई।"

"कौन बात टाम ?"

"आप हम दोनों से खुश हैं। क्या मैं आप की सब से ज्यादा खिदमत नहीं करता ?"

"और मैं तो जीजान से आप की खिदमत में लगा रहता हूँ।"

"तो हम भी तुम दोनों से बहुत खुश हैं।"

"लेकिन ज्यादा खुश किस से हैं आप ? इस का फैसला अभी कर दीजिए।"

"तुम जूता साफ कर रहे हो—और तुम्हें सौदा लाना है। बस, आज तुम दोनों में से जो जल्दी काम खत्म करेगा—उसी से मैं ज्यादा खुश हो जाऊँगी।"

"तो अभी लीजिए। यह मैं ने लगाया रगड़ा। टाम जल्दी-जल्दी जूते पर ब्रुश रगड़ने लगा।"

"और मैं भी चला।" जान लपकता हुआ चला।

शुभदा हंसती हुई भीतर को चली गई।

: १५ :

डिनर

जिस दिन टाम काशीनाथ और जान रामकृष्ण अपनी उम्मीदों पर खुशियाँ मना रहे थे। उसी शाम पादरी जानसन के बंगले पर एक शानदार डिनर का आयोजन था। डिनर वास्तव में कर्नल मेकडानल्ड के आनर में दिया गया था। डिनर में मेकडानल्ड के अतिरिक्त तीन व्यक्ति और थे। एक थे तरुण बंगाली राममोहन राय, दूसरे थे सरजान, तीसरे स्वयं फादरजानसन और चौथी मिस शुभदा। भोज में अनेक प्रकार की देशी और विलायती शराब, अनेक प्रकार के मांस और फल आदि थे। राममोहन राय केवल फल खा रहे थे। यह देख शुभदा भी केवल फल खाने लगी। यह देख कर मेकडानल्ड ने कहा—"यह क्या मिस, तुम केवल फल ही ले रही हो ? लो, यह सेण्डविच तो ज़रा चखो, बहुत अच्छा बना है।"

"धन्यवाद कर्नल, पर आज मैं केवल फलाहार ही करूँगी।"

"यह किस लिए ?"

"आप देख नहीं रहे। यहाँ हमारे परमबंधु राय साहब उपस्थित हैं और वह केवल फल ही खा रहे हैं।"

मेकडानल्ड ने ज़रा तीखी नज़र से राममोहन राय की ओर देख कर कहा—

"महाशय, क्या आप मांस नहीं खाते ?"

"नहीं कर्नल, मुझे खेद है। मैं मांस नहीं खाता।"

"इसका कारण ?"

"मांस खाने के लिए जीवहत्या करनी पड़ती है। वह मुझे पसंद नहीं।"

"और सब बंगाली ब्राह्मण तो मांस खाते हैं।"

"केवल ब्राह्मण होने के कारण नहीं, प्राणियों पर दया भाव के कारण मैं मांस नहीं खाता।"

इस पर पादरी जानसन हो हो कर के हँसने लगे। उन्होंने कहा—"आप प्राणियों पर दया की बात कहते हैं। परन्तु सारे बंगाल में कितनी जीवहिंसा होती हैं। पालतू जानवरों पर कितना निर्दय व्यवहार किया जाता है, यह भी आप देखते हैं ?"

"यह भी देखता हूँ और यूरोप के लोग अपने संस्कारों में स्वयं कितने निर्दय और क्रूर हैं, वह भी मैं देखता हूँ। मेरे बहुत से मित्र-बांधव मांस खाते हैं, परन्तु मैं व्यक्तिगत रूप से मांसाहार को पाशविक कर्म समझता हूँ।"

"इसी से मैं आप से सहानुभूति रखती हूँ राय महाशय, अन्ततः मैं भी आप ही की भांति एक कुलीन ब्राह्मण की बेटी हूँ।" शुभदा ने कहा।

"सो तुम अभी तक ब्राह्मण की बेटी हो ? अब तुम मेरी बेटी बन चुकी हो और शीघ्र ही प्रभु ईसामसीह की शरण में आओगी।" पादरी ने कहा।

"परन्तु मेरे संस्कार ब्राह्मण के हैं फादर, प्रभु ईसामसीह की मैं भक्त हूँ। परन्तु आप की शरण में आ कर भी मैं उसी प्रकार ब्राह्मण हूँ, जिस प्रकार कर्नल अंग्रेज हैं।"

"ओह, तब तो यही देखना बाक़ी रह गया, कि यह कुछ अच्छी बात

भी है या नहीं।" कर्नल ने तीखी नज़र से राममोहन की ओर देखते हुए कहा।

राममोहन राय ने कहा—"जहाँ तक संस्कार का प्रश्न है, मैं इसे संसार की बहुत अच्छी बात समझता हूँ कर्नल।"

"क्यों ? आप तो सदैव ही यह कहा करते हैं कि मैं जन्म से ब्राह्मण अवश्य हूँ, पर सभी को समान समझता हूँ।" पादरी ने कहा।

"बेशक, मेरा अभिप्राय यह है कि मैं अभिजात्य को महत्त्व नहीं देता।" राममोहन ने गम्भीरता से कहा।

"तो मिस शुभदा का अभिप्राय शायद अभिजात्य की श्रेष्ठता से नहीं है।"

"नहीं कर्नल, तनिक भी नहीं। मैं तो केवल संस्कार ही तक सीमित हूँ। अभिजात्य की भावना मेरे मन में होती तो मैं आप के साथ बैठ कर कैसे खा पी सकती थी।"

"तुम बहुत अच्छी लड़की हो मेरी प्यारी शुभदा। खैर, अब चूँकि कर्नल मुहिम पर बर्मा जा रहे हैं, इसलिए उनके मंगल के लिए एक-एक जाम पीना चाहिए।" पादरी ने प्रसंग बदलते हुए कहा।

"अवश्य, परन्तु मैं केवल पानी ही पीऊँगा," राममोहन ने कहा।

"और मैं भी," शुभदा ने अपने और राममोहन के गिलासों में पानी भरते हुए कहा।

कर्नल मेकडानल्ड को यह अच्छा नहीं लगा। वह स्तब्ध बैठा रहा। पादरी जानसन ने बात का रंग बदलते हुए कहा—"क्या बर्मा में हमारी स्थिति बहुत नाज़ुक है कर्नल ?"

"बहुत, हमारी सेना को वहाँ बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। वहाँ की नम आबोहवा और मलेरिया का सामना करना हमारे लिए कठिन पड़ रहा है। हम दो महीने से रंगून पर कब्ज़ा किए बैठे हैं। परन्तु अब वर्षा में वहाँ हमारी फौज एक प्रकार से क़ैद हो गई है।

हम चारों ओर से पानी से घिर गए हैं। इधर बर्मा का बहादुर सेनापति बुन्देला बंगाल पर आक्रमण की तैयारी कर रहा है।"

"क्या बर्मा की लड़ाई हमारे लिए बहुत आवश्यक थी ?"

"आवश्यक नहीं, अनिवार्य थी फादर। इस समय ऊपर से तो हमारा शासन और दबदबा बहुत शानदार दीख रहा है। रामेश्वर से दिल्ली तक सभी मुख्य केन्द्रों में अंग्रेज़ी सेना की छावनियाँ छाई हुई हैं और ऐसा मालूम होता है कि अब ब्रिटिश हुकूमत को हिलाना आसान नहीं है। बहुत-सी बड़ी-बड़ी रियासतें हमारे साथ सबसीडियरी संधि में बंधी हैं। शेष ने अधीनता स्वीकार कर ली है। राजपूताने के सिर पर हमारा पैर जमा रहे इसलिए अजमेर को अलग प्रांत बना कर उस पर हमारा सीधा शासन हो रहा है। लार्ड हेस्टिंग्स बड़े भाग्यशाली थे। उन्हें चार ऐसे ऐसे सहायक मिल गए थे जिनमें से प्रत्येक सफल शासक होने की योग्यता रखता था। मौन्ट स्टुअर्ट एलफिस्टन सफल शासक होने के अतिरिक्त इतिहास लेखक भी हैं। सर चार्ल्स मेटकाफ ने दिल्ली की हुकूमत पर गहरा पदचिह्न छोड़ा है। सर जानमालकम और सर टामस मनरो जैसे शासकों की सहायता के बिना लार्ड हेस्टिंग्स बंगाल और मद्रास की गुत्थी नहीं सुलझा सकते थे। अब बज़ाहिर शांति की चोटी पर हमारा झंडा अवश्य फहरा रहा है, परन्तु भीतरी दृश्य नाज़ुक है।"

"क्या बहुत नाज़ुक कर्नल ?"

"उसे नाज़ुक ही कहा जा सकता है फादर, भारत में हमारी संख्या अभी भी बहुत कम है। इस कमी को हम अभी तक उस मित्र-भावना से पूरा कर सकते थे, जिसे हम न्याय, बुद्धि और नर्म-व्यवहार से प्राप्त करते। वह मित्र-भावना हमें आक्रमणों से बचा सकती थी। परन्तु इस समय वह मित्र-भावना हमें कहीं भी दिखाई नहीं पड़ रही है। हमारे चारों ओर नोक-झोंक चल रही है।"

तरुण राममोहन राय थोड़े उत्तेजित हो कर बोले—"निस्संदेह यह एक महत्त्वपूर्ण सच्चाई आप प्रकट कर रहे हैं कर्नल। अंग्रेज़ों को अब

तब युद्धों में जो छोटी-छोटी सफलताएँ प्राप्त हुई हैं, उन्होंने राजा लोगों के हृदय में उनके प्रति शत्रुता के भाव उत्पन्न कर दिए हैं।''

"यही बात है राय महाशय, हम ने अपने आस पास की रियासतों से व्यर्थ की छेड़छाड़ करके जो विरोध और षड़यन्त्र का वातावरण पैदा कर लिया है, केवल हमारी शक्ति की डाह से उस से आधा भी पैदा न हो पाता। और अब इस बात की शंका के यथेष्ट कारण हैं, कि जब कभी हम किसी ऐसे शत्रु से उलझे होंगे, जिसको दबाने के लिए हमें अपनी अधिकतर सेनाएँ काम में लानी पड़ें, तो ये सब रियासतें एक हो कर हमारे विरोध में खड़ी हो सकती हैं।"

"यह तो आने वाले तूफान का एक भयंकर चित्र तुम ने खींच दिया कर्नल," पादरीजानसन ने माथे पर बल डालते हुए कहा—"ईसूमसीह कृपा करें, और भारत अनन्त काल तक उसकी छत्रछाया में रहे।"

कर्नल ने अपने वक्तव्य को जारी रखते हुए कहा—"अब हमें सब से प्रथम बंगाल की सीमा को सुदृढ़ बनाना है। बर्मा के राजा अलोम्प्ता के उत्तराधिकारियों ने मनीपुर और आसाम पर कब्जा कर लिया था। इस से बर्मा की सीमा बंगाल की सीमा से मिल गई थी। परन्तु हम कैसे आसाम और मनीपुर को दूसरों के हाथों देख सकते हैं। परन्तु वे यहीं तक संतुष्ट नहीं रहे—वे चटगाँव, ढाका, मुर्शिदाबाद और क़ासिम बाज़ार को भी हम से मांगने लगे।"

राममोहन राय ने ज़रा टेढ़ी नज़र से कर्नल की ओर देख कर कहा—"लेकिन इसका कारण तो यही प्रतीत होता है कि बर्मा के सब भगोड़े बंगाल के इन्हीं इलाकों में अधिक हैं। और वे समय-समय पर बर्मा में घुस कर छापे मारते हैं, और आ छिपते हैं। बर्मा के ये शत्रु भारत की सीमा में सुरक्षित हैं।"

"तो हम क्या करें? शरणागतों को कैसे हम शत्रु के सुपुर्द कर दें। हमें निरुपाय हो बर्मा से युद्ध घोषणा कर देनी पड़ी। और अब वहाँ

हमारी सेना घोर संकट में पड़ गई है। उसे तत्काल ही सहायता की आवश्यकता है।"

"इसी से शायद आप लोगों ने बैरकपुर में वह भयानक काण्ड कर डाला," राममोहन राय ने तनिक दृढ़ स्वर में कहा।

"वह खतरनाक सिपाही विद्रोह था राय महाशय, और उसे दबाना हमारा कर्त्तव्य था।"

"परन्तु कर्नल, उसे 'कत्लेआम' भी आसानी से कहा जा सकता है।"

"आप कैसे यह कहने की जुर्रत करते हैं मिस्टर राय", कर्नल ने क्रोध से लाल हो कर कहा।

परन्तु राममोहन ने सहज स्वर में कहा—"आप ही कैसे उसे सिपाही विद्रोह कह रहे हैं ?"

"स्पष्ट है कि सिपाहियों ने अपने अफ़सरों की आज्ञा मानने से इन्कार कर दिया था।"

"कर्नल, आप अच्छी तरह जानते हैं कि इस रेजीमेन्ट में ऊँचे दर्जे के हिन्दू थे। अभी तक देश में सुधार की कोई चर्चा ही नहीं है। कुलीन लोग अधिकतर रूढ़िवादी हैं। अधिकतर कुलीन हिन्दू यह विश्वास करते हैं, कि समुद्र यात्रा करने से उनका धर्म भ्रष्ट हो जायगा। रंगून जाने के लिए उन्हें जहाज पर चढ़ना पड़ता। जब सिपाहियों को नौकर रखा गया था, तब यह बात स्पष्ट नहीं की गई थी कि उन्हें समुद्र यात्रा भी करनी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त उनकी भी शिकायतें हैं। उनकी तनखाह बहुत कम है। उन्हें चार से साढ़े छै रुपए माहवार में गुज़ारा करना पड़ता है। क्या आप समझते हैं कर्नल, कि एक आदमी की जान की क़ीमत चार रुपए काफी है ? फिर उनकी वर्दी, बुगचे बहुत खराब हो गए थे। उन्हें जब एक स्थान से दूसरी जगह जाना पड़ता है, उन्हें खच्चर और घोड़ों का बन्दोबस्त खुद करना पड़ता है। सेना के अफसर उन्हें कोई मदद नहीं देते।"

"लेकिन उन्होंने बर्मा जाने से क़तई इन्कार कर दिया था। यह भयंकर सैनिक अपराध है, राय महाशय।"

"इन्कार उन्होंने नहीं किया। उन्होंने विनीत प्रार्थनापत्र अपने उच्च अफसर की सेवा में भेजा था, कि यदि उन्हें बर्मा भेजा ही जा रहा है तो उन्हें अलग भत्ता दिया जाय। जैसे बैलगाड़ी वालों तथा सफरमैना के दूसरे कर्मचारियों को दिया जाता है।

"तीस अक्तूबर को जब इस रेजीमेन्ट को परेड पर आने का हुक्म दिया गया तो वे अपने बुगचे साथ नहीं लाए, यह उनका अक्षम्य अपराध था, और इसकी रिपोर्ट बाक़ायदा कमांडर-इन-चीफ़ सर एडवर्ड पैंजेट को भेज दी गई। और उनसे आदेश मांगा गया।"

'वे बुगचे कैसे ला सकते थे। वे बोसीदा हो गए थे। बाहर ले जाने के योग्य न थे। यह कोई ऐसा गम्भीर आरोप न था। आप अच्छी तरह जानते हैं कर्नल, कि उन ग़रीब सिपाहियों के साथ इतनी सी बात पर क्या सुलूक किया गया।"

"ज़रूर जानता हूँ। वह रेजीमेन्ट मेरी ही थी। और मामले की रिपोर्ट कामन्डर-इन-चीफ़ को दी जानी आवश्यक थी। उनके साथ वही सुलूक किया गया जो उचित था।"

"यानी जब वे परेड़ में आए तो उन्हें दो गोरा रेजीमेन्ट, एक तोपखाने की कोर, और गवर्नर जनरल के अंगरक्षक घुड़ सवारों की ट्रुप ने घेर लिया।"

"बेशक, और उन्हें हुक्म दिया गया कि या तो सीधी तरह बर्मा चलो। या हथियार रख दो।"

"और जब उन ग़रीबों ने अपने आवेदन पत्र की बात कही, तो एक दम तोपों के मुँह खोल दिए गए। उन बेचारे बेगुनाह सिपाहियों पर गोलों की बौछार होने लगी, बहुत से वहीं मर गए, बहुत से नदी की ओर भागे उन में बहुत से डूब कर मर गए। यह उन लोगों को आपने इनाम दिया जो केवल चार रुपए महावार पर आपके लिए जान देने को तैयार थे।"

"जी हाँ, ग्रौर ग्रब वह रेजीमेन्ट तोड़ दी गई है। ग्रौर जो लोग बच कर भाग गए हैं, उनका कोर्ट मार्शल किया जायगा।"

"यानी उन्हें ढूंढ़-ढूंढ़ कर फांसी के तख्ते पर चढ़ा दिया जायगा। कर्नल, ग्राप किस तरह इस तरह की कार्यवाही को उचित कह सकते हैं।"

"राय महाशय, ग्राप कदाचित् दायित्त्व के सम्बन्ध में नहीं सोचते। जब दायित्त्व का प्रश्न ग्राता है तो छोटे-छोटे व्यक्तिगत प्रश्नों से ऊपर हमें सोचना पड़ता है।"

"ग्राप मुझे क्षमा करें कर्नल, मैं यह कहना चाहता हूँ कि ग्राप को कुछ ग्रौर बातें भी सोचनी चाहिए?"

"कौन-सी ग्रौर बातें?"

"कि इन बेचारे सिपाहियों के भी कुछ विचार हो सकते हैं, ग्रौर उन्हें चार रुपए माहवार से ग्रधिक तलब मांगने का ग्रधिकार है। इसके ग्रतिरिक्त उनसे मिल कर उन्हें समझा-बुझा कर शांत करने की भी ग्रावश्यकता थी। पर ग्रफसोस है सर पैजट ने ऐसा नहीं किया। वे शायद यह समझते हैं कि ग्रंग्रेज़ हुकूमत करने के लिए ग्रौर हिन्दुस्तानी हुक्म मानने के लिए पैदा हुए हैं।"

"एक हद तक यह बात सच भी है मिस्टर राय।"

"ग्रफसोस है कि ग्राप ऐसा समझते हैं। ग्राप को याद रखना चाहिए, कि ग्रापने इन्हीं हिन्दुस्तानी सिपाहियों की बदौलत हिन्दुस्तान को जीता है। राशन कम होने पर उन्होंने मांड़ पीकर दिन काटे ग्रौर भात ग्रंग्रेज़ सिपाहियों को दिया। ग्राप जानते हैं कि सिपाही शराब नहीं पीते, उनसे काम लेना बहुत ग्रासान है। इतने कम वेतन पर ग्राप को कहीं भी ऐसे ग्रच्छे सिपाही नहीं मिल सकते।"

"लेकिन उन्होंने विद्रोह किया था।"

"ऐसा ग्रापका कहना सरासर ग्रन्याय है। क्योंकि मुझे ज्ञात हुग्रा है कि उनको क़त्ल करने के बाद जब उनकी बंदूकें देखी गईं तो वे ख़ाली थीं। उनका विद्रोह करने का क़तई इरादा न था।"

"हम उन्हें तनख्वाह देते हैं। हमारे प्रति नमक हलाल होना उनका कर्तव्य है। फिर, सेना में डिसिप्लिन का मूल्य बहुत है।"

"चार रुपया माहवार कोई तनखाह नहीं है कर्नल। और नमक हलाली की बात महज़ हिमाक़त है। एक दिन वे यह बात समझलेंगे और तब शायद आप उन्हें इस तरह आसानी से गोलियों और गोलों से न भून सकेंगे?"

राम मोहन राय बहुत उत्तेजित हो गए थे। उनके इस वक्तव्य से कर्नल मेकडानल्ड क्रोध से लाल हो गया। वह एकदम उठ खड़ा हुआ। उसने कहा—"आप मेरा अपमान कर रहे हैं मिस्टर राय, आप माफी मांगिए।"

"मैंने एक सच बात कही है कर्नल, और अब मैं जाता हूँ।"

वे उठ कर चल दिए। पादरी ने कर्नल का हाथ पकड़ कर कहा—"बैठो बेटे, बात तो उसने सच ही कही है।"

"आप भी ऐसा ही समझते हैं फादर?"

"कर्नल, क्या तुमने अभीं कुछ देर पूर्व नहीं कहा था—कि उस तरह की सख्तियाँ किस कदर खतरनाक नतीजे ला सकती हैं। क्या इस तरह हिन्दुस्तान के एक-एक आदमी के दिल में अपने लिए घृणा के भाव पैदा करना हमारे लिए अच्छा होगा?"

कर्नल बैठ कर चुरुट सुलगाने लगा। इसी बीच शुभदा चुपचाप वहाँ से उठ कर चली गई। उसका मुँह भरे हुए बादलों के समान गम्भीर हो रहा था।

: १६ :

अपनी-अपनी बात

शुभदा जो इस प्रकार उठ कर चली गई तो कर्नल मेकडानल्ड स्थिर नहीं रह सका। वह उठ कर उसके पीछे-पीछे चला गया। दूसरे कमरे में जाकर उसने कोमल स्वर में कहा—

'क्या तुम्हें बुरा लगा शुभदा ?"

"बुरा क्यों न लगेगा भला। क्या तुम्हारी बातचीत से यह प्रकट नहीं होता कि तुम हम भारतीयों को तुच्छ समझते हो और उनसे घृणा करते हो।"

"तुम जानती हो शुभदा, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

"अजीब बात है, तुम प्यार की बातें करते हो। कहीं घृणा और प्यार भी एक साथ हो सकते हैं ?"

"किंतु शुभदा, भारतीय कितने पतित होते हैं। इसका एक जीता जागता उदाहरण तो वह भयानक व्यवहार है जो उन्होंने तुम जैसी स्त्री के साथ किया। क्या तुम्हारे साथ कुछ कम अत्याचार हुआ ?"

"अत्याचार ही क्या जातीय श्रेष्ठता का मापदण्ड है। अंग्रेज़ यूरोप में और यहाँ भी—क्या कम अत्याचार करते हैं। भारतीय तो रूढ़ि के बंधन में बंधे हैं। परन्तु आप लोग तो नई दुनिया के आदमी हैं। आप तो अपने स्वार्थों के लिए क्रूर अत्याचार करते हैं। जो रूढ़िवादियों की अपेक्षा कहीं अधिक खराब है। क्या मैं नहीं देखती कि अंग्रेज कितने निर्मम, क्रूर और स्वार्थी हैं।"

"परन्तु हम जातीयता के नाम पर जूझ मरने वाले आदमी हैं शुभदा"

"बस, तो यही समझ लो, कि हिन्दू जाति के दोष और गुण मुझे ज्ञात हैं। दोष उसमें ऊपर से लादे हुए हैं, और गुण उसके परम्परा के संस्कारों से हैं।

"परन्तु वह तरुण बंगाली तो सीधा वार करता है।"

"इसलिए कि वह सच्चा है। उसे अपनी जातीयहीनता का ज्ञान है, और उसे वह सहन नहीं कर सकता। वह उन दोषों को दूर करने पर तुला हुआ है।"

"ओह, तुम तो उसकी ज़रूरत से ज्यादा तारीफ़ कर रही हो।"

"मैं समझती हूँ कि उसकी पूरी योग्यता मुझ पर प्रकट नहीं है उसकी बातें मैंने सुनी हैं। वह एक अवतारी पुरुष है।"

"ख़ैर, मैं देखता हूँ कि तुम क्रिश्चियन सोहबत में रहने और अंग्रेज़ों का उच्च शिक्षा पाने पर भी अन्ततः हिन्दू ही हो।"

"हिन्दू ही क्यों, हिन्दुस्तानी भी हूँ। और यह बात मैंने जितनी अब अंग्रेज़ों के संसर्ग में आकर सीखी है, उतनी हिन्दू संस्कारों में नहीं सीखी।"

"तब तो तुम्हें अंग्रेज़ों का कृतज्ञ होना चाहिए ?"

"कृतज्ञ तो मैं हूँ ही, खास कर तुम्हारे प्रति। तुम ने एक वीर पुरुष की भाँति मेरे जीवन की रक्षा ही नहीं की—मेरे जीवन को आलोक से भर दिया। अब मैं अपने जीवन को भली-भाँति देख और समझ सकती हूँ।"

'लेकिन तुम तो मुझी से नाराज़ हो।"

"और किस से नाराज़ होऊँ भला ? तुम्हारा कोई दोष मैं सहन नहीं कर सकती, तुम मुझे प्यार करने की बात कहते हो—प्यार मैं भी तुम्हें करती हूँ। शायद तुम से अधिक। लेकिन इतना अवश्य है कि तुम्हें मैं वैसा ही देव पुरुष देखना चाहती हूँ—जैसा तुम मेरी प्राण रक्षा के समय थे।"

"परन्तु शुभदा, कुछ कर्तव्य के भार सिर पर आ जाते हैं।"

"क्या वे ऐसे भी हो सकते हैं जो मनुष्य को नीचे गिरा देते हैं ?"

"यह तो मैं नहीं कह सकता।"

"तो तुम्हें सोचना होगा—ऐसा कोई काम कर्तव्य हो ही नहीं सकता, जो मनुष्य की आत्मा की पुकार से परे हो।"

"मसलन नौकरी, नौकरी में तो स्वामी की आज्ञापालन ही कर्तव्य हो जाता है।"

'यह कर्तव्यपालन की तुम्हारी अंग्रेजी व्याख्या मैं नहीं स्वीकार करती। मैं तो उसी काम को कर्तव्य समझती हूँ—जो न्यायोचित और मानवोचित हो।'

"ओह, शुभदा, तुम सेना में भरती होने योग्य नहीं हो।"

"ईश्वर का धन्यवाद है कि मैं उस की उम्मीदवार नहीं हूँ।"

"खैर, तो तुम चाहती हो कि मैं बर्मा न जाऊँ ?"

"जरूर जाओ। जाना तुम्हारा कर्तव्य है, और वहाँ जाकर न्यायोचित और मानवोचित कार्य करना भी तुम्हारा कर्तव्य है।"

"खैर, मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ शुभदा देवी। तुम्हारी बातें मैं ने धरोहर के रूप में अपने हृदय में धारण कर ली हैं, किन्तु अब मैं तुम से कुछ निवेदन करूँ ?"

"कहो।"

"आगामी वसन्त में मैं ने छुट्टी ली है। मैं चाहता हूँ कि इस बार बर्मा फ्रण्ट से लौट आते ही हमारा विवाह हो जाय, और फिर हम लोग इंगलैण्ड चलें।"

"मैं इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहती, तुम जैसा ठीक समझो करो। मैं ने तो अपने आप को तुम्हें समर्पित कर दिया है। अब और मैं क्या कहूँ ?"

"तुम्हारी यह बात कितनी प्यारी है शुभदा, मैं कैसे कहूँ। किसी अंग्रेज़ रमणी के मुँह से मैं ऐसे शब्द नहीं सुन सकता।"

"तुम्हें शायद ये शब्द नए और अनोखे से प्रतीत होंगे। पर यह तो हमारा—हम हिन्दू स्त्रियों का कुलाचार है। क्रिश्चियन संसार में पलने पर भी मैं यह नहीं त्याग सकती। हम भारतीय घरों में कर्तव्य पथ पर चुपचाप चलती रहती हैं, कभी थकती नहीं। अधिकारों की लड़ाई हमें सिखाई जाती ही नहीं, जैसा कि मैं यूरोपियन स्त्रियों में देखती हूँ।"

"मैं समझता हूँ इस से स्त्री पुरुष के अधिक निकट आती है।"

"निकट क्या ? उन में अभिन्नता उत्पन्न हो जाती है, और वे दोनों एक हो जाते हैं। किन्तु तभी—जब पुरुष भी स्त्री के प्रति केवल कर्तव्य ही का पालन करे—अधिकारों का गर्व और स्वत्व त्याग दे।"

"ओह, मेरी प्यारी शुभदा, तुम ने ये सब बातें कहाँ सीखी हैं ?"

"सीखी नहीं हैं, ये बातें हमारे रक्त में घुली-मिली हैं। हमारा स्वभाव बन गई हैं।"

"तो मैं तुम से सीखूंगा, और कोशिश करूँगा—कि तुम्हारा योग्य पति बनूं।"

"खैर, अभी तो तुम योग्य कर्नल, एक सेना का योग्य अफसर अपने को प्रमाणित करो। कर्तव्य को ठीक समझो, और उसी की राह पर चलो।"

"मैं तुम्हें शिकायत का मौका न दूंगा शुभदा। तो यह तय रहा कि इसी वसन्त में हमारा व्याह हो और हम इंगलैण्ड चलें। हनीमून हम जहाज़ पर मनाएँ।"

"जैसा तुम ठीक समझो।"

"तो मैं फादर से यह बात कह दूं?"

"कह दो।"

"तुम मुझ से और कुछ कहना चाहती हो?"

"हाँ, तुम अपनी तन्दुरुस्ती का ध्यान रखना।'

"और तुम मुझे हर दूसरे दिन पत्र लिखना।"

"मैं लिखंगी।"

"मैं तुम्हारी आज्ञा का पालन करूँगा।"

कर्नल मेकडानल्ड ने शुभदा का हाथ अपने हाथों में ले कर दबाया, और कहा—"विदा, मेरी प्यारी शुभदा।"

"विदा, तुम्हारी यात्रा शुभ हो।"

वह भीतर चली गई। कर्नल बाहर आ पादरी से आवश्यक बातें करने लगा।

: १७ :

महत्त्वपूर्ण भोज

सर हाइड ईस्ट उन दिनों कलकत्ते की सुप्रीम कोर्ट के चीफ जस्टिस थे। बड़े सहृदय और उदार व्यक्ति थे। भारत के प्रति इन्हें सहानुभूति थी। राममोहन राय के वे अनन्य मित्र थे। इस समय अंग्रेज़ सरकार ने राममोहन राय को राजा की उपाधि दी थी। उसी के उपलक्ष्य में उन्होंने

एक छोटे से प्रीति भोज का आयोजन अपने घर पर किया था। उसमें कलकत्ते के कुछ सम्भ्रान्त पुरुषों को आमन्त्रित किया गया था। आमन्त्रित व्यक्तियों में एक डेबिड़ हेयर भी थे। वे कलकत्ते में घड़ियों का व्यापार करते थे, और राममोहन राय के घनिष्ट मित्र थे। तीसरे थे पण्डित शिवप्रसाद शर्मा जो राममोहन राय के पत्र ब्राह्म निकल मेगज़ीन के सम्पादक थे। चौथे थे, राजा द्वारिकानाथ ठाकुर। पांचवें थे, प्रसन्नकुमार ठाकुर, छटे थे देवेन्द्रकुमार ठाकुर। ये सब राममोहन राय के समर्थक, साथी और सहायक थे। इन के अतिरिक्त कुछ और भी धनीमानी कलकत्ते के प्रतिष्ठित पुरुष थे। समारोह में राममोहन राय की, उनके सुधार सम्बन्धी कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। और उन्हें राजा होने के उपलक्ष्य में बधाइयां दी गईं। इसके बाद कुछ आवश्यक बातें प्रारम्भ हुईं। राजा राममोहन राय ने सब को धन्यवाद देते हुए कहा—आप सब यदि सचमुच ही, मेरे प्रति इतना प्रेम और सम्मान भाव रखते हैं जो इस समय आपने प्रकट किया है, तो मैं प्रस्ताव करता हूँ कि आप कलकत्ते में एक "हिन्दू महाविद्यालय" की स्थापना करें। जिस में हिन्दू युवकों को आधुनिक शिक्षा दी जाय। हमारे देश में शिक्षा प्रचार की व्यवस्था पहले ही से है। देश भर में फारसी के मदरसे खुले हुए हैं। धनी-मानी लोग घरों में मौलवी रख कर बच्चों को फारसी पढ़ाते हैं। फिर देश में संस्कृत टोल और पाठशालाऐं भी हैं। परन्तु देश में प्रायः ऐसा प्रचलन है कि इन प्राथमिक पाठशालाओं में पढ़ कर युवक व्यवहारिक कामों में लग जाते हैं। कुछ उच्च विद्यालय भी हैं जिन में न्याय-वेदान्त, आयुर्वेद, साहित्य और दर्शन पढ़ाए जाते हैं। परन्तु भारत की यह शिक्षा प्रणाली जीर्णशीर्ण गतानुगतिक और निष्प्राण है। जो पुरानी बातें लिखी हुई हैं उन्हें लोग पढ़ाते जा रहे हैं। नई बातें सोचने अथवा नए ज्ञान को संगठित करने की ओर किसी का ध्यान नहीं है। कम्पनी राज्य की जनता को शिक्षित करने का दायित्त्व उठाना नहीं चाहती, न जनता ही इस विषय में जागरूक है। फिर भी अंग्रेजों के भारत में आ जाने से अंग्रेज़ी

भाषा का विकास हुआ है । और इस काम में सहायक कम्पनी के कर्मचारी हैं, या ईसाई धर्म प्रचारक। कम्पनी के कर्मचारी तो भारतीयों को इस लिए अंग्रेज़ी सिखाना चाहते हैं, कि उन के काम में आसानी हो। और ईसाई धर्म प्रचारक इस लिए कि अंग्रेज़ी पढ़े लिखे व्यक्ति को आसानी से ख्रिस्तान बनाया जा सकता है। इस के अतिरिक्त भारतीय अमीर यह समझते हैं, कि अंग्रेज़ी पढ़े लिखे बाबूओं का अंग्रेज़ अधिक सम्मान करते हैं।"

इस पर प्रसन्नकुमार ठाकुर ने कहा—"परन्तु कम्पनी का शासन इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देना नहीं चाहता। इसका कारण मैं तो यह समझता हूँ कि अंग्रेज़ भारत में अपने राज्य की जड़ जमाना चाहते हैं, अपने देश की सभ्यता फैलाना नहीं।"

"आप ठीक कहते हैं, ठाकुर महोदय, वे अभी तक यह समझ रहे हैं कि हिन्दू और मुसलमान प्रजा पर राज्य उन्हीं के क़ानूनों के अनुसार चलाया जाना चाहिए।" राजा राममोहन राय ने अपना वक्तव्य जारी रखते हुए कहा—"सब से पहला क़दम कम्पनी सरकार ने शिक्षा के सम्बन्ध में वारेन हेस्टिंग्स के समय में उठाया, जब कि मौलवी मजीउद्दीन की नियुक्ति में कलकत्ते में एक मदरसा खोला गया था। इस में चालीस मुस्लिम छात्र धार्मिक शिक्षा पाते थे। यह सन् १७८१ की बात है। इस के दस बरस बाद बनारस के रेजिडेन्ट जानथम डेकन के अनुरोध से लार्ड कार्नवालिस ने बनारस में हिन्दुओं के लिए भी एक संस्कृत कालेज की स्थापना की थी। परन्तु भारतीयों को अंग्रेज़ी शिक्षा देने की सलाह पहले पहल सर चार्ल्सग्रान्ट ने बोर्ड आव डाइरेक्टर को दी थी। परन्तु उस समय इस पर विचार नहीं किया गया। इधर सिरामपुर मिशन के धर्म प्रचारक अंग्रेज़ी शिक्षा के पक्ष में रहे हैं।

इस पर राजा द्वारिकानाथ ठाकुर ने कहा—"इस का तो हाथों हाथ उन्हें लाभ मिल रहा है, महामेधावी गणितज्ञ रामचन्द्र ख्रिस्तान हो गए, सुप्रसिद्ध कवियित्री तारुदत्त ख्रिस्तान हो गई। उनके पिता गोविन्दचन्द्रदत्त

भी क्रिस्तान हो गए थे, बंगाल में अंग्रेज़ी के जो प्रथम विद्वान कहे जाते हैं, वे साहब चन्द्र बनर्जी भी ख्रिस्तान हो गए, माईकेल मधुसूदन के ख्रिस्तान होने की बात तो प्रसिद्ध ही है।"

प्रसन्नकुमार ठाकुर ने कहा, 'सिरामपुर के मिशनरी लोग अपना मौखिक उपदेश तो देते ही हैं। लिखित साहित्य भी हिन्दुओं में बखेर रहे हैं। इसी से वे चाहते हैं कि सर्व साधारण में शिक्षा का प्रचार हो, इसी से उन्होंने मिशनरी स्कूल खोले हैं, क्योंकि कम्पनी राज्य में धर्म विश्वास पर सीधा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता, पर स्कूलों में उन्हें बीसियों प्रकार से प्रभावित किया जा सकता है। इसी से सिरामपुर के मिशनरियों ने केवल छापाखाना ही नहीं खोला है, कागज का कारखाना भी खोला है, और उन्होंने बाइबिल का अनुवाद भारत की छब्बीस भाषाओं में प्रकाशित किया है। इन अनुवादों का उपयोग तभी हो सकता है, जब देश भाषाओं के स्कूल खुलें और खास ढंग की पुस्तकें तैयार की जायँ।"

"बेशक. तो मैं यह कह रहा था, कि कलकत्ते के मदरसे और बनारस के संस्कृत कालेज के बाद, बहुत दिन तक कम्पनी सरकार ने कोई क़दम शिक्षा के सम्बन्ध में नहीं उठाया। सन् १८०१ में फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना अवश्य हुई, पर वह कम्पनीं के नए अफसरों को देशभाषा सिखाने के लिए। इस प्रकार आम प्रजा की शिक्षा केवल मिश्नरियों ही के हाथ में अभी तक बनी है, अब मिश्नरियों ने कलकत्ता में विशप कालेज खोला है। इसका भी उद्देश्य मिश्नरियों का प्रसार करना है। आवश्यकता इस बात की है कि जनता में अंग्रेजी शिक्षा का विस्तार हो, और उसके साथ ही साथ उन्हें हिन्दी, फारसी तथा दूसरे आवश्यक विषय भूगोल गणित, इतिहास आदि पढ़ाए जाय। इस लिए धर्म निरपेक्ष शिक्षा संस्थाओं की स्थापना की जाय। खेद है कि कम्पनी सरकार इस मामले में उदासीन है। परन्तु हम उदासीन रहना नहीं चाहते। हम अगला क़दम स्वयं उठाना चाहते हैं मैं प्रस्ताव करता हूँ, कि कलकत्ते में एक हिन्दू महाविद्यालय की स्थापना की जाय।"

देवेन्द्रनाथ ने कहा—"इस शुभकाम के लिए मैं दस हज़ार रुपए समर्पित करता हूँ।" प्रसन्न कुमार ठाकुर ने कहा—"दो हज़ार रुपए मैं भी देता हूँ।" राजा द्वारिकानाथ ठाकुर ने कहा—"दस हज़ार रुपए मैं देता हूँ।" राधाकांत देव ने कहा—"दस हज़ार रुपए मैं भी देने को तैयार हूँ, परन्तु मैं राय महाशय का सहयोग नहीं कर सकता।"

देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा—"राय महाशय से विरुद्ध आप को क्या आपत्ति है ?"

"आपत्ति बहुत है। वे मुसलमानों और अंग्रेज़ों के साथ खान-पान करते हैं। वे नैष्ठिक ब्राह्मण हैं। परन्तु उन्होंने ब्राह्मो समाज की स्थापना कर सब नीच ऊच को एक कर दिया है। वे हिन्दू समाज को भ्रष्ट कर रहे हैं। मूर्तिपूजा के विरोधी हैं। इस पर डेविड हेयर ने कहा—"महाशय, यह तो बड़ी विचित्र बात है। राय महाशय यदि अंग्रेज़ों तथा मुसलमानों के साथ खान-पान करते हैं, और उन्होंने जो ब्राह्मो समाज की स्थापना की है, इस से तो उनकी उदारता ही प्रकट है। क्या आप अब भी बंगाल में पुरानी रूढ़ि को प्रचलित करना पसंद करते हैं ?"

"मैं तो यही चाहता हूँ कि जो हिन्दू महाविद्यालय खोला जाय, उसमें ब्राह्मो समाज की शिक्षा नहीं, हिन्दू सिद्धांतों की ही शिक्षा दी जाय। तभी मैं और मेरे दूसरे मित्र इसमें सम्मिलित हैं नहीं तो नहीं।" राजा राममोहन राय ने शांत स्वर में कहा—"इस विद्यालय की स्थापना का उद्देश्य हिन्दू तरुणों के हृदयों में नए ज्ञान का दीप जलाना है। अतः उसमें सभी उदार चेता महानुभावों को सम्मिलित होना आवश्यक है। मेरे मित्र राधाकांत देव को इस शुभ कार्य में योग देने में केवल यही आपत्ति है कि मैं उसमें न रहूँ, तो मैं सहर्ष अपने आप को इससे पृथक् कर लेता हूँ। आप सब लोग मिल कर यह शुभ कर्म करें। इस कार्य में दस हज़ार रुपए मैं भी आप को अर्पित करता हूँ। ये पचास हज़ार रुपए जो आप ने इस समय एकत्र किए हैं, आप के इसशुभ कार्य को आरम्भ करने को यथेष्ट है। आप को यह भी ज्ञात हो कि सन् १३ में कम्पनी सरकार

ने एक लाख रुपया, प्रति वर्ष शिक्षा के काम में खर्च करना तय किया था, परन्तु इस अनुदान की रक़म कलकत्ता बुक सोसाइटी और कलकत्ता स्कूल सोसाइटी को दे दी जाती रही है। सरकार ने एक कालेज कलकत्ते में और एक दिल्ली में स्थापित किया है। जहाँ भारत की तीन भाषाएँ संस्कृत, अरबी और फारसी पढ़ाई जाती है, पर मेरी यह दृढ़ धारणा है कि जब तक अंग्रेज़ी की शिक्षा इन केन्द्रों में नहीं दी जायगी—कुछ लाभ नहीं होगा। मैंने एक पत्र लार्ड राम हमहर्स्ट को भी लिखा था—कि इंगलैंड के लोग नहीं चाहते कि भारत में ज्ञान का प्रचार बढ़े। अन्यथा वे अंग्रेज़ी के बदले भारतीय भाषाओं का पृष्ठ पोषण क्यों करते। परन्तु मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि भारत की भलाई इसी में है, कि उन्हें विज्ञान, शिक्षा, इतिहास, राजनीति और पाश्चात्य शास्त्रों की शिक्षा अंग्रेज़ी भाषा के साथ दी जाय।"

सर हाइड ईस्ट अब तक चुपचाप बैठे सब के वक्तव्य सुन रहे थे। अब उन्होंने उठ कर कहा--"सज्जनो, इस समय आप ने जिस शुभ अनुष्ठान का सूत्रपात किया है, उसके लिए मैं आप का अभिनन्दन करता हूँ। परन्तु मेरा सब से अधिक अभिनन्दन राजा राममोहन राय के लिए है, जिन्होंने श्री राधाकांत देव और उनके समर्थकों के विरोध से दूरदर्शिता-पूर्वक अपना नाम उस काम से वापस ले लिया, जो उनका अपना था। राजा राममोहन राय अरबी और फारसी के प्रौढ़ विद्वान हैं, तथा अंग्रेज़ी के भी पण्डित हैं। परन्तु उनकी सारी श्रेष्ठता उस लगन से सम्बन्धित है, जो उनमें भारत की जनता की भलाई और उन्नति के सम्बन्ध में है। श्री राधाकांत देव मुझे क्षमा करें, यदि मैं यह कहूँ, कि वे इस समय भारत के एक दैदीप्यमान नक्षत्र हैं, तथा भारतीयों और अंग्रेज़ों के बीच मित्रता के सूत्र गूंथने वाले एकमात्र पुरुष हैं। शिक्षा के सम्बन्ध में मैं इतना आप को बताना चाहता हूँ—कि इसका जो प्रयास इस समय बंगाल में हो रहा है, उतना भारत के दूसरे प्रांतों में नहीं। मद्रास में टूटी-फूटी अंग्रेज़ी का ज्ञान बहुत से लोगों को स्वयं आप ही आप हो गया है, क्यों-

कि वहाँ अंग्रेज़ी कितने ही भारतवासियों के बीच स्थानीय बोली के रूप में चलने लगी है। बम्बई में अरबी, फारसी और संस्कृत का स्थान दृढ़ नहीं है। उधर के लोग देश भाषा के पक्ष में हैं तथा देश भाषाओं की शिक्षा के क्रम में अंग्रेज़ी आप से आप ही आ गई है। प्राच्य और पाश्चात्य का झगड़ा वास्तव में कलकत्ते ही में उठ खड़ा हुआ है। मेरे आदरणीय बन्धु राजा राममोहन राय, सुगठित रूप में अंग्रेज़ी के प्रचार के लिए व्यग्र हैं, जब कि बंगाल में अभी बहुत प्राच्यवादी हैं। मैं तो समझता हूँ कि अब यह शिक्षा के क्षेत्र में प्राच्यवादियों और अंग्रेज़ी के समर्थकों का एक द्वंद्व आरम्भ हो रहा है। परन्तु लार्ड विलियम बैंटिक प्रथम ही यह घोषणा कर चुके हैं कि भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी होगा। यह बड़े ही महत्त्व की घोषणा है और इसका प्रभाव भारत की भावी पीढ़ी पर असाधारण पड़ेगा। आप जानते हैं कि भारत के प्रत्येक ज़िले में स्कूल खुलते जा रहे हैं और मैं आशा करता हूँ कि शीघ्र ही अंग्रेज़ी शिक्षा सहसा इतनी लोकप्रिय हो उठेगी, कि सरकार को सरकारी तथा गैर-सरकारी स्कूली किताबों का प्रबंध करना कठिन हो जायगा। एक शब्द में मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह ज्ञान की अपूर्व जागृति का समय है। अब आप ने जो इस समय यह कार्य आरम्भ किया है, मैं चाहता हूँ कि इसका भार आप हमारे उत्साही मित्र श्री डेविड हेयर के सुपुर्द कीजिए मैं आशा करता हूँ वे तन मन से इस काम में लग जाएँगे।"

डेविड हेयर ने कहा—"मैं तैयार हूँ।"

और हर्ष-ध्वनि के बीच उन्हें शिक्षालय का अधिष्ठाता चुन लिया गया, और यह ऐतिहासिक गोष्ठी समाप्त हुई।

: १८ :

आदर्श-मुलाक़ात

राधामोहन मजूमदार गाँव छोड़ कलकत्ते में आ बसे। अपनी सब जमींदारी बेच कर उन्होंने कलकत्ते में एक आलीशान मकान बनवाया,

ग्रौर जूट का कारोबार शुरू किया। यह काम अभी-अभी बंगाले में ग्रारम्भ हुग्रा था, ग्रौर केवल कुछ अंग्रेज कम्पनियाँ ही यह धन्धा करती थीं। उन्होंने उनसे ग्रपने सम्पर्क स्थापित किए, ग्रौर उनके सहयोग से थोड़े ही समय में उनका व्यवसाय चमक उठा—ग्रौर उन्हें काफी ग्राय होने लगी। तीन साल तक वे एक प्रकार से ग्रज्ञात रूप में रहे। ग्रपनी सारी शक्ति उन्होंने ग्रपने कारोबार में केन्द्रित कर दी। यों तो वे बड़े मिलनसार थे—परन्तु इस समय उन्होंने मिलना-जुलना या किसी सामाजिक कार्य में ग्राना-जाना कतई छोड़ दिया था। वे जाति बहिष्कृत कर दिए गए थे—ग्रकारण, केवल पाखण्ड के कारण। उनका एकमात्र पुत्र ग्रकाल ही में काल कवलित हुग्रा था। उनकी बालिका पुत्रवधू को सती होते-होते चिता से हरण कर लिया गया था। इन सब बातों से उन के मस्तिष्क पर गहरा ग्राघात पहुँचा था। वे ग्रपनी जाति के शीर्षस्थानीय थे। उनकी उदारता ग्रौर सज्जनता ग्रलौकिक थी। कभी किसी का उन्होंने कोई ग्रनिष्ट नहीं किया था। फिर भी न जाने किस पाप की बदौलत उन्हें यह विडम्बना सहन करनी पड़ी थी। परन्तु वे एक मेधावी ग्रौर हिम्मत वाले व्यक्ति थे। उन्होंने ग्रपनी सारी ही चेतना व्यापार में लगा दी। ग्रौर देखते-ही-देखते वे एक प्रतिष्ठित व्यापारी बन गए।

कलकत्ते में राजा राममोहनराय ने ब्राह्मो समाज की स्थापना की थी। इस समय राजाराम मोहनराय फारसी में धार्मिक लेख लिखा करते थे, तथा फारसी में एक ग्रखबार 'मिरातुल-ग्रखबार' निकालते थे। राधामोहन बड़े चाव से उन लेखों ग्रौर ग्रखबारों को पढ़ा करते थे। वे ब्राह्म समाज में प्रविष्ट होने का दृढ़ निश्चय कर चुके थे। इसी समय राजा राम मोहनराय ने 'बंगदूत' बंगाली में तथा 'बंगाल हेरल्ड' ग्रंग्रेज़ी में निकाला था। राधामोहन इन पत्रों को भी पढ़ते थे। एक दिन वे ब्राह्म समाज के ग्रधिवेशन में जा कर चुपचाप बैठ गए। उन्होंने देखा—दो तैलगू ब्राह्मण पर्दे में बैठे हुए वेदपाठ कर रहे हैं। पर्दे के बाहर लिखा हुग्रा था—वहाँ ग्रब्राह्मण का निषेध है। वेद पाठ की समाप्ति पर उत्सवानन्द ने उपनिषद्

पाठ किया और फिर रामचन्द्र विद्यावागीश ने उस का बंगला में अर्थ समझाया । इसके बाद राजा राममोहन राय का उपदेश फारसी भाषा में हुआ । सभा की समाप्ति पर प्रार्थना गान हुआ ।

सब लोग उठ गए—केवल राजा राममोहन राय—बैठे रह गए । वे एक प्रकार से मूक मौन समाधिस्थ से बैठे रहे । राधामोहन भी बैठे रहे । जब राजा साहब ने आँखें खोलीं—तो राधामोहन ने उठ कर प्रणाम किया, और अपना नाम बता कर कहा—'आप को समय हो—तो मैं आप से कुछ बातें करना चाहता हूँ ।"

"अवश्य, आइए-बैठिए ।'

"मुझे यह कहने की आप आज्ञा दीजिए कि आप उस महासेतु के समान हैं, जिस पर चढ़ कर भारतवर्ष अपने अथाह अतीत से अज्ञात भविष्य में प्रवेश कर रहा है ।"

"यह तो अधिक से भी अधिक है । मैं तो केवल यही जानता हूँ कि अन्धविश्वास और विज्ञान के बीच जो दूरी है, प्राचीन जाति प्रथा और नवीन मानवता के बीच में जो खाई है, बहुदेववाद और शुद्ध ईश्वरवाद के बीच जो भेद है, उन सब को दूर कर भारत को प्राचीन से नवीन की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहा हूँ । परन्तु आप कृपा कर अपना थोड़ा और भी परिचय दीजिए ।

राधामोहन ने अपनी सारी दुर्भाग्य करुण कथा कह सुनाई । फिर कहा—"मैं तीन साल से कलकत्ते में हूँ । और ये साल मैंने सब कुछ भूल कर ज़मीदार से व्यापारी बनने में व्यतीत किए हैं । इस प्रयास में मैंने अपनी मर्म वेदना और आत्म-ग्लानि को भी छिपा लिया है । किंतु मैं जब गाँव से चला था, तभी मैंने ब्रह्म समाज में प्रविष्ट होने का संकल्प कर लिया था, परन्तु तब मन में विवशता थी, परन्तु अब मैं मन से समाज में प्रविष्ट होना चाहता हूँ । गत छह माह से मैं सत्संग में आता रहा हूँ पर आप से मिला नहीं ।"

"मैंने आप को बहुधा देखा । परन्तु अपनी ओर से टोकना ठीक नहीं

समझा। अब आप से मिल कर तथा आप की बात सुन कर मैं प्रभावित हुआ हूँ। वास्तव में रूढिवाद और जाति परम्परा के दोषों का भुक्त-भोगी आप से बढ़ कर और कौन हो सकता है।"

राजा राममोहन राय का कण्ठ भर आया और वाणी अवरुद्ध हो गई। राधामोहन भी न बोल सके। राजा राममोहन राय ने कहा—"क्या आप को मालूम है कि आप की पुत्र-वधू अब कहाँ है ?"

"नहीं, मैं नहीं जानता। जानने की चेष्टा भी मैंने नहीं की।"

"क्या अब भी जानना नहीं चाहते ?"

"चाहता हूँ।"

"किस लिए ? यदि वह आप को मिल जाय तो क्या आप उसे ग्रहण करेंगे ?"

"क्यों नहीं। मेरे पुत्र नहीं है। मैं तो उसी को अपनी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी बनाऊँगा।"

"और यदि वह विधर्मिणी हो गई हो। उसने उस अंग्रेज़ से विवाह कर लिया हो, जिसने उसे उद्धार किया था। तब ?"

"तो भी मैं उसे अपनी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी बनाऊँगा, किंतु क्या आप उसके सम्बन्ध में कुछ जानते हैं ?"

"जानता हूँ।"

"आपने उसे देखा है ?"

"देखा हैं।"

"क्या उसने विवाह किया है ?"

"अभी नहीं। किंतु शीघ्र ही एक अंग्रेज़ से उसका विवाह होगा।"

"कोई हर्ज नहीं। क्या आप मुझे उसे दिखा सकेंगे ?"

"मैं उससे पूछूँगा। यदि उसने स्वीकार किया तो आपको ले चलूंगा।"

"क्या आप भी ईसाई धर्म को अच्छा समझते हैं ?"

"सभी धर्मों के समान ईसाई धर्म में भी पौराणिक बातें हैं। रूढ़ियों, चमत्कारों और अन्ध विश्वासों का ढेर है, परन्तु इस समय जो सैनिक

लोग उसे भारत में ले आए हैं वे अन्ध विश्वासी नहीं है। न वे रूढ़ियों के दास हैं। इसके अतिरिक्त ईसाई धर्म हिंदू-धर्म की अपेक्षा कई गुना बलवान् प्रतीत होता है।"

"क्या आप यह पसन्द करते हैं कि भारतीय जनता क्रिश्चियन धर्म को ग्रहण करे।"

"कदापि नहीं। मैं तो उसका डट कर सामना करना चाहता हूँ। मेरी धारणा है कि उसका सामना करने के लिए आवश्यक है कि भारत यूरोप की वैज्ञानिकता को ग्रहण करे और इस वैज्ञानिकता के साथ अपने धर्म को भी संसार के सामने रक्खे।"

"इसी से वैज्ञानिकता का वेदान्त से, उपनिषद् से काँचनमणि संयोग करने में लगा हूं। आशीर्वाद दीजिए कि मैं सफल होऊँ।"

"आशीर्वाद देता हूँ राजा महोदय, आप सफल हों और मैं आप की शरण भी आता हूँ।

"बड़ी ही शुभ वार्ता है मजुमदार महाशय। मैंने हिन्दू धर्म इस्लाम और ईसाइयत तीनों धर्मों का अध्ययन किया है। हिंदूत्व की पवित्रता, इस्लाम की रुचि और विश्वास तथा ईसाइयत की सफाई मुझे पसन्द है। ईसाई धर्म से मैंने कुछ प्राप्त नहीं किया है, परन्तु ईसाई देशों के सामाजिक जीवन, राजनैतिक संगठन और विज्ञान से मैं प्रभावित हूँ। केवल धर्म से यही प्रमाणित होता है कि सारी मनुष्य जाति एक परिवार है। अनेक जातियाँ और राष्ट्र उसकी शाखाएँ हैं।"

"मुझे विश्वास है कि आपका यह विश्वास भारतीय उत्थान का एक अंग बन जायगा।"

"ऐसा ही मैं समझता हूँ, क्योंकि भारत के प्राचीनतम सत्यों का यूरोपीय नवीन सिद्धान्तों के साथ सामंजस्य बिठाए बिना भारत का कल्याण नहीं है।"

"मैं देखता हूँ कि यूरोप के सम्पर्क से भारत में नई मानवता का जन्म हो रहा है। वैसे ही हिन्दू धर्म भी नया रूप धारण कर रहा है। ब्रह्म-

समाज हिन्दू-धर्म का अभिनव रूप है। हमारा उद्देश्य सभी धर्मों के लोगों के बीच एकता, समीपता तथा सद्भाव को जन्म देता है।

"आप ठीक कहते हैं। भारत से सती प्रथा को उठाने के लिए भी अब क्रियात्मक कदम उठाया जाना चाहिए।"

"मैंने लार्ड विलियम बैंटिंग की सरकार का इस सम्बन्ध में समर्थन किया था, और बड़ी ही कठिनाई से लोग सती प्रथा की रोक-थाम का क़ानून बनवा सके। अब इस क़ानून के अनुसार सती होने में सहायक होना क़त्ल के बराबर अपराध ठहराया गया है।"

"परन्तु कट्टर हिन्दू तो अभी तक इस काम को धर्म पर आघात ही समझते हैं। सुना है उन्होंने प्रीवी कौंसिल में इस क़ानून के विरुद्ध अपील की है।"

"वह भी खारिज हो गई। और अब क़ानून देश में लागू हो जायगा।"

"बड़ी प्रसन्नता की बात है, परन्तु केवल सती प्रथा बन्द होना ही तो यथेष्ट नहीं है। जब तक बाल-विवाह बन्द नहीं हो जाते, हमारे घरों की दुर्वस्था नहीं दूर होगी। बाल-विधवाओं से हमारे घर भर जाएँगे। इसलिए पुनर्विवाह और बालिग विवाह की व्यवस्था भी क़ानूनन होना चाहिए।"

"इसमें अभी समय लगेगा मजुमदार महाशय।"

"तो तब तक के लिए मेरा यह अनुदान क़बूल कीजिए। पचास हज़ार रुपए मैं बाल-विधवाओं की शिक्षा-दीक्षा तथा उनकी सुव्यवस्था के लिए देता हूँ।"

"आप का यह कार्य श्लाघनीय है। मैं धन्यवादपूर्वक आप का यह अनुदान स्वीकार करता हूँ। इस रक़म से कलकत्ते में एक विधवा सहायक संस्था की स्थापना होगी। अभी-अभी हमने इतनी ही रक़म शिक्षा-प्रसार के लिए एकत्र की है।"

"मुझे संकोच बहुत है, परन्तु आप से कुछ कहना चाहता हूँ।"

"कहिए।"

"यदि मेरी पुत्र-वधू मेरे साथ रहना स्वीकार करे—तो मैं उसे पुत्र की भाँति रखूँगा।"

प्रथम तो वह क्रिश्चियन संगति में पाँच वर्ष रही है। उन्हीं के संस्कारों में शिक्षा पा रही है। अब वह एक समझदार सुशिक्षता महिला है। इसके अतिरिक्त उसका विवाह होना ही ज्यादा ठीक है।"

"आप कोई उदार सत्पात्र ढूँढ़ दीजिए, उसी से उसका मैं विवाह कर दूँगा।"

"प्रथम तो अभी हमारा ब्राह्म समाज भी इतना अग्रसर नहीं है। दूसरे वह अंग्रेज़ तरुण से ब्याह करना चाहती है।"

राधामोहन कुछ देर तक मौन रहे। फिर बोले। "तब यही सही। हम विश्व की सभी जातियों में एकता स्थापित कर रहे हैं। मैं अपनी सब सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी उसे ही बनाऊँगा। वह चाहे जिस धर्म में रहे - चाहे जिससे ब्याह करें।"

"खैर, तो आप उससे एक बार मिलना चाहते हैं?"

"अवश्य।"

"तो मैं आपको ले चलूँगा। परन्तु पहले मुझे उस से पूछना होगा।"

"क्या वह यहीं कलकत्ता में है?"

"है, यहीं है।"

"कहाँ?"

"पादरी जानसन के घर में।"

"तो मेरी दीक्षा कब होगी।"

"आगामी इतवार को।"

"धन्यवाद राय महाशय, मैं अपने को इस नए जीवन के सर्वथा उपयोगी प्रमाणित करूँगा।"

"आपकी कामना सफल हो। यही कामना करता हूँ।"

: १६ :

नई दुलहिन और उसकी प्रतिक्रिया

१६वीं शताब्दी के आरम्भ होते ही साहित्य से धर्म का संकुचित वाह्य रूप और रीति रूढता का रूप पृथक् हो गया था और साहित्य का प्रत्येक अंग स्वस्थ रूप में विकसित होने लगा था। इसका प्रभाव प्रत्यक्ष ही जीवन के आदर्शों पर पड़ा था और उसमें क्रांतिकारी परिवर्तन हो रहे थे। साहित्य सामाजिक जीवन के अधिकाधिक निकट होता जाता था। जीवन के आदर्श बदल रहे थे, अज्ञात परलोक की आकांक्षा पर जीवन विसर्जन करने के विचार अब तेज़ी से दूर होते जा रहे थे।

ऐसी ही अवस्था में साहित्य की वाणी में क्रांतिकारी परिवर्तन हुए। हिन्दी से उर्दू पृथक् हुई और अंग्रेज़ी आ सम्मिलित हुई।

जब मुगल बादशाह शाहजहाँ ने दिल्ली को नए सिरे से आबाद कर के शाहजहानाबाद नाम दिया, और लाल क़िला बनाकर उसमें रहने लगे—तो लाल क़िले का नाम 'उर्दू-ए-मुअल्ला' कह कर पुकारा जाने लगा। उन दिनों लश्कर या छावनी को 'उर्दू' कहा करते थे। उस काल में दिल्ली कोई स्थायी शहर न था, मुगलों की छावनी ही थी। बादशाह की जब कहीं रणयात्रा होती थी, तो सारी दिल्ली ही उनके साथ जाती थी। जिन में अधिकांश, सैनिक और बाक़ी धोबी, तेली, तम्बोली, मोची, कहार, मछुए, घसेरे, क़साई, बजाज और उनके बाल-बच्चे आदि भी उनके साथ रहते थे। इसलिए जब दिल्ली की शहरपनाह बन गई तो दिल्ली एक सुरक्षित सैनिक छावनी का रूप धारण कर गया। तब दिल्ली को भी उर्दू बाज़ार पुकारा जाने लगा। अकबर के जमाने से ही पश्चिमोत्तर सीमा पार के प्रदेशों से सब जातियाँ और नस्लों के लोग मुग़लों की फ़ौजरसानी और क़द्रदानी सुन-सुन कर आते और वहीं बस जाते रहे थे। इन सब की पृथक्-पृथक् बोली थी। वे यहाँ भारतीयों के साथ इकट्ठे रहते, सौदा सुलफ़ करते, बातचीत करते। इस से सब की बोली मिल-जुल कर इस उर्दू बाज़ार की एक पृथक् बोली हो गई, जो उर्दू कहाई।

वही लाल क़िले में परिष्कार पा कर धीरे-धीरे फारसी से मिल कर परिष्कृत साहित्य की भाषा बनती चली गई। अब वह शाहज़ादगाने तैमूरिया की मुख्य भाषा बन गई थी और उसमें काव्य चर्चा फारसी ही की भांति होने लगी थी, तथा उसका रूप हिन्दी से पृथक् होता जाता था। इसकी भाषा की कविता को रेख़्ता कहते थे। इसी से मिर्ज़ा ग़ालिब अपने दीवान को रेख़्ता का दीवान कहते थे। इससे पूर्व कबीर, नानक, तुलसी, सूर आदि प्रमुख कवि अपनी रचनाओं में बहुत से अरबी फारसी शब्द प्रयोग में ले आते रहे थे। प्रेम मार्गी सूफी कवियों ने तो फारसी अरबी शब्द ही नहीं, व्यंजनाएँ भी विदेशी मिश्रित रखी थीं।

शमशुलवली अल्ला दक्षिण औरंगाबाद के निवासी थे, वे अहमदाबाद के मौलाना वज़ीहुद्दीन अलवी के मुरीद थे। पहले वे दक्खिनी हिन्दी और फारसी में कविता रचते थे, बाद में वे दिल्ली आए। उन दिनों बादशाह मुहम्मदशाह दिल्ली के तख़्त पर थे। दिल्ली में उनका परिचय फ़ारसी के सूफी कवि शाह सादुल्ला से हुआ। उनके कहने से वे सरल हिन्दी को छोड़ फ़ारसी शब्द मिश्रित कविता कहने लगे। यह वह समय था जब दिल्ली में फ़ारसी का ह्रास हो चला था और फ़ारसी मिश्रित, उर्दू-ए-मुअल्ला, क़िले की ज़बान हो चुकी थी। जो वास्तव में बादशाहों और दर्बारियों की हिन्दी ज़बान थी, और भारतवर्ष में चिरकाल तक रहने के बाद, तुर्की और फारसी मिश्रण से बनी थी। दिल्ली के शाह सादुल्ला गुलशन को फ़ारसी का यह ह्रास बहुत खल रहा था। इसी से उन्होंने वली से कहा—'ईहमः मज़ामीन फ़ारसी कि बेकार उफ्तादह, अंद हर रेख़्तः वकार बबर। अज़ तू के मुहासिक ख़्वाहिद गिरफ़्त।"

शाहे हातिम को वली ने अपना उस्ताद बनाया और उन्होंने तत्कालीन 'शाही ज़बान' में जो 'उर्दू-ए-मुअल्ला' कहाती थी, पकड़ कर उसमें से हिन्दी भावना और शब्दों को दूर कर उर्दू का एक स्वतन्त्र परिष्कृत रूप स्थापित किया। जिस से रेख़्ता संवर कर उर्दू बन गई। इसके बाद उर्दू में काट-छाँट 'इसलाह ज़बान' की पद्धति प्रचलित हुई। यह पद्धति जारी

करने वाले लखनऊ के नासिख़ थे। बाद में इसलाही ज़बान ही उर्दू बन गई जिस की फ़साहत का एक उदाहरण मीर साहब थे। जो दिल्ली के प्रसिद्ध उर्दू कवि थे। एक बार वे लखनऊ गए। गाड़ी का पूरा किराया पास न था, विवश दूसरा एक आदमी भाड़े में शरीक कर लिया। जब सफ़र आरम्भ हुआ और उस आदमी ने बातचीत करना चाहा तो मीर साहब उसकी ओर से मुँह फेर कर बैठ गए। परन्तु उसने कहा—"अजी कुछ बातचीत कीजिए कि रास्ता मज़े में कटे।" तो मीर साहब नाराज़ हो कर बोले—'साहब क़िबल; आप ने किराया दिया है तो बेशक गाड़ी में बैठिए, मगर बातों से क्या तालुक़ ?"

उसने कहा—"हज़रत, क्या मुज़ायका है, राह का शुग़ल है। बातों में जी बहलता है।" तो मीर साहब बिगड़ कर बोले—"आप का शुग़ल है मगर मेरी ज़बान ख़राब होती है।"

यह उन दिनों उर्दू के प्रारम्भिक महारथियों की मनोवृत्ति थी। उन्हें न तो किसी ऐसे साहित्य के निर्माण का ध्यान था जिस से मनुष्य का कल्याण हो, विचारों की धाराएँ उन्नत हों, या किसी प्रकार से भी लोक-हित हो। वे तो केवल शाब्दिक मल्लयुद्ध करते थे। भाषा से खिलवाड़ करते थे। भाषा को खिलौना बनाते थे और उनके निठल्ले शागिर्द निकम्मे नवाब और रईसज़ादे उनकी बात-बात में वाहवाही करते थे। यद्यपि मुसलमानों की भांति बहुत से हिन्दू भी उर्दू के विद्वान् कवि थे, परन्तु उर्दू में तब एकजातीय पक्षपात भी घुस चला था। एक बार जब उर्दू कोष के निर्माण की बात चली, तो मौलाना हाली ने कहा—"कोष लिखने वाले कोई शरीफ मुसलमान हों, क्योंकि खुद देहली में भी फ़सीह उर्दू सिर्फ मुसलमानों की ज़बान समझी जाती है। हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति उर्दू-ए-मुअल्ला को उनकी मादरी ज़बान नहीं होने देती।"

फोर्टविलियम कालेज के प्रतिष्ठाता और प्रिंसिपल डाक्टर गिल क्राइस्ट फारसी और हिन्दी के अच्छे ज्ञाता थे। फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना क उद्देश्य अंग्रेज़ों को हिन्दुस्तानी भाषा का ज्ञान प्राप्त कराना था, वे

बराबर कहा करते थे कि हमें किताबी, मजलिसी या दर्बारी उर्दू की ज़रूरत नहीं है, ठेठ हिन्दुस्तानी, खड़ी बोली यहाँ तक कि हिन्दी-रेख्ता में किताबें लिखी जायँ। डा. गिलक्राइस्ट के सम्मुख भाषा का एक सामान्य ढांचा था, जिसका रूप एक था, केवल लिपि का अंतर था। उसे ही वे सच्ची देश भाषा मानते थे। परन्तु अब उर्दू हिन्दी से पृथक् हो चुकी थी। और वह देशभाषा न थी, केवल बड़े-बड़े मुसलमानों की दरबारों और नगरों में पढ़ी जाने वाली शौकिया भाषा थी। डा. गिलक्राइस्ट ने कड़ी चेतावनी दी थी कि बोलचाल की भाषा में लिखो। उनकी सतर्कता के कारण फोर्टविलियम कालेज नासिख के स्कूल का अखाड़ा न बन पाया। परन्तु अदालत-कचहरियों में उर्दू ही को स्वीकार किया गया, इसका सर्वसाधारण पर व्यापक प्रभाव पड़ा और वह धीरे-धीरे सर्वसाधारण की पृथक् भाषा बन गई।

मुसलमान बादशाह सदैव पृथक्-पृथक् एक हिन्दीनवीस और एक फारसीनवीस रक्खा करते थे और उनकी आज्ञाएँ दोनों भाषाओं में लिखी जाती थीं। उसी प्रथा पर कम्पनी को सरकार ने यद्यपि सुबिधा के विचार से उर्दू को अदालती भाषा बना लिया था, पर पश्चिमोत्तर प्रदेश में जहाँ हिन्दी बोलचाल की भाषा थी। नागरी अक्षरों में हिन्दी अनुवाद भी उर्दू क़ानूनी पुस्तकों के साथ देती थी। परन्तु मुसलमान हिन्दी को अदालतों से निकलवा चुके थे, उसी भाँति उन्होंने यह भी चेष्टा की कि हिन्दी को शिक्षाक्रम में भी स्थान न मिले। इस लिए जब सरकारी वर्नाक्यूलर स्कूलों की स्थापना की योजना बनी, तो कम्पनी की सरकार ने चाहा कि सब विद्यार्थियों के लिए हिन्दी पढ़ना अनिवार्य बना दिया जाय, पर मुसलमानों ने उसका घोर विरोध किया। इन विरोधियों के नेता सर सैयद अहमद थे। जो हिन्दी को गंवारू बोली कहा करते थे। परन्तु इसी समय राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द हिन्दी की रक्षा के लिए उठ खड़े हुए। वे अंग्रेज़ सरकार के उतने ही कृपापात्र थे जितने कि सर सैयद। इन दोनों का हिन्दी उर्दू का झगड़ा बरसों तक चलता रहा।

फारसी बहुल उर्दू अदालती भाषा इस लिए बनाई गई थी, कि मुग़ल परम्परा से शताब्दियों से शब्द विन्यास और परिभाषा की जो परम्परा चली आती थी, उर्दू उसके निकट थी, उसकी लिपि भी वहीं थी। इस तरह उर्दू को एक काम चलाऊ अदालती भाषा मान लिया गया था, परन्तु वह धीरे-धीरे साहित्यिक भाषा बनती गई और मुस्लिम लेखकों ने फिर हिन्दी लिखना छोड़ कर उर्दू ही में साहित्य लिखना आरम्भ कर दिया। जीविका और प्रतिष्ठा के ख्याल से हिन्दू भद्रजन भी अपने लड़कों को उर्दू ही सिखाने-पढ़ाने लगे। उर्दू पढ़े-लिखे ही शिक्षित माने जाने लगे। हिन्दी से नई पीढ़ी के युवकों का लगाव कम हो गया।

जब हिन्दी की पुत्री उर्दू हिंदी से पृथक् हो रही थी, तभी सुदूर समुद्र पार देश की अंग्रेज़ी भाषा एक सम्पन्न नई दुलहिन की भाँति अपनी सम्पूर्ण विभूति को लेकर हमारे मानस मन्दिर में आई। इस भाषा के साथ साहसिक समुद्री विजयों के अभ्यस्त एक राष्ट्र, एक भाषा, एक देशीयता से सम्बद्ध, एक दृढ़ निश्चयी, दृढ़ क्रियाशील, उद्योगी, दुर्धर्ष और मेधावी जाति का इतिहास और संस्कृति थी। उसे हमारे मन मानस में प्रतिष्ठित करने में उसी साहसिक जाति के अग्रणियों का हाथ था। इस भाषा के साथ विगत पाँच सौ वर्षों के सर्वोच्च मस्तिष्कों का निष्कर्ष था, जिनमें महामनस्वी गेटे, वैरन, वर्डसवर्थ, टेनीसन, शैले, कालरिज, कीट्स जैसे कवि श्रेष्ठ और शेक्सपियर, थकरे, बैकन, उर्मिग, मिल्टन ब्राडले स्काट, हैज़लैट, चार्ल्सलैम्ब, टामसहार्डी, स्पेन्सर जैसे नाटककार, दार्शनिक, वैज्ञानिक और विश्वदर्शियों की अनुभूति मिश्रित थी। इस अंग्रेज़ी भाषा के तेज, दर्प, सौंदर्य और अपरिसीम सामर्थ्य ने हमें एक बारगी ही विमोहित कर लिया। उसने कुल वधू की भाँति चुपचाप हमारे घर के सम्पूर्ण वातावरण को अपने साँचे में ढाल लिया। हमने आश्चर्य दिग्विमूढ़ होकर अपने को अकस्मात् न केवल नवीन रहन-सहन और वेषभूषा से सुसज्जित, प्रत्युत, नए विचारों, नई आशाओं, नए हौसलों और नई प्रतिक्रियाओं से ओतप्रोत पाया। हमारा विचार शैथिल्य, हमारा सामाजिक रुढ़िवाद.

हमारा राजनैतिक अज्ञान और दार्शनिक जड़ता जैसे जादू के जोर से सजीव और स्फूर्तिमय हो उठी। हमने तपेदिक के रोगी की भाँति पथ में नपे-तुले चरण रखने और निरर्थक भाव प्रदर्शन छोड़ दिए और स्वस्थ अल्हड़ युवक की भाँति स्वच्छन्द गद्य के खुले मैदान में दौड़ लगाना आरंभ कर दिया, देखते-देखते हमारी सहस्रों वर्ष की मरी हुई आकांक्षाएँ और सोई हुई जीवन भावनाएँ जाग उठीं। हमने अनायास ही एक नई दृष्टि से अपने जीवन को, अपने देश और उससे सम्बन्धित संसार को देखा। हमने एक तिरस्कृत्त और मरणोन्मुख जाति के स्थान पर जीवन और चेतना के सम्पूर्ण लक्षणों से ओत-प्रोत तथा ज्योतिर्मय जनपद के रूप में अपने को पाया।

हम अपनीं प्राचीन सभ्यता, जीवन और परिपाटी को भूल चुके थे। हम आर्यों की उन असाधारण विजयों के संस्कार भी खो चुके थे। जिन्होंने अब से हज़ारों वर्ष पहले पंजाब का आविष्कार और संस्थापन किया था। जो दुरुह उत्तर के उत्तुंग हिमालय के आँचलों को विदीर्ण करके इस हरे भरे भारत में आए थे। वहाँ की जगत्प्रसिद्ध सभ्यता निर्माण की थी। प्रबल राज्य स्थापित किए थे। प्रशांत वातावरण में अगम्य अगाध अध्यात्मतत्व जो अत्यन्त प्राचीन होने पर भी आज भी वैसे ही ताजे और बहुमूल्य हैं, खोज निकाले थे। हम बिल्कुल भूल गए थे कि कुरुओं और पांचालों की प्राचीन राजधानियाँ कहाँ थीं। हम नहीं जानते थे कि महान् बुद्ध जब अपने धर्म विस्तार में लगा हुआ था, तब उस समय मगध की गद्दी से कौन हिन्दू सम्राट् समुद्र की लहरों पर हुकूमत करता था। हम यह भी नहीं जानते थे कि हमारे किन पूर्वजों ने समुद्र को अतिक्रांत कर के चीन, अरब, यवद्वीप और पाताल में अपने उपनिवेश कायम किए थे। हम आँध्र, गुप्त, नाग आदि महाराज्यों के नाम भी भूल गए। हमें पता नहीं था—कि शकों ने किस प्रकार भारत को आक्रांत किया था और विक्रम ने उन्हें कैसे पदाक्रांत कर दलित किया था। हमें बिल्कुल स्मरण नहीं रह गया था—कि एलोरा और अजंता की गुफाएँ, साँची के स्तूप, भुवनेश्वर

श्रौर जगन्नाथ के मन्दिर कब श्रौर किसने बनाए थे।

भारत जैसे प्राचीन जाति की प्राचीन सभ्यता का इतिहास नष्ट हो चुका था, श्रौर उस जाति के बच्चों को इसकी कुछ भी खबर न थी। वे या तो भेड़ बकरियों के झुण्ड की भाँति मंदिरों में देवता के सन्मुख बैठ कर श्रपने को कायर-कुपूत, कुकर्मी श्रौर श्रधम कह कर काल्पनिक स्वर्ग के सुख स्वप्नों की हास्यास्पद कामनाएँ किया करते थे, या श्रपने दीन-दुखी श्ररक्षित, श्रसहाय, निराश जीवन में बैठे-बैठे संसार की श्रनित्यता का रोना रोया करते थे। साहित्य की मर्यादा श्रौर श्रृंगार या तो मार-काट की प्रशंसा करने में या श्रपनी ही वधूटियों के निर्लज्ज श्रौर श्रत्युक्तिपूर्ण श्रश्लील वर्णन करने में समाप्त हो जाता था। ऐसा ही वह समय था जब श्रंग्रेजी भाषा नववधू के रूप में श्रपने मोहक भावों श्रौर श्रनूठे श्रृंगार को लेकर हमारे घर श्राई।

इस नववधू को श्रात्म सात करने की प्रतिक्रिया भी श्रद्भुत हुई। सन् १८३५ में कम्पनी की सरकार ने भारतीयों को श्रंग्रेज़ी सिखा कर उसके द्वारा भारत के शासन में सहयोग करने के प्रस्ताव को कार्य रूप दिया। श्रंग्रेज़ी माध्यम से भारतीय युवकों को शिक्षा देने केलिए श्रनेक स्कूल श्रौर कालेज खोले। उनमें जब भारतीय बालक श्रंग्रेज़ी पढ़ कर एक विचित्र भावभंगी प्रकट करने लगे तो भारतीय जनता में कौतूहल बढ़ा। ईसाई मिश्नरी इस काम में प्रथम ही से काफी उद्योग कर रहे थे। इन्हीं सब बातों से राममोहन राय जैसे उद्ग्रीव मनीषि जन चौकन्ने हुए थे। पहले उन्हें ईसाइयों का निरीह, दरिद्र श्रौर मूर्ख, दलित स्त्री-पुरुषों को ईसाई बना कर धर्म भ्रष्ट करना बुरा लगा। परन्तु जब उन्होंने उन्हें शिक्षित श्रौर उन्नत जीवन व्यतीत करते देखा तो हठात् उनके मन में दलितों के प्रति श्रपने श्रन्याय का भान हुश्रा। इसी प्रकार जब पाश्चात्य उन्मुक्त वायु में पुरुषों के साथ स्पर्द्धा करती हुई महिलाश्रों को उन्होंने देखा तो उन्हें श्रपने गन्दे घरों की चहार दीवारी में बंद निरीह स्त्रियों की दीन-दशा पर भी क्षोभ हुश्रा।

वह प्रतिक्रिया सर्व-प्रथम बंगाल से ही आरम्भ हुई। बंगाल में ही अंग्रेज़ों ने अपना प्रथम निवास बनाया था। उस समय बंगाल की विषम अवस्था थी। सारा बंगाली समाज धार्मिक रूढ़ियों में ग्रसित था। सबसे प्रथम यहीं ईसाइयों ने अपने अड्डे बनाए थे और नवीन पद्धति पर अपने नए धर्म का प्रचार करना आरम्भ किया था। प्रचार की सहायता के लिए जो सब से नई वस्तु उनके पास थी, वह छापने का प्रेस था। इसके द्वारा उन्होंने चमत्कारिक रूप में एक ही पुस्तक की अनेक प्रतियाँ छाप-छाप कर सस्ते मूल्य में सर्वसाधारण को सुलभ कर दीं थीं। वे मूर्ति-पूजा, छुआछूत आदि हिंदू-धर्म की बाहरी और स्थूल बातों पर अधिक ज़ोर देते और नए तर्कों के सहारे उनका खण्डन-मण्डन करते थे। इन्हीं सब बातों से राजा राममोहन राय और उनके साथी प्रभावित हुए थे। ईसाइयों को यह नहीं ज्ञात था कि ईश्वरवाद का ईसाइयों से भी उत्कृष्ट रूप वेदांत और उपनिषदों में वर्णित है। तत्कालीन हिंदुओं का भी उधर ध्यान न था। राजा राममोहन राय ने इसी 'ब्रह्म' का ब्रह्मास्त्र ले ईसाइयों तथा पाश्चात्य संस्कृति की बहती लहर से टक्कर ली। अंग्रेज़ों के सहवास से उनमें जो एक नव चेतना का उदय हुआ था, उसके आधार पर उन्होंने समाज के बाहरी अंग का नव निर्माण करने में साहस पूर्ण क़दम उठाया था। ईसाइयों की भाँति राजा राममोहन राय भी केवल बंगालियों ही को नहीं, हिन्दू-मात्र को प्रभावित करना चाहते थे। इसी से उन्होंने वेदान्तसूत्रों का भाष्य हिंदी में छपाया था तथा हिंदी ही में वंगदूत नामक पत्र निकाला था।

अभी तक भी कम्पनी सरकार ने कलकत्ते में कालिज नहीं खोला था, परंतु राजा राममोहन राय और उनके मित्रों ने हिंदू कालेज की स्थापना कर ली। जिसमें अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाने लगी, इस कालेज में अंग्रेज़ी पढ़-पढ़ कर युवक सरकारी नौकरियाँ धड़ाधड़ पाने लगे। इस से लोगों की सामाजिक परिस्थिति पर बड़ा प्रभाव पड़ा, और प्रत्येक संस्कृत और प्रतिष्ठित व्यक्ति के हृदय में अपने बच्चों

को अंग्रेज़ी पढ़ा कर अंग्रेजों की नौकरी में लगाने की अभिलाषा होने लगी, और वह अभिलाषा इतनी प्रबल हुई—कि उन लोगों के मन में दूसरी किसी आजीविका का ध्यान ही न रहा। इसका एक कारण यह भी था कि वे देख चुके थे कि कम्पनी सरकार की नौकरी में रह कर कितने छोटे खानदान बंगाल के प्रतिष्ठित खानदान बन चुके थे। इस समय भी सरकार अरबी, फारसी और संस्कृत के मकतबों और पाठशालाओं को थोड़ी-बहुत सहायता दे रही थी, परन्तु अंग्रेज़ी के नए शौक के सामने इस पुरानी पद्धति की पुरानी चटशालाओं और मकतबों की ओर लोगों की बहुत कम रुचि रह गई थी। धीरे-धीरे इन शिक्षा केन्द्रों की सरकारी सहायता बिल्कुल बन्द हो गई और सारे देश में अंग्रेज़ी शिक्षा का बोल-बाला हो गया।

लार्ड मेकाले—जिन्होंने भारतीयों को अंग्रेज़ी सिखाने की सिफारिश की थी—पूर्वीय साहित्य पर बहुत कम निष्ठा रखते थे। उनकी मान्यता थी कि यूरोप के अच्छे साहित्य की एक आलमारी हिन्दुस्तान और अरब के सारे साहित्य के बराबर मूल्य रखती है। इसी पृष्ठ-भूमि पर उन्होंने सन् ३३ के चार्टर पर पार्लमैंट में भाषण देते हुए कहा था—"मैं चाहता हूँ कि भारत में यूरोप के सब रीति-रिवाजों को जारी किया जाय, जिससे हम अपनी कला और आचार-शास्त्र, साहित्य और क़ानून का अमर साम्राज्य भारत में क़ायम करें। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हम भारत-वासियों की एक ऐसी श्रेणी उत्पन्न करें जो हमारे और उन करोड़ों के बीच में, जिन पर हमें शासन करना है, दुभाषिए का काम दें। जिनके खून तो हिन्दुस्तानी हों, पर रुचि अंग्रेज़ी हो। संक्षेप में अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे भारतीय तन से भारतीय पर मन से अंग्रेज़ हो जाँय। जिससे अंग्रेजों का विरोध करने की उनकी भावना ही नष्ट हो जाय।"

परन्तु लार्ड मेकाले की यह इच्छा पूरी न हुई। इसका कारण यह था कि भारतीय वाङ्मय के संबन्ध में उनका अज्ञान बहुत था। इधर अंग्रेज़ी पढ़कर हिन्दू-धर्म में जागृति की एक ऐसी लहर उठी कि हिंदुत्त्व का सारा

ही दौर्बल्य उसमें बह गया। एक चमत्कार यह भी था कि अंग्रेज़ी भाषा और अंग्रेजी शासन में सामंजस्य नहीं उत्पन्न हुआ। अंग्रेज़ी भाषा के द्वारा भारतीय नई पीढ़ी के खून में, बेंथम, कारलाईल और मिल के अनेक विचार प्रविष्ट होते गए और उनमें गौरव, बलिदान और वीरता का समावेश होता गया। अंत में राष्ट्रीयता की एक आधारशिला स्थापित हो गई और अंग्रेज़ी पढ़े लिखे ऐसे लोगों का एक दल उत्पन्न हो गया जिस का उद्देश्य सामाजिक था, और जो केवल अपने को ही नहीं, अपने देश और समाज को भी पहचानने की इच्छा रखता था। उस समय समाज और देश के प्रति जो नवींन चेतना जागी—उसी के भीतर से हमारी सारी राजनीतिक सामाजिक और धार्मिक क्रांतियों का जन्म हुआ।

परन्तु इसी बीच यूरोप की नज़र भारत की सांस्कृतिक सम्पदा पर पड़ी। अब तक यूरोप भारत को धनधान्य से भरापुरा, नवाबों और मुग़लों का देश समझता था, और उसकी दृष्टि लूटखसोट में थी। सभ्यता और संस्कृति के उद्‌गम के सम्बन्ध में यूरोप का विश्वास था कि उसका आरम्भ यूनान और फिलस्तीन में हुआ है। वे यह भी समझते थे कि वही देश संसार में सब से प्राचीन सभ्यता वाले हैं। भारत को तब तक यूरोप के लोग एक अर्ध सभ्य देश समझते थे। परन्तु जब यूरोप के निवासियों ने संस्कृत सीखी तो उनका परिचय उपनिषद तथा कुछ जैन और बौद्ध ग्रंथों से हुआ। जिन दिनों प्लासी का युद्ध हो रहा था, उन्हीं दिनों एक फ्रैंच नवयुवक भारत में प्राचीन पाण्डुलिपियाँ यत्न से खोजता फिर रहा था। वह भारत से कोई अस्सी पाण्डुलिपियाँ अपने साथ फ्रांस ले गया। इस युवक का नाम दुपरोन था। इन पाण्डुलिपियों में एक पाण्डुलिपि दाराशिकोह द्वारा फारसी अनुवादित उपनिषदों की भी थी। दुपरोन ने लैटिन में इसका अनुवाद कर के 'औपनिखत' के नाम से प्रकाशित किया। जिसे पढ़ कर जर्मन का प्रसिद्ध दार्शनिक शोपनहार आश्चर्य विमूढ़ हो गया और उसके मुंह से यह उद्‌गार निकले कि इसने मेरी आत्मा की गहराई को हिलकोर दिया है। इसके प्रत्येक शब्द से मौलिक विचार

ऊपर उठते हैं जिस से भारतीय विचारधारा का वातावरण आप ही उठ खड़ा होता है। ऐसा प्रतीत होता है–मानो ये विचार हमारे अपने आत्मिक बंधु के विचार हों। हमारे मनों पर जो यहूदी संस्कारों की रूढ़ियाँ और अंधविश्वास छाए हुए हैं। वे इन विचारों के स्पर्शमात्र से एक बारगी ही गायब हो जाते हैं। सारे संसार में इसके जोड़ का कोई और ग्रंथ नहीं हो सकता। जीवन भर में मुझे यही एक आश्वासन प्राप्त हुआ है और मृत्यु-पर्यन्त यह मेरे साथ रहेगा।

जर्मनी में उपनिषदों के अध्ययन से विचारों का जागरण उसी प्रकार हुआ जैसे रिनासा के समय में प्राचीन यूनानी साहित्य के सम्पर्क से सारे यूरोप में हुआ था। इसके बाद जोहान फिक्टे और पाल दूसान ने वेदांत के सत्य को संसार का सब से बड़ा सत्य माना, और जब नीत्से ने मनु-स्मृति को पढ़ा तो उसने उसे बाईबिल से कई गुना श्रेष्ठ कहा।

इसी समय वारेन हेस्टिंग्स के मन में यह विचार आया कि न्याय के क्षेत्र में हिन्दुओं पर शासन उन्हीं के धर्मशास्त्रों के अनुसार किया जाना चाहिए। इसके लिए उसने पहले धर्मशास्त्रों का अनुवाद फारसी भाषा में और अंग्रेज़ी में कराया। इसके अतिरिक्त विलायत से आए हुए जजों और वकीलों को उसने संस्कृत पढ़ने को प्रेरित किया। उन्होंने यद्यपि कचहरी की आवश्यकता के लिए संस्कृत पढ़ी, पर जब उन्होंने वहाँ का भाव गाम्भीर्य और विचारों का मार्दव देखा तो वे एक बारगी ही अभिभूत हो उठे। इसके बाद सन् १७८४ में सर विलियम जोन्स ने, जो उन दिनों कलकत्ते के प्रधान न्यायाधीश थे, एशियाटिक सोसाइटी की स्थापना की, तथा स्वयं कालीदास की शकुन्तला का अनुवाद किया और ऋतुसंहार का एक सम्पादित संस्करण प्रकाशित कराया।

इसके एक बरस बाद सर चार्ल्स विलिकिन्स ने भगवद्गीता का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया। सर जोन्स संस्कृत पर मुग्ध हो गए। उन्होंने सन् ८४ में मानव धर्मशास्त्र नाम से मनुस्मृति का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रकाशित किया। और जब सन् १७८६ में एशियाटिक सोसाइटी का

अधिवेशन हुआ तो यह घोषणा कर दी कि संस्कृत परम अद्भुत भाषा है, और वह लैटिन और ग्रीक से अधिक सम्पन्न है। उन्होंने यह भी विचार प्रकट किया कि गोथिक और केल्टिक भाषा परिवार का उद्गम संस्कृत ही है। आगे इसी बुनियाद पर फ्रांजवाय, मैक्समूलर और ग्रिम ने तुलनात्मक भाषा विज्ञान का महल खड़ा किया। इस के तत्काल बाद यूरोप के पण्डितों ने निरुक्त और व्याकरण का मनन किया और फोनेटिक्स लिखना आरम्भ किया।

विलियम जोन्स की मृत्यु के बाद उनके कनिष्ट सहकारी हेनरी टामस कोलब्रुक एक महान प्राच्य विद्या विशारद प्रसिद्ध हुए। इन्होंने हिन्दू-धर्म-शास्त्र, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष और धर्म का बड़ा ही मार्मिक अध्ययन एशियाटिक रिसर्चेज में प्रकाशित किया। वेदों का भी एक प्रामाणिक विवरण 'आन-द-वेदाज' सब से प्रथम उन्होंने निकाला। इसी समय एक अद्भुत घटना ने यूरोप में एक नई सांस्कृतिक लहर उत्पन्न कर दी। यह घटना उस समय घटी जब लार्ड वेल्जली भारत में सबसीडियरी सिस्टम के जाल में भारतीय नरेशों को फांस रहा था, और पेशवा वसीन की संधि पर हस्ताक्षर कर रहा था। यूरोप में नैपोलियन का डंका बज रहा था, और वह भारत की विजय कामना से मिस्र तक आ पहुँचा था। उन दिनों ईस्ट इण्डिया कम्पनी का एक कर्मचारी अलेक्जैण्डर हैमिल्टन पेरिस में ठहरा हुआ था, उसे नैपोलियन ने कैद कर लिया। यह आदमी संस्कृत का पण्डित था। उसने जेल में लोगों को संस्कृत पढ़ाना आरम्भ कर दिया। उस समय जेल में चेज़ी नामक एक फ्राँसीसी व्यक्ति था जो थोड़ी संस्कृत जानता था वह हेमिलटन से मिला और अपने संस्कृत ज्ञान को उसने बढ़ाया। बाद में श्लीगल बन्धुओं ने इन दोनों से संस्कृत पढ़ी। एक और फ्रांसीसी विद्वान यूजीनवर्नाफ़ भी संस्कृत पढ़ने लगे। इस प्रकार फ्रांस के इस जेलखाने में संस्कृत की एक अच्छी खासी पाठशाला खुल गई। यूजीनवर्नाफ जेल से बाहर आकर फ्रांस में संस्कृत के अध्यापक बन गए वर्नाफ़ ने रुडल्फ़राथ और मैक्समूलर को अपना शिष्य बनाया। मैक्समूलर

जर्मन था। उसने सायण के भाष्य पर महत्त्वपूर्ण अध्ययन किया और उसके बाद वेदों पर उसने भाष्य किया, जिसने यूरोप-भर की आँखें खोल दीं। वेद भाष्य से बढ़ कर एक काम उसने यह किया कि तुलनात्मक भाषा विज्ञान और तुलनात्मक अध्ययन की परम्परा स्थापित की। इसका परिणाम यह हुआ कि यूरोप के मोहान्धकार का पर्दा फट गया। अब तक वे जो यह मानते आ रहे थे, कि फिलिस्तीन और यूनान सब से पुराना देश है, और हिब्रू भाषा सब से पुरानी भाषा है, तथा बाइबिल का यह कथन भी—कि सृष्टि केवल चार हजार बरस पुरानी है, ये सब मान्यताएँ बिखर गईं। मैक्समूलर ने प्रमाणित कर दिया कि संसार की प्राचीनतम जाति आर्य है, और प्राचीनतम साहित्य वेद है। इस प्रकार जर्मन विद्वानों ने भारतीय साहित्य, दर्शन और धर्म का जो बखान किया, उसने ईसाइयों के उस प्रचार को भी मिथ्या कर दिया जो वे भारत से बाहर करते थे कि भारत अर्द्ध शिक्षित देश है। अब यह ज्ञान सम्पदा पाकर अंग्रेज इस बात पर गौरव अनुभव करने लगे कि सभ्यता का केन्द्र भारत उनके साम्राज्य के अन्तर्गत है। श्लीगल बंधुओं ने जर्मन भाषा के द्वारा यूरोप में भारतीय ज्ञान का काफी विस्तार किया। वेद, उपनिषद, भगवद्गीता मनुस्मृति, शकुन्तला और वेणी संहार को देखकर जर्मन कवि और विद्वान् विस्मय से मूढ़ मुग्ध हो गए। इस साहित्य के भाव और विचार नए क्षितिज के थे। श्लीगल ने गीता की प्रशंसा पागलों की भाँति की। और कहा—ओ ईश्वरत्त्व के व्याख्याता, तुम्हारी वाणी के प्रभाव से मनुष्य का हृदय ऐसे अकथनीय आनन्द की भूमि में पहुंच जाता है—जो अत्यन्त उच्च-सनातन और ईश्वरीय है। मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ और तुम्हारे चरणों में अपना अभिनन्दन भेंट करता हूँ।" भारतीय काव्यों की विलक्षणता पर सकर्ट ने प्रकाश डाला। गेटे ने शकुन्तला की प्रशस्ति लिखी। गेटे आदि ने संस्कृत परम्पराओं को अपनाया। और श्लीगल से हाइने तक जर्मन कविता में भारतीय भाव फैलते ही रहे।

इस प्रकार भारत की गौरवगाथा यूरोप में बढ़ती देख अंग्रेज

चौकन्ने हो गए। वे नहीं चाहते थे कि यूरोप में भारत की प्रशंसा हो, तथा यूरोप के लोग भारतीय भावों को ग्रहण करें। वे भारत में अपना राज्य चलाना चाहते थे। खासकर बोर्ड आफ डाइरेक्टर्स यह नहीं चाहता था कि इंगलैंड वाले भी यह जान जाँय कि भारत एक महान् देश है। उधर कारलाइल पर जर्मनी के माध्यम से वेदान्त का प्रभाव पड़ने लगा। शैली और वर्डसवर्थ भी इसी भाँति भारतीय दर्शन से अभिभूत हो रहे थे। अमेरिका तक भारतीय भाव सौष्ठव पहुंच चुका था और एमर्सन तथा थरो की रचनाएँ भारतीय भाव से प्रभावित होने लगीं थीं। उनकी वाणी से 'ब्रह्म' और 'गंगा' का प्रवाह प्रकट हो रहा था। इन्हीं दिनों पूना के डेकन कालेज के प्रिंसिपल सर डेविड आर्नाल्ड,'लाइट आफ एशिया' में बुद्ध मूर्ति की प्रतिष्ठा कर रहे थे, उधर इंगलैंड में इसकी प्रतिक्रिया हो रही थी। आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के अध्यापक होरेस हेमन विलसन ने एक पुस्तक लिखी—"हिन्दुओं की धार्मिक और दार्शनिक पद्धति" इस पुस्तक का उद्देश्य जान मूर के दो सौ पाउण्ड का पारितोषिक पाना था। इसमें विलसन के कुछ व्याख्यान थे जो छात्रों की सहायता के निमित्त लिखे गए थे। जिस पारितोषिक की प्राप्ति के लिए ये लिखे गए थे, उनका उद्देश्य था, हिन्दू धार्मिक पद्धति का अति श्रेष्ठ खण्डन। इसी समय राथ ने एक पुस्तक लिख कर निरुक्त का महत्त्व कम करने की चेष्टा की। मैक्समूलर यद्यपि जर्मन था, पर वह ब्रिटिश राज्य का एक स्तम्भ था। जब फ्रेंच न्यायाधीश लुई जैकालिट ने भारत की प्रशंसा की तो मैक्समूलर ने उसका खण्डन किया। अपने वेदभाष्य के संबन्ध में उसने लिखा था कि—"मेरा यह भाष्य भारत के भाग्य पर दूर तक प्रभाव डालेगा। यह उनके धर्म का मूल है और मैं अनुभव करता हूँ कि उन्हें यह दिखाना कि यह मूल कैसा है, गत तीन हज़ार वर्षों में उससे उपजने वाली सब बातों को उखाड़ फेंकने का एकमात्र उपाय है।" जब हम्बोर्ट ने गीता की प्रशंसा की तो अध्यापक वैवर ने उसके विरोध में लिखा कि गीता और महाभारत पर बाइबिल का प्रभाव है। बाद में जब वैवर और

ह्विलिंग ने संस्कृत कोष बनाया तो गोल्डस्कर ने उनका भण्डा-फोड़ करते हुए कहा—कि राथ, वैवर, ह्विटलिंग, कूहन आदि लेखक किसी खास गूढ़ उद्देश्य से इस बात के लिए कृत-संकल्प हैं कि प्राचीन भारत का गौरव नष्ट किया जाय।

जब भारत में अंग्रेज़ी विश्वविद्यालय खोले गए तो उनमें नियुक्त हो कर अंग्रेज़ और जर्मन अध्यापक और महोपाध्याय भारत में आने लगे। विद्यार्थी उनका मान और आदर करते। उनकी बताई विद्या को वास्तविक समझते। जो कोई भारतीय ढंग की बात करता, उसे तर्क विरुद्ध, विद्या विरुद्ध, इतिहास विरुद्ध, बुद्धि विरुद्ध, प्रमाण शून्य कहानी अथवा मिथ्या कथा कह कर उनका उपहास किया जाने लगा। ये शब्द विदेशी लेखकों और अध्यापकों ने इतनी अधिकता से प्रयोग किए कि भारतीय अध्यापकों और छात्रों के लिए वे परिभाषा बन गए। अब अंग्रेज़ शासकों ने और एक पग बढ़ाया। विश्वविद्यालयों के अनेक परिक्षोत्तीर्ण श्रेष्ठ विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ दी गईं कि वे विदेश जाकर संस्कृति, इतिहास, समाज शास्त्र, अर्थ शास्त्र, दर्शन शास्त्र, और धर्मशास्त्र की शिक्षा ग्रहण करें। ये छात्रवृत्ति पाने वाले छात्र जब विदेश से भारत लौटे तो पूरे विदेशी भावों से भरे हुए थे। अंग्रेज़ और जर्मन लोगों की भाँति ये लोग भी कहने लगे–कि भारतीय इतिहास लेखक वाल्मीकि और व्यास ऐतिहासिक बुद्धि नहीं रखते थे। इस तरह की बात कहने वालों का ब्रिटिश सरकार बहुत आदर करती थी, इस प्रकार पुरानी विद्याओं के प्रति घृणा के भाव इस शिक्षित वर्ग में जड़ पकड़ गए।

वह बड़ा अद्भुत काल था। हिन्दुत्व चारों ओर से रूढ़िवाद और कुरीतियों से जकड़ गया था, और अब अंग्रेज़ी पढ़ कर जो नवयुवक तैयार हो रहे थे। वे मनुष्य-मनुष्य में कोई भेद नहीं मान रहे थे। तीर्थों और मन्दिरों के पीछे कोई आध्यात्मिक भावना है, यह वे नहीं समझ पा रहे थे। न वे हिन्दू धर्म के अनुष्ठानों को युक्ति से समझ सकते थे। एक तरफ बुद्धिवाद का प्रबल प्रवाह—दूसरे उदारता और क्रान्ति की

भावनाओं का उदय, तीसरे अनवरत ईसाइयों—तथा अंग्रेज और जर्मन अध्यापकों द्वारा निरन्तर हिन्दू धर्म, संस्कृति और विद्या की निन्दा, इन सब ने मिल कर चारों ओर से हिन्दू धर्म और समाज पर तीव्र आक्रमण कर दिया था जिस का जवाब देने वाला कोई न था। हिन्दू धर्म के नेता इस समय वे ब्राह्मण और पुजारी थे जो स्वार्थ, घमण्ड, रूढ़िवाद और अन्धविश्बास के केन्द्र थे।

अब अंग्रेज़ी विद्यालयों से निकला हुआ स्नातक बड़ी ही निर्ममता के साथ उसी तरह हिंदुत्व की निन्दा करने लगा—जैसे ईसाई मिशनरी करते थे। ये युवक मूर्तिपूजा के विरोध से धर्म क्रान्ति कर रहे थे। अपने पूर्वजों के धार्मिक और नैतिक मामलों पर उनकी कोई श्रद्धा न रह गई थी। घर-घर यह विवाद छिड़ा रहता था कि ईश्वर साकार है या निराकार। मन्दिरों में जाना अन्धविश्वास और मूर्तिपूजा रूढ़िवाद है। जाति-प्रथा और हिन्दू धर्म दूषित है, पुराण की कथाएँ कपोल कल्पित हैं। यज्ञोपवीत, चंदन, कण्ठी, माला और चोटी रखना व्यर्थ है। ये तो थीं—आम धारणाएँ। कुछ अग्रगामी तरुण शराब पीने और मांस भी खाने लगे। वे हर तरह अपने बन्धु-बांधवों को यह दिखाना चाहते थे—कि वे उन स श्रेष्ठ हैं और पृथक् हैं। बहुत से तरुण तो अपने बाप-दादों को चिढ़ाने के लिए मन्दिरों में गौ-माँस या गाय की हड्डी डाल देते थे। ऐसे अग्रगामी पुरुष सप्रमाण यह कहते थे कि हिन्दुत्व—प्राचीन और नवीन, वैदिक और पौराणिक, साकारवादी और निराकारवादी; सभी व्यर्थ है, मिथ्या है। पाठ्यक्रम में हिन्दू धर्म की तो कोई शिक्षा होती ही न थी—मिशनरियों के स्कूल-कालेज में ईसाई पंथ की शिक्षा दी जाती थी। संस्कृत भाषा प्रायः कोई पढ़ता ही न था—पढ़ता भी था तो काव्य-नाटक। इन दिनों यूरोप में भी धर्म का छीछालेदर हो रही थी। धार्मिक यन्त्रणा गृहों और यन्त्रणाओं ने लोगों को धर्म निरपेक्ष कर दिया था। इसका परिणाम भारतीय नवशिक्षित तरुण पर यह हुआ कि वे धर्म शून्य हो गए। अब वे किसी भी समाज के सदस्य न थे।

विचारों में अवश्य अंग्रेज थे। अब वे घर में विदेशी और अपने गाँव में बहिष्कृत थे इन्हें देख कर ईसाई कहने लगे थे--कि अब भारतवासियों को खिस्तान बनाने में किसी विशेष आयोजन की आवश्यकता नहीं है, वास्तव में वे हिन्दुत्व के ईसाई मिशनरियों से भी अधिक शत्रु थे। ये लोग अब सामाजिक सुविधा के लिए धर्म परिवर्तन करने में भी न हिचकते थे। ऐसे धर्म परिवर्तन करने वालों में माइकेल मधुसूदन प्रमुख थे। खास कर यूरोपियन प्रेम के नाटक कहानियाँ पढ़ कर हिन्दू युवकों से हिन्दुत्व के अवरोध में न रहा गया। वे ईसाई होने लगे। मस्तिष्क में स्वतन्त्र विचारों का तूफान, हृदय में यौवन की रंगीन उमंगें, परन्तु पर्दे और जाति के बंधन की बाधाएँ? उन्होंने बंधन की सब बाधाओं को दूर कर क्रिश्चियन बन कर अपनी एक नई जाति स्थापित करनी आरम्भ कर दी। इधर यह हो रहा था—उधर समाज में भ्रूण हत्याएँ चल रही थीं, बालिकाओं का वध होता था, सती पर निर्मम अधर्म होता था, छूआछूत का बोलबाला था, विधवा विवाह नहीं हो सकता था। शूद्र और स्त्रियों को मानवीय अधिकार प्राप्त न थे। लोग छिप कर नीच स्त्रियों से व्यभिचार करते थे। तीर्थ व्यभिचार के अड्डे बने हुए थे। महंतों के घर पापाचार के गढ़ थे, पुजारी-पण्डे लालची, स्वार्थी और दुराचारी थे। स्त्रियों का व्यापार होता था। गुलाम खरीदे-बेचे जाते थे। नर-बलि भी होती थी। लोग समझते थे—ये बातें रोकी नहीं जा सकतीं। रोकने से अधर्म होता है। जो लोग यूरोप घूम आते थे, वे लौटने के बाद अपने माता-पिता को प्रणाम करते शर्माते थे। जो मेम को ब्याह लाते थे—वे पृथक् घर बसाकर रहते थे। यही वह समय था जब राजा राममोहनराय ने ब्रह्म समाज के घेरे में समग्र नई पीढ़ी के उदग्र हिन्दुओं को लपेट लिया।

: २० :

शुभ-विवाह

राजा राममोहन राय के अनुरोध से शुभदा ने अपने ससुर राधा

मोहन मजुमदार से मुलाक़ात की। सम्मुख आने पर उसने पर्दा घूंघट नहीं किया, परंतु गले में आँचल डाल कर स्वसुर को प्रणाम किया। बातचीत के दौरान में उसने फादर जानसन को भी सम्मिलित किया। और अब ये चारों आदमी दिल खोल कर बातें करने लगे।

राधामोहन ने कहा—"बेटी, तुझे यहाँ प्रसन्न और स्वस्थ देख कर मैं बहुत खुश हूँ। मुझे जाति वालों ने जो प्रताड़ित किया और मेरा अपमान किया, वह अब तुझे देख कर मुझे खल नहीं रहा है। पर मैं चाहता हूँ तू कि मेरे साथ रह और पुत्र की कमी को पूरी कर।"

शुभदा ने कहा—'आप मेरे पिता हैं, पूज्य हैं, मेरे लिए आप ही का घर संसार में था, परंतु मेरे साथ जो घटनाएं घट चुकी और मैं जहाँ पहुँच चुकी वहाँ से लौट कर आप की चरण-शरण में जाना, न आपके लिए श्रेयस्कर होगा न मेरे लिए।"

"मैं तो तुझे अपनी वही पुत्र-वधू समझता हूँ"

"वही तो हूँ। बदल कैसे जाऊँगी।"

"यह तो मैंने तभी देख लिया जब तूने गले में आँचल डाल कर मेरी चरण रज ली। पर मैंने सुना कि तू एक अंग्रेज तरुण से ब्याह कर रही है?"

"दूसरी कोई राह नहीं है। परंतु मेरी आत्मा हिंदू है। संस्कार हिंदू हैं। फिर मैं भारतीय भी तो हूँ। आचार मेरे हिंदू हैं। विचार से हिंदू नहीं हूँ, क्योंकि हिंदू धर्म में एक दोष है कि वह सदा सोया रहता है और जब उस पर वज्र प्रहार होता है तब जागता है। इसी से आप उस समय मुझ अबोध को जीवित जला देने में सहमत हो गए थे, परंतु अब आप इतने उदार बन गए हैं।"

"बेटी, यह मेरा नहीं, हिंदू धर्म का दोष है।"

"वही मैं भी कहती हूँ, जहाँ शून्य होता है, वहीं अवांच्छित वस्तुएँ अपना राह बनाती हैं।"

"बेटी, तू मुझे एक बात सच-सच बता।"

"पूछिए।"

"क्या तूने ईसाई धर्म पर विश्वास कर के धर्म परिवर्तन करने का निर्णय किया है ?"

"नहीं, तनिक भी नहीं। मेरा धर्म परिवर्तन तो शुद्ध सामाजिक आवश्यकता पर आधारित है, विश्वास तो मेरा हिंदुत्व पर ही है।"

"यह कैसी बात है बेटी ?"

"स्पष्ट है कि मैं कोई धर्मात्मा स्त्री नहीं हूँ। संसारी स्त्री मात्र हूँ। संसार में रहने के लिए मुझे ईसाई समाज को, ग्रहण करना पड़ा, क्योंकि दूसरा उपाय न था। पर हिंदूसंस्कार, आत्म-त्याग तो मेरे रक्त बिन्दुओं में है।"

"क्या तेरी ये बातें फादर जानते हैं ?"

"ये बैठे तो हैं। मैं तो इन्हीं के सामने कह रही हूँ। इस तरह बोलने का साहस और ज्ञान तो फादर ही का दिया हुआ है मुझे।"

पादरी जानसन ने कहा—"शुभदा ठीक कहती है मजुमदार साहब, मैं तो यह समझता हूँ कि धर्म विश्वास के लिए आवश्यकता से अधिक आग्रह करना ठीक नहीं है। इसके अतिरिक्त मैं यह भी देखता रहा हूँ कि यहाँ की जनता का विश्वास हमें प्राप्त नहीं है। सोचने की बात है कि भारत में ईसाइयत का प्रचार लगातार सन् १५०० से होता आया है परंतु सफलता हमें बहुत कम मिली है। मैं तो यह कह सकता हूँ कि भारत में ईसाइयत को फैलाने की राह ही नहीं मिल रही है। साठ साल से हम लोग प्रचार कर रहे हैं, परंतु उच्च हिंदुओं पर हमारा प्रभाव नहीं के बराबर है। गत तीस वर्षों में हमने कुल तीन सौ लोगों का धर्म परिवर्तन किया है। जिनमें दो सौ केवल अछूत हैं। भारत में वे ही लोग धर्म परिवर्तन करने को राजी होते हैं जो समाज में अनादृत और त्रस्त हैं। हक़ीकत तो यह है हिंदुओं का धर्म परिवर्तन आसान काम नहीं है। हिंदुओं में प्रचलित किसी भी रिवाज़ को छूते ही सारी जनता विरोध में खड़ी हो

जाती है। वास्तव में धर्म के क्षेत्र में हिंदू अब भी अपने को संसार का गुरु मानते हैं।"

राजा राममोहन राय अब तक गम्भीरतापूर्वक सब बातें सुन रहे थे। अब उन्होंने कहा—परंतु सन् १३ के बाद, जब से धर्म प्रचारकों पर से प्रतिबंध उठा है, सारा उत्तरी भारत ईसाइयत के प्रहारों से आहत हो रहा है। केरी डफ और विलसन के नेतृत्व में सारा ईसाई धर्म प्रचारक संघ हिंदू समाज पर टूट पड़ा है और अब उनका लक्ष्य उच्च वर्गीय हिंदू ही हैं। कलकत्ते का विशप कालेज, डफ कालेज और त्रिचनापल्ली का विलसन और एस० पी० जी० कालेज अब शिक्षा के माध्यम से ईसाई धर्म का प्रचार कर रहे हैं, और यदि मैं भूल नहीं कर रहा हूँ तो इस समय समूचे भारत में देशी ईसाइयों की संख्या दो लाख तो अवश्य होगी। अभी उस दिन डाक्टर डफ ने गर्व पूर्वक कहा था—"जिस-जिस दिशा में पाश्चात्य शिक्षा प्रगति करेगी, उस-उस दिशा में हिंदुत्त्व के कई अंग टूटते जाएँगे और अंत में आकर ऐसा होगा कि हिंदुत्त्व का कोई अंग भी साबुत न रहेगा।" उनके भाषण से प्रभावित होकर लार्ड साफ्टसबरी ने यहाँ तक कह डाला कि जो भी हिंदू ईसाई परमात्मा का ध्यान करेगा, वह ब्रह्मा-विष्णु को खुद भूल जायगा।"

शुभदा ने कहा—"यही तो बात हैं राय महाशय, क्या किया जाय। प्रहार हो रहे हैं, पर हिंदुत्त्व की नीद नहीं टूटती, इसी से ईसाई धर्म प्रचारकों के मनसूबे बढ़ रहे हैं।"

"निस्संदेह शुभदा देवी। हक़ीकत तो यह है कि अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रवाह में हिंदू युवक सभी दिशाओं से मुड़ कर केवल पच्छिम की ओर देखने लगे हैं। उन्होंने जो दृष्टि प्राप्ति की है उससे पूरब के संसार में उन्हें केवल दोष ही दोष दिखाई देने लगे हैं।"

"परंतु मैं जानती हूँ कि उनके भीतर धार्मिकता के कोई चिन्ह नहीं हैं। जिन्होंने धर्म परिवर्तन किया है वे सांसारिक कारणों से क्रिश्चियन हुए हैं। परंतु भारत में सदा से धर्म के साथ एक प्रकार का चरित्रबल

रहा है। वह न इन नए विचारों के तरुणों में हैं, न नव ईसाइयों में। इसी से भारतीय जनता में उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है। उल्टे वे घृणा के पात्र बन रहे हैं।"

"तो बेटी, तू अपने को क्यों उस श्रेणी में रखती है। तेरे ज्ञान के नेत्र खुले हुए हैं, तू अब अपने घर चल कर रह।" मजुमदार ने कहा।

"रह नहीं सकती पिता जी, कारण बता चुकी हूँ। इसके अतिरिक्त कुछ और भी बातें हैं।" इतना कह कर उसने फादर जानसन की ओर देखा. फिर आँखें नीची कर लीं।

पादरी जानसन ने कहा—"इसी सप्ताह शुभदा देवी का शुभविवाह कर्नल मेकडानल्ड से हो रहा है, मजुमदार महाशय। शुभदा देवी यही कहना चाहती हैं।

"क्या यह विवाह शुभदा अपनी इच्छा से कर रही है?" मजुमदार ने पूछा।

इस पर शुभदा ने कहा—"जी हाँ, परंतु कदाचित् आपको बुरा लगे।"

"नहीं, मैं तो केवल यह कामना करता हूँ कि मेरी बेटी अपने जीवन में सुखी हो। अब तो मेरा इसका पुराना नाता टूट चुका। अब नए नाते से यह मेरी बेटी है।"

"तो पिता जी, आप यदि ऐसी भावना रखते हैं, तो अपने हाथ से ही अपनी पुत्री को सत्पात्र को दीजिए।"

"यह तो विडम्बना की बात होगी। क्योंकि मैं तुम्हारे भावी पति को जानता तक नहीं। फिर भी मैं तुम्हारी किसी इच्छा में बाधक नहीं होऊँगा। पर तुम्हें मेरी एक बात रखनी होगी।"

"कहिए।"

"यह स्वीकार करो। मेरा दानपत्र है। मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति की तुम्हीं उत्तराधिकारिणी हो। विवाह तुम्हारा शुभ हो। ये पाँच लाख रुपए मैं तुम्हें देता हूँ। अब मैं राय महाशय के साथ ब्रह्म उपासना में शेष जीवन व्यतीत करूँगा।"

"आप का यह अनुदान ग्रहण करने में मुझे संकोच हो रहा है। मैं गृहत्यागिनी हूँ।"

"तो इससे क्या ? हो तो मेरी बेटी। मैं तुम्हारे ब्याह में अवश्य उपस्थित होता, परन्तु अभी इतना साहस मुझ में नहीं है।"

"क्या आप एक बार मेरे भावी पति से मिलना पसंद करेंगे ?"

"न, न, उसकी आवश्यकता ही अब नहीं है। मैं केवल तुम्हें आशीर्वाद दूंगा।"

"तो मैं उनसे पूछ कर आप का यह अनुदान ग्रहण करूँगी।"

"नहीं, यह तुम्हें अभी, इसी समय ग्रहण करना होगा। इतना साहस और आत्म निर्भरता तुम में होनी चाहिए।"

"क्या यह रक़म मैं धर्म प्रचार में खर्च कर सकती हूँ ?"

"नहीं। मैंने तुम्हारे मुंह से सुनने के बाद यह निर्णय किया है कि तुम्हारा धर्म से कोई सीधा सरोकार नहीं है।"

"तो फिर इस धन का मैं क्या करूंगी ?"

"अपने जीवन को सुखी और मन को सन्तुष्ट करने के लिए जो चाहे वही करना।"

"और यदि मैं वह धन न लूं ?"

"तो मैं इसे रायमहोदय को दे दूंगा।"

"यह अधिक अच्छा है। राय महाशय इस धन से देश की मानसिक दरिद्रता दूर कर सकेंगे।"

"बेटी, तुम बड़ी महान् हो, बड़ी उदार हो। इस धन की स्वामिनी तुम्हीं हो। अपने हाथ से जिसे चाहे दे सकती हो।"

शुभदा ने वह दानपत्र राय महोदय के हाथ में दे कर कहा—"विवाह से प्रथम ही इसकी लिखा-पढ़ी करा लीजिए राय महाशय, और विवाह में आप ही मेरे पिता का स्थान ग्रहण कीजिए तथा मेरा विवाह हिन्दू रीति पर ही कीजिए।"

"बड़ी ही खुशी से शुभदा देवी, मैं तुम्हारा यह अनुदान और अनुरोध

स्वीकार करूँगा। पर एक कठिनाई है। हिन्दू रीति से तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता। क्योंकि तुम कुलीन ब्राह्मण कन्या हो। परिणीता और विधवा हो, धर्मशास्त्र की रीति से तुम्हारा विवाह नहीं हो सकता।"

"मैंने इस बात पर विचार किया है। मेरा गांधर्व रीति से विवाह हो सकता है। मेरे पास प्रमाण हैं। प्राचीनकाल में ऐसे विवाह सम्पन्न हुए थे, जिन में न जाति-पाति का विघ्न था, न विधवा की रोक-टोक।"

"शास्त्रीय बंधन और रोक-टोक हो तो भी मैं तो इसकी परवाह नहीं करता। पर तुम यदि ब्रह्म समाज की रीति अपनाओ तो अधिक उत्तम है। हम लोग भी वेद-मंत्रों का उच्चारण करते हैं। हाँ, जाति से ब्राह्मण नहीं मानते।"

"तो यही सही। आप मेरे पिता, अभिभावक और पुरोहित सब कुछ बन जाइए।"

"मैं स्वीकार करता हूँ, परन्तु क्या फादर और कर्नल मेकडानल्ड इसे पसंद करेंगे?"

फादर जानसन ने कहा—"मुझे कोई आपत्ति नहीं है। शुभदा जैसी बेटी पर मैं कोई विचार बलात् नहीं लादना चाहता। उसमें हिन्दू-धर्म और ईसाई धर्म के तत्त्व का समझने की पूरी सामर्थ्य है। वह अपने लिए जैसा ठीक समझे वही कर सकती है।"

"किन्तु कर्नल मैकडानल्ड?"

"मैंने उनसे बात कर ली है। वे मेरे विचारों की क़द्र करते हैं। वह उदार पुरुष हैं। बस हमारे बीच में यह तय हुआ हैं कि हमारे जो बच्चे होंगे वे क्रिश्चियन होंगे। मैंने यह बात स्वीकार कर ली है।"

"अच्छी बात है। मैं तुम्हारा अभिभावक और पुरोहित बनाना स्वीकार करता हूँ सुखदा देवी।"

"तो इसी सप्ताह रविवार को, मेरे ही मकान पर यह शुभ कार्य होगा राय महोदय, मैं आप को आमंत्रित करता हूँ।"

और यथा समय शुभदा देवी का विवाह अत्यन्त सादगी के साथ

सम्पन्न हो गया। विवाहकाल में शुभदा ने भारतीय वधू का वेश धारण किया। कर्नल अपनी पूरी वर्दी में थे, बहुत से अंग्रेज़ अफ़सर तथा कुछ भारतीय मित्र इस महत्त्वपूर्ण विवाह में सम्मिलित हुए।

: २१ :

उथल-पुथल

इस बीच बहुत सा पानी बह गया। दिल्ली का बादशाह जो कभी समस्त भारत के ख़ज़ानों का स्वामी समझा जाता था, अब अपने हज़ारों कुटुम्बियों, आश्रितों, परिजनों और सेवकों का पालन भी नहीं कर सकता था। लाल क़िले की चहार दीवारी तक उसकी बादशाहत सीमित थी। अंग्रेज़ों ने वे सब आदाब, अलक़ाब, नज़रें और दर्बारी अदब क़ायदे, जो शाही प्रतिष्ठा के चले आते थे, बन्द कर दिए थे। वे अब बादशाही पद को तोड़ने की जुगत में थ। बेचारा अकबर शाह बादशाह अपने खर्चे की रक़म कम्पनी बहादुर से बढ़वाने के लिए हाथ पैर मारते-मारते ही मर गया। उसने राजा राममोहन राय को अपना एलची बना कर लण्डन भेजा। पर बेकार। उनकी किसी ने नहीं सुनी। उनका वहीं देहान्त हो गया। अन्ततः बेचारा बादशाह भी अपनी हज़ारों आरज़ुओं को संग लेकर क़ब्र में जा सोया। उसके बाद उसके उत्तराधिकारी बहादुरशाह ज़फर ने डगमग मुग़ल तख्त पर अपने कांपते हुए कदम रखे। कैसा विचित्र संयोग था यह, कि जिस समय बहादुरशाह ज़फर दिल्ली में मुग़ल तख्त पर चढ़ रहे थे, उसी समय इगलैंड की रानी विक्टोरिया इगलैंड के सिंहासन पर आ बैठी। दोनों ही की आयु लगभग समान ही थी, परन्तु बादशाह तख्त पर आए थे, अपने बाप दादों का भारत साम्राज्य खोने के लिए, और रानी विक्टोरिया आई थी, उसका उत्तराधिकार सम्हालने के लिए।

इसी समय पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह का देहान्त हो गया। अंग्रेज़ों की एक बड़ी सिरदर्दी खत्म हो गई। रणजीतसिंह एक प्रकृत वीर पुरुष था। उसने अपने भुजबल से जो सिख साम्राज्य स्थापित किया

था। उसकी उत्तर और ईशानकोण की छोर तिब्बत और हिन्दुकुश की सीमाओं को छू रही थी। नैऋत्यकोण की ओर उस्मान खेल, खैबर तथा सुलेमान पर्वत तक उसका अंचल फैल चुका था। मिठनकोट से अमरकोट तक सिख साम्राज्य की सीमाएँ सिंधुनद के तीर पर छा रहीं थीं। अग्नि-कोण की ओर सतलज ने एक रेखा बनाई थी, पर सतलज के इस पार भी पैंतालीस गांव सिख साम्राज्य के आधिपत्य में थे। आज का काश्मीर और गिलगित प्रदेश भी महाराज रणजीतसिंह के साम्राज्य के अन्तर्गत था। आश्चर्य की बात है कि रणजीतसिंह की मृत्यु के पीछे यह साम्राज्य ही पंजाब की स्वाधीनता को मटियामेट करने का कारण बना।

रणजीतसिंह कहा करता था कि मेरे पीछे मेरी जूती भी दस बरस राज करेगी। युद्ध और शासन दोनों में उसकी नैसर्गिक सत्ता थी। वह यद्यपि हैदरअली और शिवाजी के समान ही अपढ़ और रण पण्डित था, परंतु उसमें शिवाजी की दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता न थी। न हैदरअली जैसा प्रचण्ड साहस ही उस में था। वह यद्यपि भाग्यशाली योद्धा, चतुर और संगठन कर्ता व्यक्ति था, पर तत्कालीन दुर्गुण जो उन दिनों यूरोप और भारत-सर्वत्र राजवर्गियों के गुण बने हुए थे, उसमें भी थे। वह बड़ा भारी पियक्कड़ था। इसके अतिरिक्त वह अफीम भी बहुत खाता था।

एक ओर युद्ध का कठोर जीवन दूसरी ओर ये दुर्व्यसन और इनसे सलग्न अतिशय स्त्री संसर्ग, इन सब ने उसे उसके अंतिम दिनों में ऐसा जर्जर बना दिया था, कि सन् १८३८ में जब उसे फीरोजपुर में अंग्रेजों ने देखा तो वे यह न समझ सके कि यही पुरुष विशाल सिख साम्राज्य का प्रतिष्ठाता और अजेय योद्धा है। अगले ही वर्ष वह पक्षाघात से मर गया। दुर्भाग्य से उसके उत्तराधिकारियों में ऐसा कोई दूरदर्शी और चतुर संगठनकर्ता न था, जो इस विशाल साम्राज्य के भार को ढो सकता।

महाराज रणजीतसिंह ने अपने जीवन काल ही में अपने लड़के खड़गसिंह को राजतिलक करा कर उसे राज्य का उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। साथ ही राजा ध्यानसिंह को नायबुल सुल्तान-ए-उज़मा

खैरख्वाही समीमी दौलते सरकार, वजीर मुअज्जिम, दस्तूरे मुखरंम मुख्तार वा मुदासल महम कुल की उपाधि से विभूषित कर उसे वज़ीरे-आज़म बना दिया था। राजा की बीमारी की खबर चार साल से पंजाब में फैल रही थी। अब उसके मरने से किसी को आश्चर्य नहीं हुआ। ध्यानसिंह ने शवदाह से प्रथम मृत राजा के चरण छू कर प्रतिज्ञा की थी कि वह महाराज खड़गसिंह और उसके लड़के नौनिहालसिंह की सेवा ईमानदारी से करेगा। परन्तु खडगसिंह से उसकी बनी नहीं। खड़गसिंह ने उसे पदच्युत करके चेतसिंह को अपना प्रधान मंत्री बनाया। यह सिख राजा का दुर्भाग्य था।

देखने में रणजीतसिंह का नया राज्य बहुत विशाल था। परन्तु उस की जड़ खोखली थी। रणजीतसिंह न दूरदर्शी था, न उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ ही। न उसके कोई महान् राष्ट्रीय आदर्श ही थे, जिनके सूत्र में पिरो कर राष्ट्र निर्माण किया जाता है। न उसे विश्व की उस प्रगति का कुछ ज्ञान था जिससे जनक्रान्ति हो कर नई सभ्यता जन्म ले रही थी। उसकी सारी विजय उसके व्यक्तिगत शौर्य के परिणाम थे। उसने राज्य शासन चलाने के लिए शिवाजी के अष्ट प्रधानों की भांति नई संस्था बनाई थी। न खालसा जाति में राष्ट्रीय भावना उसने उत्पन्न की। हकीकत तो यह, कि राष्ट्रीयता का मूलतत्त्व अभी एशिया में कहीं उदय ही न हुआ था। इसी का यह परिणाम हुआ कि सिख राज्य का आधार एक दम निर्बल रह गया। दूसरे शब्दों में, महाराज रणजीतसिंह ने सिख राज्य का जो इस्पाती विशाल लोह यन्त्र तैयार किया था—उसके पुर्जो को जोड़ने वाले पेच लकड़ी के थे। जो यंत्र के भार ही से टूटते चले गए। उसने मरते समय अपने विशाल साम्राज्य का भार खड़गसिंह और राजा ध्यानसिंह इन दो ही व्यक्यिों पर डाल दिया। जिन में परस्पर न समता थी, न मेल। पंजाब के रक्त में जो प्रचण्ड तीव्रता थी, उसका नियन्त्रण और उपयोग रणजीतसिंह ने अपूर्व योग्यता से किया था। पर उसकी मृत्यु होते ही शक्तिवान् सिख साम्राज्य अपनी शक्ति के धक्के ही से बिखर

कर चूर-चूर हो गया। १७३९ में रणजीतसिंह की मृत्यु हुई और १८४९ में सिख राज्य समाप्त हो गया। इन दस वर्षों का इतिहास अतिशय लज्जाजनक, अतिशय बर्बरतापूर्ण और अतिशय निन्दनीय था।

खड़गसिंह में राजा बनने की कोई योग्यता न थी। वह दिन में दो बार अफीम की गोली चढ़ाता और दिन भर उसकी पीनक में पड़ा रहता। वह महा आलसी और निर्बुद्धि था। राजनीति में वह कोरा था। साहस उसमें था ही नहीं।

उसने राजा ध्यानसिंह और उसके पुत्र हीरासिंह का दरबार में आना बन्द कर दिया, तथा अपने नए वज़ीर चेतसिंह के हाथ की कठपुतली बन गया। चेतसिंह पक्का चलता पुर्ज़ा, खटपटी और दुश्चरित्र था। वह दुष्ट प्रकृति का आदमी था। परन्तु राजा ध्यानसिंह भी बड़ा कूटनीतिज्ञ व्यक्ति था, उसने खड़गसिंह के पुत्र नौनिहालसिंह और पत्नी चाँद कौर को तथा उन सरदारों को जो खड़गसिंह के दुर्व्यवहार के शिकार थे—मिला कर एक जबर्दस्त विद्रोह का संगठन किया और एकदिन सुबह जब खड़गसिंह अफीम की पीनक में झूम रहा था, वह दल-बल सहित किले में घुस गया। पहरेदारों को मार कर उसने खड़गसिंह को कैद कर लिया। चेतसिंह डर कर छिप गया, उसे शयनागार से निकाल कर ध्यानसिंह ने अपने हाथ से उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। कैद में खड़गसिंह को बहुत अपमानित किया गया और बहुत कष्ट उसे दिए गए। नौनिहाल ने अपने असहाय पिता पर मनमाने अत्याचार होने दिए। अन्तत एक वर्ष जेल-यंत्रणा भोग कर खड़ग सिंह मर गया। उसकी दो रानियाँ तथा दस दासियाँ उसके साथ सती हुईं। अभी उसका शव जल भी न पाया था कि नौनिहाल एक दोस्त के हाथों में हाथ डाल पैदल ही वहाँ से चल दिया। नाले में उसने स्नान किया फिर वह ज्योंही हुज़ूरीबाग के सिंह-द्वार से गुजरा, दीवार उस पर गिर गई। दोनों को सख्त चोट आई। उसका मित्र तो वहीं मर गया, पर नौनिहाल दो घंटे बाद मरा। इस प्रकार केवल एक वर्ष ही राज्य कर के इस अभागे और क्रूर तरुण राजा

का अंत हो गया।

नौनिहाल की मृत्यु के बाद षडयंत्रों और हत्याओं की बाढ़ आ गई। नौनिहाल के मरने पर खड़गसिंह की विधवा चांदकौर रानी ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और अपने ज़बर्दस्त समर्थक बना लिए। राजा ध्यानसिंह जम्मू के पहाड़ों में भाग गया और अपने भाई गुलाब सिंह को रानी के पास छोड़ गया। लाहौर दरबार की इस घटनावली को अंग्रेज़ बड़े व्यग्र होकर देख रहे थे। उनकी लोलुप दृष्टि लाहौर पर थी। जिस रणजीतसिंह से वे डरते थे, वह तो अब मर चुका था। अंग्रेज़ सिखों की वीरता से भी बेखबर न थे। परन्तु उनकी चरित्र-हीनता की दुर्बलता वे जान गए थे। अब वह अवसर आ पहुँचा था जिसकी वे ताक में थे। इस समय लाहौर दरबार में मिस्टर क्लार्क ईस्ट इंडिया कम्पनी के एजेंट थे, जो राजा ध्यानसिंह के गहरे मित्र थे। राजा ध्यानसिंह भी पूरी तौर पर अंग्रेज़ों के दोस्त थे। अब राजा ध्यानसिंह और मि० क्लार्क ने मिल कर यह शिगूफा छोड़ा कि स्वर्गीय महाराज रणजीत सिंह की विधवा रानी ज़िंदा जो राजा की मृत्यु के समय गर्भवती थी। उसने रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद पुत्र प्रसव किया है। जिसका समाचार जान-बूझ कर दरबार के लोगों ने छिपा रखा था। उन्होंने इस बात की सूचना अँग्रेज सरकार को दी और इस गहरी चाल से रणजीत सिंह के पुत्र के रूप में चाँदकौर का एक जबर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी उठ खड़ा हुआ।

परंतु रानी का एक और प्रतिद्वंद्वी था, रणजीतसिंह का दूसरा बेटा शेरसिंह--जो मुकेरिया में बैठा सुअवसर की प्रतीक्षा कर रहा था। अब वह बाज की तरह लाहौर आ पहुँचा। उसने सरदार ज्वाला सिंह को अपना सरदार बनाया और इनाम और लूट में हिस्सा देने का प्रलोभन देकर राज्य की सेना को अपने पक्ष में कर लिया। लाहौर के बाहर 'बुद्धू के आवा' नामक टीले पर हज़ारों सिख सैनिक शेरसिंह के झण्डे के नीचे आ खड़े हुए। इस सेना ने खुल्लम-खुल्ला ज़िंदा रानी के पुत्र दिलीप

सिंह को अवैध बताया और शेरसिंह को पंजाब का राजा घोषित कर दिया। सेना ने किले पर गोले बरसाने और शहर को लूटना आरम्भ कर दिया। लाहौर में अंधेरगर्दी मच गई। इसी बीच राजा ध्यानसिंह काश्मीर से सेना लेकर आ पहुंचा। उसने शेरसिंह का पक्ष लिया। शेर सिंह पंजाब का राजा बन गया और राजा ध्यानसिंह सुरक्षा का बहाना कर लाहौर दरबार का सम्पूर्ण खज़ाना घोड़ों और गाड़ियों में लाद कर काश्मीर ले गया।

परंतु शेरसिंह खड़गसिंह से भी गया गुजरा निकला। वह शराब पीकर शिकार खेलता। राज-काज से उसे कोई सरोकार न था। षड़यंत्र अब और भी बढ़ गए थे। ध्यानसिंह फिर वजीर बन गए थे। राज्य का सब भार अब उन्हीं पर था, पर उन्हें राज्य या प्रजा की अपेक्षा अपनी ही चिंता थी। पहली क़लम उसने अपने प्रतिद्वंद्वी ज्वालासिंह को जंजीरों से बाँध कर जेल में डलवा दिया, जहाँ वह तड़प-तड़प कर मर गया। अब शेरसिंह का दूसरा शिकार थी चाँदकौर रानी। उसने चाँद कौर पर चद्दर डाल कर ब्याह करने की इच्छा प्रकट की—पर उसके इन्कार करने पर उसने उसे दासियों को लालच देकर मरवा डाला। बाद में इसी अपराध में दासियों के नाक-कान और हाथ कटवा लिए। उससे यह भूल हुई कि उनकी जीभ नहीं कटवाई, इससे शेरसिंह की वीभत्स पाप कथा उन्होंने सारे पंजाब में फैला दी।

अब एक विचित्र, क्रूर और विश्वासघात भरे षड़यंत्र का सूत्रपात हुआ। इस समय सारे राज्य में फूट पड़ी थी, और दरबार में दो दल बन गए थे। एक का नेता राजा ध्यानसिंह था, दूसरे के लहनासिंह और अजीतसिंह थे। इन्होंने राजा को विश्वास दिलाया कि ध्यान सिंह बड़ा खतरनाक आदमी है, वह आप को मार डालने की फिक्र में है। इस पर राजा ने उन्हें लिखित आज्ञा दे दी कि वे लोग चाहे जिस भी ढंग पर ध्यान सिंह को मार डालें। उन्हें अपराधी नहीं माना जायगा। राजा से वे लोग यह आज्ञा-पत्र लेकर ध्यानसिंह के पास पहुँचे और वह आज्ञा-पत्र

दिखा कर कहा, कि राजा आप का जानी दुश्मन है। उसे मारे बिना आप का निस्तार नहीं। राजा ध्यानसिंह ने सुन तथा आज्ञा-पत्र देख उन्हें राजा को मार डालने का आज्ञा-पत्र लिख दिया। अंततः उन्होंने राजा शेरसिंह और उसके बारह वर्ष के पुत्र उत्तराधिकारी प्रताप सिंह और ध्यान सिंह दोनों ही को निर्दयता पूर्वक बध कर डाला। इस भीषण हत्याकाण्ड से राजधानी में प्रतिहिंसा की ज्वाला भड़क उठी। इस प्रतिक्रिया का नेता था राजा ध्यानसिंह का लड़का हीरासिंह। खालसा सेना तथा सौ तोपों के साथ सांझ के समय हीरासिंह क़िले से नगर में दाखिल हुआ। अजीत और लहना लड़ते हुए मारे गए। उनके सब साथी भी क़त्ल कर डाले गए। चार दिन की लड़ाई और खून खराबी के बाद बालक राजा दिलीप सिंह को पंजाब का राजा घोषित कर दिया गया। वजीर का पद राजा हीरासिंह ने सम्हाला। इस समय दिलीप सिंह की आयु पाँच वर्ष की थी। इसकी माता जिंदा उसकी अभिभावक बनी थी।

बारंबार के इस राज्य परिवर्तन ने सिपाहियों की शक्ति को बहुत बेक़ाबू कर दिया था। प्रत्येक नेता को उन्हीं का सहारा लेना पड़ता था। और उन्हें इनाम के तौर पर शहर और कभी-कभी सरकारी खजाने और तोशाखाने को लूटने की भी आज्ञा देनी पड़ती थी। वास्तव में इस समय वास्तविक सत्ता खालसा सिपाहियों की थी। सरदार उनके केवल सिख सेना के संसप्तक समझे जाने लगे थे।

राजा हीरासिंह बड़ा चालाक आदमी था। वह कई भाषाओं का पण्डित और अंग्रेज़ों का क्रीत दास था। उनका प्रधान सलाहकार जल्ला पण्डित था। अभी यह व्यवस्था जम भी न पाई थी कि दिलीपसिंह के मामा जवाहरसिंह ने कई सरदारों को मिला कर हीरासिंह के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा ऊँचा कर दिया। उस समय सिख साम्राज्य का प्रत्येक सरदार राजशक्ति हथियाने के जोड़-तोड़ लगा रहा था। आगे-पीछे की बात कौन सोचता। नित नए बखेड़े उठ खड़े हो रहे थे। और भाँति-भाँति के अनर्थ रोज़ होते थे। विवेक और दयामाया तो जैसे पंजाब से

उठ गए थे। इधर लाहौर षड्यन्त्रों का अड्डा बना हुआ था, उधर काश्मीर के राजा गुलाबसिंह अपना उल्लू सीधा करने में लगे थे। लाहौर दरबार की दुर्व्यवस्था उनके लिए आशीर्वाद बन गई थी। इसी धाँधले बाज़ी में कुँवर पिथौरासिंह और कुँवर काश्मीरासिंह ने अपने को गद्दी का दावेदार घोषित कर विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया। ये दोनों नवयुवक अपने को रणजीतसिंह के पुत्र कहते थे। पर इन का वास्तविक किस्सा यह था कि गुजरात के सरदार साहबसिंह की दो विधवाएँ थीं—रत्नकौर और दयाकौर। उन दोनों को रणजीतसिंह ने चादर डालन की रीति से घर में डाल लिया था, रानी दयाकौर ने ये दोनों लड़के मोल खरीदे थे। पिथौरासिंह तो लाहौर के एक दूकानदार के यहाँ से खरीदा गया था, और काश्मीरासिंह जम्मू से खरीदा गया था। दयाकौर ने दोनों को बेटा बनाया हुआ था। इसी नाते से ये इतने बड़े सिख साम्राज्य के स्वामित्व का दावा करने लगे थे। हीरासिंह और जल्ला पण्डित उनके विरोधी थे, तथा खालसा सेना उनके पक्ष में। गुलाबसिंह ने जम्मू बुला कर उन दोनों को नजरबन्द कर उनसे एक लाख रुपया तलब किया। उधर मुलतान के दीवान सावनमल के मरने पर उनके लड़के दीवान मूलराज ने लाहौर को खिराज देना ही बन्द कर दिया और मुलतान को स्वतन्त्र राज्य कहने लगे। खालसा सेना को महीनों से वेतन नहीं मिला था। वह धीरे-धीरे नियन्त्रण से बाहर हो रही थी। उसने काश्मीर से राजा सुचेतसिंह को मन्त्री पद देने के लिए बुलाया, जो हीरासिंह का चचा था। परन्तु हीरासिंह ने ख़ालसा सेना को घूस दे कर उसी के द्वारा उन्हें मरवा डाला, परन्तु तुरन्त ही एक नया षड्यन्त्र उठ खड़ा हुआ जिस का नेतृत्व स्वयं जिन्दाँ रानी कर रही थी। राजा का खज़ान्ची लालसिंह, जो रानी का प्रेमी भी था, रानी का सहायक था। हीरासिंह और उसका साथी जल्ला पण्डित ने निकल भागने की चेष्टा की—पर विरोधी सेना ने उन्हें घेर लिया। उससे पिण्ड छुड़ाने के लिए उन्होंने थैलियों के मुँह खोल दिए और रास्ते में सोना बखेर दिया। परन्तु उसकी रक्षा न हो सकी—

और अन्त में राजा हीरासिंह और उसके सलाहकार जल्ला पण्डित खालसा सेना के हाथों बुरी मौत मरे। उनके शवों की भयानक दुर्दशा की गई। जल्ला का सिर प्रत्येक दूकान के आगे दिखाया गया, और सारे शहर में वह सिर दिखा कर कुत्तों को खिला दिया गया। राजा हीरासिंह का सिर तथा राजा गुलाबसिंह के लड़के मियां सोहनसिंह का सिर मोरी दरवाज़े पर लटकाए गए।

हीरासिंह की मृत्यु के बाद जवाहरसिंह वज़ीर हुए। ये रानी जिन्दाँ के भाई और दिलीपसिंह के मामूँ थे। पिथौरासिंह ने इस समय अटक का किला अधिकृत कर लिया था। जवाहरसिंह ने उसे कैद करा कर और गला घोंट कर मरवा डाला। यह खबर सुन कर खालसा सेना एकदम जवाहरसिंह के विरुद्ध हा गई। उसने हुक्म भेजा—कि जवाहरसिंह हाज़िर हों। जवाहरसिंह हाथी पर सवार हो—और बालक राजा दिलीपसिंह को गोद में बैठा कर तथा दूसरे हाथी पर अपनी बहन रानी जिन्दाँ को बैठा कर सोना बरसाते हुए खालसा सेना के सामने पहुँचा—और सेना को बहुत लोभ-लालच दिया। पर खालसा सेना ने बालक राजा को तो उसकी गोद से छीन लिया और जवाहरसिंह को हाथी से उतरने को कहा। उसने बहुत हाथ-पैर जोड़े, पर उसे वहीं मार डाला गया। उसका सारा धन लूट लिया गया, और जब उस की लाश हाथी से नीचे गिरी तो सिपाहियों ने उसे लातों से खूब रौंदा। जब जवाहरसिंह की दो रानियां और तीन दासियाँ सती होने लगीं तो खालसा सेना के सिपाहियों ने उन के शरीर के गहने नोच लिए। उनके नाक की नथ नोच ली। यहाँ तक कि ज़री के लालच से उनके पायजामे तक पर हाथ फैंका। इन स्त्रियों को वास्तव में ज़बरदस्ती सती किया गया था। बहुत दिन तक भाई के मरने से रानी जिन्दाँ शोक से पागल हो गई, वे प्रायः सिर के बाल खोले लाहौर की गलियों में घूमती हुई सर्वसाधारण के सामने बिना किसी पर्दे के भाई की समाधि पर भाटी दरवाज़े पहुँचती और सिर धुनती रहती।

इधर तो पंजाब में ये सब बीभत्स काण्ड हो रहे थे—उधर अंग्रेज

सिख साम्राज्य को हड़पने की तैयारी में थे। प्रबल खालसा सेना से उन्हें टक्कर लेनी होगी, यह वे जानते थे। उन्होंने लुधियाना और फिरोज़पुर में तो अपनी छावनियाँ डाली हुई थीं ही, अब अम्बाला में भी छावनी डाल दी थी। और उस की पीठ पर मेरठ में भी छावनी डाल कर भारी सेना का संगठन एकत्र कर लिया था। इस समय सतलुज में अंग्रेजी जहाज़ घिरे रहते थे। देशद्रोही सरदार सिख सेना को अंग्रेजों से भिड़ने को भड़का रहे थे। क्योंकि खालसा सेना की बढ़ती हुई शक्ति से सभी भयभीत थे। राज-कोष खाली था। और रानी जिन्दाँ अब जैसे तैसे बालक राजा दिलीपसिंह की प्रतिपालिका बन कर काम चला रही थीं। उन्होंने लालसिंह को अपना सलाहकार मन्त्री बनाया हुआ था, और उसे राजा का खिताब दे दिया था—अफवाह थी कि रानी से उसके अनुचित सम्बन्ध थे। खालसा सेना लालसिंह से भी बिगड़ रही थी। और अब किसी भी समय अंग्रेजों से भयंकर युद्ध हो सकता था। सारे पंजाब में अफवाह फैली थी कि अंग्रेज सतलुज पर नावों का पुल बनाने के लिए बम्बई से नावें मंगा रहे हैं—और मुलतान पर आक्रमण करने को सिन्ध पर सेना एकत्र कर रहे हैं।

: २२ :

काबुल विजय

वाटरलू संग्राम ने अंग्रेज़ों के सिर से फ्रांस का भूत तो उतार दिया था, परन्तु अब उनके सिर पर रूस का भूत सवार था। साम्राज्यवाद का यही रूप है कि वह सदा शत्रुओं के भय से काँपता रहता है। जिस समय सन् १८३६ में लार्ड आकलैंड हिन्दुस्तान के गवर्नर-जनरल बन कर आए तब अंग्रेज़ अफग़ानिस्तान के रास्ते रूस के भारत पर आक्रमण करने के सपने देख रहे थे और बारम्बार उनकी नज़र रणजीतसिंह पर जाती थी कि जिसकी प्रबल वाहिनी के भरोसे वे उधर से बेफ़िक्र थे। परन्तु अब रूस मध्य एशिया में अपना प्रभाव बढ़ा रहा था। सन् १८३७ में ईरान

की सेनाओं ने हिरात पर आक्रमरण कर दिया, अंग्रेज़ों ने समझा कि इसमें रूस का हाथ है। हिरात पर कब्ज़ा होने से वे भारत में आसानी से प्रविष्ट हो सकते थे। इस समय अफ़ग़ानिस्तान की स्थिति भी बहुत डावां-डोल हो उठी थी। अहमदशाह अब्दाली के वंशधर शाह शुजा को हरा कर वरुकज़ाई वंश का दोस्त मुहम्मद अफ़ग़ानिस्तान का अमीर बन गया था और शाह शुजा भाग कर भारत में आ अंग्रेज़ों की संरक्षता में लुधियाने में रह रहा था। जब ईरान ने यह आक्रमरण किया तो इस से अंग्रेज़ और दोस्त मुहम्मद दोनों ही डर गए। दोनों ने संधि की बात की। दोस्त मुहम्मद रूस के विरुद्ध अंग्रेज़ों के गुट्ट में मिलने को तैयार था, पर उसने यह पख लगाई थी कि अंग्रेज़ रणजीतसिंह से पेशावर छीन कर उसे वापस दिला दें। पर रणजीतसिंह को अंग्रेज़ नाराज़ नहीं कर सकते थे। इससे दोस्त मुहम्मद ने रूस की ओर रुख किया और तुरन्त ही रूस का राजदूत क़ाबुल में जा पहुँचा। बस, इसी बात पर आकलैण्ड ने क़ाबुल पर आक्रमरण करने का निर्णय कर लिया। उसने सोचा, इस समय वहाँ आन्तरिक स्थिति डावाँडोल है, अतः यह अच्छा अवसर है। अंग्रेज़ों ने सन् ३८ में रणजीतसिंह से एक संधि की और यह ठहरा कि शाह शुजा को फिर अफ़ग़ानिस्तान की गद्दी पर बैठाया जाय। शाह शुजा ने प्रतिज्ञा की, कि वह अंग्रेज़ी सरकार का फ़र्माबर्दार रहेगा। सन ३९ में जब रणजीतसिंह अंतिम सांस ले रहा था, ब्रिटिश सेनाएँ सिंध की राह अफ़ग़ानिस्तान में घुस गईं और ग़ज़नी को फ़तह करती हुई क़ाबुल जा धमकीं। दोस्त मुहम्मद भाग खड़ा हुआ और शाहशुजा को अंग्रेज़ों ने क़ाबुल का अमीर बना दिया। इस विजय को बहुत महत्त्व मिला। आकलैण्ड को अर्ल का खिताब मिला। मार्शल कीन को लार्ड बना दिया गया। सेक्रेटरी मैक़नोटन को सर की उपाधि दी गई।

पर अभी यह धूमधाम खत्म भी नहीं हुई थी कि रंग बदलने लगा। अफ़ग़ानिस्तान की स्वतंत्र और लड़ाकू जाति ने अंग्रेज़ों की इस संगीनों की सता को सहन नहीं किया। वे शाह शुजा से भी घृणा करते थे अफ़ग़ानिस्तान

का बच्चा-बच्चा अंग्रेज़ों का और उनके पिट्ठू शाहशुजा का दुश्मन हो उठा। अंग्रेज सिपाहियों के अत्याचारों ने अफ़ग़ानों को बुरी तरह उत्तेजित कर दिया। अपनी विजय में उन्मत्त गोरे सिपाही क़ाबुल की सुन्दर स्त्रियों की खोज में घूमने लगे और उन्होंने कई प्रतिष्ठित अफ़ग़ान परिवारों की पवित्रता को भंग कर दिया। अफ़ग़ानिस्तान में जगह-जगह उपद्रव होने लगे। चारों ओर विद्रोह की आग भड़क उठी। उस समय अंग्रेज़ी सेना के सेनापति प्रसिद्ध एलफिंस्टन थे, पर वे बहुत बूढ़े हो गए थे और रोगी भी थे। उन्होंने यह एक भूल की, कि बालाहिसार का साधन सम्पन्न दुर्ग तो उन्होंने शाह शुजा को दे दिया और अंग्रेज़ी सेना को खुले मैदान में कैंप लगा कर रखा।

बस, एक दिन अफ़ग़ान अंग्रेज़ी सेना पर टूट पड़े। अंग्रेज राजदूत अलक्ज़ेन्डर को घर से घसीट कर लाया गया और उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले गए। फिर अफ़ग़ानों ने अंग्रेज़ी सेना का स्टोर लूट लिया। अब घबरा कर अंग्रेज सेनापति ने अफ़ग़ानों से संधि की याचना की। पर जब संधि की बातचीत करने सर मेकनाटन गए तो उन्हें भी क़त्ल कर दिया गया। आखिर अंग्रेज़ अपना बहुत-सा सामान अफ़ग़ानों को भेंट कर १६ सौ सिपाहियों के साथ भारत की सीमा की ओर रवाना हुए। इस लौटती हुई अंग्रेज़ सेना पर पठान कबालिए ऐसे टूट पड़े—जैसे लाश पर गीध। अंत में सेनापति एलफिंस्टन और अंग्रेज़ अफ़सरों को स्त्री-बच्चे बंधक के तौर पर दोस्त मुहम्मद के हाथ सौंपने पड़े। शेष सिपाही मरने के लिए बर्फीली सड़कों पर कबाइलियों की दया पर छोड़ दिए गए। ६ जनवरी को क़ाबुल से जो १६ सौ सिपाही जलालाबाद की ओर चले थे, उनमें से केवल एक बचा हुआ, अंग्रेज डाक्टर ब्राइडन एक सप्ताह बाद भूखा और घायल अर्द्धमृत अवस्था में जलालाबाद पहुँचा था। इस भयानक समाचार से अंग्रेज़ों पर मातम छा गया। बेतहाशा रुपया खर्च कर के और हज़ारों जानें गंवा कर यह भीषण पराजय उन्हें मिली। बोर्ड ने आकलण्ड को वापस बुला लिया और लार्ड एलिनबरा गवर्नर

जनरल बन कर हिन्दुस्तान में आए। इस समय भी अंग्रेज़ी सेना अफ़ग़ा-निस्तान के हर मोर्चे पर हार रही थी। हलकज़ाई में जनरल इंगलैंड और गज़नी में जनरल पामर मार खा रहे थे। कंधार की सेनाएँ मुसीबत में फंसी थीं। इन सब बातों से घबरा कर लार्ड एलिनवरा ने ब्रिटिश सेना को अफ़ग़ानिस्तान खाली करने की आज्ञा दे दी। परन्तु इसी समय पठानों ने शाह शुजा को मार डाला और अफ़ग़ानिस्तान में अव्यवस्था फैल गई। इस परिस्थिति से लाभ उठा कर लार्ड एलिनबरा ने दूसरा हुक्म भेजा कि यदि जनरल नाट ठीक समझें तो कंधार से जलालाबाद सीधे न आ कर गज़नी और क़ाबुल होते हुए और पठानों को एक ठोकर लगाते हुए आएँ। इस समय जलालाबाद की सेनाओं को ले कर जनरल पोलक भी जनरल नॉट से जा मिला। इन दोनों सेनाओं की सम्मिलित शक्ति ने अफ़ग़ानों की बिखरी हुई सेनाओं को परास्त कर के वालाहिसार के क़िले पर फिर यूनियन जैक फैहरा दिया। एक बार उन्होंने प्रति-हिंसा का फिर नंगा नाच नाचा, और अतिशय क्रूर और नृशंस अत्या-चारों से क़ाबुल को रौंद डाला। मस्जिदों तक को मिस्मार कर दिया। सारा क़ाबुल शहर लूट-मार कर नष्ट कर दिया गया। जब वे लौटे तो अपने साथ सोमनाथ के तथा कथित फाटक, जिन्हें महमूद गज़नी ले गया बताते थे; उठा लाए। दोस्त मुहम्मद को क़ैद से छुड़ा कर अमीर बना दिया। लार्ड एलनवरा ने इस विजय की बड़ी शानदार जयन्ती मनाई। उसने इस विजयिनी सेना का स्वागत करने को कलकत्ते से फ़ीरोज़पुर तक दौड़ लगाई और गाजे-वाजे के साथ बड़ी धूमधाम से उस सेना का स्वागत किया जिसके सेनापति जनरल नॉट और जनरल पोलक थे।

अफ़ग़ानिस्तान पर आक्रमण करने के लिए जो अंग्रेज सेनाएँ आई थीं, वे सिंध की राह सिंधनद के मार्ग ही से आई थीं। सन् १७३१ ही में एलेग्ज़ैन्डर बर्न्स ने क़ाबुल से लौटते हुए सिंधनद के प्रवाह को सैनिक महत्त्व दे दिया था। अब इस अभियान के वाद उनका ध्यान सिंध के सैनिक महत्त्व की ओर गया। और सिंध पर अधिकार करने को वे व्यग्र

हो उठे। सिंध में इस समय बलूच अमीरों का राज्य था। उनकी तीन राजधानियाँ थीं। हैदराबाद, खैरपुर और मीरपुर। अहमदशाह दुर्रानी के शासन काल में वे अफ़ग़ानिस्तान के अधीन थे, परन्तु अब स्वतन्त्र हो गए थे। सिंध पर रणजीतसिंह की भी नज़र थी, पर अंग्रेजों ने उसके मनसूबे पूरे नहीं होने दिए। सन् ३८ से सिंध में एक अंग्रेज़ रेजीडेन्ट भी रहने लगा था। तब यह हुआ था कि अंग्रेज़ सिंध में केवल व्यापारी जहाज चलाएँगे, लडाई के जहाज नहीं। परन्तु जब उन्होंने अफग़ानिस्तान पर अभियान किया तो सब सन्धि की शर्तें तथा अन्तर्राष्ट्रीय नियम ताक में रख कर लड़ाई के जहाज सिंध में ठेल दिए गए। जब अफ़ग़ानिस्तान में अंग्रेज़ों की पहली हार हुई तो उसका खमियाज़ा पूरा करने को लार्ड एलिनवरा ने सिंध को अपना शिकार बनाया। सिंध पर आक्रमण का बहाना तो भेड़ और भेड़िये की कहानी थी। लार्ड एलिनवरा ने पहला काम यह किया कि सिंध के रेजीडेन्ट मेजर जेम्स औटरम को हटाकर सर चार्ल्स नेपियर को रेजिडेन्ट नियुक्त किया। नेपियर एक योग्य सेनापति था। पर वह उग्र और झगड़ालू था। जेम्स औटरम नरम आदमी था। वह लार्ड एलिनबरा के मतलब का आदमी न था। नेपियर ने आते ही अपना काम शुरू कर दिया और अंग्रेजी फोजों ने बिना ही पूर्व सूचना के सिंध के प्रसिद्ध दुर्ग ईमानगढ़ पर चढ़ाई करके उसपर अधिकार कर लिया। इस सीनाज़ोरी से बेचारे अमीर घबरा गए। सब प्रजा भड़क गई, भीड़ ने रेजीडेन्सी पर आक्रमण कर दिया। अब नेपियर को पूरा बहाना मिल गया और सिंध के विरुद्ध खुली युद्ध घोषणा कर दी गई। मियानी के मैदान में दोनों सेनाओं की मुठभेड़ हुई। अमीर की सेना में तीस हज़ार सिपाहियों की भीड़ थी, जब कि जनरल नेपियर की कमान में तीन हज़ार व्यवस्थित योद्धा थे। सिंध की सेना पूरी तौर पर परास्त हो गई, और भेड़ों पर भेड़िया जीत गया। अन्त में हैदराबाद को जी भर कर लूटा गया, अमीरों के महल और जनानखानों में घुस-घुस कर लूटा गया, क़त्लआम और बलात्कार किया गया। उन के सोने चांदी

और जवाहरात से लबालब खजाने लूट लिये गए। लूट का अनुमान इसी से किया जा सकता है कि उसमें से पन्द्रह लाख से भी ऊपर की रक़म चार्ल्स नेपियर की जेबों में रह गई थी। इस समय नेपियर ने कहा था, हमारा यह काम साहस और बदमाशी से भरा हुआ है। हमारे हाथ अफ़ग़ानों के खून से भरे हुए हैं। अमीरों को इसलिए सज़ा दी गई क्योंकि हम अफ़ग़ानों से पिट गए थे, और अबहम ने अमीरों को पीट दिया। छुट्टी हुई। इस प्रकार अंग्रेज़ों ने सिंध को चुपचाप अपनी जेब में डाल लिया। और अब कलकत्ते में सिंध और अफ़गानिस्तान के लूटे हुए सोने चांदी और हीरे मोतियों के अम्बार लगे पड़े थे।

: २३ :

अज्ञात सामर्थ्य

जिस प्रबल अर्थ क्रान्ति और उद्योग क्रान्ति से परिचालित होकर अंग्रेज़ एशिया में अपना साम्राज्य संगठित करते चले जाते थे, उसके सम्बन्ध में न भारत में—न एशिया में ही कोई कुछ जानता था। जन-जागरण और उद्योग क्रान्ति जो समूचे यूरोप को इस समय आन्दोलित कर रही थी, और जिसका केन्द्र स्थल ब्रिटेन था, एशिया भर के लिए अपरिचित थी। अंग्रेज़ झूठ बोलते थे, फरेब करते थे, संधियों को भंग करते थे, रिश्वतें देते थे और युद्ध करते थे। वे अपनी अर्थ सिद्धि के लिए प्रत्येक संभव उपाय काम में लाते थे। इन उपायों को वे निर्दोष समझते थे। युद्ध में हज़ारों आदमियों का खून बहाकर फतह करने की अपेक्षा घूस और रिश्वतों से काम निकालना वे ज्यादा ठीक समझते थे। यह सरल था। इस में कम प्राणहानि होती थी। अर्थ सिद्धि तुरन्त होती थी। इस के विपरीत भारतीय राजा नवाब बादशाह उनसे संधि कर के उन्हें सदा के लिए दोस्त बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि संधियों द्वारा वे जहां हैं वहीं टिके रहें। पर ये सारी संधियां तो अंग्रेज़ों का ध्रुव ध्येय न थी, उनके बढ़ते हुए कदम थे। वे जा रहे थे—अपनी बड़ी मंजिल

पर। वे कदम-कदम पर रुक कर खड़े कैसे रह सकते थे। परन्तु उनकी इस अविराम गति को भारतीय और एशिया के राजे नवाब समझते नहीं थे। वे यह विचार ही नहीं करते थे कि वे राजे और नवाब और बादशाह जैसे पीढ़ी दर पीढ़ी के लिए अपने राज्य के स्वेच्छाचारी स्वामी है, वैसा कोई भी अंग्रेज़ अफसर नहीं है। गवर्नर-जनरल से लेकर साधारण सिपाही तक कर्तव्य पर परिमित समय के लिए नियुक्त है। उसके बाद दूसरा आया और उसके बाद तीसरा, फिर चौथा। ये उद्ग्रीव और उन्मुख अंग्रेज भी उद्योगक्रान्ति से जनक्रान्ति के बीच गुजरते हुए अपने राजा का भी सिर काट चुके थे। यह नहीं समझ पा रहे थे कि यह उत्तराधिकार और बरासत क्या बला है। क्योंकि एक आदमी यदि अपुत्र मरता है तो वह किसी एक पराए कल्पित अबोध बालक को अपना उत्तराधिकारी क्यों घोषित करता है। वे यह भी न समझ सकते थे, कि इस कल्पित उत्तराधिकारी के प्रति क्या वे सब प्रतिज्ञाएँ पालन की जायँ जो मृत व्यक्ति के साथ की गई थीं। यह तो जनोत्थान और अर्थ शास्त्र दोनों ही दृष्टियों से हीन कार्य था।

यहीं कारण था, कि अंग्रेज़ क़दम-क़दम बढ़ाते जा रहे थे, और अपने देश और घर से दूर साम्राज्य स्थापित कर रहे थे, तथा भारतीय और एशियाई देश अपने ही घर में पराजित होते और हारते जा रहे थे।

वे नहीं जानते थे कि, जनोत्थान और उद्योग क्रान्ति वहाँ कैसे उत्पन्न हुई, और उसने किस प्रकार यूरोप को प्रभावित किया और अब कैसे ब्रिटेन सारे संसार के स्वर्ण का स्वामी बनता जा रहा है।

: २४ :

इस्लाम का चरण

भारत में इस्लाम का चरण एक भारी विपत्ति को साथ लाया था। जिससे देश के सामाजिक, धार्मिक, नैतिक तथा राजनैतिक जीवन को

छिन्न-भिन्न कर दिया और समस्त देश को दो परस्पर विरोधी दलों में विभक्त कर दिया।

सातवीं शताब्दी के आरम्भ ही में इस्लाम के पैग़म्बर मुहम्मद ने अरब में इस्लाम की शिक्षा दी और उनके जीवन काल में ही समूचा अरब मुसलमान हो गया था। इसके बाद उनकी मृत्यु के बाद सौ वर्षों के भीतर ही मेसोपोटामिया, सीरिया, जेरूसलम, ईरान, तातार-तुर्किस्तान और चीन का कुछ भाग, मिश्र, कारथेज तथा सम्पूर्ण उत्तरी अफ्रीका मुसलमानों ने जीत कर अपना महान् साम्राज्य स्थापित कर लिया। विशाल रोमन साम्राज्य भी इनके हमलों से न बच पाया और इसके बाद स्पेन भी उनके अधीन हो गया। यह इस्लाम की शानदार पहली शताब्दी थी। इसके बाद तो रूस, यूनान, बलकान, पोलैंड, दक्षिण इटली, सिसली को लेकर आधे यूरोप पर इस्लाम की हुकूमत क़ायम हो गई, जो शताब्दियों तक रही।

भारत में मुहम्मद की मृत्यु के चार वर्ष बाद ही खलीफा उमर के ज़माने में बंबई के निकट के थाना नामक स्थान में मुसलमानों की जल सेना ने प्रवेश किया था, परंतु खलीफ़ा की आज्ञा से उसे वापस बुला लिया गया था। इसके बाद आठवीं शताब्दी के प्रथम चरण में मुहम्मदबिन क़ासिम के नेतृत्व में अरबों ने सिंध जय किया और मुलतान पर भी अधिकार कर लिया। इसके तीन सौ वर्ष बाद महमूद गज़नवी के आक्रमण हुए और इसके दो सौ वर्ष बाद तेरहवीं शताब्दी के प्रथम चरण में पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद भारत में इस्लामी राज्य स्थापित हो गया।

मुहम्मद बिन क़ासिम के आक्रमण के कोई सौ वर्ष प्रथम ही सम्राट् हर्षवर्धन की मृत्यु हो चुकी थी और उसके बाद ही राजपूतों की नई जाति का उदय हुआ था। उन्होंने पश्चिम से चल कर उत्तर-पूर्वीय तथा मध्य भारत में अनेक छोटी-छोटी रियासतें स्थापित कर ली थीं। मुसलमानों के आने से ठीक पहले पंजाब से दक्षिण तक और बंगाल से अरब सागर तक लगभग समस्त देश राजपूतों के शासन में आ गया था। परंतु कोई बड़ी शक्ति इन छोटी-छोटी रियासतों पर अंकुश रखने वाली न

थी। इससे ये रियासतें निरंतर परस्पर लड़ती रहती थीं। प्राचीन महाराज्यों के अब केवल ध्वंस ही दिखाई देते थे।

इस समय धर्म क्षेत्र में भी वैसी ही अव्यवस्था हो गई थी। भारत में सम्प्रदायवाद का ज़ोर था। वैष्णव-शाक्त, तांत्रिक, वाममार्गी, कापालिक, शैव और पाशुपत धर्म वाले बड़ी कट्टरता से परस्पर संघर्ष करते रहते थे। कुछ बड़े-बड़े विवादों—दार्शनिक विचारों में फँसे थे, पर सर्व-साधारण घोर अंधकार में था। जाति भेद पूरे ज़ोरों पर था। स्त्रियों और शूद्रों की दशा दयनीय थी। ब्राह्मणों और पुरोहितों के विशेषाधिकार स्थापित हो चुके थे। अधिकांश जनता जाति-पाँति, देवी-देवता, भूत-प्रेत, जप-तप यज्ञ-हवन, पूजापाठ तथा ब्राह्मणों को दान देने में, तीर्थ यात्रा करने में, जंतर-मंतर और जादू-टोनों के अंध विश्वास में फंसी थी। संक्षेप में उस काल का भारत—अनगिनत छोटी-छोटी अनियंत्रित रियासतें, सैकड़ों मत-मतांतर और अगणित कुरीतियों और अंध-विश्वासों का केन्द्र बना हुआ था।

इसी समय भारत में इस्लाम ने प्रवेश किया। इस्लाम के जन्म से प्रथम ही दक्षिण भारत में अरबों की अनेक बस्तियाँ बस चुकीं थीं। वे सब व्यापारी थे, तथा भारतीयों से उनके अच्छे सम्बंध थे। इसलिए आक्रमण से प्रथम ही इस्लाम इन व्यापारियों के साथ भारत में सातवीं शताब्दी ही में आ चुका था। तथा बहुत भारतीय मुसलमान हो चुके थे। उस समय इस्लाम के विपरीत कोई घृणा का भाव न था। भारत के तत्कालीन असंख्य सम्प्रदायों में एक यह भी समझ लिया गया था। नवीं शताब्दी के आरंभ ही में मलाबार के राजा ने इस्लाम धर्म ग्रहण कर लिया था। इससे इस राज्य की वृद्धि हुई तथा इस राज्य की सहायता से इस्लाम की भी भारत में प्रतिष्ठा हुई। इस बीच बहुत से मुसलमान फ़कीर और विद्वान् अरब तथा ईरान से आ-आ कर भारत में बसते गए। उनका खूब आदर सत्कार होता था और सैकड़ों हिंदू उनके चेले बनते थे। इनमें कुछ फ़कीर बहुत प्रसिद्ध हो गए। अब इस्लाम का प्रभाव कोंकण, काठियावाड़ और मध्य भारत में भी प्रसारित हो चुका था। उस

समय के ये इस्लाम के प्रचारक अपनी सच्चरित्रता और त्याग के कारण लोगों में अपना प्रभाव जमा चुके थे। इसके अतिरिक्त इस्लाम के सिद्धांत तत्कालीन जटिल हिंदू सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक प्रभावशाली और आकर्षक थे। इसी से खास कर छोटी जाति के बहुत से लोग, जो हिन्दू वर्ण व्यवस्था के शिकार थे, स्वेच्छा से मुसलमान होना पसंद करते जाते थे।

तेरहवीं शताब्दी के अंत से सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ तक, जब तक कि मुसलमान भारत में अपना साम्राज्य स्थापन के प्रयत्न करते रहे, यही दशा रही। इस काल में अरब के इस नए मत का प्रभाव केवल उन लाखों भारतीयों पर ही नहीं पड़ा, जिन्होंने इस्लाम ग्रहण कर लिया था। अपितु भारतीयों के आम विचार, धर्म, साहित्य, कला और विज्ञान, कहना चाहिए कि समूची भारतीय सभ्यता भी भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना के प्रथम ही इस्लामी प्रभाव से प्रभावित हो चुकी थी।

: २५ :

मुग़ल

चौहदवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में तैमूर ने भारत पर आक्रमण किया। उस समय दिल्ली के तख्त पर मुहम्मद तुग़लक़ था। तैमूर केवल पन्द्रह दिन भारत में रहा। और लूट-खसोट और क़त्ले-आम करके लौट गया। इसके कोई सवा सौ वर्ष बाद बाबर ने आक्रमण किया। इस समय तक मुगलों की प्रकृति में अन्तर पड़ चुका था। वे अपनी जन्मभूमि मंगोलिया से कहीं अधिक सभ्य देश ईरान में वर्षों रह चुके थे। इस से वे चंगेज़खाँ और तैमूर की अपेक्षा सभ्यता प्रेमी बन चुके थे। पानीपत के मैदान में बाबर ने इब्राहीम लोदी को शिकस्त दी और मुगल तख्त की स्थापना की। उसने भारत ही को अपना घर बना लिया और हुमायूँ के अतिरिक्त उसके शेष वंशज भारत ही में पैदा हुए। इधर, सम्राट् हर्षवर्धन के बाद, अर्थात् ईसा की सातवीं शताब्दी के मध्य से सोहलवीं

शताब्दी के प्रारम्भ तक लगभग ९०० वर्ष के समय में कोई सशक्त राज-नैतिक शक्ति ऐसी न उत्पन्न हो पाई थी—जो समस्त भारत को एक सूत्र में बाँध सके। इन नौ सौ सालों में भारत छोटी-बड़ी, एक-दूसरे से प्रति-स्पर्धा करने वाली रियासतों के युद्ध का अखाड़ा बना रहा। राजनैतिक निर्बलता, अनैक्य और अव्यवस्था इस काल के भारत की सच्ची तस्वीर थी। इस अवस्था में एक ऐसी केन्द्रीय शक्ति की भारत में बड़ी ही आवश्यकता थी—जो सारे देश के ऊपर एक समान शासन कायम कर सके। और देश की बिखरी हुई शक्तियों को एक सूत्र में गाँठ सके।

यह काम सोहलवीं शताब्दी से ले कर अठारहवीं शताब्दी तक दिल्ली के मुग़ल साम्राज्य ने किया। उसने राजनीति, सामाजिक व्यवस्था, उद्योग, कला-कौशल, समृद्धि, शिक्षा और सुशासन की दृष्टि से भारत में एक नए युग का सूत्रपात किया। मुगलों से प्रथम अशोक और चन्द्रगुप्त के साम्राज्य भारत में थे, पर मुग़ल साम्राज्य उन सब से बड़ा था। इस के अतिरिक्त एक बात यह भी थी कि अशोक और चन्द्रगुप्त के साम्राज्य का अन्तःसंगठन ऐसा न था जैसा मुगल साम्राज्य का था। उस काल में विविध प्रान्तों की विविध भाषाएँ और अलग-अलग शासन पद्धतियाँ थीं तथा अलग-अलग प्रान्तीय जीवन थे। परन्तु मुगल साम्राज्य के १०० वर्षों में, अकबर के सिंहासनरूढ़ होने के बाद से मुहम्मद शाह की मृत्यु तक समस्त उत्तरी भारत और अधिकांश दक्षिण भारत की एक सरकारी भाषा, एक शासन पद्धति, एक समान सिक्का और हिंदू पुरोहितों तथा ग्रामीणों को छोड़ कर सब श्रेणी के नागरिकों की एक सार्वजनिक भाषा थी। जिन प्रांतों पर सम्राट् का सीधा शासन न था, वे हिंदू राजा भी लगभग मुगल प्रणाली को ही काम में लाते थे।

प्राचीन काल में बौद्ध युग में भारत का सांस्कृतिक सम्बंध भारत से बाहर के देशों से स्थापित हुआ था। जो मुगल अमलदारी में नए सिरे से फिर स्थापित हुआ। मुगल साम्राज्य की समाप्ति तक अफ़ग़ानिस्तान दिल्ली के बादशाह के अधीन था, तथा अफ़ग़ानिस्तान के ज़रिए बुख़ारा,

समरकंद, बलख, खुरासान, खारजिम और ईरान से हज़ारों यात्री तथा व्यापारी भारत में आते रहते थे। बादशाह जहाँगीर के राज्य काल में तिजारती माल से लदे चौदह हजार ऊँट प्रति वर्ष बोलान दर्रे से भारत आते थे। इसी प्रकार पश्चिम में भड़ोंच, सूरत, चाल, राजापुर, गोआ और करबार तथा पूर्व में मछलीपट्टम, तथ अन्य बंदरगाहों से सहस्रों जहाज़ प्रति वर्ष अरब, ईरान, टर्की, मिस्र, अफ्रीका, लंका, सुमात्रा, जावा, स्याम और चीन आते-जाते रहते थे।

अकबर ने धार्मिक उदारता की आधार शिला पर ही मुग़ल साम्राज्य की स्थापना की थी। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ तक इस उदारता का व्यवहार रहा। मुग़ल सम्राटों के दरबार में हिंदू और मुसलमानों दोनों के मुख्य त्यौहार समान उत्साह और वैभव से मनाए जाते थे। इसी से मुग़ल साम्राज्य का वैभव बढ़ा। शाहजहाँ का समय भारतीय इतिहास में सब से अधिक समृद्ध था। उसे हम उस काल का स्वर्ण युग कह सकते हैं। औरंगज़ेब ने धार्मिक संकीर्णता को अपनी राजनैतिक आवश्यकता बताया। और तभी से मुगल प्रताप अस्त होना आरम्भ हुआ। राजपूत, मराठे, सिख और अन्य हिंदू राजे उस से असंतुष्ट हो गए। भारत की राजनैतिक सत्ता निर्बल हो गई और इसके साथ ही देश के उद्योग-धंधे, व्यापार, साहित्य और सुख-समृद्धि के नाश के बीज उगने लगे।

औरंगजेब के निर्बल उत्तराधिकारियों ने एक बार फिर समन्वय की नीति अपनाने की चेष्टा की। परंतु अभी औरंगजेब की गलती के परिणाम ताजे ही थे कि एक ऐसी तीसरी शक्ति ने भारत के राजनैतिक मंच पर प्रवेश किया—जिस का हित हर प्रकार भारतवासियों के हित के विरुद्ध था। वह भारतीय हित की विरोधिनी शक्ति ब्रिटेन थी।

: २६ :

तीसरी-शक्ति

औरंगज़ेब के समय तक भारत के अंदर अंग्रेज़ व्यापारियों की स्थिति लगभग वैसी ही थी, जैसी हींग बेचने वाले काबुलियों की आप ने देखी

होगी। औरंगज़ेब की अनुदार नीति ने चारों ओर छोटी-छोटी परस्पर प्रतिस्पर्धा पैदा करने वाली रियासतें भारत में पैदा कर दीं। जिससे केन्द्रीय शक्ति निर्बल हो गई और हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य खण्डित हो गया। औरंगज़ेब की मृत्यु के कुछ वर्षों बाद ही मद्रास और बंगाल में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के षड्यंत्र चलने लगे। जिसके फलस्वरूप औरंगज़ेब की मृत्यु के पचास वर्ष बाद प्लासी का युद्ध हुआ। उस समय अंग्रेज़ों का हित इस बात में था कि औरंगज़ेब की अनुदार नीति के कारण जो अव्यवस्था और अनैक्य भारत के हिन्दू-मुसलमानों में स्थापित हो चुका था, वह क़ायम ही रखा जाय और उन्होंने यही अपनी नीति बना ली।

इस समय भी सभ्यता, शक्ति और उत्तव्यवस्था में भारतीय अंग्रेज़ों से श्रेष्ठ थे। परन्तु उनमें एक बात की कमी थी। वह थी राष्ट्रीयता या देश-भक्ति, जो जनोत्थान और उद्योग क्रांति से प्रभावित थी। अंग्रेज़ों और दूसरी यूरोपियन जातियों ने यह बात जान ली और उन्होंने इससे लाभ उठा कर एक शक्ति को दूसरी से लड़ाने का धंधा आरम्भ कर दिया। दिखाने के लिए उन्होंने अपना रूप निष्पक्ष मध्यस्थ का रखा, परन्तु भीतर ही भीतर भांति-भांति की साज़िशों और चालों को चल कर उन्होंने भारतीय बिखरी हुई शक्तियों में ऐसा संग्राम खड़ा कर दिया कि वे शक्तियाँ स्वयं ही एक दूसरे से टकरा कर चकनाचूर होने लगीं।

इंगलैंड के पीछे किसी जातीय सभ्यता का इतिहास न था। किसी प्राचीन संस्कृति की छाप न थी। यद्यपि वह ईसाई धर्म स्वीकार कर चुका था, पर इस समय वह धर्मतंत्र भी साम्प्रदायिक कलह का रूप धारण कर रहा था। पाप-पुण्य, धर्माधर्म, नीति-अनीति के सांस्कृतिक आदर्श जैसे भारत में प्राचीन वैदिक, बौद्ध, जैन और हिंदू-धर्म के वेद-श्रुति, स्मृति-दर्शन और आचार-शास्त्र के आधार पर भारतीय जनता में सहस्रों वर्षों से उनकी पैत्रिक सांस्कृतिक सम्पत्ति के रूप में चले आते थे, वैसा इंगलैंड में एक भी सांस्कृतिक सूत्र न था। इंगलैंड १८वीं शताब्दी के आरम्भ तक घोर दरिद्रता, निरक्षरता और अंधविश्वासों का दास बना हुआ था।

नैतिक आदर्शों पर सुसभ्य जीवन का इंगलैंड में जन्म ही नहीं हुआ था।

भारत जैसे समृद्ध देश की धन, सम्पदा, वैभव और जाहो-जलाली का हाल जब अंग्रेज़ों के कानों में पहुँचा तो उनकी लोलुप दृष्टि भारत की ओर गई और उनकी आवारा और साहसिक प्रकृति १७वीं शताब्दी के आरम्भ में उन्हें भारत तक खींच लाई। सौ वर्ष तक वे भारत की गलियों में कंधे पर बोझे का थैला लादे माल बेचते, व्यापार करते और धन कमाते फिरते रहें। बंदर की भांति लाल-लाल चेहरे वाले फिरंगी के मुँह से उसकी अटपटी भाषा सुनने को बालक और स्त्रियाँ आतुर रहतीं, उनके आने पर उनके काँच के सस्ते सामान की हँसी उड़ातीं और उन्हें तंग करती थीं।

१८वीं शताब्दी के आरम्भ ही में औरंगज़ेब की मृत्यु हुई और एक-बारगी ही महान् मुग़ल तख्त डगमगा गया। इन सौ वर्षों में इन फिरंगियों की लालसा बेहद बढ़ चुकी थी, किसी प्रकार के न्याय अन्याय और धर्मा-धर्म का उन्हें विचार संस्कार था ही नहीं। अब उनकी इच्छापूर्ति में बाधक कोई शक्ति भारत में नहीं थी, उन्होंने तिजारती कोठियों के बदले जगह-जगह क़िलेबंदियाँ करनी आरम्भ कर दीं। दुर्भाग्य से अपने ही में सीमित भारतीय राजाओं ने इस बात की कुछ भी परवाह नहीं की। उन्हें अनुमतियाँ और सुविधाएँ मिलता ही गईं। उनका बल बढ़ता गया। वे उचित अनुचित उपायों से धन कमाते गए और सेना रखते गए। इस सेना के बल पर उन्होंने मद्रास और बंगाल के राजाओं के आपसी झगड़ों में पैर फंसा कर कभी इसका ओर, कभी उसका पक्ष लेना आरम्भ कर दिया। कूटनीति और साज़िशों द्वारा इनका बल बढ़ता गया। दिल्ली का दुर्बल साम्राज्य केंद्र अब इस योग्य न था कि वह केंद्रीय शक्ति के रूप में इस स्थिति को समझे और उस पर नियंत्रण करे। अतः उन्हों ने भारतीय नरेशों को एक-दूसरे से लड़ा कर इलाक़े पर इलाक़े दखल करने आरम्भ कर दिए।

पूरब की ढोलक

एक ही शब्द में यह कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ों ने आँखें बंद कर के भारत को हाथ में लिया। अंग्रेज़ों ने जो भी आकस्मिक कार्य किए उनमें कोई ऐसा आकस्मिक और बिना इरादे का न था, जैसा भारत-विजय। जब वरजीनिया और न्यू इंगलैंड के उपनिवेशों का अंग्रेज़ों ने श्री गणेश किया था—तब उनकी दृष्टि में एक नया समाज स्थापित करने की भावना तो थी, पर वे नहीं सोच पाए थे कि वे एक प्रबल और विशाल प्रजा सत्तात्मक राज्य की नींव डाल रहे हैं। परंतु भारत की बात तो इस से सर्वथा ही विपरीत थी, अंग्रेज़ों का विचार कुछ और था, पर हुआ कुछ और ही। उनका इरादा भारत में केवल अपना व्यापार विस्तार करना था, पर इस काम में उन्हें कोई खास सफलता नहीं मिली। भारत में आ बसने के बाद सौ सालों तक भी अंग्रेज़ों ने देशी राज्यों से लड़ने की कल्पना भी नहीं की थी। सौ वर्ष बाद भी जो युद्ध हुए, वे व्यापार में सहायता पहुँचाने के विचार से। परंतु जब और आधी शताब्दी बीत गई तब उन्होंने प्रदेशों को हथियाने की बात सोची। परंतु इस बीच भी अंग्रेज देखते एक ओर को थे और चलते दूसरी ओर को। उन्नीसवीं शताब्दी तो इस से प्रथम ही आरंभ हो गई थी। डलहौजी ही ने देशी राज्यों पर प्रभुत्व कायम करने की नीति अपनाई। यद्यपि ईस्टइंडिया कम्पनी के डाइरेक्टरों की यह इच्छा न थी। यह इच्छा इन शक्तियों की थी, जो उन पर प्रभाव रखती थीं और जिनका विरोध भी किया गया था। परंतु विपरीत जलवायु के कारण अंग्रेज़ न तो भारत को अपना उपनिवेश बना सके। न धर्म और जातीयता के महान् अंतर के कारण रक्त सम्बंध ही स्थापित कर सके। इंगलैंड का स्वार्थ यूरोप और नई दुनिया से था, केवल भारत ही के कारण उसे अफ़गानिस्तान, फारस और मध्य एशिया की ओर देखना पड़ा तथा एकमात्र भारत ही के

कारण रूस से इंगलैंड का विरोध हुआ। इसके अतिरिक्त अठारहवीं शताब्दी भर अंग्रेज़ों की भारत में फ्रांस से कूटनीतिक लड़ाई जारी रही। नई दुनिया के कम बस्ती वाले देश—कनाडा और आस्ट्रेलिया की श्रेणी में भारत की गणना नहीं की जा सकती थी, जो भारत ही की भाँति न केवल इंगलैंड से अत्यंत दूर थे, अपितु उन सभी बड़े राज्यों से दूर थे, जिनसे ब्रिटेन का युद्ध सम्भव था। इसके वितरीत भारत यूरोप ही की भाँति, कहीं-कहीं तो यूरोप से भी अधिक घनी बस्ती का देश था। जहाँ अंग्रेज़ों को भारत और भारत के स्वार्थों से संबंधित देशों से युद्ध करने पड़े तथा पूर्वीय प्रश्नों पर ब्रिटेन का अनुराग हो गया। इसलिए ब्रिटेन की कुछ ऐसी मनोवृत्ति बन गई कि वह भारत की तुलना राजनीतिक दृष्टि से नई दुनिया के कम बसे हुए देशों की अपेक्षा यूरोप के देशों से करने लगा।

देखते-देखते ही भारतीय साम्राज्य नेपोलियन के अत्युच्च शिखर पर पहुँचे हुए साम्राज्य से भी बहुत बढ़ गया। जो केवल दक्षिण अमेरिका के स्पेन के प्राचीन राज्य की भाँति बहुत दूर तक फैला हुआ खाली देश न था, अपितु बहुत अधिक आदमियों से बसा हुआ देश था, जिसकी सभ्यता प्राचीन थी, तथा जिसकी अपनी भाषा में मत दर्शन और साहित्य था।

जब संयुक्त यूरोप के नक़शे पर नज़र जाती है, तो हमें सात भारी राज्य दीख पड़ते हैं, जो स्वतंत्र हैं, और परस्पर संघर्ष करते हैं, किंतु उनका संयुक्त नाम यूरोप है। ये यूरोप के सातों राष्ट्र चाहे परस्पर कितने ही संघर्षरत हैं, पर उनके कूटनीतिक और राजनीतिक योग उन्हें एक इकाई में संयुक्त करते हैं और जब बाहरी दुनिया में बात होती है, तो समूचे यूरोप का स्वार्थ देखा जाता है। परंतु भारत—जो रूस को छोड़ कर किसी भी यूरोपीय राज्य से बहुत बढ़ कर तथा अमेरिका के संयुक्त राज्य से भी बढ़ कर था, जब ब्रिटेन साम्राज्य का रूप धारण कर गया तो उसके भार से डाउनिंग स्ट्रीट की राज अट्टालिकाएँ थर्राने लगीं, और पार्ल-

मैंट की कामंस सभा भारतीय प्रश्नों पर प्रति वर्ष विवाद और चिंताओं में डूबने लगी।

भारत जहाँ की जनता—ब्रिटेन की जनता से और विचारों से भी दूर थी, वहाँ, यद्यपि ब्रिटिश साम्राज्य के अंतर्गत आ गया था, परंतु ब्रिटेन—जहाँ लोकमत प्रणाली पर शासन करने की रीति प्रचलित थी—भारत में उस प्रणाली से भिन्न अधिकारीवर्गीय तथा सैनिक शक्ति के द्वारा शासन करने लगा, और वह अपना राजस्व यूरोप के ढंग पर नहीं, बल्कि नमक और अफीम का इजारा लेकर तथा भूमि का अधिपति बन कर वसूल करने लगा। जो इंगलैंड की राज्य-परंपरा से कोसो दूर था। इसी से भारत में अंग्रेज़ अधिकारी मनमानी लूट-बेईमानी अंधेरगर्दी करते जा रहे थे, और इंगलैंड की पार्लमैंट में उन पर क्रोध और निराशा की फटकार पड़ती जा रही थी। वास्तव में इंगलैंड के लिए जो वास्तव में एक सैनिक राज्य नहीं था, अंग्रेज़ी सैनिक शक्ति के बल पर २० करोड़ की जनता को वश में रखना—ऐसी बात थी, जो प्रत्यक्ष ही राजनीतिक भूल थी। परंतु उस समय तक, कदाचित् राजनीति इतना व्यापक रूप न धारण कर पाई थी। परंतु ब्रिटेन को इस राजनीतिक मूर्खता का फल भोगना ही पड़ा। उसका यूरोप की लड़ाई का अनुराग जाता रहा और पूर्व में वह अपने नए-नए स्वार्थों की चिंता में मर मिटा। तुर्की की प्रत्येक हलचल से, मिस्र के प्रत्येक कदम से, फारस या ट्रैंसोक्सिानिया या बर्मा की अथवा अफगानिस्तान की प्रत्येक हलचल से चौकन्ना रहते-रहते उसकी नींद हराम हो गई। साथ हीं रूस की प्रतिद्वंदिता उसके पल्ले बँधी। वह अनेक आशा-रहित कठिनाइयों के चक्कर में फँसता चला गया और जब तक गत दो महायुद्धों ने उसके अंजर-पंजर ढीले न कर दिए। गत डेढ़ सौ वर्षों में एक भी अंग्रेज़ इंगलैंड में ऐसा न पैदा हुआ, जो ऊँची आवाज़ में यह कहता—कि बुरा हो क्लाइव के साहस और बुद्धि का, कि जिसने एक व्यापारिक कंपनी को राजनीतिक शक्ति के रूप में बदल कर उन्हें पूर्व की ढोलक बजाने को लाचार कर दिया। तब न किसी ने उससे यह कहा

कि यह साम्राज्य क्षण भंगुर है और एक दिन उन्हें दुम दबा कर भारत से भागना पड़ेगा।

: २८ :

हिज एक्सिलेन्सी

सन् १८४२ के जून का अंतिम सप्ताह था। अभी बारह की तोप दगी थी। गवर्नर-जनरल लार्ड एलिनवरा अपनी मूछों और भोंहों में सावधानी से खुशबूदार खिज़ाब लगा रहे थे। खिज़ाब लगा कर उन्होंने सामने के क़देआदम शीशे में अपनी छवि देखी। मन ही मन हंसे और अकड़ कर खड़े हो गए। अपनी मूछों की नोक बनाई और कुछ देर कमरे में इधर से उधर टहलते रहे। फिर उन्होंने घंटी बजाने की रस्सी खींची। उनका खास खिदमतग़ार चट आ हाजिर हुआ। खिदमतग़ार एक दोग़ला पोर्चुगीज़ था। उसने झुक कर सलाम किया और अदब से सिर झुका कर खड़ा हो गया। गवर्नर-जनरल ने उसे पोशाक पहनाने का हुक्म दिया। खिदमतग़ार पोशाक पहनाने लगा। उन्होंने अपनी पूरी सैनिक वर्दी पहनी, गवर्नर-जनरली का आसमानी पट्टा नफासत से धारण कर उस पर स्टार लगाया। और भारत के सर्वोच्च सेनापति के तमगे लटकाए। खूब सजधज कर और अकड़ कर उन्होंने क़देआदम आईने में अपनी धज देखी। फिर मूछों की नोक बनाते हुए खिदमतग़ार से कहा—मेरे पर्सनल एटेची कर्नल लेग्फोर्ट को भेज दो। और याद रखो, लंच मैं ठीक एक बजे लूंगा। इस में एक मिनिट भी इधर-उधर न हो।"

"बहुत अच्छा योर एक्सिलेन्सी, मगर..."

"यहअगर मगर मुझे पसन्द नहीं है। मैंने जो हुक्म दिया है, उसका ध्यान रखो। जाओ, कर्नल को भेज दो।"

खिदमतग़ार सिर झुका कर चला गया। और थोड़ी देर बाद कर्नल ने आकर फौजी सैल्यूट किया। लार्ड एलिनवरा उसकी ओर घूमे। उन्हों ने कहा—

"कर्नल, क्या वह डिस्पेच तैयार हो गया ?"

"यस योर एक्सिलेन्सी ।"

"तो देखो ठीक तीन बजे मीटिंग होनी चाहिए। और इसकी कुल कार्यवाही एकदम पोशीदा रहनी चाहिए।"

"ऐसा ही होगा योर एक्सिलेन्सी।"

"जनरल नॉट और जनरल पोलक आ गए हैं न ?"

'यस, योर एक्सिलेन्सी।"

"ठीक है। देखो—डिस्पेच लेकर तुम्हें खुद ही लंडन जाना होगा। एक ख़ास तेज़ चाल का जहाज तुम्हें ले जाएगा। क्या तुम कल रात को रवाना हो जाओगे ?"

"निश्चय ही योर एक्सिलेन्सी।"

"लेकिन याद रखो गफ़लत न हो। काम जोखिम का है। लंडन में मैं चार बार बोर्ड आफ डाइरेक्टरर्स का प्रेसीडेण्ट रह चुका हूँ। ऐसा न हो, कि इस बुढ़ापे में मेरी मिट्टी ख्वार हो।"

"आप इत्मीनान रखिए योर एक्सिलेन्सी।"

"खैर, तो तुम कैप्टिन मूर को मेरे पास भेज दो और तमाम कागज़ात तैयार रखो।"

कर्नल सिर झुका कर चला गया। थोड़ी देर बाद कैप्टिन मूर ने गवर्नर-जनरल के आगे आकर सिर झुकाया।

गवर्नर ने कहा—"कैप्टिन मूर, इस बार तुम्हें ऐसा जोखिम का काम सौंपा जा रहा है, जैसा शायद ही कभी किसी अफसर को सौंपा गया हो। मैं आशा करता हूँ तुम इसे बखूबी अंजाम दोगे।"

"विश्वास रखिए योर एक्सिलेन्सी, मैंने ग्यारह बार अटलाण्टिक पार किया है। एक भी चूक नहीं हुई। इस बार भी न होगी।"

"तुम्हारे पक्ष में मैंने बोर्ड आफ डाइरेक्टर को बहुत कुछ लिख दिया है। और भरोसा रखो कि इस यात्रा के बाद तुम्हारी पैंशन हो जायगी। इसके अतिरिक्त तुम्हें एक अच्छी रक़म इनाम में मिलेगी।"

"मैं आपकी कृपा का सदा आभारी रहूँगा योर एक्सिलेन्सी।"

"तुम्हारे जहाज में तोपें कितनी हैं ?"

"इक्कीस योर एक्सिलेन्सी।"

"सब लम्बी मार की हैं ?"

"सब।"

"और सैनिक ?"

"तीन सौ। सुशिक्षित और हथियारों से चाकचौबन्द।"

"मैं चाहता हूँ। जहाज की रवानगी पोशीदा रहे। तुम तैयारी के लिए कितना समय चाहते हो ?"

"केवल छह घंटा योर एक्सिलेन्सी।"

"ठीक है। छह घंटा पूर्व तुम्हें सूचना दे दी जायगी।"

"लेकिन खजाना बारह घंटा पहले ही जहाज पर पहुँच जाना आवश्यक है।

"ऐसा ही होगा।"

"जनरल नाट तुम्हारे साथ जा रहे हैं।"

"बहुत अच्छा योर एक्सिलेन्सी।"

"क्या तुम समझते हो कि तुम्हारा जहाज सब प्रकार की दुर्घटनाओं का सामना करने में समर्थ है ?"

"मैं तो ऐसा ही समझता हूँ, योर एक्सिलेन्सी।"

"खैर, तो अब तुम जा सकते हो।"

कैप्टिन सलाम कर के चला गया। उसी समय खिदमतगार ने लंच की सूचना दी। गवर्नर-जनरल महोदय लंच को चले गए।

: २९ :

कौन्सिल की गुप्त बैठक

तीसरे पहर कौंसिल की गुप्त बैठक आरम्भ हुई। प्रेसीडेण्ट की कुर्सी पर गवर्नर-जनरल बैठे थे। बैठक अत्यंत गोपनीय और महत्वपूर्ण थी।

मीटिंग में गवर्नर-जनरल के अतिरिक्त तीन व्यक्ति और थे। एक व्यक्ति जनरल नॉट थे—जिन्होंने अफ़ग़ानिस्तान के युद्ध में जय लाभ की थी। दूसरे व्यक्ति गवर्नर-जनरल के पर्सनल एर्टची कर्नल लाग्फोर्ट थे। तीसरे व्यक्ति कौंसिल के सीनियर मैम्बर आनरेबुल—सर मार्स्टडन थे।

गवर्नर जनरल ने कहा—"महाशयो, आज हमें अत्यंत महत्वपूर्ण मामलों पर विचार-विमर्श करना है। मैं आशा करता हूँ—मामले के गुरुत्व का विचार करके आप उपयुक्त परामर्श देंगे। सब से पहले मैं पश्चिमोत्तर सीमा के प्रश्न पर विचार करना चाहता हूँ। हमें गत वर्षों की अपनी महत्वपूर्ण प्रगति के इतिहास पर एक दृष्टि डालनी है। अब से कोई पंद्रह वर्ष पूर्व जब लार्ड विलियम वेंटिङ्क ने गवर्नर-जनरल का पद ग्रहण किया था, तब हम चारों ओर विपत्ति से घिरे हुए थे। कम्पनी के कोष में एक पाई भी न थी। खज़ाना खाली पड़ा था। उस समय हमें बड़े-बड़े निर्णायक युद्ध करने पड़े थे। और नए शत्रु-मित्रों से हमारे मामले उलझे हुए थे। परन्तु लार्ड विलियम वेंटिङ्क के सात वर्षों में कम्पनी राज्य की हालत बहुत सुधरी। लार्ड वेंटिङ्क ने कोई युद्ध नहीं किया। बहुत सी बचत की। देश में शान्ति रही। खजाने में बहुत धन इकट्ठा हो गया। इसके बाद लार्ड आकलेण्ड ने दस वर्षों की शान्ति के बाद ब्रिटिश साम्राज्य की सीमाओं के विस्तार में कदम बढ़ाया। उन्होंने भारत को उल्लंघन करके अफ़ग़ानिस्तान पर हाथ डाला।"

इस पर सीनियर सदस्य ने चिल्ला कर कहा—"यह एक मूर्खतापूर्ण कदम था।"

परंतु गवर्नर-जनरल ने अपना वक्तव्य जारी रक्खा। उसने कहा—"दोस्तो, हमें यह न भूलना चाहिए कि अफगानिस्तान का भारत से पुराना संबंध है। मौर्य काल में वह भारत के साम्राज्य का ही एक भाग था। जब उत्तर के मुसलमानों ने पहले-पहल हिंदुस्तान पर हमले किए तो उनका पहला मोर्चा राजा जयपाल से हुआ। जिसका राज्य चिनाब के तट से ले कर अफ़ग़ानिस्तान की सीमाओं के अंदर फैला हुआ था। इस

के बाद मुगलों के समय में अफ़गानिस्तान मुग़ल साम्राज्य का एक प्रांत रहा। मुग़ल साम्राज्य कमज़ोर होता गया और अफ़ग़ानिस्तान की स्वतंत्र सत्ता मज़बूत होती गई। यहाँ तक कि वहाँ के बादशाह अहमद-शाह अब्दाली ने अंतिम बड़ा आक्रमण भारत पर किया।

इस के बाद बहुत समय तक अफ़ग़ानिस्तान का भारत से संबंध कट सा गया, इसी बीच पंजाब में नई शक्ति का उदय हुआ और रणजीतसिंह ने अफ़ग़ानिस्तान से भारत पर आक्रमण करने का रास्ता ही रोक दिया। जब लार्ड आकलेण्ड गवर्नर-जनरल बने, उस समय ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई कि अफ़ग़ानिस्तान के रास्ते रूस भारत पर हमला कर सकता था। उस समय अफ़ग़ानिस्तान की स्थिति डांवाडोल थी। तब अहमद शाह अब्दाली के वंशज शाहशुजा को हटा कर वरकज़ाई वंश का दोस्त मुहम्मद अफ़ग़ानिस्तान का अमीर बन बैठा और शाहशुजा भाग कर हमारी सुरक्षा में लुधियाने चला आया था।"

सीनियर मैम्बर ने कहा—"उस समय रूस का भूत हमारे सिर पर सवार था।"

गवर्नर-जनरल ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा—"जब ईरान ने हिरात पर आक्रमण कर दिया और दोस्त मुहम्मद ने रूस की ओर नज़र की, और रूस का राजदूत काबुल में जा पहुँचा, तो लार्ड आकलेण्ड निश्चिंत नहीं रह सके। उन्होंने रणजीतसिंह और शाहशुजा से संधि की और ब्रिटिश सेना सिंध के रास्ते अफ़ग़ानिस्तान में घुस कर ग़ज़नी को जीतती हुई काबुल जा पहुँची, दोस्त मुहम्मद भाग गया। और अंग्रेज़ी सरकार ने शाहशुजा को अमीर की गद्दी पर बैठा दिया। यह एक ऐसी महत्वपूर्ण सफलता थी कि जिस से प्रसन्न हो कर बोर्ड आफ डायरेक्टर ने आकलेण्ड को अर्ल बना दिया और मार्शल कीन को लार्ड की उपाधि मिली।

सीनियर मैम्बर ने फिर बात काटी, और तीखे स्वर में कहा—'हिज़ एक्सीलेंसी क्या यह भी कहेंगे कि शाहशुजा से पठान घृणा करते थे,

और वह अंग्रेज़ी संगीनो के बल पर ही अमीर बना रह सकता था । और
इसी लिए उसकी रक्षा के लिए समूची ब्रिटिश सेना काबुल में रक्खी गई
थी, लेकिन अफ़ग़ानिस्तान का बच्चा-बच्चा अंग्रेज़ों का और शाहशुजा का
दुश्मन था, जिसमें एक इज़ाफा यह हुआ था कि गोरे सिपाहीं काबुल की
सुन्दर स्त्रियों की खोज में घूमने लगे और उण्होंने बहुत से पठान परि-
वारो की पवित्रता को नष्ट कर दिया ।"

गवर्नर-जनरल ने सीनियर मेंबर की आलोचना अनसुनी कर के अपना
वक्तव्य आगे को बढ़ाया । उन्होंने कहा—

"जो हो, अफ़ग़ानिस्तान में विद्रोह फूट निकला । अफ़ग़ान जनता
बिगड़ उठी और अंग्रेज़ों पर टूट पड़ी । बर्न्स को उन्होंने घर से घसीट
कर काट डाला, अंग्रेज़ी सेना का स्टोर लूट लिया और सर मेकनोटन
को क़त्ल कर दिया । विवश अंग्रेज़ी सेना के सेनापति अपना सब सामान
अफ़ग़ानों को भेंट कर के सोलह सौ सिपाहियों के साथ भारत को लौटे ।
लौटती हुई इस असहाय अंग्रेज़ी सेना पर कबालिए पठान ऐसे टूटे, जैसे
लाश पर गिद्ध टूटते हैं । सेना के सेनापति वही एलफिंसटन थे जिन्होंने
पेशवा के तख्त को खत्म किया था । परन्तु इस समय वह बूढ़े और
बीमार थे । उन्हें और अन्य अंग्रेज़ अफसरों को अपनी स्त्रियाँ और बाल-
बच्चे बंधक के तौर पर दोस्त मुहम्मद के लड़के अकबर खाँ के हाथ में
देने पड़े, और बाक़ीसिपाही बर्फीले दर्रों में मरने के लिए और कबालियों
की गोलियों के शिकार होने के लिए क़ाबुल से रवाना हुए ।"

सीनियर मेंबर ने चीख कर कहा—"छह जनवरी के दिन क़ाबुल
से जो ये सोलह सौ सिपाही जलालाबाद को चले थे, उनमें से केवल अकेले
डाक्टर ब्राइडन भूखे और घायल लड़खड़ाते हुए जलालाबाद पहुँचे थे ।
यह था उस बेवकूफ़ी का नतीजा, कि जिससे अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई
करने में बेतहाशा रुपया खर्च किया गया और जानें गंवाईं गईं । मिला
केवल अपमान और पराजय ।

गवर्नर जनरल ने शांत और स्थिर वाणी से कहा—"आप ने ठीक

महाशय ! परिस्थितियाँ सदैव बदलती रहती हैं। आपको ज्ञात हो कि काबुल में शाहशुजा को कत्ल कर दिया गया है, और अब हमारे बहादुर जनरल नॉट और जनरल पोलट ने ग़ज़नी और काबुल को फतह कर लिया है और कंधार से जलालाबाद तक बिखरी हुई अफग़ान सेना को तहस-नहस करके बालाहिसार के अजेय किले पर ब्रिटिश झण्डा गाड़ दिया है। और सज्जनों, हमारी विजयिनी सेना बड़ी धूम-धाम से अफगानिस्तान से सोमनाथ के मन्दिर का वह द्वार लेकर आई है जिन्हें महमूद की भग्न क़ब्र गज़नी के खण्डहरों से दुख भरी दृष्टि से देख रही थी। आठ सौ वर्षों का बदला ले लिया गया है।"

सभा भवन इस बार तालियों की गड़गड़ाहट और हुर्रे के हर्ष नाद से गूँज उठा। गवर्नर-जनरल ने कुछ देर ख़ामोश रह कर फिर कहा—"सज्जनो, इस विजयिनी सेना की अभ्यर्थना के लिए मैंने कलकत्ता से फिरोज़पुर तक दौड़ लगाई, जहाँ सजे हुए विजय द्वारों और बैंड बाजों से हमने उन वीरों का सत्कार किया और यह जान कर आप को खुशी होगी कि इस समय उस विजयिनी सेना के सेनापति जनरल पोलक और जनरल नॉट हमारे बीच यहाँ उपस्थित हैं। मैं कम्पनी सरकार की ओर से, अपनी ओर से और आप की ओर से भी उनका अभिनंदन करता हूँ।" एक बार फिर तालियों की गड़गड़ाहट से सभाभवन गूँज उठा। गवर्नर-जनरल ने कुछ देर ख़ामोश रह कर कहा—"और अब इस अवसर पर हम एक गुप्त खज़ाना लंदन को रवाना कर रहे हैं, जो आनरेबुल कम्पनी को भारत की भेंट है।" इतना कह कर उसने अपने अंडर सेक्रेटरी कर्नल लैंगफोर्ट की ओर देखा, उसने सामने का पर्दा हटाया तो सामने लोहे के सात बक्स नज़र आए, जिनके ढकने उघाड़े हुए थे। अंडर सेक्रेटरी ने विवरण सुनाया तो सदस्यों की आँखें आश्चर्य से फैल गईं। तीस मन हीरे, छह करोड़ रुपए नक़द, दो सौ मन सोना और आठ सौ मन चाँदी के अतिरिक्त दिल्ली के मुग़ल शहनशाह का जगत् विख्यात तख्ते-ताऊस भी वहाँ रखा था, जिसकी कीमत सात करोड़ रुपए थी। बहुत देर तक प्रत्येक

सदस्य इस अथाह खज़ाने को देखता रहा। इसके बाद गवर्नर-जनरल की आज्ञा से बक्सों को बन्द कर के उन पर सील मोहर की गई, डिसपैच पढ़ कर सुनाया गया और सब सदस्यों के उस पर हस्ताक्षर लिए गए और कौंसिल का यह गुप्त अधिवेशन समाप्त हुआ।

: ३० :

मोशिए फ्रांके फोर्ते

मोशिए फ्रांके फोर्ते जुआ खाने से बाहर निकल कर सड़क पर दोनों हाथ पतलून की जेब में डाल कर खड़े इधर-उधर देखने लगे। इस समय वे एक क़ीमती काली सर्ज की पोशाक पहने थे। उनका कोट ठीक फ्रेंच कट था, और टोपी ज़रा ऊँची थी। उनका कालर और कफ एक़दम बर्फ जैसा सफेद था। उनकी मूछें और डाढ़ी क़रीने से कटी छटीं थीं। तथा उनके खड़े होने का ढंग अफसराना था। शरीर उनका दुबला पतला और ज़रा लम्बा था। वे एक आँख पर चश्मा लगाए हुए थे। देखने में वे दुबले-पतले दीख रहे थे, पर वास्तव में उनके शरीर में बल बहुत था।

अभी बारह नहीं बजे थे। उन्होंने रास्ते में जलती हुई लालटेन के मध्यम प्रकाश में अपनी घड़ी पर नज़र डाली। इसी समय उन्होंने देखा, टाम हेनरी उनकी बग़ल से होकर आगे निकल गया। अभी-अभी इस नादान छोकरे से मोशिए ने जुऐ के फड़ पर तीन सौ रुपए जीते थे। जेबें खाली होने पर टाम खीझ कर शराबखाने में घुस गया। उसे जाते देख मोशिए ने उसे पुकारा—

"टाम, मिस्टर टाम।"

टाम ने घूम कर कहा—"क्या आपने मुझे पुकारा था?"

"हाँ दोस्त, तुम्हीं को। अभी तुम बच्चे हो, मुझे हैरत है कि मेरे जैसे मंजे हुए जुआरी के साथ तुमने जुआ खेलने की जुर्रत कैसे की? आखिर कौड़ी पाई जो जेब में थी, हार बैठे। अब छूंछे हाथों कहाँ जा रहे हो?"

"लेकिन मोशिए, मुझे आप से कोई शिकायत नहीं है।"

"ठीक है। अभी बच्चे हो। देखो मैंने तुम से तीन सौ रुपए जीते थे—ठीक है न ?"

"बस, इतने ही रुपए मेरे पास थे।"

"अब और कितने रुपए तुम्हारे पास हैं ?"

"अफसोस, अब एक पाई भी नहीं है।"

"तो अब खाली हांथ—यहाँ कलकत्ते में क्या खाओगे ?"

"देखूंगा, किसी दोस्त से उधार लूंगा।"

"क्या तुम अंग्रेज़ हो ?"

"नहीं, आइरिश हूँ।"

"खैर, तो यह लो अपने रुपए। और मेरी दोस्ताना सलाह गांठ बाँध लो, कि अब जुआ न खेलना।"

"यह क्या मोशिए, मैंने तो खुले फड़ पर दाव पर रुपया हारा है, उस पर आप का हक़ है।"

"नहीं दोस्त। मेरा तुम्हारा कोई जोड़ ही नहीं। तुम शायद नहीं जानते, यूरोप भर में मैं ऐसा जुआरी हूँ, कि जिस से जीतना किसी मंझे हुए जुआरी को भी संभव नहीं है, तुम तो ठगे गए। लो सम्हाल लो रुपए। और सीधे डेरे पर चले जाओ। कहीं शराब न पीने लगना। यहाँ कलकत्ते में बेहद ठग, उठाईगीर और गिरहकट घूमते हैं। दिन दहाड़े यहाँ आदमी की गांठ कटती है। अब यह तो आधी रात का वक्त है।"

रुपए उन्होंने तरुण की हथेली पर रख दिए। कृतज्ञता से तरुण का हृदय भर गया। उसने कहा – "मोशिए, आपकी सज्जनता और उदारता याद रखूंगा। और कभी कोई सेवा कर सका तो प्रसन्न होऊँगा। अब मैं चला—गुड बाई।"

"गुड बाई, मेरे नन्हें दोस्त। गुड बाई।"

नौजवान को बिदा करके उन्होंने सिगरेट जलाई। फिर अपने चारों ओर देखा।

एक आदमी उन से दस गज के अन्तर पर खम्भे से चिपका खड़ा

था। उसे देखते ही वे एक तरफ को चल दिए। वह आदमी भी उनसे कुछ दूर उनके पीछे-पीछे चला। जब बिल्कुल एकान्त स्थान आ गया तो वह रुक गए, उस व्यक्ति ने आगे बढ़ कर उन्हें नमस्कार किया! नमस्कार का उत्तर देकर उन्होंने कहा—"क्या खबर है?"

"खबर बहुत खराब है मोशिए।"

"खैर कहो?"

"तीन आदमी गिरफ़्तार करके पेड़ों पर फांसी पर लटका दिए गए।"

"और?"

"शेष पांच का वारंट है।"

"मेडम का और मेरा भी वारंट है?"

"जी हाँ, मोशिए, हुक्म यह है, ये लोग जहाँ मिलें तुरन्त फांसी पर लटका दिए जायें।"

"मेडम कहाँ है?"

"उसी स्थान पर। शेष लोग इधर-उधर बिखरे हुए हैं। पर मैं उन्हें आप का आदेश पहुंचा सकता हूँ।

"हुगली में हमारा छिप आ गया है?"

"जी हाँ।"

"सर्वथा सुरक्षित है, कोई शक तो नहीं?"

"नहीं, चुंगी वालों ने उसे डच व्यापारी नौका समझा है। माल की चुंगी दे दी गई है।"

"छिप में कितने आदमी हैं?"

"पचास।"

"सब सशस्त्र है न?"

"जी हाँ, मोशिए।"

"छिप पर अफसर कौन है?"

"कप्टिन—मास्कटन।"

"गवर्नर-जनरल कलकत्ते कब तक लौट रहे हैं?"

"वे लौट आए हैं। और लौट कर आज ही तीसरे पहर उन्होंने कौंसिल की एक गुप्त मीटिंग की है।"

"कुछ कह सकते हो, मीटिंग का क्या उद्देश्य था ?"

"जी हाँ, एक निहायत ज़रूरी खरीता कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को भेजा जा रहा है।"

"किस सम्बन्ध में ?"

"उसी गुप्त खज़ाने के सम्बन्ध में, जो इंगलैंड भेजा जा रहा है।"

"खामोश, खरीते में उस जहाज़ का नाम भी लिखा है ?"

"जी हाँ, और खज़ाने का ब्यौरा भी है।"

"खरीते की नक़ल हासिल हुई ?"

"यह है मोशिए।"

उसने एक बंद लिफ़ाफा मोशिए के हाथ में दे दिया। मोशिए ने सावधानी से उसे जेब में रखते हुए कहा—"वह पहाड़ी तुम ने देखी है ?"

"अच्छी तरह मोशिए।"

"तो मैडम और सब लोगों को जितना शीघ्र हो, वहीं पहुँचने को कह दो। और तुम इस जहाज़ और उस पर जाने वाले खज़ाने के सम्बन्ध में सारी हक़ीकत मालूम करो और कोशिश करो कि हमारे कुछ आदमी उस जहाज़ पर नौकर हो जाएं।"

"बहुत अच्छा, और कुछ हुक्म है ?"

"कल रात इसी समय यहीं मिलो।"

"कल रात नहीं मोशिए, तीसरे पहर।"

"तीसरे पहर क्यों ?"

"वह खरीता कल रात ही एक विशेष जहाज़ में यहाँ से रवाना हो जायगा।"

"ओह, तब तो बात ही जुदा है। वह खरीता तो हमारे क़ब्जे में आना ही चाहिए। तुम तीसरे पहर इसी मुक़ाम पर मेरी प्रतीक्षा करना।"

"जो आज्ञा।"

"वहाँ मुझे मेरा घोड़ा मिल जाएगा ?"

"अवश्य, पर मोशिए, आप का उधर जाना खतरे से खाली नहीं है।"

"क्यों ?"

"वहाँ हमारे आदमियों पर संदेह किया जा रहा है। वह आरमीनियन अभी एक घण्टा हुआ गिरफ़्तार हो चुका है। भय है कि उसने कुछ कच्ची बातें न कह दी हों ? बेहतर है आप डोंगी से हुगली पार कर लें और वहाँ से कोई घोड़ा ले लें।"

"ख़ैर, तो हुगली पर कोई डोंगी इस समय मिल जाएगी ?"

"बहुत सम्भव है, क्या मैं देखूँ ?"

"नहीं, तुम अपना काम करो। मैं देख लूँगा।"

"कोई और आदेश है मोशिए ?"

"नहीं।"

वह पुरुष धीरे-धीरे मैदान पार करता हुआ हुगली की ओर चला। दूसरा पुरुष तेज़ी से चक्कर काटता हुआ गलियों में घुस गया।

: ३१ :

मेडम-ड-ज़ीन

इस समय जिस स्थान को आप धर्मतल्ला के नाम से पुकारते, जानते हैं और जो कलकत्ते का सब से शानदार बाज़ार है, उस समय वह एक साधारण छोटी-सी बस्ती के रूप में था। वहाँ बहुत-सी छोटी-छोटी कच्ची दीवारों की कोठरियाँ बनी थीं। जिन पर खपरैल के छप्पर पड़े थे। इन घरों के दरवाज़े भी बहुत छोटे थे। तथा मकानों के बीच में तंग गलियाँ थीं। इन मकानों में प्रायः परदेशी लोग रहते थे। बंगालियों की आबादी से यह बस्ती दूर थी। इनमें आरमीनियन, डच, पोर्चुगीज़ और कुछ अंग्रेज़ रहते थे। जो या तो छोटे-छोटे स्वतंत्र रोज़गार करते थे, या चोरी-डकती या जाल बनाने का काम करते थे। बस्ती में लगा हुआ एक छोटा-सा जिमखाना भी था, जहाँ साहब लोग आ कर शराब पीते या

बैठ कर ताश खेलते और गप्पें लड़ाते थे। परन्तु सच पूछा जाय तो वह शराबखाना कहने भर को ही शराबखाना था। उसके एक गुप्त भाग में रात-दिन जुआ होता था। जहाँ हर वक्त कलकत्ते के विदेशी गुण्डे जुटे रहते थे। बहुधा उनकी परस्पर मारपीट और गाली-गलौज भी हो जाया करती थी। पर ये सब बातें इतनी साधारण थीं कि लोग इन बातों पर ध्यान ही नहीं देते थे। इस शराबखाने को चलाने वाला एक अरब था, जो आबनूस के कुदे की तरह काला और तोप की तरह मोटा था। यह जल्दी-जल्दी अरबी, हिब्रू, आरमीनियन और अंग्रेज़ी भाषा टूटी-फूटी बंगला के साथ बोलता था।

काउण्टर पर, जहाँ यह अरब शैतान बैठता था, उसके पीछे ही एक छोटा-सा दरवाज़ा था, जिस पर एक मोटा काला पर्दा सदा पड़ा रहता था। इस दरवाज़े के बाद एक छोटा-सा अंधकारपूर्ण कमरा था।

एक आरमीनियन शराबखाने में आया, उसने क्षण-भर इधर-उधर देखा, फिर उस अरब से चुपचाप कुछ संकेत किया और अरब ने उसे काउण्टर के भीतर ले लिया। वह वहाँ न रुक कर फुर्ती से दबे पाँव उस द्वार कीं ओर बढ़ा। उसने पर्दा हटाया और पुराने किवाड़ों को धकेल कर भीतर घुस गया। दरवाज़ा उसने पीछे से बंद कर लिया।

एक धीमी आवाज़ उसके कान में आई।

"शैतान, इतनी आवाज़ क्यों करता है, क्या किसी ने तुझे यहाँ आते देखा है?"

"जी नहीं। मैंने दो-तीन जगह रुक-रुक कर अच्छी तरह देख लिया था।"

"व्लॉडक कहाँ है?"

"अपनी जगह पहरे पर तैनात है।"

"और बाहर के फाटक पर कौन है?"

"कार्नस है।"

"क्या तू समझता है कि तुझे किसी ने नहीं देखा, और किसी ने तेरा

पीछा नहीं किया ?"

"मैं तो यही समझता हूँ ।"

"दरवाज़ा तूने ठीक बंद किया है ?"

"जी हाँ, आप इतमीनान रखें ।"

"तो रोशनी कर ।"

उस आदमी ने टटोल कर बगल का लैम्प जला दिया । लैम्प का धीमा प्रकाश उस मनहूस कमरे का जैसे विद्रूप बखानने लगा । कमरे की दीवारें बहुत गन्दी और खस्ता हाल थीं । वहाँ एक टूटी चारपाई पड़ी थी, दो-तीन काठ की तिपाइयाँ और एक बेडौल मेज रखी थी । मेज पर शराब की दो-तीन बोतलें और एक गिलास रखा था । तिपाई पर एक औरत बैठी थी ।

औरत के बाल लाल और चेहरा दुबला-पतला था । इस समय उसके बाल खुले थे । उनमें कंघा नहीं किया गया था । उसकी आँखें गोल और कुछ फटी-फटी थी, ओठ पतले थे । औरत के कपड़े मैले और अस्त-व्यस्त थे । लेकिन उस की आँखें अंगारे की भाँति दहक रहीं थी । यह संभव ही नहीं हो सकता था कि कोई उन आँखों की ओर देख सके । औरत की आयु पैंतीस या चालीस की होगी । इस समय वह एक प्रकार से अधनंगी हालत में वहाँ बैठी शराब पी रही थी ।

उसने चुरुट निकाल कर जलाई । फिर दो-चार कश लगा कर धीरे से बोली—

"क्या हुआ ?"

"तीनों फाँसी पर लटका दिए गए ?"

"हुँ, और दूसरे लोग ?"

"बच कर निकल भागे ।"

"मोशिए ?"

"अपने काम पर हैं ?"

"अब कितना बजा है ?"

में छिपती हुई नाव जहाज़ से बहुत दूर निकल गई। नाव पर कोई हथियार न था। कुछ खाने-पीने की चीज़ें और एक पीपा पानी था।

नरी ने कहा—"यह क्या मोशिए, बिना हर्बे-हथियार ?"

मोशिए ने हँस कर कहा—"बिना हथियार क्यों ? हमारी पिस्तौलें तो हैं ?" हेनरी हँस दिया—

नाव बहती चली। पहाड़ियाँ निकट आने लगीं। बीच समुद्र में ये पहाड़ियाँ सीधी खड़ी थीं। इनके बीच एक तंग रास्ता था। जिस में हो कर नाव खुले समुद्र में पहुँच सकती थी। हेनरी बड़ी होशियारी से नाव लिए जा रहा था। धीरे-धीरे नाव चट्टानों के पास पहुंच गई। और उस गली में घुसी। इसी समय मोशिए ने पिस्तौल निकाल कर गोली दाग दी। हेनरी की खोपड़ी चकना-चूर हो गई। डाँड उसके हाथ से छूट गए—वह चक्कर खा कर समुद्र में गिर पड़ा। एक बार मोशिए ने अपने पीछे समुद्र गर्भ में जाते हुए इस तरुण अंग्रेज को देखा। फिर उन्होंने पीने का पानी और खाने का सामान भी समुद्र में फेंक दिया, पिस्तौल भी फेंक दी।

अब वह दोनों हाथ-पैर फैला कर नाव पर लेट गया। नाव अब खुले समुद्र में बिना मस्तूल, बिना दिशा सूचक यंत्र और बिना किसी प्रकार के अन्य साधन के इधर-उधर लुढकने वाले घोंघे के समान घूम रही थी।

सामने ही अंग्रेजी जहाज़ लंगर डाले पड़ा था। थोड़ी ही देर में उन की नज़र नाव पर पड़ी। नाव असहाय है। उस पर एक आदमी भी पड़ा है। मृत है या जीवित—यह नहीं कहा जा सकता। कप्तान मूर ने तत्काल ही सहायता की नाव भेज दी, और मोशिए बहुत आसानी से अंग्रेज़ी जहाज़ पर आ गए। दुर्घटना का एक किस्सा उन्होंने सुना दिया—और बीमारी और कमज़ोरी का बहाना करके पड़े रहे।

इस समय अंग्रेज़ों और फ्रेंचों में कहीं भी युद्ध नहीं हो रहे थे। इस

लिए मोशिए का अंग्रेज़ी जहाज़ पर अच्छा सत्कार हुआ। अपने सौजन्य, शिष्ठाचार तथा व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण वे थोड़ी ही देर में कप्तान मूर और जनरल नाट के मित्र बन गए। उन्होंने एक वैरन कह कर अपना परिचय दिया। इस का परिणाम यह हुआ कि डिनर की टेबुल पर प्रसिद्ध डाकू मोशिए, फ्रांक-फोर्ते, जनरल नाट और कैप्टेन मूर के साथ डिनर ले रहे थे। वे प्रत्येक बात का शालीनता से उत्तर देते और सभ्य-शिष्ट अंग्रेज़ी भाषा बोल रहे थे। बारम्बार अपनी प्राण रक्षा के लिए कैप्टेन और जनरल को धन्यवाद दे रहे थे।

अस्वस्थ और कमज़ोर होने का बहाना करके मोशिए जल्द ही अपने कैबिन में सोने को चले गए। किसी को उन पर डाकू होने का सन्देह नहीं हुआ। परन्तु जहाज का पूरा नक्शा मोशिए के पास था। उसे निकाल कर उन्होंने ध्यान से उसे देखा। बड़ी देर तक वे उसे देखते रहे।

समुद्र शाँत था। और जहाज़ पर सन्नाटा था। एक सिपाही पहरा दे रहा था। रात भर इतमीनान से मोशिए सोए। इस से वे तरोताज़ा हो गए। पिछली रात वे चुप-चाप उठे। पहरेदार को देख उसके पास जा खड़े हुए। पहरेदार ने उन की आवभगत देख ली थी। उसने उन्हें सलाम किया। मोशिए ने उसे एक उम्दा सिगरेट दिया। ज्यों ही वह सिगरेट जलाने को झुका। मोशिए का छुरा उस की पीठ में घुस कर कलेजे को पार कर गया। एक शब्द भी उसके मुँह से नहीं निकला। मोशिए ने लाश समुद्र में धकेल दी। खून के दाग़ मिटा दिए। अब वे तेज़ी से नीचे उतर गए। वे सीधे वहाँ पहुँचे जहाँ तोपें ज़ंजीरों से बँधी हुई थीं। उन्होंने अपने गुप्त औज़ारों की सहायता से एक तोप के बंधन खोल दिए। और दवे पाँव ऊपर अपने कैबिन में घुस गए। किसी ने भी उन्हें देखा नहीं। न किसी का ध्यान पहरेदार के ग़ायब हो जाने पर था।

*　　　　*　　　　*

जहाज़ की आवश्यक मरम्मत हो चुकी थी। और सूर्योदय के साथ ही जहाज़ मन्थर गति से अपनी राह चल दिया था। कैप्टेन के कैबिन में जनरल नाट, कैप्टेन मूर और मोशिए नाश्ता कर और इधर-उधर की बातें कर रहे थे।

कैप्टेन कह रहे थे—"आसार अच्छे नज़र नहीं आते। हवा तेज़ हो रही है। आसमान में बादल छा रहे हैं। तूफान आयगा।"

"लेकिन आप के जहाज़ को क्या भय है कैप्टेन, जहाज़ काफी मज़बूत है। और आप तो बड़े-बड़े तूफानों का मुकाबला कर चुके होंगे।" मोशिए ने हँसते हुए कहा।

"ओह, बहुत।"

"तो एकाध के हालात सुनाइए, मुझे इन बातों से बहुत दिलचस्पी है।"

"तो आप भी समुद्री यात्राओं के शौकीन हैं। अच्छा, सुनिए एक बार........"

कैप्टेन की बात मुँह में रह गई। एक ज़ोर का धड़ाका हुआ। सारा जहाज़ बुरी तरह हिल गया।

कप्तान और जनरल लपक कर बाहर आए। देखा—सारे गोलेबाज़ ऊपर की ओर भागे आ रहे हैं।

कप्तान ने सरदार मेट से पूछा—"माजरा क्या है वाटसन ?"

"ओह कैप्टेन, गज़ब हो गया। तोपखाने की एक तोप न जाने कैसे खुल गई, वह बुरी तरह लुढ़क रही है। किसी तरह कब्जे में नहीं आ रही।"

कप्तान का मुँह भय से पीला पड़ गया। जनरल के माथे पर भी चिन्ता की रेखाएँ उभर आईं। मोशिए ने चटपट खड़े हो कर कहा—"हमें धैर्य से इस विपत्ति का सामना करना चाहिए।"

"निश्चय मोशिए," जनरल नॉट और कैप्टेन नीचे की ओर दौड़ चले। मोशिए भी चले। परन्तु उन्होंने जहाज़ के एक ओर जा कर सब की

नज़र बचा कर एक संकेत किया—फिर उन्होंने आकाश की ओर देखकर हाथ मले—और लपकते हुए नीचे को झपटे।

एक भयंकर विनाशक दृश्य सम्मुख था। बंधन से खुली हुई तोप भयानक राक्षसी का रूप धारण कर चुकी थी। उसके पहिए चारों ओर तेजी से घूम रहे थे। और वह गेंद की तरह लुढ़क कर दूसरी तोपों तथा जहाज की दीवारों को आहत कर रही थी। वह इधर से उधर जाती, जहाज के एक सिरे से दूसरे सिरे तक लपकती, और मस्त हाथी की तरह दीवारों से टक्कर मार रही थी। डेढ़ सौ मन की वह भयानक वजनी चीज़ बच्चों की गेंद की तरह उछल कर धड़ाम से किसी दूसरी तोप से या दीवार से टकरा कर उसे चकनाचूर कर रही थी। सब से पहला वार उसने गोलदाजों पर किया था, जो वहाँ काम कर रहे थे। वे सब पहली ही चपेट में चटनी हो गए थे।

जहाज बुरी तरह हिल रहा था। इसी समय तूफान का वेग भी बढ़ चला। और समुद्र की लहरें पहाड़ की चट्टानों की भाँति जहाज से टकराने लगीं। सारे जहाज पर चीख पुकार मची हुई थी, और सब व्यवस्था भंग हो गई थी। जहाज बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो चुका था। तथा सारी ही तोपें नष्ट भ्रष्ट हो गईं थी। कैप्टेन और जनरल सीढ़ी पर खड़े हक्का-बक्का मुँह बाए खड़े थे। उन्हें कुछ करते नहीं बन पड़ रहा था। जो लोग मर गए थे, उनके शवों को निरन्तर तोप के पहिए पीस रहे थे। बड़ा ही भयंकर दृश्य था। लोग—रस्से—पाल—गांठें, लकड़ी लोहा जो हाथ लगे फैंक रहे थे, जिस से पहिया लुढ़कने से रुके। इन वस्तुओं की चिंदिया उड़ गईं थीं। अब तूफान में जोर भर गया था, भीतर तोप चोट कर रही थी, और बाहर तूफान ग़जब ढा रहा था। सब के सामने प्रलय दृश्य था। इसी समय बाहर एक धड़ाका हुआ। ऐसा प्रतीत हुआ कि जहाज अब अतल में धंसा।

प्रधान मेट ने आकर इत्तला दी—कप्तान, समुद्री डाकुओं ने जहाज पर हमला किया है। कप्तान और जनरल ऊपर दौड़ चले।

"सवा सात ?"

इसी समय द्वार पर किसी के पैरों की आहट सुनाई दी। औरत ने सिगरेट बुझा दी और हाथ में पिस्तौल ले ली। वह आदमी भी लैम्प की रोशनी बुझा—एक लंबा छुरा वस्त्रों से निकाल अंधेरे में चुपचाप खड़ा हो गया।

एक आदमी कमरे में घुसा। घुसते ही उसने कहा—"गुड ईवनिंग मेडम ?"

"खैर, तो तुम्हीं हो न ?"

"मैं ही हूँ।"

स्त्री ने पहले आए हुए आदमी से कहा—"रोशनी कर दो।" उसने स्वयं दियासलाई से सिगरेट जलाई। दियासलाई के क्षणिक प्रकाश में उस आदमी की एक झलक दीख गई। आदमी काफी मोटा-ताजा और उम्दा अंग्रेज़ी पोशाक पहने था, दूसरे आदमी ने फिर लैम्प जला दिया।

वह आदमी एक तिपाई खींच कर टेबुल के पास बैठ गया और बोतल से शराब उंड़ेल कर दो गिलास गटागट पी गया। फिर गिलास मेज पर रख कर उस स्त्री की ओर देखने लगा। स्त्री ने प्रथम आए आदमी से कहा—"तुम जाओ और अपना काम पूरा करो।"

वह आदमी स्त्री को सलाम करके चल दिया।

अब नवागन्तुक ने अपनी मोटी-भद्दी आवाज़ में कहा—

"ओफ बेहद गर्मी है। हिन्दुस्तान में रहना दोजख में रहना है।"

"काम की बात कहो।"

"सब ठीक है मेडम। लेकिन बहुत दौड़ना पड़ा, खयाल कीजिए एक हफ्ते तक।"

"इन बातों से कोई बहस नहीं। इसके लिए तुम्हें तनख्वाह मिलती है।"

"धन्यवाद मेडम, तनख्वाह की बाबत मुझे कोई शिकायत नहीं है। लेकिन अब आप का यहाँ एक मिनट भी ठहरना खतरे से खाली नहीं है।"

"मैं जानती हूँ, उन्होंने हमारे तीन आदमी फाँसी पर लटका दिए हैं। और अब वे हमारी तलाश में हैं। खैर, जहाज़ इसी सनीचर को छूट रहा है।

"हाँ मेडम, ठीक साढ़े आठ बजे।"

"मोशिए ठिकाने पर पहुँच गए।"

"मुझे विश्वास है। उन्होंने तुरन्त ही आप को बुलाया है। वह पहाड़ी आप जानती हैं ?"

"हाँ जानती हूँ। दूसरा काम ?"

"वह भी टंच है।"

"कैप्टिन कहाँ है ?"

"बाहर सड़क के उस मोड़ पर आप की प्रतीक्षा कर रहा है।"

"क्या किसी ने उसे देखा नहीं।"

"जी नहीं। वहाँ काफी अंधेरा और सन्नाटा है।"

"क्या उसे मालूम है कि उसे क्या करना है ?"

"हाँ मेडम, मोशिए ने उसे सब समझा दिया है। मेरा ख्याल है वह काफी होशियार है।"

"खबरदार। अपना ख्याल अपने पास रखो और जो हुक्म तुम्हें दिया जाय उसी पर ध्यान दो। याद रखो, ज़रा भी दग़ा की कि गोली खोपड़ी को चूर-चूर कर देगी।"

"यस मेडम, मैं आपका आज्ञाकारी सेवक हूँ।"

"ओफ, साढ़े सात हो गया, अब मुझे चलना चाहिए।" वह उठ खड़ी हुई। वह व्यक्ति भी उठ कर खड़ा हो गया।

वह कमरे के भीतरी भाग में चली गई। वहाँ उसने अपनी पोशाक बदली। कीमती फ्रेंच फैशन की रेशमी पोशाक पहनी। चेहरे पर काले रेशम की नकाब डाली। उसने एक बार नख-शिख तक अपने शृंगार को देखा। बाल भी उसने फ्रेंच महिलाओं जैसे बनाए। अब वह एक अत्यंत

भव्य और आकर्षक महिला थी। उसने देर तक आइने में अपनी छवि देखी। उस व्यक्ति ने अदब से सिर झुकाया।

"क्या गाड़ी अपनीं जगह पर तैयार है ?"

"तैयार है मेडम।"

"तो तुम क्लौडक और कार्नस को कह दो कि ज़रा दूर रह कर मेरे पीछे चलें। और आवश्यकता होते ही अपनी तलवार और पिस्तौल काम में लाए और तुम मेरे दूसरे आदेश की प्रतीक्षा करो।"

वह मुड़ी और चोर दरवाज़े से बाहर निकल गई। वह आदमी कुछ देर चुपचाप उस मनहूस कमरे में खड़ा रहा। फिर वह सामने के दरवाजे से बाहर आया। एक बार उसने उस अरब की ओर देखा, मुस्कराया और तेजी से बाहर हो गया।

: ३२ :

तलवार की धार पर

मोशिए फ्रोंके फोर्ते कुछ ही क़दम आगे बढ़े थे कि उन्हें प्रतीत हुआ कि कोई आदमी उनका पीछा कर रहा है। उन्होंने तलवार की मूठ पर हाथ डाला। पर रुके नहीं, बढ़े चले गए। पीछा करने वाला साहस करके आगे बढ़ा। जब मोशिए ने देखा कि पीछा करने वाला कोई दस हाथ के अन्तर पर रह गया है तो झट तलवार निकाल घूम कर खड़े हो गए।

पीछा करने वाले ने भी तलवार निकाल ली। उसने कहा—"मोशिए, यदि वह कागज़ मेरे हवाले कर दें तो लड़ाई टंटे की कोई बात ही नहीं है।"

"ओह, तो तुम कोई साधारण डाकू नहीं हो, हौसले के आदमी हो।"

"बिलकुल तुम्हारी ही भाँति मोशिए, बस अन्तर इतना ही है कि आप फ्रैन्च हैं, और मैं डच।"

"तुम मशहूर डाकू फर्डिनेंड तो नहीं हो ?"

"आपने खूब पहचाना मोशिए फोर्ते। जैसे आप नामी गिरामी चोर

जालिए और जुआरी हैं, वैसा ही में भी समुद्री डाकू हूँ। लाइए, वह कागज़ मुझे इनायत कीजिए।"

"तुम जैसे मशहूर समुद्री कुत्ते के लिए मेरी यह तलवार हाजिर है।"

उन्होंने उछल कर पैंतरा बदला।

दोनों तलवारें गुथ गईं। दूसरे व्यक्ति ने भी पैंतरा बदल कर हँसते हुए कहा—"आप बड़े बुद्धिमान् हैं मोशिए, तलवार की लड़ाई ही ठीक है, इस में शोर नहीं होता। पिस्तौल चलाने में बहुत झंझट है।"

मोशिए को शीघ्र ही ज्ञात हो गया कि प्रतिद्वन्दी साधारण व्यक्ति नहीं है।

दोनों डाकू घातक युद्ध में रत हो गए। उनकी तलवारें क्षण-क्षण पर तारों के प्रकाश में बिजली सी चमकने लगीं।

मोशिए को जल्दी भी थी—और वह युद्ध करने की अपेक्षा भागना ज्यादा ठीक समझ रहे थे। पर प्रतिद्वन्दी उनके लिए भारी पड़ रहा था। कि इसी क्षण डंडे का एक भरपूर हाथ प्रतिद्वन्दी के सिर पर पड़ा। और वह मूर्च्छित हो कर भूमि में गिर गया। मोशिए ने घूम कर देखा, तो कहा—"शाबाश, तुम ठीक मौके पर पहुँचे।"

मैंने इसे आपका पीछा करते देख लिया था। इसी से मैं इसके पीछे लगा।

"इस का इनाम तुम्हें कल मिलेगा। अभी इस आदमी को सावधानी से रोक रखो।"

"आप निश्चित रहें मोशिए?" यह कह कर उस आदमी ने एक मज़बूत रस्सी निकाल उस मूर्च्छित डाकू के हाथ पैर कस कर बाँधे, और कन्धे पर उठा एक ओर को चल दिया। मोशिए फिर तेजी से हुगली की ओर बढ़े। तलवार उन्होंने अपने वस्त्रों में छिपा ली।

हुगली तट पर अंधेरा हो रहा था। परन्तु क़िनारे पर बहुत सी डोंगिएँ, छिप, नावें लगा थीं, एक छोटी सी डोंगी में एक मछेरा सो रहा था। मोशिए ने कहा—"उस पार पहुँचाने से पांच रुपया बख्शीस मिलेगा।"

मछेरा उठकर खड़ा हो गया। उसने सलाम करके कहा—"साहब, ज्वार आ रहा है, पर आप आइए अभी पहुँचाता हूँ।" मोशिए को जल्दी थी। वह नाव में जा बैठे। वहाँ जाकर देखा—एक और छोकरा वहां सो रहा है। मछेरे ने उसे लक्ष्य करके कहा—"अबे उठ पाजी, देखता नहीं, ग्राहक है। दौड़ कर जा, बड़ी नाव घाट पर ले आ। उस पार जाना है।"

छोकरा कोई पन्द्रह सोलह बरस का था।

"अभी लाता हूँ।" कह कर वह छोकरा दो तीन नाव लांघता हुआ बन्दर की तरह चला गया।

थोड़ी देर में ही एक बड़ी नाव घाट पर आ लगी। मोशिए नाव पर चढ़ कर आश्वस्त हुए। बीच में मोशिए बैठे, अगल बगल मछेरा और वह छोकरा। छोकरे ने नाव को ठेल कर डाँड़ को सम्हाला।

माझी ने कहा—"बदमाश, होशियार रह। ज्वार आ रहा है।"

"फिक्र न करो बाबा, चुटकियों में उस पार पहुँचाता हूँ।"

नाव तेजी से नदी की धार पर बह चली। नदी पर घोर अन्धकार छाया हुआ था। कोहरा भी गहरा था। न चन्द्रमा का प्रकाश था, न तारे ही नजर आते थे। बदली से आकाश ढका था। नदी किनारे की झोंपड़ियों में जो प्रकाश हो रहा था, वह धीरे-धीरे दूर होता जा रहा था।

एकाएक मोशिए ने देखा, नाव बीच धार में पहुँच कर किनारे की ओर न जा कर नीचे बहाव की ओर जा रही है।

एक भय की लहर उनके रक्त में दौड़ गई। उन्होंने कहा—"नाव तो धारा में बह रही है।"

माझी ने चिल्ला कर कहा—"अबे गधे, बाएं खे, बाएं।" फिर मोशिए की ओर देख कर हँसते हुए कहा—"सॉब, नाव धारा में बह गई है। ज्वार का वेग बढ़ रहा है।"

अभी मोशिए संदेह से माझी की बात पर विचार कर ही रहे थे कि उन्होंने देखा, कोई काली-काली वस्तु निकट आ रही है। उन्होंने भीत मुद्रा से कहा—

"वह क्या है ?"

"कोई नाव है।"

"वह तो इधर ही आ रही है। ठहरो, उसपर तीन आदमी बैठे हैं।
मोशिए ने झटपट पिस्तौल निकाल ली।

अभी कठिनाई से पिस्तौल उन्होंने हाथ में ली ही थी कि माझी ने एक ज़ोर का झटका उनके हाथ पर मारा। पिस्तौल उनके हाथ से छूट कर पानी में जा गिरी। माझी उछल कर मोशिए की गर्दन पर चढ़ गया।

किंतु मोशिए में अपार बल था। उन्होंने माझी को नाव में पटक दिया। लड़का झट बाप की मदद को आ गया। उसे मोशिए ने एक लात मारी, इसी समय वह नाव भी इस नाव से आ लगी। तीनों आदमी नाव पर चढ़ आए। मोशिए ने उछल कर तलवार निकाल ली।

अब उन्होंने देखा नव ागन्तुक तीनों ही विदेशी हैं। उन्होंने भी तलवार निकाल कर उन्हें तीन ओर से घेर लिया।

एक ने मोशिए के कंधे पर तलवार रख कर कहा—"मोशिए, वह काग़ज़ हमें दे दो।"

मोशिए एकदम उछल कर नाव के दूसरे छोर पर आ गए और एक आदमी को उन्होंने घायल कर दिया। वह कराह कर पानी में गिर गया।

इस समय बहुत से आदमियों की उछल-कूद से नाव डगमगाने लगी थी। माझी ने डांड सम्हालते हुए लड़के से कहा—"पाजी, नाव को ठीक से रख, नहीं तो नाव उलट जायगी।"

इस बीच मोशिए ने और एक आदमी को धराशायी कर दिया। अवसर पा कर उन्होंने एक हाथ माझी पर भी मारा। माझी अंतर्नाद करता हुआ पानी में गिर गया, इसी समय मोशिए शेर की तरह तीसरे आदमी पर टूट पड़े। अब उसके बोझ का नाव न सम्हाल सकी नांव उलट गई।

मोशिए ने एक गहरी डुबकी लगाई और बहाव से ऊपर बहुत दूर पानी से सिर निकाला। चारों ओर कहीं कुछ भी नहीं दीखा तो वह जल्दी-जल्दी हाथ मार कर उस पार जा लगो।

उस पार सनाटा था। थोड़ी ही दूर कुछ मछली मारने वालों की झोंपड़ियाँ थीं। मोशिए उधर न जा कर ऊपर ही ऊपर बस्ती की ओर चले। वे चलते चले गए। धीरे-धीरे सुबह की सफेदी आकाश में फैल गई। एक गाँव आ गया। वहाँ एक वृक्ष के नीचे बैठ कर वह सुस्ताने लगे। उन्होंने देखा—उस स्थान से कुछ ही अंतर पर कुछ आदमी विश्राम कर रहे हैं। पहले तो उन्हें संदेह हुआ। शंकित चित्त से तलवार की मूँठ पर हाथ डाले। उनकी ओर बढ़े पर इसी क्षण मेडम पर उनकी नज़र पड़ी। प्रसन्न हो कर उन्होंने पुकारा—"मेडम, मेडम।"

मेडम-ड-जीन ने निकट आ कर कहा—"खुदा का शुक्र है मोशिए, मैं तुम्हें सहीसलामत देख रही हूँ। मैं तो समझ बैठी थी, तुम फंस गए, और उन्होंने तुम्हें फांसी पर लटका दिया।

मोशिए ने फीकी हँसी हँस कर कहा—"खैर, अब हमें यहाँ समय नष्ट न कर कूच बोल देना चाहिए।"

"हम तैयार हैं।"

: ३३ :

साहसिक अभियान

हवा में ठंड बढ़ती जा रही थी, और यह छोटी-सी मंडली चुपचाप पहाड़ी ऊबड़-खाबड़ संकरीली राह पर बड़े कष्ट से बढ़ रही थी। वे दिन-भर चलते रहे थे, और अब सूर्य तेज़ी से अस्ताचल की ओर जा रहा था। विश्राम की उन्हें अत्यन्त आवश्यकता थी। पर मोशिए फ्रेंको बराबर बढ़ते जा रहे थे। उनके पास केवल दो घोड़े और एक देशी टट्टू था। अपना घोडा मोशिए ने एक बीमार बूढ़े को दे दिया था। दूसरे पर मेडम

सवार थी। टट्टू पर ज़रूरी सामान लदा था। सारी मंडली में छह पुरुष और एक स्त्री थी। आज उन्होंने न भोजन किया था न विश्राम। वे केवल चलते जा रहे थे। बूढ़ा आदमी फ्रेंच भाषा में अंग्रेज़ों को गालियाँ बकता जा रहा था। वह कलकत्ते के सब अंग्रेज़ों को गोली से उड़ा देना चाह रहा था। एकाएक मेडम ने घोषणा की, कि वह अब आगे नहीं जायगी। उसने अपना घोड़ा रोक दिया। मोशिए ने आगे बढ़ कर कारण पूछा तो मेडम ने कहा—'आज रात हम यहीं काटेंगे। उपयुक्त स्थान है, एकदम वीहड़ और फैला हुआ मैदान। तीन ओर ऊँची-ऊँची चट्टानें नंगी, जैसे दीवार, चौथी ओर दूर तक ढालू पठार।"

मोशिए ने कहा—"अभी तो हम ने आधा रास्ता भी पार नहीं किया। अभी सूरज की रोशनी भी है। इसके अलावा अभी हम खतरे से बाहर भी नहीं हैं।"

"लेकिन अभी हमें कलकत्ते की आखिरी खबर भी लेनी है और हमें ब्लॉडक और कार्नस की प्रतीक्षा भी करनी चाहिए। वह अवश्य कुछ महत्वपूर्ण खबर ले कर आएँगे।"

"लेकिन हमें जल्द से जल्द चटगाँव पहुँचना आवश्यक है।"

"कुछ भी आवश्यक नहीं है। सूचना वहाँ पहुँच चुकी है।"

"तब खैर," मोशिए घोड़े से उतर पड़े। उन्होंने हाथ पकड़कर मेडम को भा उतारा। कपड़ों की धूल झाड़ी। बूढ़े ने जेब से बोतल निकाल कर मुँह से लगा ली। फिर मोशिए की ओर बढ़ाते हुए कहा—

"जरा-सी ले लीजिए मोशिए, पेट में जा कर फायदा देगी।"

पर मोशिए शराब नहीं पीते। उन्होंने कहा—"धन्यवाद।" लेकिन उनकी बात अधूरी ही रह गई। उन्होंने देखा, सामने पहाड़ी पर एक घुड़सवार धीरे-धीरे आ रहा है। उन्होंने धीरे से कहा—"कौन है यह ?" क्या ब्लॉडक है ? मेडम ने अपनी छोटी-सी दूरबीन वस्त्रों से निकाल कर आँख पर लगाई। उन्होंने कहा—"ब्लॉडक नहीं है, आदमी दो हैं। एक घोड़े पर दूसरा पैदल।"

मोशिए ने अपनी पिस्तौल की भलीभांति जांच कर उसे यथास्थान कमर में रख लिया। बूढ़ा तलवार उठा कर जोर-जोर से चिल्लाने लगा। मोशिए ने कहा—"आप लोगों को परेशान होने की जरूरत नहीं है। मैं देखता हूँ कौन है।" इतना कह कर वह आगे बढ़ गए। सवार धीरे-धीरे पहाड़ी से उतर रहा था। पास आने पर देखा, घोड़े पर सवार स्त्री है। पुरुष बंदूक कंधे पर रख कर आगे-आगे चल रहा है।

एकाएक आगन्तुक हर्ष से चिल्ला उठा। उसने मोशिए का नाम लेकर पुकारा। आवाज सुन कर मोशिए ने भी पहचान लिया, हेनरी था।

तरुण हँसता हुआ बन्दूक हाथों में ऊपर उठाए मोशिए की तरफ दौड़ा। यहाँ उसकी उपस्थिति मोशिए को बिल्कुल पसन्द नहीं आई। परन्तु उन्होंने मुस्करा कर उसका स्वागत करते हुए कहा—"अरे! तुम हो टाम ?"

हेनरी बच्चों की तरह खुश होकर दुआ सलाम करने लगा। रात मोशिए ने जुए में हारे हुए रुपए फेरने में जो उदारता दिखाई थी, उसकी कृतज्ञता ज्ञापन उसकी प्रत्येक चेष्टा से झलक रही थी। मोशिए ने घोड़े पर सवार युवती को देखा—एक दुबली-पतली—पीली-सी लड़की थी। उन्होंने पूछा—"यह कौन है ?"

हेनरी का मुँह शर्म से लाल हो गया। उसने तनिक झेंपते हुए मुस्करा कर कहा—"वह पिनी है। मेरे साथ भाग आई है। आपने उसे टेम्परेंस हाऊस में देखा होगा। बेचारी कड़ा परिश्रम करती थी। फिर भी वह बदज़ात आरमीनियन उसे बहुत कम तनख्वाह देता था। कलकत्ते में तो कुछ डौल बैठते दीखा नहीं—इसी से चटगाँव जा रहा हूँ। वहाँ सुना है फ्रेंच सरकार है। वे लोग अंग्रेज़ों से अच्छे हैं। वहाँ फ्रेंच गिरजे में शादी होने में भी झंझट नहीं होता। इसी से हम लोग चटगाँव जा रहे थे, आप खूब मिले मोशिए।

"निस्संदेह।" वह उन दोनों को अपनी मण्डली में ले आए। मेडम को देख कर हेनरी खुशी से उछल पड़ा—"हुर्रा, वाह, मेडम भी हैं। तब

तो पिनी की उनसे खूब घुटेगी। पिनी, घोड़े से उतर पड़ो और मेडम से मुलाक़ात करो। संकोच न करो, ये सब लोग हमारे मित्र हैं। अब तो चटगांव तक मजा ही रहेगा।"

मेडम को यह बातूनी छोकरा पसन्द नहीं आया। न उसे उस दासी छोकरी की सोहबत पसन्द थी। पर मोशिए ने कुछ इशारा कर दिया, जिसे समझ कर मेडम चुप हो गई। उन्होंने ऊपरी मन से बालिका का स्वागत किया। पिनी इतने आदमियों को देख शर्म से लाल हो गई। वह घोड़े से उतर कर चुपचाप अपने प्रेमी के पास खड़ी हो गई। वह कोई पन्द्रह वर्ष की छोकरी थी।

साथ में खाने-पीने का सामान बहुत संक्षिप्त था। डेरा डालने का तो कुछ प्रबन्ध ही नहीं था। दुर्भाग्य से उन्हें अकस्मात ही चल देना पड़ा था। ऐसी हालत में दो मिहमानों का बोझ मेडम को असह्य हो रहा था। पर जब उन्हें मालूम हुआ कि हेनरी के साथ खाने-पीने का यथेष्ट सामान है, एक छोटा-सा तम्बू भी है तो मेडम को संतोष हुआ। यद्यपि ये अत्यंत खतरनाक और गुप्त यात्री थे और रहस्य पूर्ण यात्रा कर रहे थे। वे नहीं चाहते थे कि किसी बाहरी आदमी से इस समय उनका सम्पर्क हो। बूढ़े ने शराब काफी ढाली थी। शराब की झोंक में वह एक-दो गुप्त बात कह गया, इस पर मोशिए ने उसे एक करारी ठोकर दी, तब उसका मुंह बन्द हो गया। वह वहाँ से जरा दूर बैठ कर अपनी जाँघ पीट-पीट कर एक भद्दा-सा गीत गाने लगा।

इस समय तक मोशिए के साथियों ने आग जला दी थी और वे उसके इर्द-गिर्द बैठ कर गप्पें उड़ा रहे थे। पिनी इतनी ही देर में मेडम के साथ हिल-मिल गई थी। वह छोटी बच्ची की तरह मेडम से चहक-चहक कर बातें कर रही थीं। उसकी बातों पर मेडम को मुस्कराना पड़ता था। हेनरी के साथ उम्दा चाकलेट और बिस्कुट थे, जिन्हें उसने बड़े तपाक से मेडम को पेश किया था—इसलिए भी मेडम उन्हें खुश करने का ख्याल रख रही थी।

घाटी की हवा धीरे-धीरे ठण्डी होने लगी और अन्धेरा घुप हो गया। हवा के झोंके ताड़ के वृक्षों के पत्ते अजब तरह से खड़खड़ाने लगे। पहाड़ी पर से हवा सन-सन शब्द करने लगी। हेनरी ने मजे में आकर दो पैग ह्स्की चढ़ाई और अपना छोटा-सा तम्बू तान कर हँसते हुए कहा—इसमें मेडम और पिनों मजे में सो रहेंगी और हम लोग सब आग के चारों ओर आराम से सोयेंगे। मोशिए ने मुस्करा कर समर्थन किया—पर उनके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकला। वास्तव में वे भी अपनी गम्भीरता छिपा रहे थे, अवसर पाकर मेडम ने उनके कान में कहा—"यह तो अच्छा खासा जैसे पिकनिक हो रहा है।" मोशिए मुस्करा दिए। उन्होंने एक कश सिगरेट में लगा कर कहा—

"है तो ऐसा ही।"

"लेकिन हमारी गिरफ्तारी के वारंट निकल चुके हैं।"

"नहीं। हमें गिरफ्तार करने और हम जहाँ मिल जाय वहीं पेड़ से लटका कर फाँसी पर चढ़ा देने का भी आर्डर कौंसिल से रात पास हो चुका है।"

यदि ऐसा प्रसंग इन बच्चों के सामने आ उपस्थित हुआ तो?"

"कुछ आश्चर्य नहीं। लेकिन मेडम, अब आप आराम से सोइए, मैं समझता हूँ वह बच्ची अपनी कहानियों से आप का खूब अच्छी तरह दिल बहला देगी।"

"उसकी जबान एक मिनट को बन्द नहीं होती।"

"खैर आपकी पिस्तौल में गोलियाँ भरी हैं।"

"खातिर जमा रखो। मैं कभी असावधान नहीं रहती।"

"तो गुड नाइट, आप जाकर सोइए।"

"और आप मोशिए।"

"मैं ब्लॉडक और कार्नस की प्रतीक्षा करूंगा।"

"बस? या और कुछ?

"ग्रौर भी जो इस राह पर इस रात ग्राए। मेरे पास दो पिस्तौल हैं, एक बन्दूक है ग्रौर मेरी तलवार है।"

'मैं भी मोशिए ग्राप के पास ही हूँ।"

"ग्राप इतमीनान से सो जाइए। सोने से ग्रापकी तबियत ताज़ा हो जायगी।"

"खैर मैं सोती हूँ।"

मेडम चली गई। सब लोग ग्राग के चारों ग्रोर पड़ कर सो रहे। दिन भर के थके हुए थे। मोशिए ने ग्रपनी पिस्तौलों को भरा। फिर बारूद के थैले को टटोला ग्रौर एक मोटे से दरख्त का ढासना लगा कर पैर फैला कर बैठ गए।

: ३४ :

छोटा मोर्चा

ग्रभी मोशिए को पेड़ के सहारे बैठ कर पैर फैलाए कुछ ही क्षरण हुए थे—कि उनके कान में कुछ ग्राहट ग्राई। उन्होंने चौकन्ने होकर इधर उधर देखा। फिर वे खड़े हो गए। उनके ग्रभ्यस्त कानों ने ग्रनुभव किया कि पहाड़ी पर घोड़े ग्रा रहे हैं। उन्होंने ग्रपने हथियारों को देखा, ग्रौर सब प्रकार की परिस्थितियों का सामना करने को तैयार बैठ गए। थोड़ी ही देर में उन्होंने देखा—दो घुड़सवार तेज़ी से ग्रा रहे हैं। उन्होंने ध्यान से देखा कि दो ही हैं। तनिक ग्राश्वस्त होकर वे खड़े रहे। ग्रागन्तुक ब्लॉडक ग्रौर करनस थे। मोशिए को पहचान कर उन्होंने कहा, मोशिए, सावधान हो जाइए—"शत्रु हमारा पीछा कर रहे हैं।"

"क्या वे सरकारी ग्रादमी हैं?"

"जी नहीं, डाकू फर्डीनेण्ड के दल के ग्रादमी हैं।"

"वे कुल कितने हैं?"

"मेरा ख्याल है—बारह हैं। लेकिन सब हथियार से लैस ग्रौर खूंखार हैं।"

"ख़ैर, तो ब्लॉडक, तुम दो सौ क़दम आगे बढ़ जाओ। और उपयुक्त स्थान पर छिप कर बैठो—ज्यों ही शत्रु तुम्हारी मार में आएँ—फौरन गोली मार दो।"

"बहुत खूब।"

"लेकिन याद रखो, गोली बारूद बर्बाद न करना, होशियारी से फ़ायर करना। शत्रु की संख्या कम होने ही में भलाई है।"

"आप इत्मीनान रखिए मोशिए," वह तेज़ी से उस ओर चल दिया।

"और तुम करनस, दबे पांव–जिससे तनिक भी आहट न हो; मेडम के पास जाओ। वहाँ, उस छोटे से टेन्ट में वह सो रही हैं, उन्हें मेरे पास भेज दो, और तुम डेरा डंडा उखाड़ कर कूच के लिए एकदम तैयार हो रहो। याद रखो, शोर कतई न हो, और कुल काम दस मिनट में हो जाय। हाँ, मेरा घोड़ा अभी भेज दो।'

"बहतर," करनस चला गया। मोशिए ने अब एक बार फिर अपने हथियारों को जांचा।

इसी समय बन्दूक दाग़ने की आवाज़ हुई। और दूसरे ही क्षण घोड़ा लेकर मेडम आ गई। मोशिए ने डिस्पैच का लिफाफा मेडम को देते हुए कहा—शीघ्रता करना मेडम, जितनी जल्द सम्भव हो–तुम अपने आदमियों को लेकर छिप पर पहुँच जाना। हरवे हथियार से एकदम टंच रहना। तथा कागज़ हिफाज़त से रखना, मैं ब्लॉडक के साथ जहाज़ पर मिलूँगा। सरकारी जहाज़ सनीचर को छूटेगा, परंतु हमें प्रथम ही चल देना होगा। खूब सावधान रहना मेडम।"

इसी बीच दस पाँच बन्दूकों की एक साथ छूटने की आवाज़ आई। मोशिए एकदम उछल कर घोड़े पर सवार हो गए। मेडम ने कहा—"ये लोग कौन हैं?"

"डाकू फर्डीनेण्ड के दल के लोग हैं।"

"क्या वे डिस्पैच की बात जानते हैं?"

"बेशक, तभी तो खज़ाने के पीछे पड़े हैं, वे यह भी जानते हैं कि डिस्पैच की नक़ल हमारे पास हैं।"

"मोशिए, आप खातिर जमा रखिए, डिस्पैच सुरक्षित रहेगा, और हम लोगों का छिप यथास्थान आप की प्रतीक्षा करेगा।"

"तो गुडबाई मेडम, जितना शीघ्र हो आप आगे बढ़ें।"

"लेकिन वे दोनों शैतान ?"

"उन्हें सोने दीजिए।"

"यह कैसे हो सकता है मोशिए ? मैं आपकी सेवा में उपस्थित हूँ।" मोशिए ने देखा—हेनरी अपनी बन्दूक लिए मुस्तैद घोड़े पर सवार है।

"तुम समझते नहीं टाम, बहतर है तुम अपनी प्रेमिका को लेकर अभीं सीधी राह अराकान चले जाओ। और वहाँ हनीमून मनाओ, हमारे साथ झंझट में पड़ जाओगे।"

"मोशिए, आपके लिए अच्छे और बुरे में हम शरीक हैं। चलिए ज़रा दुश्मनों से निपटा जाय।"

"तो तुम क्या क़सम खाकर कहते हो—कि हर राज़ को गुप्त रखोगे।"

"क़तई।"

"वादाखिलाफी और विश्वासघात की सजा मौत है।"

"मेरी जान आपके अधीन है।"

"तो मेडम, तुम पिनी को साथ ले जाओ। लेकिन हाँ," उन्होंने हेनरी की ओर मुड़ कर कहा—"उस पर विश्वास किया जा सकता है ?"

"निश्चय मोशिए।"

"खैर, तो आगे बढ़ो। मैं जब कहूँ तभी गोली दाग़ना, और ध्यान रखना—गोली-बारूद व्यर्थ न जाय !"

"आप चलिए तो मोशिए। जैसा कच्चा मैं जुआ खेलने में हूँ वैसा निशाना लगाने में नहीं हूँ।"

मैडम अपनी राह लगी, और मोशिए और हेनरी आगे बढ़े। जहाँ अकेला ब्लॉडक मोर्चा सम्हाले था।

अब ये तीन थे, और जम कर वार कर रहे थे। उन्होंने थोड़ी ही देर में दुश्मनों के पैर उखाड़ दिए। ब्लॉडक ज़ख्मी हो गया था। उसकी मरहम पट्टी की गई, और वे तेज़ी से फिर कलकत्ते की राह पर दौड़ चले।

: ३५ :

हुगली में

भादों मास समाप्त हो रहा था। हुगली उमड़ी जा रही थी। नदी का पाट काफी बढ़ा हुआ था। एक बड़ी छिप दक्षिण दिशा की ओर तेज़ी से जा रही थी। छिप के मल्लाह बड़ी सावधानी से इधर-उधर देखते जा रहे थे। चन्द्रमा का क्षीण प्रकाश कभी-कभी बादलों से झांक जाता था। इसी समय एक नाविक ने देखा, कोई काली सी चीज़ तेज़ी से पीछा कर रही है।

नाविक ने ज़ोर से चिल्ला कर कहा—

"सावधान, हमारे शत्रु पीछा कर रहे हैं?"

मेडम बाहर निकल आईं। उन्होंने दूरबीन से देख कर कहा—"यह तो कोशा है।"

मल्लाह ने भी हाथ की ओट आँखों पर करके देखा और कहा--

"जी हाँ हुज़ूर, कोशा ही है।"

"तो बिहारी, पहरा कड़ा कर दो। सब कोई अपनी-अपनी बन्दूकें भर ले। गोली बारूद की जिसे कमी हो ले ले।"

"जो आज्ञा हुज़ूर। पल भर में हम तैयार हो जाते हैं। क्या तोपें भी चढ़ा दी जाएँ?"

"हाँ, दो तोपें भी चढ़ा दो।"

"क्या कोशा सरकारी है?"

"ऐसा ही प्रतीत होता है, क्या तुम्हारे सब मल्लाह लड़ सकते हैं ?"

"हाँ हुजूर।"

"तो उन सब को एक-एक बन्दूक और एक-एक तलवार दे दो, लेकिन कुल कितने मल्लाह हैं।"

"कुल पचास हैं।"

"क्या सब एक साथ लड़ सकते हैं ?"

"जी नहीं। पच्चीस लड़ेंगे, पच्चीस नाव चलाएँगे।"

"ठीक है, जो नाव खे रहे हैं। तलवार उन्हें भी दे दो।"

बहुत अच्छा हुजूर।"

बिहारी चला गया।

करनस और दूसरे साथी इस समय तक हथियारों से लैस हो कर आ चुके थे। मेडम ने कहा—"करनस, इन नेटिव नाविकों के अतिरिक्त हम कै हैं।"

"कुल नौ मेडम।"

"सब तन्दुरुस्त ?"

"हाँ, मेडम।"

"तो दो हम, मैं और पिनी।"

पिनी आगे बढ़ आई। उसने हाथ की पिस्तौल हवा में ऊँची करके कहा—

"क्या दाग़ दूं ?"

"अभी नहीं, खबरदार रहो, जब जैसा मैं कहूँ, तब।"

"बहुत अच्छा मेडम।"

"अच्छा, अब छिप को बहाव में चलने दो।"

माझी ने ऐसा ही किया, छिप धीरे-धीरे बहने लगी। इसी समय सहसा एक छिप बग़ल के गढ़े से निकल कर तेज़ी से आगे बढ़ी और जब तक ये सावधान हो, एक धड़ाका हुआ। गोला मेडम के पैरों में आ गिरा।

सारी छिप हिल गई। एक मल्लाह पानी में गिर गया। बिहारी ने कहा—"हुज़ूर, हुक्म दो तो छिप को मैं उत्तर की ओर घुमा दूं।"

"ऐसा ही करो, और तुम करनस, दोनों तोपों का चार्ज लो। ज्यों ही मार में गोशा आए, इशारा पाते ही गोला दाग दो।"

परन्तु इसी समय बहुत सी नावें नदी के वक्ष पर फैली दिखाई दीं। बिहारी ने कहा—"हुज़ूर, यह तो सभी गरार और कोशा हैं। एक दस तोप वाली गरार ठीक नदी के बीच लंगर डाले खड़ी है।"

"खैर, धीरे-धीरे गरार के पास चलो।"

छिप जब पचास हाथ रह गया तो गरार के पहरेदार ने पूछा—

"किस की छिप है ?"

"हम व्यापारी हैं, कलकत्ता जा रहे हैं।"

"आ कहाँ से रहे हो ?"

"मुंगेर से।"

"ठहरो, हम आते हैं ?"

दो सैनिक छिप पर चढ़ आए। छिप पर बहुत सा व्यापारी माल था। संदेह की कोई वस्तु नहीं थी। मेडम ने स्वयं गूंगी और रोगी बनने का ढोंग किया। पिनी अफसर से बात करने लगी। उसने हँस कर कहा—

"हम लोग डर गए।"

"किस से ?"

"तुम लोगों से। हमने समझा पोर्चुगीज डाकू हैं। इधर हुगली में उन का बहुत भय है।"

"आप क्या अंग्रेज हैं ?"

"हाँ, मेरे पति ने कलकत्ते में नया कारोबार किया है।"

"वे कहाँ हैं ?"

"पीछे आ रहे हैं। हमारे माल से भरे दो छिप और आ रहे हैं। वे कल मुंगेर से चलेंगे।"

अफसर ने मेडम की ओर देख कर कहा—"यह कौन हैं ?"

पिनी ने मोहक मुस्कान ओठों पर लाकर कहा—'मेरी सास हैं, गूंगी और रोगी। इन्हीं के कारण तो हम दो दिन पहले चले हैं।"

"लेकिन देखते हैं तुम तो लड़ने को बिलकुल तैयार हो। सिपाही माझी हर्वे हथियार से लैस, तोपों पर बत्ती।"

"सचमुच, हमारा इरादा तुरन्त गोला दाग देने का था। और हम मरने मारने पर तुले हुए थे। हम डाकुओं से नहीं डरते महाशय।"

"तुम बहादुर औरत हो।" अफसर ने मुस्कराते हुए कहा—"वैल, फेअर लेडी, ज़रा होशियार जाना।"

दोनों अफ़सर चले गए। मेडम ने उठ कर पिनी की पीठ थपथपाई और कहा— शाबाश, तुम बड़े काम की लड़की हो। इत्मीनान रखो, तुम्हें उपयुक्त इनाम मिलेगा। तुम नहीं जानतीं कि किस भारी जोखिम का काम हमारे सुपुर्द है। लेकिन देखती हूँ तुम समझदार लड़की हो, इस वक्त तुम ने लड़ाई और मुसीबत दोनों ही टाल दीं।

'मेडम, आप मुझे हमेशा हर काम के लिए तैयार पाएगी।"

"मैं तुम्हारी जैसी लड़की को पसन्द करती हूँ।" उसने मल्लाहों को तेजी के साथ गंगा सागर की ओर चलने का हुक्म दिया। तुरन्त सब पालें चढ़ा दी गईं। और छिप वायु वेग से गंगा सागर की ओर बह चला।

: ३६ :

'टयूटानिया'

सन् १८४२ के अगस्त का अन्तिम सप्ताह था, जब ठीक साढ़े आठ बजे गंगासागर के बन्दरगाह से वह अथाह गुप्त खज़ाना ले कर अंग्रेज़ी जहाज़ 'ट्यूटानिया' रवाना हुआ। समुद्र स्तब्ध था, और संध्या के अंधकार में समुद्र का जल काला प्रतीत हो रहा था। आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। यह जहाज़ खास तौर पर ऐसा बनाया गया था कि—बाहर से वह एक साधारण व्यापारी जहाज प्रतीत होता था परन्तु उस में एक मज़बूत लड़ाके जहाज़ के सब साधन उपस्थित थे। नीचे के हिस्से में २८

तोपें रक्खी हुई थीं जो जंजीरों से जकड़ी हुई थीं। वे इस ढंग पर रखी हुई थीं कि एकाएक उन्हें कोई नहीं देख सकता था। जहाज में खलासी से कप्तान तक सब अंग्रेज़ थे, और सब जंचे हुए विश्वासी व्यक्ति थे। जहाज़ का कप्तान कैप्टन मूर मंझा हुआ नाविक था। उस का सहायक भी अनुभवी नाविक था। कैप्टिन मूर की आयु पचास के पार होगी। वह दृढ़, कष्ट-सहिष्णु और धैर्यवान् था। परन्तु जहाज़ पर जो विशिष्ट व्यक्ति था, वह कद में लम्बा एक वृद्ध पुरुष था। उसके सिर के बाल सफेद थे। पर वह तीर की भाँति सीधा खड़ा होता था। आँखें उस की बड़ी पैनी थीं। वह साधारण पोशाक पहने था। लबादे के नीचे ढीली-ढाली पैंट और चमड़े की वास्कट। सिर पर बड़े छज्जे की टोपी। उसकी ठोड़ी मोटी थी और उससे उसकी दृढ़चित्तता टपकती थी। यही अफग़ानिस्तान का प्रसिद्ध विजेता जनरल नाट था। जिसका यश इस समय घर-घर गाया जा रहा था। जहाज़ पर तीन सौ सैनिक थे। वे सब अंग्रेज़ थे और उनमें से प्रत्येक की व्यक्तिगत जांच कर ली गई।

आधी रात हो गई थी और जहाज़ अब खुले समुद्र में भरपूर गति से जा रहा था। हवा कुछ तेज हो गई थी। समुद्र की लहरें ज़ोर से उठ रहीं थी। पर जहाज़ पर इसका कुछ भी असर न था। जनरल नाट शांति के साथ डेक पर टहल रहे थे। उनके साथ कैप्टिन मूर थे। दोनों आदमी रुक-रुक कर धीरे-धीरे बातें करते जा रहे थे। कप्तान अत्यन्त विनीत के भाव से जनरल की प्रत्येक बात का उत्तर दे रहा था। दोनों ही व्यक्तियों के सामने भारत से इंगलैंड तक का लम्बा सफर था और उनके सिर पर बहुत ही ज़बरदस्त ज़िम्मेदारी थी। क्योंकि वे इस समय इतिहास के एक अत्यन्त गुप्त और सबसे बड़े खज़ाने को इंगलैंड ले जा रहे थे। जिसके इंगलैंड पहुंचने पर सम्पूर्ण इंगलैंड के यन्त्रोद्योग में भारी क्रांति की सम्भावना थी।

दस बजने पर जनरल ने अपनी घड़ी पर नज़र डाली और कहा—

"कैप्टिन, सावधान रहिए, सब बातें गुप्त और यथावत् रहें। इस

समय हमारे साथ समूचे इंगलैंड का भाग्य है।"

"भले ही प्राण चले जाँय, पर असावधानी न होने पाएगी जनरल।"

"कोई बात हो तो मुझे खबर देना, और याद रखना कि समुद्र में रहना शत्रु के मुकाबिले में रहने के बराबर है। खुले समुद्र में एक जहाज़ उस स्थिति में होता है जिस स्थिति में रणक्षेत्र में सेना।"

"मैं प्रत्येक बात याद रखूंगा जनरल,।"

बूढ़ा जनरल अपने कैबिन में चला गया। कप्तान बड़ी देर तक फैली जल राशि को देखता रहा।

: ३७ :

डाकू जहाज़

अरब सागर में एक जहाज़ तेज़ से तेज़ चाल पर जा रहा था। इस जहाज़ पर कोई झंडा न था और यह सदैव इस ढंग पर चल रहा था, कि जिस से वह दूसरे जहाजों की नज़र में न चढ़ जाय।

सुन्दर प्रभात था। प्रकृति की अपूर्व शोभा चारों ओर छाई हुई थी। समुद्र शांत था। मोशिए अकेले डेक पर टहल रहे थे। उनकी नज़र रह-रह कर सामने समुद्र में उठी चट्टानों की ओर उठ जाती थी। जो कुछ मील के अंतर पर थी। उनके चेहरे पर गम्भीर रेखाएँ उभर रही थीं। अभी सूर्य के उगने में विलम्ब था। जो मांझी काम पर लगे थे, उनके अतिरिक्त सब सो रहे थे। परन्तु मेडम कुछ बहुत ही जरूरी काम में लगी थीं। वह जल्दी-जल्दी कुछ लिख रही थीं। लिख कर टेबुल से सिर उठा कर मेडम ने ब्लॉडक को तलब किया। ब्लॉडक के आने पर उसे मोशिए को बुलाने का हुक्म दिया। मोशिए तत्काल ही केबिन में आ गए। ब्लॉडक केबिन का द्वार बंद कर के चला गया।

मेडम ने कहा—"तो हम उस जहाज के निकट पहुँच गए ?"

"नहीं, अभी वह हम से दूर है। लेकिन कार्यवाही हमें अभी—तुरंत ही करनी चाहिए। उन चट्टानों के उस पार खुले समुद्र में वह जहाज़

लंगर डाले खड़ा है। उसमें कुछ खराबी आ गई है।"

"तो क्या आप तयार हैं, मोशिए ?"

"यस मेडम।"

"क्या आप ब्लॉडक को साथ रखना पसंद करेंगे ?"

"नहीं, वह ज़ख्मी है, इसके अतिरिक्त तुम्हें उसकी आवश्यकता होगीं। मैं हेनरीं को ले जाना चाहता हूँ, उन्होंने भेदभरी नज़र से मेडम की ओर देखा। मेडम ने मोशिए का अभिप्राय समझ लिया। उसने कहा—

"और वह छोकरी ?"

"आज ही रात को उसे समुद्र में फेंक देना। मैं समझता हूँ मुठभेड़ कल दोपहर तक होगी।

"कल दोपहर तक ?"

"बेशक। अपनी तैयारी के लिए मुझे इतना ही समय चाहिए, तब तक तुम्हारे जहाज़ पर उनकी नज़र नहीं पड़नी चाहिए, तुम अच्छी तरह उन चट्टानों की आड़ में छिप सकती हो।"

"तो एक बार सब बातों पर फिर विचार कर लो मोशिए, उस जहाज़ पर २१ तोपें हैं और तीन सौ सिपाही। सब हथियारबंद। जनरल नाट की कमान में। जनरल नाट प्रसिद्ध सेनापति हैं। उन्होंने क़ाबुल को फ़तह किया है।"

"खैर, तो अब उन्हें मुझ से हाथ मिलाना है, देखूंगा।"

"हमें क्या करना होगा, मोशिए ?"

"जब तक मेरा संकेत न मिले, खामोश रहना। जिस से तुम्हारे जहाज़ का कुछ भी गुमान उन्हें न हो। वे पहाड़ियाँ तुम्हें मदद देंगी। इसके बाद इशारा होते ही जहाज़ पर टूट पड़ना। आगे जो होगा मैं देख लूंगा।" "उनके पास इक्कीस तोपें और तीन सौ सिपाही हैं। हमारे पास नौ तोपें और डेढ़ सौ आदमी हैं।"

"बस ?"

"और कुछ बात है मोशिए ?"

"यदि विपरीत परिस्थिति हो तो मेडम, तुम अपना बचाव कर सकती हो। परन्तु खरीता और सब काग़ज़ात नष्ट कर देना।"

"ओह उसका प्रबन्ध मैंने कर लिया है मोशिए। मुझे तुम कमज़ोर मत समझना।"

"तो मेडम, अब ज़रा हेनरी को बुलाओ।"

हेनरी के आने पर मोशिए ने कहा—

"हेनरी, तुम ने कहा था कि तुम साहसिक नाविक हो ?"

"आज़मा कर देखिए मोशिए।"

"तुम डूब मरना पसंद करते हो या गोली खाना ?"

"गोली खाना मोशिए।"

"यह अच्छा है। वे सामने खड़ी चट्टानें देख रहे हो ?"

"खूब अच्छी तरह।"

"क्या तुम खुले समुद्र में एक डोंगी ले कर वहाँ तक जा सकते हो ?"

"क्यों नहीं, क्या यह आवश्यक है ?"

"मेरे दोस्त, हमें वहाँ पहुँचना है।"

"आप मोशिए, मेरे साथ चलेंगे ?"

"बेशक।"

"वाह, तब तो मैं खुशी से चलने को तैयार हूँ।"

"अच्छा तो तुम पाँच मिनट में पिनी से विदा ले कर तैयार हो लो, डोंगी नीचे तैयार है।"

हेनरी चला गया।

मोशिए ने अपना लवादा सम्हाला, मेडम से हाथ और आँखें मिलाईं और चल दिए।

: ३८ :

समुद्री डाका

कुछ ही क्षणों में हवा और लहरों का रुख पा कर कोहरे और लहरों

: ३६ :

जल समाधि

ऊपर जाकर सरदार मेट ने दूरबीन लगाई। उसने कहा—कैप्टिन, जहाज को हमारी ओर घुमाने का क्या अभिप्राय हो सकता है। ये तो समुद्री डाकुओं का जहाज प्रतीत होता है।

कैप्टेन ने कहा—ऐसा ही मेरा अनुमान है। देखो फुर्ती करो, रस्सों और तारों का ढेर लगा दो। जिस से मस्तूल कमजोर न होने पाए। घायलों के लिए अलग जगह बना दो। और जो तोपें ठीक हैं, उन्हें तैयार कर लो। बारूदखाना खोल दो और मल्लाहों तथा सिपाहियों को गोली बारूद और बन्दूकें बाँट दो।

इस बीच डाकू जहाज और नजदीक आ गया। कैप्टिन ने देखा, उस पर के सब आदमी हरवा-हथियार से लैस थे। तथा जहाज के सिरे पर एक भयंकर आदमी अंग्रेजी जहाज को पकड़ने के लिए हाथ में कांटा लिए मुस्तैद खड़ा था।

कैप्टेन मूर ने कहा—"जनरल बड़ी मुसीबत है, हमारे पास सिर्फ दो तोपें ही काम लायक हैं।" इस समय भी तोप अपना उपद्रव कर रही थी, तथा तूफान जहाज को झकझोर रहा था। जहाज चाहे जब डूब सकता था। जनरल ने माथे का पसीना पोंछ कर कहा—"खैर, तुम पहले उन से बात करो।"

कैप्टेन ने मुँह में यन्त्र लगा कर कहा—"तुम क्या चाहते हो और कौन हो ?"

डाकू जहाज से जवाब आया—सब झण्डों को उतार दो। पालों को खोल डालो, हथियार फैंक दो। और जमानत के तौर पर जनरल नाँट हमारे जहाज पर फौरन आ जाय।"

"लेकिन तुम हो कौन ?"

"व्यर्थ बकवाद मत करो। जो कहते हैं वही करो।"

इसी समय जनरल ने फायर का हुक्म दिया। दोनों गोले डाकुओं के जहाज के बीचों बीच आ गिरे। इस से डाकू जहाज में आग लग गई। परन्तु इसी समय डाकू ज़हाज अंग्रेज़ी जहाज से आ भिड़ा। और गोलियां चलाते हुए डाकू दवादब अंग्रेज़ी जहाज पर कूदने लगे।

जहाज की हालत बहुत ही खतरनाक हो रही थी। तोप की प्रत्येक टक्कर उसे ऐसा धक्का दे रही थी कि वह उलटते-उलटते रह जाता था। जनरल यथा सम्भव अपने सैनिकों को सम्हाल रहे थे। पर अब युद्ध की बात छोड़ दोनों पक्ष जहाजों की रक्षा से भयमीत हो रहे थे। दोनों ही जहाजों के डूबने की सम्भावना उठ खड़ी हुई, की मोशिए ने ज्यों ही मेड़म को कूद कर इस जहाज पर आते देखा, उन्होंने पिस्तौल लेकर कैप्टिन को गोली मार दी। जनरल ने देखा, और कहा—"तो मोशिए यह सब आप ही की योजना है ?"

"हाँ, जनरल, वेहतर हो कि लड़ाई-झगड़ा बन्द कर दीजिए और जहाज़ हमारे हवाले कर दीजिए।"

"इस काम में अभी कुछ क्षणों की देर है मोशिए। लेकिन क्या आप मेरे तावे होते हैं ?"

"नहीं, जनरल, मैं आप का सम्मान करता हूँ। परन्तु......"

इसी समय डाकू जहाज़ के बारूदखाने में आग लग गई और वह एक धड़ाके के साथ तीन टुकड़े हो कर जलमग्न होने लगा।

इसी समय अंग्रेजी जहाज़ के पेंदे में तोप ने दो छेद कर दिए और जहाज़ में तेज़ी से पानी भरने लगा। जहाज़ बुरी तरह एक ओर को झुक गया। मोशिए ने कहा—"जनरल, क्या आप जहाज मेरे हवाले करते हैं ?"

"नहीं, क्या आप मेरे तावे होते हैं ?"

"नहीं।"

"खैर, तो बेहतर है अब लड़ाई बन्द कर दी जाए।"

"जहाँ आप खड़े हैं। जहाज़ का वह भाग आप ही के कब्जे में रहे

ग्रौर शेष जहाज़ पर ग्राप मेरा ग्रधिकार स्वीकार कर लें। ग्रब हमारे पास केवल पाँच मिनिट ही का समय है, ग्राप समझते हैं न मोशिए ?"

"समझ गया जनरल, ग्राप का प्रस्ताव मैं स्वीकार करता हूँ।" उसने ग्रपने ग्रादमियों को तुरन्त युद्ध बन्द करने का ग्रादेश दिया। फिर पुकार कर कहा—"मेडम, तुम यहाँ मेरे पास ग्राग्रो।"

मेडम ने मोशिए के पास ग्रा कहा—"ग्रफसोस, यह ग्रलभ्य खजाना समुद्र-गर्भ में जा रहा है।"

"हम भी वहीं चल रहे हैं मेडम। क्या तुम घबरा रही हो ?"

"तनिक भी नहीं मोशिए। देखिए मेरे दिल पर हाथ रखिए।"

"तो हाथ दो मेडम, ग्रच्छे-बुरे में हम साथ रहे।"

जनरल ने चिल्ला कर कहा—"महाशय, सब कोई नेशनल गीत गाग्रो। उन्होंने यूनियन जैक हाथ में लिया ग्रौर नेशनल गीत गाना ग्रारम्भ किया।

इस समय तक सब कोई कंठ तक जल में डूब चुके थे। तूफान की गरज, बिजली की कड़क, गीत की लय, मरतों की चीत्कार, सब कुछ एकाकार हो गई ग्रौर क्षरण भर बाद इन सब जीवित मृत पुरुषों तथा उस ग्रतोल स्वर्णरत्न के भण्डार को ले कर वह ग्रविस्मृत जहाज़ समुद्र-गर्भ में लीन हो गया।